ओ३म्

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यः

दशमो भागः ।

आख्यातिकः ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्या-
ख्यासहितः । पाणिनिमुनिप्रणीता-
यामष्टाध्याय्यां सप्तमो भागः ।
पठनपाठनव्यवस्थायाश्च
दशमम्पुस्तकम् ।

सर्वथा राजनियमेनियोजितः

वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ।

संवत् १९५४

—(:०:)—

Registered under sections 18 and 19 of Act XXV of 1867.

द्वितीयवार ५०० } 2nd Edition 500 | Vedic Press Ajmere 1898. | { मूल्य १।=)६ Price-1-6-6

॥ विषय सूचीपत्रम् ॥

ओ३म्

अथ भूमिका

———:o:———

यह अष्टाध्यायी का छठा भाग और पठन पाठन व्यवस्था में आठवां पुस्तक है। आख्यात उस को कहते हैं कि जो समग्र प्रकृति प्रत्ययों के संयोग से भाव, कर्म्म, कर्त्ता, भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान काल, एक, द्वि और बहुत अर्थों के वाचक हैं। इस ग्रन्थ में मुख्य करके आख्यात शब्दों ही का व्याख्यान किया है इस से इस को आख्यातिक कहते हैं। (प्रश्न) धातु किन को कहते हैं (उत्तर) जो सत्ता आदि विविध प्रकार के अर्थों को धारण करें (प्र०) वे कौन हैं (उ०) भू आदि शब्द (प्र०) भू आदि शब्द कै प्रकार के होते हैं (उ०) दो प्रकार के एक सामान्यार्थवाची और दूसरे विशेषार्थवाची। सामान्यार्थवाची उन को कहते हैं कि जिन का योग सब विशेषार्थवाचकों के साथ रहे जैसे (योऽस्ति स भवति। यो भवति स करोति) जो है सो होता और जो होता है सो ही करता है और जो नहीं है उस का होना क्या और जो नहीं होता उस के करने का तो क्या ही सम्भव है। दूसरे विशेषार्थवाचक उन को कहते हैं कि जिन का प्रयोग विशेष व्यवहारों में किया जावे जैसे (देवदत्तः किं करोति। स ब्रूते पचति भुंक्ते पठति ददाति वा इत्यादि) जैसे किसी से किसी ने पूंछा कि देवदत्त क्या करता है वह उत्तर देवे कि पकाता भोजन करता पढ़ता अथवा दान देता है (प्रं०) आख्यात का क्या लक्षण है (उ०) (भावप्रधानमाख्यातम्) जो धातु से परे लकारों के स्थान में तिङ् आदि आदेश किये जाते हैं वे भावप्रधान अर्थात् भू आदि धातुओं के सत्ता आदि अर्थों के वाचक होते हैं उन्हीं को आख्यात कहते हैं (प्र०) कितने अर्थों में लकारों के स्थान में तिङ् आदि आदेश होते हैं (उ०) तीन अर्थात् भाव कर्म्म और कर्त्ता अर्थों में। भाव दो प्रकार का होता है एक आभ्यन्तर, दूसरा बाह्य। आभ्यन्तर भाव उस को कहते हैं कि जो धात्वर्थमात्र में स्थित होकर सामान्य अर्थ का वाचक होता है। जिस के एक होने से एक ही वचन होता है जैसे (आस्यते भवता भवद्भ्यां भवद्भिर्वा। आसितव्यम्। भवितव्यम्। इत्यादि) इस में कदापि द्विवचन और बहुवचन का प्रयोग नहीं हो सकता। और बाह्यभाव उस को कहते हैं कि जिस में एक द्वि और बहुवचन के प्रयोग होवें जैसे (पच्यते ओदनः। पच्येते ओदनौ। पच्यन्ते ओदना इति। कृदभिहितो भावो द्रव्यवद्भवति। महाभाष्य अ० ३। पा० १।

सू० ६७ ॥) द्रव्यों के समान इस के अनेक प्रकार होने से एक द्वि और बहु-वचनांत प्रयोग होते हैं जैसे (भावः । भावौ । भावाः । पाकः । पाकौ । पाकाः । इत्यादि) कर्म्म उस को कहते हैं कि जो कर्त्ता के करने से ही किया जाय जैसे (देवदत्तः कटं करोतीत्यादि) यहां कर्त्ता के किये विना चटाई कदापि नहीं बन सकती । कर्त्ता उस को कहते हैं कि जो स्वाधीन साधनों से युक्त हो कर क्रिया करने में स्वतन्त्र होवे जैसे देवदत्त कर्त्ता चटाई कर्म्म और करना क्रिया है इस में विशेष यह है कि (इदं विचार्य्यते । भावकर्मकर्त्तारः सार्वधातुकार्था वा स्युर्विकरणार्था वेति । एवं तर्हीदं स्यात् । यदा भावकर्मणोर्लस्तदा कर्त्तरि विकरणः । यदा कर्त्तरि लस्तदा भावकर्मणोर्विकरणः) महाभाष्य अ० ३ । पा० १ । सू० ६७ ॥ यह विचारना चाहिये कि भाव, कर्म और कर्त्ता अर्थों में तिङ् प्रत्यय हों वा विकरण शप् आदि होवें । इस की व्यवस्था इस प्रकार समझनी चाहिये कि जब भाव कर्म अर्थों में लकार हों तब तो कर्त्ता में विकरण और जब कर्त्ता में लकार हों तब भाव कर्म अर्थों में विकरण होवें । अर्थात् एक तिङन्तक्रिया में दोनों अर्थ रहें, जैसे—ग्रामं गच्छति । यहां कर्त्ता में लकार और कर्म में द्वितीया और कर्म के साथ शप् प्रत्यय का एकाधिकरण समझना चाहिये । इसी प्रकार सर्वत्र जानो (प्र०) किन धातुओं से लकार किन अर्थों में होते हैं (उ०) अकर्म्मक धातुओं से भाव और कर्त्ता अर्थ में तथा सकर्म्मक धातुओं से कर्म्म और कर्त्ता अर्थ में होते हैं (प्र०) अकर्म्मक और सकर्म्मक धातुओं का क्या लक्षण है (उ०) (कर्म्मस्थभावकानां कर्म्मस्थक्रियाणां च कर्त्ता कर्म्मवद्भवतीति वक्तव्यम् । कर्तृस्थभावकानां कर्तृस्थक्रियाणां च कर्त्ता कर्मवन्मा भूदिति । कर्म्मस्थभावकानाम् । आसयति देवदत्तं, शाययति देवदत्तं, स्थापयति देवदत्तम् । कर्म्मस्थक्रियाणाम् । गामवरुणद्धि । करोति कटम् । पचत्योदनम् । कर्तृस्थभावकानाम् । चिन्तयति, मन्त्रयते । कर्तृस्थक्रियाणाम् । गच्छति धावति हसति) महाभाष्य अ० ३ । पा० १ । सू० ८७ । आ० ५ । धातु दो प्रकार के होते हैं एक सकर्म्मक, दूसरे अकर्म्मक । सकर्म्मक उन को कहते हैं कि जिन का भाव और क्रिया कर्त्ता से भिन्न के लिये हों और जिन का भाव और क्रिया कर्त्ता ही के लिये हों वे अकर्म्मक कहाते हैं । सकर्म्मकभावयुक्त धातुओं के उदाहरण (आसयति देवदत्तं, शाययति देवदत्तं, स्थापयति देवदत्तम् । इत्यादि) यहां देवदत्त संज्ञककर्म्म ही में बैठना सोना और स्थित होनारूप भाव है । कर्मस्थक्रिय धातुओं के उदाहरण

(गामवरुणद्धि, करोति कटं, पचत्योदनम् । इत्यादि) यहां गौ, चटाई और ओदनरूप कर्म ही में रोकना बनना और पकनारूप क्रिया हैं इस से इस प्रकार के धातु सकर्म्मक कहाते हैं। अकर्म्मकों में कर्तृस्थभावक धातुओं के उदाहरण (देवदत्तश्चिन्तयति,मन्त्रयते, अस्ति, भवति, तिष्ठति,आस्ते,चेत्यादि) यहां चिन्तन विचारना होना ठहरना और बैठना आदि भाव कर्त्ता ही में हैं। कर्तृस्थक्रिय धातुओं के उदाहरण (गच्छति, धावति, हसति, क्रुध्यति, शाम्यति, इत्यादि) यहां चलना दौड़ना हंसना क्रोध और शान्ति आदि क्रिया कर्त्ता ही में रहती हैं इसलिये इस प्रकार के धातु अकर्म्मक कहाते हैं * । क्रिया का लक्षण (का पुनः क्रिया । ईहा । का पुनरीहा । चेष्टा । का पुनश्चेष्टा । व्यापारः । सर्वथा भवाञ्छब्दैरेव शब्दान् व्याचष्टे न किंचिदर्थजातं निदर्शयत्येवं जातीयका क्रियेति । क्रिया नामेयमत्यन्ताऽपरिदृष्टा, अशक्या पिण्डीभूता निदर्शयितुम् । यथा गर्भो निर्लुठितः । साऽसावनुमानगम्या कोऽसावनुमानः । इह सर्वेषु साधनेषु सन्निहितेषु यदा पचतीत्येतद्भवति सा नूनं क्रिया । अथवा यया देवदत्त इह भूत्वा पाटलिपुत्रे भवति सा नूनं क्रिया) महाभाष्य अ० १ । पा० ३ । सू० १ आ० १ ॥ क्रिया उस को कहते हैं कि जो कुछ आत्मा मन प्राण इन्द्रिय और शरीर में चेष्टा होती है जैसे कोई मनुष्य चलते हुए हाथ को देख कर अनुमान करता है कि जिस से यह हाथ चलता है वही क्रिया है। जो अनुमान से जानने योग्य है वह आंख आदि इन्द्रियों से ग्रहण करने में कैसे आ सकती है किन्तु विज्ञान ही से दिखलाई देती है। धातु और प्रत्ययस्थ अनुबन्धों के प्रयोजन । जिन धातुओं के उदात्त अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, लृ, ए और ओ, ये अनुबन्ध इत्संज्ञक होते हैं उन से परस्मैपद और जिन के पूर्वोक्त ही अनुदात्त अकारादि स्वर इत्संज्ञक हों उन और व्यञ्जनों में ङकार जिन का इत्संज्ञक होता है उन से भी आत्मनेपद होता है। जिस का स्वरित अकारादि तथा ञकार इत्संज्ञक हो उन से आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों होते हैं। जिन का आकार इत् जाता है उन और जिन का ईकार इत् जाता है

* सकर्म्मक और अकर्म्मक धातुओं की व्यवस्था कई प्रकार से समझी जाती है। मुख्य तो यही है कि जिस प्रकरण में प्रयुक्त क्रिया हो उस का अर्थ किसी कर्म्म के साथ सम्बन्धित होवे तो सकर्म्मक, नहीं तो अकर्म्मक। और जो धातु सकर्म्मक हैं वे ही कभी देश काल और वस्तु के भेद से अकर्म्मक और अकर्म्मक सकर्म्मक भी हो जाते हैं। और जितने धातु अकर्म्मक हैं वे सब किसी पदार्थ के आश्रय से सकर्म्मक हो जाते हैं जैसे—अध्वानमास्ते। यह आस धातु अकर्म्मक है इस का मार्ग ही कर्म्म हो जाता है। इस प्रकरण को कारकीय ग्रन्थ के कर्म्मकारक प्रकरण में भी लिख चुके हैं। अर्थात् जिस २ को कर्म्म संज्ञा यहां करदी है उस २ अर्थ का जिस २ धातु के साथ सम्बन्ध हो उस २ को सकर्म्मक, अन्य सब अकर्म्मक मानने चाहियें॥

उन से परे निष्ठासंज्ञक प्रत्ययों को इट् का आगम नहीं होता। जिनका ह्रस्व इ-कार इत् जाता है उन को नुम् का आगम होता है। जिनका उकार इत् जाता है उन से परे क्त्वा प्रत्यय को इट् का आगम विकल्प करके और निष्ठा प्रत्यय को इ-डागम नहीं होता। जिनका ऊकार इत् जाता है उन से परे सामान्य आर्द्धधातुक प्रत्यय को इट् का आगम विकल्प करके और निष्ठा प्रत्यय को इट् का आगम नहीं होता। जिनका ह्रस्व ऋकार इत् जाता है चङ्परकणिच् परे हो तो उन के उपधा को ह्रस्व नहीं होता। जिनका लृकार इत् जाता हैं उन से परे च्लि प्रत्यय के स्थान में अङ् आदेश होता है। जिनका एकार इत् जाता है उन को इडादि सिच् के परे परस्मैपद में वृद्धि नहीं होती है। जिन का ओकार इत् जाता है उन से परे निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है। जिन का ञि इत् जाता है उन से परे वर्त्त-मान काल में क्त प्रत्यय होता है। जिन का टु इत् जाता है उन से परे अथुच् प्रत्यय होता है। जिन का डु इत् जाता है उन से क्त्रि प्रत्यय होता है और जिन का ष इत् जाता है उन से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय होता है, इत्यादि प्रयो-जन जानो। अब संक्षेप से प्रत्ययस्थ अनुबन्धों के प्रयोजन कहते हैं। जिन का ककार और ङकार इत् जाता है वे प्रत्यय परे हों तो अङ्ग को गुण और वृद्धि नहीं होती। वचि स्वपि आदि धातुओं को संप्रसारण और अन्तोदात्त स्वर भी होता है, और कित् ङित् के परे ग्रह आदि धातुओं को संप्रसारण भी होता है, और ञित् णित् प्रत्यय के परे अजन्त अङ्ग तथा उपधाभूत अकार को वृद्धि होती और प्र-कृति को आद्युदात्त स्वर भी होता है। चित् का अन्तोदात्तस्वर प्रयोजन है, टित् का प्रयोजन ङीप् प्रत्यय। डित् का प्रयोजन टिलोप। तित् का प्रयोजन स्वरित स्वर होता है। आगमों के प्रयोजन। टित् कित् और मित् ये तीन प्रकार के आगम होते हैं। इन के नियम ये हैं कि प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय में टित् आगम जिस को विधान करें उस के आदि का अवयव, कित् आगम जिस को विधान करें उस के अन्त का अवयव और मित् आगम जिस को विधान करें उस के अन्त्य अच् से परे होता है। (प्र०) आदि और अन्त का क्या लक्षण है (उ०) (यस्मात् पूर्वं नास्ति परमस्ति स आदिरित्युच्यते। यस्मात् पूर्वमस्ति परं च नास्ति सोऽन्त इत्युच्यते) महाभाष्य अ० १ पा० १ । सू० २१ । जिस के पूर्व कुछ न हो और पर हो वह आदि कहाता है और जिस के पूर्व कुछ है और पर नहीं है उसको

अन्त कहते हैं (प्र०) कौन २ धातु सेट् और कौन २ अनिट् होते हैं (उ०) (अथ के पुनरनुदात्ताः । आदन्ता अदरिद्राः । इवर्णान्ताश्चाश्रि श्वि डी शी दीधी वेवीङः । उकारान्ताः—यु रु णु क्षु क्ष्णूर्णुवर्जम् । ऋदन्ताश्चाजागृ वृङ् वृञः । शाकिः कवर्गान्तानाम् । पचि वचि सिचि मुचि रिचि विचि प्रच्छि यजि भजि भञ्जि रञ्जि सृजि त्यजि भुजि भ्रस्जि मस्जि रुजि युजि णिजि विजि सञ्जि स्वञ्जयश्चवर्गान्तानाम् । अदि रुदि शदि हदि छिदि तुदि नुदि खिदि भिदि स्कन्दि क्षुदि स्विद्यति पद्यति विन्ति विद्यति राधि युधि बुधि शुधि क्रुधि रुधि साधि व्यधि बन्धि सिध्यति हनि भन्यतयस्तवर्गान्तानाम् । तपि तिपि वपि शपि छुपि लुपि लिपि स्वप्यापि क्षिपि सृपि तृपि दृपि यभि रभि लभि यमि रमि नमि गमयः पवर्गान्तानाम् । रुशि रिशि दिशि विशि लिशि स्पृशि दृशि क्रुशि मृशि दंशि पुष्यति त्विषि कृषि श्लिषि विषि पिषि शिषि शुषि तुषि दुषि द्विषि घसि वसि दहि दिहि वहि दुहि नहि रुहि लिहि मिहयश्चोष्मान्तानाम् । वसिः प्रसारणी) महा० अ० ७ । पा० २ । सू० १० । आकारान्तों में एक दरिद्रा धातु को छोड़ के शेष सब अनिट् हैं, इवर्णान्तों में श्रि श्वि डी शी दीधी वेवी इन छः धातुओं को छोड़ के शेष अनिट्, उवर्णान्तों में यु रु णु क्षु क्ष्णु ऊर्णु इन छः धातुओं को छोड़ के शेष अनिट्, ऋवर्णान्तों में जागृ वृङ् वृञ् धातुओं को छोड़ के बाकी अनिट्, कवर्गान्तों में एक शकि धातु अनिट् बाकी सब सेट्, चवर्गान्तों में यथाक्रम से पठित पचि आदि बाईस २२ धातु अनिट् बाकी सब सेट्, तवर्गान्तों में यथापठित अदि आदि २७ सत्ताईस धातु अनिट् अन्य सब सेट् । पवर्गान्तों में तिपि आदि यथापठित २० बीस धातु अनिट् अन्य सब सेट् और ऊष्मान्त अर्थात् श ष स और ह जिन के अन्त में हों उन में रुशि आदि ३१ इकत्तीस धातु अनिट् अन्य सब सेट् हैं । इन में वस धातु वह समझना चाहिये कि जिस को सम्प्रसारण होता है अर्थात् आच्छादनार्थवाची का ग्रहण नहीं समझना । पूर्वोक्त सेट् अनिट् धातुओं की व्यवस्था महाभाष्यकार ने इस प्रकार लिखी है परन्तु उस में सब धातुओं का इक्प्रत्ययान्त निर्देश किया है इस से कौन धातु कौन गण का सेट् अनिट् व्यवस्था में समझना चाहिये इस बात का बोध ठीक २ नहीं होता सो इस के विशेष व्याख्यान गणस्थ धातुओं में देखने से विदित होगा और इस विषय में किन्हीं प्राचीन शिष्ट वैयाकरणों की बनाई कारिका भी हैं सो आगे लिखते हैं ॥

अनिट् स्वरान्तो भवतीति दृश्यतामिमांस्तु सेटः प्रवदन्ति तद्विदः । अदन्तमृदन्तमृताञ्च वृङ्वृञौ श्विडी-ङिवर्णेष्वथ शीङ्श्रिञावपि ॥ १ ॥
गणस्थमूदन्तमुतां च रुस्नुवौ क्षुवन्तथोर्णोतिमथो युणुक्ष्णवः ।
इति स्वरान्ता निपुणं समुच्चितास्ततो हलन्तानपि सन्निबोधत ॥२॥

धातु दो प्रकार के होते हैं—एक स्वरान्त, दूसरे व्यंजनान्त, उनमें स्वरान्त एकाच् धातु सब अनिट् होते हैं परन्तु अकारान्त, दीर्घ ऋकारान्त, ह्रस्व ऋकारान्तों में वृङ् वृञ् इवर्णान्तों श्वि, डीङ्, शीङ् और श्रिञ्, गणों में पढ़े ऊकारन्त सब तथा उवर्णान्तों में रु, स्नु, क्षु, ऊर्णु, यु, णु और क्ष्णु, इन सब को छोड़ के अर्थात् ये अकारान्त आदि जो गिनाये हैं सब सेट् हैं । इस के आगे हलन्तः— *

शकिस्तु कान्तेष्वनिडेक इष्यते घसिश्च सान्तेषु वसिः प्रसारणी ।
रभिस्तु भान्तेष्वथ मैथुने यभिस्ततस्तृतीयो लभिरेव नेतरे ॥३॥

ककारान्तों में एक शक, सकारान्तों में घस और निवासार्थ वाला वस, तथा भकारान्तों में रभ, लभ और मैथुन अर्थ में यभ, ये तीन धातु अनिट् हैं बाकी सब सेट् समझने चाहियें ।

यमिर्यमन्तेष्वनिडेक इष्यते रमिश्च यश्च श्यनि पठ्यते मनिः ।
नमिश्चतुर्थो हनिरेव पञ्चमो गमिश्च षष्ठः प्रतिषेधवाचिनाम् ॥४॥

मकारान्तों में यम, रम, नम, गम ये चार और नकारान्तों में हन तथा दिवादि गण में पढ़ा मन, ये दो धातु अनिट् हैं ।

पचिं वचिं विचिरिचिरञ्जिपृच्छतीन् निजिं सिचिं मुचिभ-जिभञ्जिभृज्जतीन् । त्यजिं यजिं युजि रुजिसञ्जिमज्जतीन् भुजिं स्वजिं सृजिविजी विद्ध्यनिट् स्वरान् ॥ ५ ॥

* स्वरान्तों में महाभाष्यकारने अनेकाच् की अपेक्षा छोड़ के आकारान्तों में दरिद्रा और इवर्णान्तों में दीधीङ्, वेवीङ् धातु गिनाये हैं और कारिकाबनानेवालों का अभिप्राय यह है कि (एकाच उपदेशेऽनु०) सूत्र में जो एकाच् ग्रहण है उस का आश्रय लेकर ये धातु सेट् और ये अनिट् हैं अर्थात् दोनों प्रकार का व्याख्यान ठीक है इस महाभाष्य और कारिकाओं में परस्पर कुछ विरोध नहीं आसकता ।

चकारान्तों में पच, वच, रिच, सिच, मुचि ये छः। छकारान्तों में एक प्रच्छ, जकारान्तों में रंज, निज, भज, भञ्ज, भ्रस्ज, त्यज, यज, युज, रुज, सञ्ज, मस्ज, भुज, स्वञ्ज, सृज, विज ये पन्द्रह धातु अनिट् हैं बाकी सब सेट् समझना चाहिये।

अदिं हदिं स्कन्दिभिदिच्छिदिक्षुदीन् शदिं सदिं स्विद्यति-
पद्यती खिदिम्। तुदिं नुदिं विद्यति विन्त इत्यपि
प्रतीहि दान्तान्दश पञ्च चानिटः॥ ६॥

दकारान्तों में अद, हद, स्कन्द, भिद, छिद, क्षुद, शद, सद, स्विद, पद, विद ये तीनों दिवादि गण के तथा विद, रुधादि गण का भी खिद, तुद, नुद, ये पन्द्रह धातु अनिट् हैं।

रुधिस्सराधिर्युधिबन्धिसाधयः क्रुधिक्षुधी शुध्यतिबुध्यती
व्यधिः। इमे तु धान्ता दश येऽनिटो मतास्ततः
परं सिध्यतिरेव नेतरे॥ ७॥

धकारान्तों में रुध, राध, युध, बन्ध, साध, क्रुध, क्षुध, दिवादि गणका शुध, बुध, तथा सिध और व्यध, ये ग्यारह धातु अनिट् हैं।

तपिं तिपिं चापिमथो वपिं स्वपिं लिपिं लुपिं तृप्यतिदृप्यती
सृपिम्। स्वरेण नीचेन शपिं छुपिं क्षिपिं प्रतीहि पान्ता-
न्पठितांस्त्रयोदश॥ ८॥

पकारान्तों में तप, तिप, आप, वप, स्वप, लिप, लुप, दिवादि गण के तृप, दृप, ये दो। सृप, शप, छुप, क्षिप ये तेरह धातु अनिट् हैं।

दिशिं दृशिं दंशिमथो मृशिं स्पृशिं रिशिं रुशिं क्रोशतिमष्ट-
मं विशिम्। लिशिं च शान्तानानिटः पुराणगाः पठन्ति
पाठेषु दशैव नेतरान्॥ ९॥

शकारान्तों में दिश, दृश, दंश, मृश, स्पृश, रिश, रुश, क्रुश, विश, लिश ये दश धातु अनिट् हैं।

शिषिं पिषिं शुष्यतिपुष्यती त्विषिं विषिं श्लिषिं तुष्यति-

दुष्यती ह्रिषिम् । इमान्दशैवोपदिशन्त्यनिड्विधौ गणेषु षान्तान् कृषिकर्षती तथा ॥ १० ॥

षकारान्तों में शिष, पिष, त्विष, विष, श्लिष, द्विष, दिवादि गण के शुष, पुष, तुष, दुष ये चार और तुदादि और भ्वादि दोनों गण का कृष, ये ग्यारह धातु अनिट् हैं।

दिहिर्दुहिर्मेहतिरोहती वहिर्नहिस्तु षष्ठो दहतिस्तथा लिहिः । इमेऽनिटोऽष्टावि हमुक्तसंज्ञया गणेषु हान्ताः प्रविभज्य कीर्त्तिताः ॥ ११ ॥

हकारान्तों में दिह, दुह, मिह, रुह, वह, नह, दह, लिह ये आठ धातु अनिट् हैं। जहां सेट् गिनाये हैं वहां बाकी अनिट् और जहां अनिट् गिनाये हैं वहां बाकी सेट् समझ लेना चाहिये। इस ग्रन्थ में जितने सेट् अनिट् धातु हैं उन सब की व्यवस्था मुख्य तो यही समझनी चाहिये और उदात्तोपदेश से सेट् और अनुदात्तोपदेश से अनिट् समझते हैं। जो धातु उपदेश में उदात्त हैं उन पर कोई चिन्ह नहीं होता और जो उपदेश में अनुदात्त होते हैं उन के आदि वर्ण के नीचे अनुदात्त की तिर्छी रेखा कर देते थे और परस्मैपद आत्मनेपद के लिये यह संकेत था कि जिन का अन्त्य वर्ण अनुदात्त चिन्हित इत् हो और जो उपदेश में ङित् हों उन से आत्मनेपद, शेषों से परस्मैपद और जिन के अन्त्य वर्ण स्वरितसंज्ञक इत् हों उन तथा जो उपदेश में ञित् हों उन से उभयपद समझते थे। इस से बहुत लाघव के साथ सब बोध हो जाता था, अब विद्या की प्रवृत्ति कम हो जाने के कारण यह परम्परा बिगड़ गई है। अब इस ग्रन्थ में अनुदात्त से अनिट् अनुदात्तेत् से आत्मनेपद और उदात्त से सेट् उदात्तेत् से परस्मैपद समझते हैं फिर भी आत्मनेपदी और परस्मैपदी शब्द भी सर्वत्र अत्यन्त सुगम होने के लिये लिख दिये हैं कि जिस से किसी को भ्रम न पड़ सके। इन सब प्रकारों से इत्संज्ञक वर्णों और सेट् अनिट् की व्यवस्था को ठीक २ जान के पढ़ने पढ़ाने वाले सब लोग शुद्ध प्रयोगों से व्यवहार और अर्थज्ञान से उपयुक्त हों। जो धातु उपदेश में उदात्त (सेट्) हैं उन से परे आर्द्धधातुक प्रत्ययों को इडागम होजाता और जो उपदेश में अनुदात्त (अनिट्) हैं उन से परे आर्द्धधातुकसंज्ञक

प्रत्ययों को इडागम नहीं होता है। इस ग्रन्थ में ग्यारह लकार अर्थात् लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ् क्रम से लिखे हैं, अन्य ग्रन्थों में लेट् लकार केवल वैदिक प्रयोगविषयक है सो नहीं लिखा है, यहां विस्तारपूर्वक इस के प्रयोग लिखेंगे, लिङ् दो वार इसलिये लिखा है कि इस के दो प्रकार के अर्थों में दो प्रकार के प्रयोग होते हैं। और दशगण अर्थात् भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि क्रम से लिखे हैं, इस के पीछे बारह प्रक्रियाँ अर्थात् णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, यङ्लुगन्त, नामधातु, कण्ड्वादि, प्रत्ययमाला, आत्मनेपद, परस्मैपद, भावकर्म्म, कर्म्मकर्त्ता और लकारार्थ, ये भी क्रम से विस्तारपूर्वक लिखे जावेंगे, और इतना ही तिङन्त का विषय है इसीको आख्यात भी कहते हैं, और जो सूत्र सामान्य करके सब धातुओं में लगते हैं उनको प्रथम२ एक ही वार लिखेंगे और जो किन्हीं विशेष धातुओं में लगते हैं उनको एक वार लिख कर पीछे जहां उन का सम्बन्ध होगा वहां २ इस ग्रन्थ की सूत्र संख्या जो उन के आगे लिखी होगी व्याख्या में रख दिया करेंगे उस के अनुसार उन सूत्रों का सम्बन्ध सब लोग वहां २ देख लेवें॥

इति भूमिका॥

ओ३म्

अथ–आख्यातिकः ॥

[भू] सत्तायाम् (होना) उदात्त उदात्तेत् परस्मैभाषः । यह धातु परस्मैपदी है। भू शब्द सत्ता(होने) अर्थ का वाचक है, इस अर्थ को कहने के योग्य होने से भू शब्द समर्थ है जो इस से किसी अर्थ का बोध न होता तो असमर्थ समझा जाता फिर असमर्थ से कोई कार्य्य भी नहीं हो सकता इस विषय की परिभाषा (समर्थः पदविधिः) सन्धिविषय में लिख चुके हैं और शब्द का लक्षण भी नामिक की भूमिका में लिखा है,भू शब्द सत्ता अर्थ के साथ समर्थ हुआ तो इस की धातुसंज्ञा होकर कृत् प्रत्ययों की उत्पत्ति आदि कार्य्य होते हैं ॥

१–भूवादयो धातवः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १ ॥

यह सूत्र प्रातिपदिक संज्ञा का अपवाद है क्योंकि सामान्य अर्थवान् शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा कही है उस में यह धातु संज्ञा विशेष है,भू शब्द से लेके जो दशगणों में शब्द पढ़े हैं उन सब की धातु संज्ञा होती है इस से भू शब्द की धातु संज्ञा होकर ॥१॥

२–धातोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९१ ॥

सब धातुसंज्ञक शब्दों से तव्यत् आदि प्रत्यय होते हैं ॥ २ ॥

३–कृदतिङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९३ ॥

धातु से विहित जो प्रत्यय हैं वे कृत्संज्ञक हों, यहां तिङन्त की अपेक्षा में ॥३॥

४—वर्त्तमाने लट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२३ ॥

आरम्भ से लेके जब तक क्रिया की समाप्ति न हो तब तक वर्त्तमान काल समझना चाहिये, उस वर्त्तमान अर्थ के वाचक धातुओं से लट् प्रत्यय हो, अब ये कृत्संज्ञक लट् आदि प्रत्यय भाव,कर्म्म और कर्त्ता, इनतीन अर्थों में सामान्य करके होते हैं, उन का विभाग ॥ ४ ॥

५–लः कर्म्मणि च भावे चाऽकर्म्मकेभ्यः ॥ अ० ॥ ३। ४।६९॥

सकर्म्मक धातुओं से कर्म्म और कर्त्ता अर्थ में तथा अकर्म्मक धातुओं से भाव

और कर्त्ता अर्थ में लकार होते हैं, यहां भू धातु से कर्त्ता अर्थ में लट् आया, भू—लट्। इस अवस्था में ॥ ५ ॥

६—हलन्त्यम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३ ॥

उपदेश में धातु आदि के समुदाय का जो अन्त्य वर्ण है वह इत्संज्ञक होवे ॥६॥

७—तस्य लोपः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ९ ॥

इत्संज्ञा वाले वर्ण का लोप हो जाता है, यहां टकार की इत्संज्ञा और लोप होकर प्रत्यय के आदि लकार की भी इत्संज्ञा (लशक्वतद्धिते) सूत्र से प्राप्त है सो अगले सूत्र में लकार के स्थान में आदेशविधानरूप ज्ञापक से नहीं होती ॥ ७ ॥

८—लस्य ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७७ ॥

लकार के स्थान में वक्ष्यमाण आदेश हों ॥ ८ ॥

९—तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७८ ॥

तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ्, ये अठारह १८ आदेश लकार के स्थान में होते हैं ॥ ९ ॥

१०—लः परस्मैपदम् ॥ अ० ॥ १ । ४ । ९९ ॥

लकार के स्थान में जो अठारह १८ आदेश हैं वे परस्मैपदसंज्ञक हों, इस से सामान्य करके विधान है परन्तु इस के अपवाद (तङानाः०) सूत्र से तङ् आदि नव ९ की आत्मनेपद संज्ञा की है इस से तिप् पर्य्यन्त नव ९ की ही परस्मैपद संज्ञा जानो, अब भू धातु से परस्मैपद हों वा आत्मनेपद इस सन्देह की निवृत्ति के लिये ॥१०॥

११—शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७८ ॥

जिन धातुओं से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय कहे हैं उन को छोड़ के शेष धातुओं से परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय हों, यहां भू से तिप् आदि नव प्रत्यय प्राप्त हुए ॥ ११ ॥

१२—तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०१ ॥

तिङ्संबन्धी जो तिप् आदि प्रत्यय हैं वे यथाक्रम से तीन२ प्रथम मध्यम और उत्तम-

संज्ञक हों अर्थात् (तिप्, तस्, झि, प्रथम) (सिप्, थस्, थ, मध्यम) और (मिप् वस्, मस्, उत्तम) जानो ॥ १२ ॥

१३—तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०२ ॥

वे ही तिङ्सम्बन्धी तिप् आदि के तीन २ समुदाय प्रत्येक एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञक हों अर्थात् तिप् एकवचन, तस् द्विवचन और झि बहुवचन, इसी प्रकार सिप् आदि में जानो ॥ १३ ॥

१४-युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०५ ॥

तिङन्तक्रिया का अर्थ जिस युष्मद्पदवाच्य में रहे तो उस युष्मद् शब्द उपपद के रहत सन्ते युष्मद् शब्द का प्रयोग हो वा न हो तो भी धातु से मध्यम पुरुष हो ॥ १४ ॥

१५—अस्मद्युत्तमः ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०७ ॥

तिङन्त के साथ एकाधिकरण अस्मत् शब्द उपपद हो उस का प्रयोग हो वा न हो तो भी धातु से उत्तम पुरुष हो ॥ १५ ॥

१६—शेषे प्रथमः ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०८ ॥

युष्मद् और अस्मद् से भिन्न तिङन्त के साथ एकाधिकरण नाम उपपद हो उस का प्रयोग हो वा न हो तो भी धातु से प्रथम पुरुष हो, यहां शेष कर्त्ता की विवक्षा में लकार के स्थान में जो तिबादि आदेश हैं उन में से प्रथम पुरुष का एकवचन तिप् आया.(भू–तिप्) इस अवस्था में ॥ १६ ॥

१७—यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम् ॥ अ० ॥ १।४।१३॥

जिस धातु वा प्रातिपदिक से जिस प्रत्यय का विधान हो वही प्रत्यय परे हो तो तदादि शब्दरूप अर्थात् जिस से परे जो प्रत्यय करें उसी प्रत्यय के परे पूर्व जो शब्दरूप है सो अंगसंज्ञक हो और उस प्रत्यय का आदि अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय के बीच में जो विकरण प्रत्यय है उस की भी अंगसंज्ञा हो जावे ॥ १७ ॥

१८—तिङ्शित् सार्वधातुकम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११३ ॥

धातु के अधिकारमात्र में कहे जो तिङ् और शित् प्रत्यय वे सार्वधातुकसंज्ञक हों,

इस से तिप् आदि की सार्वधातुक संज्ञा हुई ॥ १८ ॥

१९—कर्त्तरि शप् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६८ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो धातु से परे शप् प्रत्यय हो, इस से भू और तिप् के बीच में शप् प्रत्यय होकर (भू-शप्—तिप्) इस अवस्था में दोनों हल् पकारों की (६) से इत्संज्ञा और (७) से लोप होकर (भू-श—ति) रहा ॥ १९ ॥

२०—लशक्वतद्धिते ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८ ॥

प्रत्यय के आदि जो लकार, शकार और कवर्ग उन की इत्संज्ञा होवे, इस से (श्) की इत् संज्ञा होकर (७) से लोप हो गया (भू—अ—ति) इस अवस्था में ॥ २० ॥

२१—सार्वधातुकाऽर्द्धधातुकयोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८४ ॥

गुण वृद्धि आदि संज्ञा और इक् ही के स्थान में नियम होना संधिविषय में लिख चुके हैं, सार्वधातुक और आर्द्धधातुक संज्ञक प्रत्यय परे हों तो इगन्त अङ्ग के स्थान में गुण आदेश हो, इस से उकार का अन्तरतम ओकार गुण होकर (भो—अ—ति) इस अवस्था में ॥ २१ ॥

२२—एचोऽयवायावः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ७८ ॥

एच् प्रत्याहार के स्थान में अय्, अव्, आय्, आव्, ये चार आदेश यथासंख्य करके हों, ओकार को अव् होकर । भवति । द्विवचन की विवक्षा में (भव—तस्) तिङ् प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा नामिक में हो चुकी है, इस का फल ॥ २२ ॥

२३— न विभक्तौ तुस्माः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४ ॥

यहां तस् के सकार की इत् संज्ञा प्राप्त है उस का निषेध करते हैं, विभक्ति में जो तवर्ग, सकार और मकार वे इत्संज्ञक न हों, तिङन्त की पदसंज्ञा भी कर चुके हैं नामिक में ॥ २३ ॥

२४—ससजुषो रुः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६६ ॥

पदान्त सकार और सजुष् शब्द के अन्त वर्ण को रु आदेश हो ॥ २४ ॥

२५—उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ अ० ॥ १ । ३ । २ ॥

उपदेश में जो अनुनासिक अच् है उस की इत्संज्ञा हो। इस से उकार की इत्संज्ञा होकर (भव—तर्) ॥ २५ ॥

२६—खरवसानयोर्विसर्ज्जनीयः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १५ ॥

खर् प्रत्याहार के परे तथा अवसान में वर्त्तमान जो रेफ उसके स्थान में विसर्ज्जनीय आदेश हो, इस से रेफ को विसर्ग होकर । भवतः । भव—झि । यहां ॥ २६ ॥

२७—झोऽन्तः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३ ॥

प्रत्यय के आदि अवयव झकार को अन्त आदेश होवे, तकार में अकार उच्चारणार्थ है किन्तु आदेश हलन्त ही होता है । भव—अन्त—इ । दोनों अकारों को पररूप एकादेश हो कर । भवन्ति । भव+सिप्=भवसि । भव+थस्=भवथः । भव+थ=भवथ । भव+मिप् ॥ २७ ॥

२८—अतो दीर्घो यञि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । १०१ ॥

यञादि सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो अदन्त अङ्ग को दीर्घ आदेश होवे, यहां शप् के अकार की अङ्ग संज्ञा होकर दीर्घ होता है । भवामि । भव+वस्=भवावः । भव+मस् = भवामः । स भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । त्वं भवसि । युवां भवथः । यूयं भवथ । अहं भवामि । आवां भवावः । वयं भवामः । इन लकारों का क्रम वर्णक्रम से चलाया करते हैं जैसे—अ, इ, उ, ऋ, ए, ओ, ये छः टित् और ऐसा ही क्रम ङित् लकारों में भी जानो । इस क्रम के अनुसार लट् के आगे लिट् प्राप्त हुआ, जितने सूत्र प्रथम लकार में लिख दिये उन को अब नहीं लिखेंगे, जो २ विशेष आते जावेंगे उन को लिखेंगे ॥ २८ ॥

२९—परोक्षे लिट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११५ ॥

यहां भूत और अनद्यतन की अनुवृत्ति आती है, परोक्ष अनद्यतन भूतकाल में हुए कार्यों के वाचक धातुओं से लिट् लकार होवे , परोक्ष शब्द का अर्थ ॥ २९ ॥

का०—परोभावः परस्याक्षे परोक्षे लिटि दृश्यताम् ।
उत्वं वाऽऽदेः परादक्ष्णः सिद्धं वाऽस्मान्निपातनात् ॥

जिस से विषयों के साथ ज्ञान की व्याप्ति हो उसको अक्षि कहते हैं अर्थात् पांच

ज्ञान इन्द्रियों का ग्रहण अक्षि शब्द से समझना चाहिये, और इन्द्रियों से जो परे हो उस को परोक्ष कहते हैं, अक्ष शब्द के परे पर शब्द को परो आदेश अथवा अकार को उकार वा परोक्ष शब्द को पृषोदरादि मान के इस सूत्र में निपातन किया है ॥

भा०—कथं जातीयकं पुनः परोक्षं नाम । केचित्तावदाहुर्वर्षशतवृत्तं परोक्षमिति । अपर आहुर्वर्षसहस्रवृत्तं परोक्षमिति । अपर आहुः कुड्यकटान्तरितं परोक्षमिति । अपर आहुर्द्व्यहवृत्तं त्र्यहवृत्तं वेति ॥

जो अपने सामने न हुआ हो उस परोक्ष की कितनी अवधि समझनी चाहिये, इस विषय में बहुत ऋषि लोगों का भिन्न २ विचार है, कोई कहते हैं कि जो सौ १०० वर्ष पहले हो चुका हो, कोई कहते हैं कि जो हजार १००० वर्ष प्रथम हो गया हो, कोई कहते हैं कि जो भित्ति और चटाई के आड़ में हो और कोई कहते हैं कि दो वा तीन दिन पहले हुआ हो उस को परोक्ष समझना चाहिये, सो यह सब प्रकार से परोक्ष हो सक्ता है क्योंकि मुख्य परोक्ष के साथ सब का सम्बन्ध हो सक्ता है, भू-लिट् । यहां टकार इकार की इत्संज्ञा और लोप होकर लकार के स्थान में तिप् आदि नव हो जाते हैं ॥

३०—लिट् च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११५ ॥

यह सूत्र सार्वधातुक संज्ञा का अपवाद है, लिट् के स्थान में जो तिप् आदि आदेश हैं वे आर्द्धधातुकसंज्ञक हों । यहां एक संज्ञा का अधिकार तो है ही नहीं इस कारण पक्ष में सार्वधातुक संज्ञा भी प्राप्त है इसलिये एव शब्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये कि आर्द्धधातुक संज्ञा ही हो अन्य नहीं ॥ ३० ॥

३१—परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८२ ॥

धातु से परे लिट् लकार के स्थान में परस्मैपदसंज्ञक जो तिप् आदि आदेश उन को णल् आदि नव आदेश यथासंख्य करके हो जावें । भू—णल् ॥ ३१ ॥

३२—चुटू ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७ ॥

प्रत्यय के आदि जो चवर्ग, टवर्ग उन की इत्संज्ञा हो । यहां णकार लकार की

इत्संज्ञा और लोप होके । भू-अ । इस अवस्था में द्विर्वचन, यणादेश, गुण, वृद्धि आदि कार्य्य भी प्राप्त हैं इन सब का बाधक वुक् होता है ॥ ३२ ॥

३३—भुवो वुग्लुङ्लिटोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ८८ ॥

अजादि लुङ् और लिट् लकार परे हों तो भू अङ्ग को वुक् का आगम होता है । उक्मात्र की इत्संज्ञा होकर । भूव्-अ ॥ ३३ ॥

३४—एकाचो द्वे प्रथमस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । १ ॥

यह अधिकार सूत्र है, धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होवे ॥ ३४ ॥

३५—अजादेर्द्वितीयस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २ ॥

यहां भी एकाच् की अनुवृत्ति आती है । अजादि धातुओं के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होवे ॥ ३५ ॥

३६—लिटि धातोरनभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । ८ ॥

लिट् लकार परे हो तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्विर्वचन होवे, इस में विशेष यह है कि जहां धातुओं में अनेक अच् होते हैं वहां प्रथम एकाच् और द्वितीय एकाच् अवयव का कहना बन सकता है और जिन में एक ही अच् है वहां उसी एकाच् अवयव को द्वित्व हो जाता है। यहां भी एकाच् अवयव भूव् मात्र को द्विर्वचन हो कर भूव्—भूव्—अ । यहां ॥ ३६॥

३७—पूर्वोऽभ्यासः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४ ॥

द्विर्वचन का जो पूर्व भाग है वह अभ्याससंज्ञक हो । प्रथम भूव् की अभ्यास संज्ञा हो कर ॥ ३७ ॥

३८—हलादिः शेषः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६० ॥

अभ्यास का आदि हल् शेष रहे अन्य हलों का लोप हो जावे । इस से प्रथम भूव् के (व्) का लोप होके । भू—भूव् —अ ॥ ३८ ॥

३९—ह्रस्वः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५९ ॥

अभ्यास के अच् को ह्रस्व आदेश हो, ह्रस्व उकार हुआ ॥ ३९ ॥

४०—भवतेरः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७३ ॥

लिट् लकार परे हो तो भू धातु के अभ्यास को अकार आदेश हो। ह्रस्व उकार को प्रमाणकृत आन्तर्य्य मान के ह्रस्व अकार हो कर । भ–भूव्–अ ॥ ४० ॥

४१—अभ्यासे चर्च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ५४ ॥

अभ्यास में जो झल् उन को चर् और जश् आदेश हों। यहां भकार को बकार हो जाता है ॥ ४१ ॥

४२—असिद्धवदत्राभात् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २२ ॥

इस सूत्र से ले कर इस पाद की समाप्ति पर्य्यन्त एक प्रयोग में दो कार्य्य प्राप्त हों तो पर कार्य को असिद्ध मान के पूर्व विहित कार्य भी हो जावे, इस से वुक् के आगम को असिद्ध मान के उवङ् आदेश प्राप्त होता है इसलिये ॥ ४२ ॥

४३—वा०—वुग्युटावुवङ्यणोः कर्तव्ये सिद्धौ वक्तव्यौ ॥

उवङ् और यणादेश करने में वुक् और युट् का आगम यथासंख्य करके असिद्ध न माने जावें किन्तु सिद्ध ही समझने चाहियें,इससे उवङ् नहीं होता। बभूव। बभूव्–अतुस् । यहां द्विर्वचन और वुगागम से प्रथम ही गुण प्राप्त है ॥ ४३ ॥

४४—इन्धिभवतिभ्यां च ॥ अ० ॥ १ । २ । ६ ॥

इन्धि और भू धातु से परे जो अपित् लिट् वह कित्संज्ञक हो । तिप् सिप् मिप् के स्थान में जो आदेश होते हैं वे पित् अन्य सब अपित् समझे जाते हैं,पित्विषय में गुण वृद्धि के बाधक वुक् को अवकाश मिल जाने से यहां अपित् विषय में परत्व से गुण प्राप्त है ॥ ४४ ॥

४५—क्ङिति च ॥ अ० ॥ १ । १ । ५ ॥

कित्, गित् और ङित् प्रत्यय परे हों तो इक् के स्थान में गुण वृद्धि न हों। इस से गुण का निषेध होकर । बभूव्+अतुस् =बभूवतुः । बभूव् + उस्=बभूवुः । बभूव्–थल् ॥ ४५ ॥

४६—आर्द्धधातुकस्येड् वलादेः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३५ ॥

अङ्ग से परे जो वलादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम हो। थल् आदि में

इट् होकर। बभूविथ। बभूव्+अथुस्=बभूवथुः। बभूव्+अ=बभूव। बभूव्+णल्=बभूव। बभूव्+इट्+व=बभूविव। बभूव्+इट्+म=बभूविम। इसके पश्चात् क्रम से प्राप्त लुट् ॥४६॥

४७—अनद्यतने लुट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५ ॥

जिस समय से विचार करने लगें तब से अर्द्धरात्रिपर्य्यन्त अद्यतन और अर्द्ध-रात्रि के पश्चात् हुए कार्य्य को अनद्यतन कहते हैं, सो भूत, भविष्यत् दोनों के साथ सम्बन्ध रखता है, भविष्यत् अनद्यतन अर्थ के वाचक धातु से लुट् लकार होवे। भू-लुट् ॥ ४७ ॥

४८—स्यतासी ऌलुटोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३३ ॥

यहां किसी अनुबन्धविशेष की सूचना नहीं की इस से (ऌ) कर के ऌट् और ऌङ् दोनों का बोध होता है, और यह सूत्र शप् आदि विकरण प्रत्ययों का अपवाद है, लुट् लकार परे हो तो धातु से स्य और तासि प्रत्यय यथासंख्य करके हों, यहां लुट् के परे तासि हुआ। भू—तासि—लुट् ॥ ४८ ॥

४९—आर्द्धधातुकं शेषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११४ ॥

धात्वधिकार में कहे तिङ् और शित् प्रत्ययों से भिन्न जो प्रत्यय वे आर्द्धधातुक-संज्ञक होते हैं। इस से तासि प्रत्यय की आर्द्धधातुक संज्ञा और लट् के स्थान में तिवादि आदेश होकर। भू+तासि—तिप्। यहां तासि में अनुनासिक इकार की इत्संज्ञा और लोप होकर ॥ ४९ ॥

५०—लुटः प्रथमस्य डारौरसः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ८५ ॥

लुट् लकार के प्रथम पुरुष को डा, रौ और रस् आदेश यथासंख्य करके हों। तिप् के स्थान में डा आदेश होकर ड्कार की इत् संज्ञा होने से तास् प्रत्यय के आस् मात्र का लोप होकर। भू—इत्—आ। यहां ॥ ५० ॥

५१—पुगन्तलघूपधस्य च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८६ ॥

सार्वधातुक और आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो पुगन्त और लघु वर्ण जिस की उपधा में हो उस को गुण हो। इस से इट् के आगम को लघूपध मान के गुण प्राप्त हुआ इसलिये ॥ ५१ ॥

५२—दीधीवेवीटाम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ६ ॥

दीधी और वेवी धातु तथा इट् का आगम इन को गुण वृद्धि न हों । फिर आर्द्धधातुक तास् के परे भू को गुण और अवादेश होकर । भविता ॥ ५२ ॥

५३—रि च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५१ ॥

रेफादि प्रत्यय परे हो तो तास् और अस्ति के सकार का लोप हो जावे । भवितास्+रौ = भवितारौ । भवितास्+रस्=भवितारः ॥ ५३ ॥

५४—तासस्त्योर्लोपः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५० ॥

सकारादि प्रत्यय परे हो तो तास् और अस्ति के सकार का लोप हो जावे जैसे । भवितास्+सिप्=भवितासि । भवितास्+थस्=भवितास्थः । भवितास्+थ = भवितास्थ । भवितास्+मिप्=भवितास्मि । भवितास्+वस् भवितास्वः । भवितास्+मस्=भवितास्मः ॥ ५४ ॥

५५—लृट् शेषे च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३ ॥

क्रियार्थ क्रिया उपपद हो वा न हो तो भी भविष्यत् अर्थ के वाचक धातु से लृट् लकार होवे । भू—लृट् । यहां (५०) से स्य प्रत्यय,गुण, तिबादि आदेश, स्य प्रत्यय को इट् का आगम और अवादेश होकर ॥ ५५ ॥

५६—आदेशप्रत्यययोः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ५९ ॥

इण् और कवर्ग से परे जो आदेश और प्रत्यय का अवयव सकार उस को मूर्द्धन्य आदेश हो जावे । जैसे । भवि+स्य+तिप्=भविष्यति । भविष्यतः । भविष्यन्ति । भविष्यसि । भविष्यथः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्यावः । भविष्यामः ॥ ५६ ॥

५७—लिङर्थे लेट् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७ ॥

यहां छन्द की अनुवृत्ति आती है । जो विधि आदि और हेतु हेतुमान् लिङ् लकार के अर्थ हैं उन में धातुमात्र से वैदिकप्रयोगविषयक लेट् लकार होवे , यहां भू धातु से लेट्, तिबादि आदेश हो कर । भू—तिप् । इस अवस्था में शप् विकरण प्राप्त है ॥ ५७ ॥

५८—सिब्बहुलं लेटि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३४ ॥

धातु से सिप् प्रत्यय हो लेट् लकार परे हो तो बहुल करके । विकल्प का

पर्य्यायवाची बहुल ग्रहण समझना चाहिये । इसी से पक्ष में शप् भी होता है । सिप् में से इप् मात्र की इत् संज्ञा हो जाती है ॥ ५८ ॥

५९—वा०—सिब् बहुलं णिद्वक्तव्यः ॥

सिप् प्रत्यय बहुल (विकल्प) से णित् समझना चाहिये । सिप् को आर्द्धधातुक मान के इडागम हो जाता है ॥ ५९ ॥

६०—अचो ञ्णिति ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११५ ॥

अजन्त अङ्ग को वृद्धि हो ञित्, णित् प्रत्यय परे हों तो । ऊकार को औ वृद्धि होकर । भ्—औ—इ—स्—ति । यहां ॥ ६० ॥

६१—लेटोऽडाटौ, ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९४ ॥

लेट् लकार को अट् और आट् का आगम पर्य्याय से हों सो पित् हों अर्थात् अपित् प्रत्यय से पृथक् पित्त्व धर्म आगम में समझा जावे । टकार की इत् संज्ञा होकर भावि+स्+अ+तिप्=भाविषति । भाविष्+आट्+ति=भाविषाति ॥ ६१ ॥

६२—इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९७ ॥

लेट् लकार सम्बन्धी परस्मैपदविषयक इकार का लोप विकल्प करके हो । अवसान में झलों के स्थान में चर् आदेश विकल्प करके होते हैं । भाविषत् । भाविषात् । भाविषद् । भाविषाद् । जिस पक्ष में णित् संज्ञा के न होने से वृद्धि नहीं होती वहां । भविषति । भविषाति । भविषत् । भविषात् । भविषद् । भविषाद् । और सिप् प्रत्यय के विकल्प से जिस पक्ष में शप् होता है वहां । भवति । भवाति । भवत् । भवात् । भवद् । भवाद् । (तस्) अन्य सब कार्य्य पूर्व के समान । भाविषतः । भाविषातः । भविषतः । भविषातः । भवतः । भवातः । (झि) भाविषन्ति । भाविषान्ति । इकारलोप होने के पश्चात् संयोगान्त तकार का लोप होकर । भाविषन् । भाविषान् । भविषन्ति । भविषान्ति । भविषन् । भविषान् । भवन्ति । भवान्ति । भवन् । भवान् (सिप्) भाविषसि । भाविषासि । यहां इकारलोप के पश्चात् सकार को विसर्जनीय हो जाते हैं । भाविषः । भाविषाः । भविषसि । भविषासि । भविषः । भविषाः । भवसि । भवासि । भवः । भवाः । (थस्) भाविषथः । भाविषाथः । भविषथः । भविषाथः । भवथः । भवाथः । (मिप्) यहां अट् पक्ष में भी एकादेश को पूर्व का अन्त अवयव मानने से अदन्त

अङ्ग को दीर्घ होकर एक ही प्रकार के प्रयोग होते हैं। भाविषामि२। भाविषाम् २। भविषामि २। भविषाम्२। भवामि२। भवाम्२। (वस्) (मस्) ॥ ६२॥

६३—स उत्तमस्य ॥ अ० ॥ ३।४।९८॥

लेट्लकारसम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का विकल्प करके लोप होवे। भाविषाव२। भाविषावः२। भविषाव२। भविषावः२। भवाव२। भवावः २। भाविषाम२। भाविषामः २। भविषाम२। भविषामः२। भवाम२। भवामः २॥ ६३॥

६४—लोट् च ॥ अ० ॥ ३।३।१६२॥

विधि आदि अर्थों में धातु से लोट् लकार हो। और ॥ ६४॥

६५—आशिषि लिङ्लोटौ ॥ अ० ॥ ३।३।१७३॥

आशीर्वाद अर्थ में भी लिङ् और लोट् लकार हों। भव—ति। इस अवस्था में ॥६५॥

६६—एरुः ॥ अ० ॥ ३।४।८६॥

लोट् लकार के इकार को उकार आदेश हो जावे। भवतु ॥ ६६॥

६७—तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ७।१।३५॥

आशीर्वाद अर्थ में जो तु और हि उन को तातङ् आदेश विकल्प करके होवे। यहां तात् आदेश के कहने और तृतीयाध्याय के चतुर्थ पाद में (एरुः) सूत्र के आगे पढ़ने से लोट् के अन्त्य इकार को उ आदेश विकल्प करके हो ही जाता फिर इतने गौरव और अन्यत्र पढ़ने से ज्ञापक होता है कि तातङ् आदेश में ङित्करण अन्त्य अल् के स्थान में होने के लिये नहीं किन्तु गुण वृद्धि के निषेध और सम्प्रसारण आदि कार्य्य होने के लिये है, अङ्मात्र की इत्संज्ञा होकर। भवतात् ॥ ६७॥

६८—लोटो लङ्वत् ॥ अ० ॥ ३।४।८५॥

लोट् लकार को लङ्वत् कार्य्य हो। लङ्वत् शब्द में वतिप्रत्यय षष्ठी औ सप्तमी दोनों विभक्तियों के स्थान में हो सकता है, सो यहां षष्ठ्यर्थ में वति समझना चाहिये सप्तम्यर्थ में नहीं क्योंकि लङ् के परे जो अट् का आगम आदि कार्य्य होते हैं वे लोट् के परे न हों ॥ ६८॥

६९—तस्थस्थमिपान्तान्तन्तामः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०५ ॥

ङित् लकार के जो तस्, थस्, थ और मिप् उनको ताम्, तम्, त और अम् आदेश यथासंख्य करके हों। जैसे। भवताम्। भव-झि (६६) से उ होकर भवन्तु। भव-सिप् ॥ ६९ ॥

७०—सेर्ह्यपिच्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८७ ॥

लोट् लकार का जो सि उस को अपित् हि आदेश होवे। पित्त्वधर्म का अतिदेश आदेश में प्राप्त है इसलिये अपित् कहा है (६७) से तातङ् होकर भवतात्। पक्ष में ॥ ७० ॥

७१—अतो हेः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०५ ॥

अदन्त अङ्गसे परे जो हि उस का लुक् हो जावे। भव। भव+थस् = भवतम्। भव+थ = भवत ॥ ७१ ॥

७२—मेर्निः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८९ ॥

लोट् लकार का जो मि उस को नि आदेश हो। यहां इकार उच्चारणरूप ज्ञापक से ही उकारादेश नहीं होता है। भव+मिप् = भवानि ॥ ७२ ॥

७३—नित्यं ङितः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९९ ॥

ङित् लकार के उत्तम पुरुष का जो सकार उस का नित्य ही लोप होवे। भवाव। भवाम ॥ ७३ ॥

७४—अनद्यतने लङ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १११ ॥

अनद्यतन भूत अर्थ के वाचक धातु से लङ् लकार होवे ॥ ७४ ॥

७५—लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७१ ॥

लुङ्, लङ् और लृङ् लकार परे हों तो धातु को उदात्त अट् का आगम हो। भू के आदि में होता है ॥ ७५ ॥

७६—इतश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०० ॥

ङित् लकार का जो परस्मैपदविषयक इकार उस का लोप होवे। अभवत्।

अभव+तस् = अभवताम् (६९) से ताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभव+मिप् = अभवम् (९६) से अम् और पररूप एकादेश होता है । अभवाव । अभवाम ॥ ७६ ॥

७७—विधिनिमन्त्रणाऽमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६१ ॥

विधि (प्रेरणा) निमंत्रण (किसी से प्रतिज्ञाकरना) आमंत्रण (यथेष्ट आचरण) अधीष्ट (सत्कारपूर्वक ठहराना) सम्प्रश्न (सम्यक् पूछना) प्रार्थना (मांगना) इन अर्थों में धातु से लिङ् लकार होवे । भव-तिप् ॥ ७७ ॥

७८—यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०३ ॥

यह सूत्र सीयुट् का अपवाद है । परस्मैपदविषयक लिङ् लकार को यासुट् का आगम हो सो उदात्त और ङित्संज्ञक हो जावे । इस आगम को उदात्तविधान करने से ज्ञापक होता है कि अन्य आगम जिन में स्वर विशेष का विधान न किया हो वे सब अनुदात्त होते हैं । और लकार के स्थान में जो तिप् आदि आदेश होते हैं वे ङित् नहीं होते क्योंकि उन के ङित् होने से उन को हुआ आगम भी ङित् हो ही जाता फिर ङित् कहने से यही ज्ञापक होता है कि यहां स्थानिवद्भाव नहीं होता ॥७८॥

७९—सुट् तिथोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०७ ॥

लिङ् लकार के जो तकार, थकार उन को सुट् का आगम हो । सुट् का आगम यासुट् का बाधक इसलिये नहीं होता कि लिङ् को यासुट् और तकार थकार को सुट् कहने से विषयभेद हो जाता है और एक विषय में उत्सर्गापवाद की प्रवृत्ति होती है ॥७९॥

८०—लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७९ ॥

सार्वधातुकविषयक अनन्त्य सकार का लोप हो जावे । इस से यासुट् और सुट् दोनों के सकारों का लोप हो जाता है और आशिष् लिङ् में परस्मैपद और आत्मनेपद में आर्द्धधातुकविषय के होने से ये सकार बने रहते हैं । भव—या—तिप् ॥ ८० ॥

८१—अतो येयः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८० ॥

अदन्त अङ्ग से परे जो सार्वधातुक का अवयव या उस को इय् आदेश होवे ।

(लोपो व्योर्वलि) सूत्र से हल् यकार का लोप होकर। भव+ इ+तिप् =भवेत्।
भव+इ+तस् = भवेताम् ॥ ८१ ॥

८२–झेर्जुस् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०८ ॥

लिङ् लकार का जो झि उस को जुस् आदेश होवें। जकार की इत्संज्ञा ॥ ८२॥

८३–उस्यपदान्तात् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ९६ ॥

अपदान्त अवर्ण से उस् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश हो जावे। इस की प्राप्ति तो है परन्तु परत्व और नित्यत्व से इय् आदेश हो जाता है फिर प्राप्ति नहीं रहती,इस सूत्र का काम अदादि गण में पड़ेगा कि जहां इय् आदेश की प्राप्ति नहीं होती। भव+इय्+उस्=भवेयुः । भव+इय्+सिप्=भवेः । भव+इय्+थस्=भवेतम्। भव+इय्+थ=भवेत । भव+इय्+मिप्=भवेयम्। भव+इय्+वस्=भवेव। भव+इय्+मस् = भवेम। आशीर्वाद अर्थ में (६५) सूत्र से लिङ् आया ॥ ८३ ॥

८४–लिङाशिषि ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११६ ॥

आशीर्वाद अर्थ में जो लिङ् उस के स्थान में जो तिबादि आदेश वे आर्द्धधातुकसंज्ञक हों ॥ ८४ ॥

८५–किदाशिषि ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०४ ॥

परस्मैपदविषयक लिङ् लकार को जो यासुट् का आगम ङित् कहा है वह आशीर्वाद अर्थ में कित् समझना चाहिये। आर्द्धधातुक संज्ञा होने से शप् विकरण प्राप्त नहीं अन्य किसी का विधान नहीं है, यहां पदान्त में संयोग के आदि यासुट् के सकार का लोप हो जाता है। भू+यास्+तिप्=भूयात्। भू+यास्+तस् = भूयास्ताम्। भू+यास्+झि = भूयासुः । भू+यास्+सिप् = भूयाः । भू+यास्+थस् = भूयास्तम्। भू+यास्+थ = भूयास्त । भू+यास्+मिप् = भूयासम् । भू+यास्+वस् = भूयास्व । भू+यास्+मस् = भूयास्म ॥ ८५ ॥

८६– लुङ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११० ॥

सामान्य भूत अर्थ के वाचक धातुओं से लुङ् लकार हो। शप् विकरण की प्राप्ति में ॥ ८६ ॥

८७-च्लि लुङि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४३ ॥

लुङ् लकार परे हो तो धातु से च्लि प्रत्यय होवे ॥ ८७ ॥

८८-च्लेः सिच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४४ ॥

लुङ् लकार परे हो तो च्लि के स्थान में सिच् आदेश हो जावे । इकार चकार की इत्संज्ञा हो जाती है ॥ ८८ ॥

८९-गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७७ ॥

गाति, स्था, घुसंज्ञक, पा, भू इन धातुओं से परे जो सिच् उस का लुक् हो जावे । सिच् का लुक् होने पश्चात् उस को स्थानिवत् मान के उस से परे अपृक्त हलादि सार्वधातुक तिप् को इट् का आगम प्राप्त है इसलिये ॥ ८९ ॥

९० - वा० - आहिभूवोरीट्प्रतिषेधः * ॥

आह आदेश और भू से परे जो सिच् का लुक् उस को स्थानिवद्भाव न हो । स्थानिवत् के निषेध से ईट् का आगम नहीं होता । अब भू अंग को तिप् के परे गुण पाता है इसलिये ॥ ९० ॥

९१-भूसुवोस्तिङि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८८ ॥

अव्यवहित सार्वधातुक तिङ् परे हो तो भू और सू अङ्गों को गुण न होवे । (७७) सूत्र से अडागम हो कर । अट्+भू+सिच्+तिप् = अभूत् । अभू+तस् = अभूताम् । अभू+वुक्+झि = अभूवन् । अभू+सिप् = अभूः । अभू+थस् = अभूतम् । अभू+थ = अभूत । अभू+वुक्+मिप् = अभूवम् । अभू+वस् = अभूव । अभू+मस् = अभूम ॥ ९१ ॥

९२-न माङ्योगे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७४ ॥

माङ् अव्यय शब्द के योग में लुङ्, लङ् और लृङ् लकारों को जो अट् और

* इस वार्त्तिक को सिद्धान्तकौमुदीवालों ने न समझ के (अस्तिसिचोऽपृक्ते) इस सूत्र का व्याख्यान मूल, महाभाष्य और काशिका आदि से विपरीत किया है जो कदाचित् उन का व्याख्यान ठीक होवे तो वार्त्तिक व्यर्थ हो जावे और असम्भव अभिप्राय सूत्र से निकाला है इसलिये मान्य नहीं हो सकता क्योंकि ऋषियों के अभिप्राय से विरुद्ध इन के पाण्डित्य को कौन मान सकता है ॥

आट् के आगम कहे हैं वे न हों। जैसे। इह मा भूत्। मा भवान् भूत्।मा स्म भवत्। मा स्म भूत्। इत्यादि में अट् का आगम नहीं होता और आट् के आगम का निषेध आगे अजादि धातुओं में दिखाया जावेगा ॥ ९२ ॥

९३–लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियाऽतिपत्तौ ॥ अ० ॥ ३। ३ । १३९ ॥

जो हेतु, हेतुमद्भाव आदि लिङ् लकार के निमित्त अर्थ हैं उन में क्रिया की असिद्धि गम्यमान हो तो धातु से लृङ् लकार हो जावे। (७७) से अट् और स्य प्रत्यय आदि कार्य्य होकर। अट्+भू+इट्+स्य+तिप् = अभविष्यत्। अभविष्यताम्। अभविष्यन्। अभविष्यः। अभविष्यतम्। अभविष्यत। अभविष्य+मिप् = अभविष्यम्। यहां अम् के अकार के साथ पररूप हो जाता है। अभविष्याव। अभविष्याम ॥९३॥

अथ तवर्गीयान्ताश्चतुस्सप्ततिः [एध] वृद्धौ (बढ़ना) अब यहां से आगे एध आदि तवर्गीयान्त ७४ चौहत्तर धातुओं का व्याख्यान है। भू धातु में जितने सामान्यविषयक सूत्र लिखे हैं वे यहां नहीं लिखे जावेंगे। पूर्ववत् वर्त्तमान अर्थ में लट् आया ॥

९४–तङानावात्मनेपदम् ॥ अ० ॥ १। ४। १०० ॥

लकार के स्थान में तङ् और आन (शानच् आदि) आत्मनेपदसंज्ञक आदेश हों। इस से त से लेकर महिङ् तक नव ९ का ग्रहण है ॥ ९४ ॥

९५–अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ॥ अ० ॥ १। ३। १२ ॥

अनुदात्त वर्ण जिन का इत् गया हो और ङित् धातुओं से त आदि नव ९ आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हों। यहां भी एध में अनुदात्त अकार इत् जाता है इस कारण इस से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय आये, शप् विकरण होकर ॥ ९५ ॥

९६–टित आत्मनेपदानां टेरे ॥ अ० ॥ ३। ४। ७९ ॥

टित् लकारों के स्थान में जो आत्मनेपदसंज्ञक आदेश उन के टिभाग को ए आदेश हो जावे। यहां समुदाय को आदेशविधान नहीं इस कारण अन्त्य अल् के स्थान में नहीं होता। एध्+शप्+त = एधते ॥ ९६ ॥

९७–सार्वधातुकमपित् ॥ अ० ॥ १। २। ४ ॥

सार्वधातुकसंज्ञक अपित् प्रत्ययों की ङित् संज्ञा हो ॥ ९७ ॥

९८—आतो ङितः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८१ ॥

अदन्त अङ्ग से परे जो ङित् प्रत्ययों का आकार उस को इय् आदेश हो जावे। आम् भाग को एकार होकर। एध्+शप्+आताम् = एधेते। एध्+शप्+झ = एधन्ते ॥ ९८ ॥

९९—थासः से ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८० ॥

टित् लकार के थास् को से आदेश होवे। एध्+शप्+थास् = एधसे। एध्+शप्+आथाम् = एधेथे। एध्+शप्+ध्वम् = एधध्वे। एध्+शप्+इट् = एधे। यहां गुण एकार के परे पररूप एकादेश हो जाता है। एध्+शप्+वहि = एधावहे। एध्+शप्+महिङ् = एधामहे ॥ ९९ ॥

१००—इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३६ ॥

लिट् लकार परे हो तो इजादि और गुरुमान् धातुओं से आम् प्रत्यय हो जावे परन्तु ऋच्छ धातु से न होवे ॥ १०० ॥

१०१—आमः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ८१ ॥

आम् से परे जो लि उस का लुक् हो जावे। इस से लिट् का लुक् होकर ॥१०१॥

१०२—कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४० ॥

इस सूत्र में लिट् ग्रहण किया है इसी से यहां लुक् हुए लिट् का रूपातिदेश समझना चाहिये। आमन्त से लिट् लकार परे हो तो कृञ्, भू और अस् धातुओं का अनुप्रयोग अर्थात् इन सामान्य धातुओं का आम्प्रत्ययान्त एध आदि विशेष धातुओं से परे एक प्रयोग में समावेश किया जावे। आत्मनेपद प्रकरण में अनुप्रयोग शब्द के साथ कृञ् धातु का ग्रहण किया है इसी ज्ञापक से (कृभ्वस्तियोगे०) इस सूत्र से ले के (कृञो०) इस सूत्र में कृञ् के ञकारपर्य्यन्त प्रत्याहार ग्रहण से तीनों धातुओं का अनुप्रयोग किया जाता है,और ये कृञ् आदि तीनों धातु सामान्यार्थवाचक और आम्-प्रत्ययान्त विशेषार्थवाचक हैं इस कारण एक अर्थ के साथ दोनों धातुओं का सम्बन्ध हो जाता है। यह कृञ् धातु ञित् है ॥ १०२ ॥

१०३—स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ॥ अ० ॥ १।३।७२॥

यह सूत्र परस्मैपद का बाधक है। क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होवे तो स्व-

रित और ञित् धातुओं से आत्मनेपद हो अन्यत्र परस्मैपद। इस से क्रिया का फल अन्य के लिये होने में भी कृञ् धातु से परस्मैपद प्राप्त है इसलिये ॥ १०३ ॥

१०४–आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६३ ॥

जिस धातु से आम्प्रत्यय किया हो उस से जो आत्मनेपद होता हो तो अनुप्रयुक्त कृञ् से भी आत्मनेपद और आम्प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी हो तो परस्मैपद हो जावे। यहां एध धातु आत्मनेपदी है इसलिये कृञ् से भी आत्मनेपद प्रत्यय ही होते हैं ॥ १०४ ॥

१०५–लिटस्तझयोरेशिरेच् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८१ ॥

लिट् लकार के स्थान में जो त और झ हैं उन को एश् और इरेच् आदेश यथासंख्य करके हो जावें। त सम्पूर्ण के स्थान में शित् आदेश होकर। एध–आम्–कृ–ए। इस अवस्था में एकार की कित्संज्ञा होने से गुण, वृद्धि तो प्राप्त नहीं परन्तु द्विर्वचन का बाधक परत्व से यणादेश हो जाता है उस को स्थानिरूपवत् मान के पुनः द्विर्वचन होता है। एध–आम्–कृ कृ–ए ॥ १०५ ॥

१०६–उरत् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६६ ॥

अभ्यास के ऋकार को अत् आदेश होवे। ऋ के स्थान में रपर होने नियम से अर् होकर रेफ का लोप (३८) से हो जाता है ॥ १०६ ॥

१०७–कुहोश्चुः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६२ ॥

अभ्यास के जो कवर्ग और हकार उन को चवर्ग आदेश होता है। एध्+आम्+चकृ+ए = एधाञ्चक्रे। एध्+आम्+चकृ+आताम् = एधाञ्चक्राते। एधाञ्चकृ+इरेच् = एधाञ्चक्रिरे ॥ १०७ ॥

१०८–एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ॥ अ० ॥ ७ । २ । १० ॥

उपदेश में जो एकाच् अनुदात्त धातु हो उस से परे बलादि आर्द्धधातुक प्रत्यय को इट् का आगम न हो। इस से थास् के स्थान में से के परे इडागम न हुआ। एधाञ्चकृं+थास् = एधाञ्चकृषे। एधाञ्चक्राथे ॥ १०८ ॥

१०९–इणः षीध्वंलुङ्लिटान्धोऽङ्गात् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७८ ॥

इणन्त अङ्ग से परे जो षीध्वम्, लुङ् और लिट् का धकार उस को मूर्द्धन्य आदेश

हो। धकार का अन्तरतम ढकार हो जाता है। एधाञ्चकृ+ध्वम् = एधाञ्चकृढ्वे। एधाञ्चकृ +इट् = एधाञ्चक्रे। एधाञ्चकृवहे। एधाञ्चकृमहे। भू का अनुप्रयोग पूर्व के समान, कि जैसा साधन केवल भू का लिट् में लिख आये हैं। एधाम्बभूव। एधाम्बभूवतुः। एधाम्बभूवुः। एधाम्बभूविथ। एधाम्बभूवथुः। एधाम्बभूव। एधाम्बभूविव। एधाम्बभूविम ॥ १०९ ॥

११०—अत आदेः ॥ अ० ॥ ७। ४। ७० ॥

अभ्यास के आदि अकार को दीर्घादेश होवे। अस् धातु के अभ्यास के अकार को पररूप एकादेश प्राप्त है इसलिये दीर्घादेश कहा है। एध्+आम्+अ अस्+णल् = एधामास। एधामासतुः। एधामासुः। एधामासिथ। एधामासथुः। एधामास। एधामास। एधामासिव। एधामासिम। यहां अस् धातु को आर्द्धधातुकविषय में भू आदेश अस् धातु के अनुप्रयोगवचनसामर्थ्य से ही नहीं होता। इस के आगे लुट् प्रथम पुरुष त, आताम्, झ के स्थान में डा आदि आदेश हो के एधिता। एधितारौ। एधितारः। एधितासे। एधितासाथे ॥ ११० ॥

१११—धि च ॥ अ० ॥ ८। २। २५ ॥

धकारादि प्रत्यय परे हो तो सकार का लोप हो जावे। यहां ध्वम् प्रत्यय के परे तास् के सकार का लोप हो जाता है। एधितास्+ध्वम् = एधिताध्वे ॥ १११ ॥

११२—ह एति ॥ अ० ॥ ७। ४। ५२ ॥

एकार परे हो तो तास् और अस्ति के सकार को हकारादेश होवे। एधितास् +इट् = एधिताहे। एधितास्वहे। एधितास्महे। इस के आगे (लृट्) स्य आदि सब कार्य्य होकर। एध्+ इट् + स्य+त = एधिष्यते। एधिष्येते। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे। एधिष्येथे। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे। एधिष्यामहे। अब इस के आगे क्रम से (लेट्) प्रथम शप् का अपवाद सिप् विकरण ॥ ११२ ॥

११३—वैतोऽन्यत्र ॥ अ० ॥ ३। ४। ९६ ॥

अकार को जहां ऐकार कहा है उस विषय को छोड़ के लेट् लकार सम्बन्धी जो एकार उस को ऐकार आदेश विकल्प करके हो जावे। टिभाग को जो एकारादेश कह चुके हैं उसी एकार को यहां ऐकार समझना चाहिये। एध्+ इट् +सिप्+अट्+ त=एधिषतै। एध् + इट्+ सिप्+ आट्+ त=एधिषातै। एधिषते। एधिषाते। शप् पक्ष में। एधतै। एधातै। एधते। एधाते ॥ ११३ ॥

११४–आत ऐ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९५ ॥

लेट् लकार सम्बन्धी आकार को ऐकार आदेश नित्य ही हो जावे । इस से (आताम्, आथाम्) के आकार को ऐकार होता है। उस ऐकार के परे अट् आट् को वृद्धि एकादेश हो जाने से रूपभेद नहीं होता । एध् +इट् +सिप्+अट्+आताम् । एधिषैते २ । एधैते २ । (झ) एधिषन्तै । एधिषान्तै । एधिषन्ते । एधिषान्ते । एधन्तै । एधान्तै । एधन्ते । एधान्ते । (थास्) एधिषसै । एधिषासै । एधिषसे । एधिषासे । एधसै । एधासै । एधसे । एधासे । (आथाम्) एधिषैथे २ । एधैथे २ । (ध्वम्) एधिषध्वै । एधिषाध्वै । एधिषध्वे । एधिषाध्वे । एधध्वै । एधाध्वै । एधध्वे । एधाध्वे । (इट्) एधिषै । एधिषे । एधै । एधे । यहां जिस पक्ष में इट् प्रत्यय के एकार को ऐकार आदेश होता है वहां अट् और आट् के आगम को वृद्धि एकादेश हो जाने से प्रयोग भिन्न नहीं होते । (वहि) एधिषावहै । एधिषावहै । एधावहै । एधावहे । (महिङ्) एधिषामहै । एधिषामहे । एधामहै । एधामहे । यहां भी जब अट् होता है तब यञादि सार्वधातुक प्रत्ययों के परे दीर्घ हो जाने से एक ही प्रकार के प्रयोग हो जाते हैं । (लेट्)॥११४॥

११५–आमेतः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९० ॥

लोट् लकार का जो एकार उस को आम् आदेश हो जावे । टिभाग को जो एकार कहा है उसी को यहां आम् आदेश समझना चाहिये । एध्+शप्+त = एधताम् । एधेताम् । एधन्ताम् ॥ ११५ ॥

११६–सवाभ्यां वामौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९१ ॥

सकार, वकार से परे जो लोट् लकार का एकार उस को व और अम् आदेश यथासंख्य करके हों । एध्+शप्+थास् = एधस्व । एधेथाम् । एधध्वम् ॥ ११६ ॥

११७–एत ऐ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९३ ॥

लोट् लकार के उत्तम पुरुष का जो एकार उस को ऐ आदेश होवे । यह आम् आदेश का बाधक है ॥ ११७ ॥

११८–आडुत्तमस्य पिच्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ९२ ॥

लोट् लकार के उत्तम पुरुष को आट् का आगम हो वह पित् हो जावे । अपित् सार्वधातुक को पित् आगम होने से गुण आदि कार्य्य और सम्प्रसारण का निषेध

हो जाता है । परन्तु यहां भ्वादिगण में इस का कुछ काम नहीं पड़ता क्योंकि यहां तो शप् प्रत्यय को मान के सब काम होते हैं किन्तु अदादि, जुहोत्यादि में काम पड़ेगा, और भू धातु में भी इस आट् के आगम का सम्बन्ध होता है । यहां सर्वत्र शप् के अकार के साथ दीर्घ एकादेश हो जाता है । एध्+शप्+आट्+ऐ = एधै । एधावहै । एधामहै । इस के आगे (लङ्) पूर्व के समान अन्य सब कार्य्य जानो ॥ ११८ ॥

११९—आडजादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७२ ॥

लुङ्, लङ् और लृङ् लकार परे हों तो अजादि धातुओं को आट् का आगम हो जावे । अट् का अपवाद आट् का आगम है । वृद्धि एकादेश होकर । आट्+एध्+अ+त = ऐधत । ऐधेताम् । ऐधन्त । ऐधथाः । ऐधेथाम् । ऐधध्वम् । ऐधे । ऐधावहि । ऐधामहि । आगे (लिङ्) ॥ ११९ ॥

१२०—लिङः सीयुट् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०२ ॥

लिङ् लकार को सीयुट् का आगम हो । सीयुट् और सुट् दोनों सकारों का लोप (८०) से हो कर । एध्+अ+इय्+त = एधेत । एधेयाताम् ॥ १२० ॥

१२१—झस्य रन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०५ ॥

लिङ् लकार का जो झकार उस को रन् आदेश हो जावे । एधेरन् । एधेथाः । एधेयाथाम् । एधेध्वम् ॥ १२१ ॥

१२२—इटोऽत् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०६ ॥

लिङ् लकार के स्थान में जो इट् आदेश उस को अत् आदेश हो जावे । तपरकरण दीर्घ की निवृत्ति के लिये है । एधेय । एधेवहि । एधेमहि । आशिष् लिङ् की आर्द्धधातुक संज्ञा होने से सकार का लोप नहीं होता । सीयुट् और सुट् दोनों सकारों को मूर्द्धन्यादेश (५६) से हो जाता है । एध्+इट्+सीयुट्+सुट्+त = एधिषीष्ट । यहां मूर्द्धन्य षकार के योग में तवर्ग को टवर्ग हो जाता है और आताम् में तकार को कहा सुट् का आगम आकार से परे होता है। एध्+सीयुट्+आसुट्+ताम्=एधिषीयास्ताम् । एधिषीरन् । यहां रेफादि रन् आदेश के परे सीयुट् के यकार का लोप हो जाता है । एधिषीष्ठाः । एधिषीयास्थाम् । एधिषीध्वम् । एधिषीय । एधिषीवहि । एधिषीमहि । इस के

आगे (लुङ्) इस में कुछ विशेष नहीं है। आट्+ एध्+सिच्+त = ऐधिष्ट। ऐधिषाताम् ॥ १२२ ॥

१२३—आत्मनेपदेष्वनतः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ५ ॥

यह सूत्र अन्त आदेश का बाधक है। अकारभिन्न से परे आत्मनेपदविषयक प्रत्यय के आदि झकार को अत् आदेश होवे। ऐध्+इट्स्+झ = ऐधिषत। ऐधिष्ठाः। ऐधिषाथाम्। ध्वम् के धकार को (१०९) सूत्र से मूर्द्धन्य नहीं होता क्योंकि (इट्) इणन्त अङ्ग नहीं है*। ऐध्+इट्स्+ध्वम् = ऐधिध्वम्। यहां (१११) से सकार का लोप हो जाता है। ऐधिषि। ऐधिष्वहि। ऐधिष्महि। (लृङ्) इस में कुछ विशेष नहीं। आट्+एध्+इट्+स्य+त = ऐधिष्यत। ऐधिष्येताम्। ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः। ऐधिष्येथाम्। ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये। ऐधिष्यावहि। ऐधिष्यामहि ॥ [नं० स्पर्द्ध] सङ्घर्षे (घिसना) और (ईर्ष्या) इस के प्रयोग एध के समान जानने। जैसे। स्पर्द्धते। स्पर्द्धेते। इत्यादि परन्तु लिट् के रूप विशेष हैं ॥ १२३ ॥

१२४—शर्पूर्वाः खयः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६१ ॥

अभ्याससम्बन्धी शर् जिन के पूर्व हैं वे खय् बाकी रहें अन्य हलों का लोप हो जावे। स्पर्द्ध+स्पर्द्ध्+ (१०५) से एश् = पस्पर्द्धे। पस्पर्द्धाते। पस्पर्द्धिरे। पस्पर्द्धिषे। पस्पर्द्धाथे। पस्पर्द्धिध्वे। पस्पर्द्धे। पस्पर्द्धिवहे। पस्पर्द्धिमहे। स्पर्द्धिता। स्पर्द्धिष्यते। स्पर्द्धिषतै। स्पर्द्धिषातै। स्पर्द्धिषते। स्पर्द्धिषाते। इत्यादि। स्पर्द्धताम्। अस्पर्द्धत।

* सिद्धान्त कौमुदी में जो (ऐधिढ्वम्) प्रयोग लिखा है सो किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकता क्योंकि (इट्) इणन्त अङ्ग कैसे समझा जावे (इणः षीध्वं०) सूत्र में अङ्गग्रहण का यही प्रयोजन है कि (एधिषीध्वं०) यहां मूर्द्धन्यादेश न हो जावे और लुङ् लकार में कदाचित् सिच् को अङ्गसंज्ञा होने से इट् को भी अङ्ग संज्ञा हो जावे तो भी सिच्लोप को असिद्ध वा स्थानिवत् मानें तो असिद्धि को प्राप्ति ही नहीं क्योंकि लोपविधायक सूत्र से मूर्द्धन्यविधायक सूत्र त्रिपादी में भी परे है। स्थानिवत् में सिच् स्थानी है उस को कोई कार्य करना नहीं और सिच् को स्थानिवत् मानने से सान्त अङ्ग होगा इणन्त नहीं फिर (ऐधिढ्वम्) प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है।

+ एक यह नियम इस ग्रन्थ में पढ़ने पढ़ाने वालों को ध्यान में रखना चाहिये कि भू के तुल्य परस्मैपदी धातुओं के प्रयोग और एध के समान आत्मनेपदी धातुओं के प्रयोग समझें। यहां से आगे सब धातुओं के ग्यारहों लकारों के एक २ प्रयोग लकारों के क्रमानुसार लिखेंगे और जहां विशेष सूत्र लग के विशेष प्रयोग बनेंगे वहां सब रूप लिख दिया करेंगे और असिद्ध प्रयोग चिन्हित अवयवों के सहित रक्खे जाते हैं वे आगे विशेष २ धातुओं के प्रयोगों ही में रक्खेंगे और जो एक अर्थ में एक प्रकार के बहुत धातु होंगे उनमें से एक के प्रयोग लिख दिया करेंगे उसी के समान दूसरों के समझने होंगे ॥

स्पर्द्धेत । स्पर्द्धिषीष्ट । अस्पर्द्धिष्ट । अस्पर्द्धिष्यत । [गाधृ] प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च (सत्कार, प्राप्त होने की इच्छा, गांठना) गाधते । अभ्यास के अच् को ह्रस्व और गकार को जकार होकर । जगाध्+ए=जगाधे । जगाधाते । जगाधिरे । गाधिता । गाधिष्यते । गाधिषतै । गाधिषातै । गाधताम् । अगाधत । गाधेत । गाधिषीष्ट । अगाधिष्ट । अगाधिष्यत ॥ [बाधृ]विलोड़ने (हटा देना) बाधते । बबाधे । बाधिता । बाधिष्यते । बाधिषतै । बाधिषातै । बाधिषते । बाधिषाते । इत्यादि । बाधताम् । अबाधत । बाधेत । बाधिषीष्ट । अबाधिष्ट । अबाधिष्यत ॥ [नाथृ, नाधृ] याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु । याच्ञा (मांगना) उपताप (पीड़ा) ऐश्वर्य (उत्तम पदार्थ) आशीः (इच्छा) आशीर्वाद अर्थ ही में नाथ धातु से आत्मनेपद और अर्थों में परस्मैपद होता है। जैसे । सर्पिषो नाथते। अन्यत्र । नाथति । नाथतः । नाथन्ति । इत्यादि शेष रूप बाध के समान होते हैं ॥ [दधृ] धारणे (धारण करना) दधते । दधेते । दधन्ते । इत्यादि ॥ १२४ ॥

१२५—अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ॥ अ० ॥ ६ । ४।१२० ॥

जिस लिट् को मान के धातु के अभ्यास को आदेश नहीं हुआ हो उस के परे धातु के अभ्यास का लोप हो और दो हलों के बीच में जो अकार है उस को एकार आदेश हो जावे कित् लिट् परे हो तो । जैसे । द्+दध्+ए= देधे। देधाते । देधिरे । देधिषे । देधाथे । देधिध्वे । देधे । देधिवहे । देधिमहे । दधिता । दधिष्यते । (लेट्) में विशेष ॥१२५ ॥

१२६—अत उपधायाः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११६ ॥

अंग के उपधा अकार को ञित्, णित् प्रत्ययों के परे वृद्धि हो जावे । इस से णित् पक्ष में वृद्धि होती है । दाधिषतै । दाधिषातै । दाधिषते । दाधिषाते । दधिषतै । दधिषातै । दधिषते । दधिषाते । दधतै । दधातै । दधते । दधाते । दाधिषैते२ । दधिषैते २ । दधैते २ । इत्यादि । दधताम् । अदधत । दधेत । दधिषीष्ट । अदधिष्ट । अदधिष्यत ॥ [स्कुदि] आप्रवणे (कूदना) ॥ १२६ ॥

१२७—इदितो नुम् धातोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ५८ ॥

जिस धातु का इ इत् गया हो उस को नुम् का आगम हो । (नुम्) मित् का आगम अन्त्य अच् से परे हुआ । स्कु नुम्+द्+शप्+त = स्कुन्दते । स्कुन्देते। स्कुन्दन्ते ।

लिट् में । चुस्कुन्दे । चुस्कुन्दाते । चुस्कुन्दिरे । स्कुन्दिता । स्कुन्दिष्यते । स्कुन्दिषतै । स्कुन्दिषातै । स्कुन्दताम् । अस्कुन्दत । स्कुन्देत । स्कुन्दिषीष्ट । अस्कुन्दिष्ट । अस्कुन्दिष्यत ॥ [श्विदि] श्वैत्ये (श्वेत होना) श्विन्दते । शिश्विन्दे । श्विन्दिता । श्विन्दिष्यते । श्विन्दिषतै । श्विन्दिषातै । श्विन्दताम् । अश्विन्दत । श्विन्देत । श्विन्दिषीष्ट अश्विन्दिष्ट । अश्विन्दिष्यत ॥ [वदि] अभिवादनस्तुत्योः (नमस्कार) और (प्रशंसा) वन्दते । ववन्दे । वन्दिता । वन्दिष्यते । वन्दिषतै । वन्दिषातै । वन्दताम् । अवन्दत । वन्देत । वन्दिषीष्ट । अवन्दिष्ट । अवन्दिष्यत ॥ [भदि] कल्याणे सुखे च (शुभ गुणों को प्राप्त होना) और (सुखी होना) भन्दते । बभन्दे । भन्दिता । भन्दिष्यते । भन्दिषतै । भन्दिषातै । भन्दताम् । अभन्दत । भन्देत । भन्दिषीष्ट । अभान्दिष्ट । अभान्दिष्यत ॥ [मदि] स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति गतिषु । स्तुति (प्रशंसा करना) मोद (हर्ष होना) मद (अभिमान) स्वप्न (सोना) कान्ति (कामना करना) गति (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) मन्दते । ममन्दे । मन्दिता । मन्दिष्यते । मन्दिषतै । मन्दिषातै । मन्दिषते । मन्दिषाते । इत्यादि । मन्दताम् । अमन्दत । मन्देत । मन्दिषीष्ट । अमान्दिष्ट । अमान्दिष्यत ॥ [स्पदि] किञ्चिच्चलने (मन्द २ चलना) स्पन्दते । पस्पन्दे । स्पन्दिता । स्पन्दिष्यते । स्पन्दिषतै । स्पन्दिषातै । स्पन्दताम् । अस्पन्दत । स्पन्देत । स्पन्दिषीष्ट । अस्पान्दिष्ट । अस्पान्दिष्यत ॥ [क्लिदि] परिदेवने (दुःखी होना) क्लिन्दते । चिक्लिन्दे । क्लिन्दिता । क्लिन्दिष्यते । क्लिन्दिषतै । क्लिन्दिषातै । क्लिन्दताम् । अक्लिन्दत । क्लिन्देत । क्लिन्दिषीष्ट । अक्लिन्दिष्ट । अक्लिन्दिष्यत ॥ [मुद] हर्षे (आनन्द होना) मोदते । मुमुदे । मोदिता । मोदिष्यते । मोदिषतै । मोदिषातै । मोदताम् । अमोदत । मोदेत । मोदिषीष्ट । अमोदिष्ट । अमोदिष्यत ॥ [दद] दाने (देना) ददते ॥ १२७ ॥

१२८—न शसददवादिगुणानाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२६ ॥

दद धातु को लिट् लकार में अकार को एकार और अभ्यास का लोप प्राप्त है इसलिये यह सूत्र है । शस, दद, वकारादि और गुण हुए अकार को एकार तथा उन के अभ्यास का लोप न होवे । दद्+दद्+ए=दददे । दददाते । ददिदिरे । ददिता । ददिष्यते । दादिषतै । दादिषातै । दादिषते । दादिषाते । ददिषतै । ददिषातै । ददिषते । ददिषाते । इत्यादि । ददताम् । अददत । ददेत । ददिषीष्ट । अददिष्ट । अददिष्यत । [ष्वद, स्वर्द] आस्वादने (स्वाद लेना) ॥ १२८ ॥

१२९—धात्वादेः षः सः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६४ ॥

धातु के आदि षकार को सकारादेश होवे । स्वदते । स्वर्दते । सस्वदे । सस्वर्दे । स्वदिता । स्वर्दिता । स्वदिष्यते । स्वर्दिष्यते । स्वादिषतै । स्वादिषातै । स्वर्दिषतै । स्वर्दिषातै । स्वदताम् । स्वर्दताम् । अस्वदत । अस्वर्दत । स्वदेत । स्वर्देत । स्वादिषीष्ट । स्वर्दिषीष्ट । अस्वदिष्ट । अस्वर्दिष्ट । अस्वादिष्यत । अस्वार्दिष्यत ॥ [उर्द] माने क्रीडायां च । (तोलना, खेलना) ॥ १२९ ॥

१३०—उपधायां च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७८ ॥

धातु के उपधाभूत हल् जिन से परे हों ऐसे रेफ और वकार की उपधा इक् को दीर्घ हो जावे । इस से उर्द धातु के उकार को सब लकारों में दीर्घ ऊकार हो जाता है । ऊर्दते । और यह धातु इजादि गुरुमान् भी है इस से एध के समान लिट् लकार में आम् प्रत्यय आदि सब कार्य्य हो जाते हैं । ऊर्दाञ्चक्रे । ऊर्दाञ्चक्राते । ऊर्दाञ्चक्रिरे । ऊर्दाम्बभूव । ऊर्दामास । ऊर्दिता । ऊर्दिष्यते । ऊर्दिषतै । ऊर्दिषातै । ऊर्दताम् । (११९) और्दत । ऊर्देत । ऊर्दिषीष्ट । और्दिष्ट । और्दिष्यत ॥ [कुर्द, खुर्द, गुर्द, गुद,] क्रीडायामेव (खेलने ही में) पूर्व के समान उपधा को दीर्घ होकर कूर्दते । खूर्दते । गूर्दते । चकूर्दे । चुखूर्दे । जुगूर्दे । गोदते । जुगुदे । कूर्दिता । कूर्दिष्यते । कूर्दिषतै । कूर्दिषातै । कूर्दताम् । अकूर्दत । कूर्देत । कूर्दिषीष्ट । अकूर्दिष्ट । अकूर्दिष्यत । गोदिता गोदिष्यते । गोदिषतै । गोदिषातै । गोदताम् । अगोदत । गोदेत । गोदिषीष्ट । अगोदिष्ट । अगोदिष्यत ॥ [षूद] क्षरणे (झरना, वा नष्ट होना) (१२८) सूदते । सुषूदे । सूदिता । सूदिष्यते । सूदिषतै । सूदिषातै । सूदताम् । असूदत । सूदेत । सूदिषीष्ट । असूदिष्ट । असूदिष्यत । जो धातु उपदेश में मूर्द्धन्य षकारादि हैं उनकी व्यवस्था इस प्रकार समझना चाहिये कि:—

भा०—अजन्दन्त्यपराः सादयः षोपदेशाः । स्मिङ्, स्वदि, स्विदि, स्वञ्ज, स्वपयश्च । सृपि, सृजि, स्तॄ, स्त्या, सेक, सृ, वर्जम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६४ ॥

जिन धातुओं के सकार से अच् तथा दन्त्य अक्षर परे हो वे सब षोपदेश धातु समझने चाहियें । दन्त्य अक्षरों में दन्त्योष्ठ वकार का ग्रहण नहीं होता इसी से ष्वस्क

आदि धातु पृथक् पढ़े हैं और स्रृप् आदि धातु अजुदन्त्य पर हैं इन को षोपदेश नहीं समझना चाहिये ॥ [ह्राद] अव्यक्ते शब्दे (स्पष्ट उच्चारण का न होना) ह्रादते । जह्रादे । ह्रादिता । ह्रादिष्यते । ह्रादिषतै । ह्रादिषातै । ह्रादताम् । अह्रादत । ह्रादेत । ह्रादिषीष्ट । अह्रादिष्ट । अह्रादिष्यत ॥ [ह्लादी] सुखे च (सुख होना) यहां चकार से अव्यक्त शब्द की अनुवृत्ति आती है, और इसी प्रकार जिन जिन धातुओं के अर्थ के पश्चात् चकार पढ़ा हो वहां २ सर्वत्र पूर्व धातु के अर्थ का संबन्ध समझ लेना चाहिये । ह्लादते । जह्लादे । इत्यादि । [स्वाद] आस्वादने (चाखना) स्वादते । सस्वादे । [पर्द] कुत्सिते शब्दे (निन्दत शब्द करना) पर्दते । पपर्दे । पर्दिता । पार्दिष्यते । पर्दताम् । अपर्दत । पर्देत । पर्दिषीष्ट । अपर्दिष्ट । अपार्दिष्यत ॥ [यती] प्रयत्ने (पुरुषार्थ) यतते । येते । येताते । येतिरे । यतिता । यतिष्यते । यातिषतै । यातिषातै । यतताम् । अयतत । यतेत । यतिषीष्ट । अयातिष्ट । अयतिष्यत ॥ [युतृ, जुतृ] भासने (प्रकाश होना) योतते । युयुते । जोतते । जुजुते । योतिता । जोतिता । योतिष्यते । जोतिष्यते । इत्यादि ॥ [विथृ, वेथृ] याचने (मांगना) वेथते । विविथे । विवेथे । अभ्यास को ह्रस्व इकार हो जाता है । वेथिता । वेथिष्यते ॥ [श्रथि] शैथिल्ये (शिथिलता) इदित् को नुम्(१२७) से होकर । श्रन्थते । शश्रन्थे । श्रन्थिता । श्रन्थिष्यते ॥ [ग्रथि] कौटिल्ये (टेढ़ापन) ग्रन्थते । जग्रन्थे ॥ [कत्थ] श्लाघायाम् (प्रशंसा) कत्थते । चकत्थे । कत्थिता । कत्थिष्यते । कत्थिषतै । कात्थिषातै । कत्थताम् । अकत्थत । कत्थेत । कत्थिषीष्ट । अकत्थिष्ट । अकत्थिष्यत । इत्येधादय उदात्ता उदात्तेत आत्मनेपदिनः षट्त्रिंशत् ॥

अथाऽष्टत्रिंशत् परस्मैपदिनः । अब तवर्गान्तों में अड़तीस ३८ धातु परस्मैपदी हैं [अत] सातत्यगमने (निरन्तर चलना) परस्मैपद में तिप् आदि नव ९ प्रत्यय आये । अत्+शप्+तिप्=अतति । अततः । अतन्ति । अतसि । अतथः । अतथ । अतामि । अतावः । अतामः । लिट् में द्विर्वचन होने के पश्चात् अभ्यास को दीर्घ (११०) से और एकादेश होकर । आत । आततुः । आतुः । आतिथ । आतथुः । आत । आत । आतिव । आतिम । (लुट्) अतिता । अतितारौ । अतितारः । अतितासि । अतितास्थः । अतितास्थ । अतितास्मि । अतितास्वः । अतितास्मः । (लृट्) अतिष्यति । अतिष्यतः । अतिष्यन्ति । अतिष्यसि । अतिष्यथः । अतिष्यथ । अतिष्यामि । अतिष्यावः । अतिष्यामः । (लेट्) आतिषति । आतिषाति । अतिषति । अतिषाति ।

इत्यादि (लोट्) अततु । अततात् । अतताम् । अतन्तु । अत । अततात् । अततम् । अतत । अतानि । अताव । अताम । (लङ्) आट् (११९) और उस के साथ वृद्धि होकर । आतत् । आतताम् । आतन् । आतः । आततम् । आतत । आतम् । आताव । आताम । (लिङ्) अतेत् । अतेताम् । अतेयुः । अतेः । अतेतम् । अतेत । अतेयम् । अतेव । अतेम । (आशिष् लिङ्) संयोगादि यास् के सकार का (स्कोः संयोगा०) सूत्र से लोप । अत्यात् । अत्यास्ताम् । अत्यासुः । अत्याः । अत्यास्तम् । अत्यास्त । अत्यासम् । अत्यास्व । अत्यास्म (लुङ्) ॥ १३० ॥

१३१—अस्तिसिचोऽपृक्ते ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९६ ॥

अस्ति धातु और सिच् प्रत्यय से परे अपृक्त हलादि सार्वधातुक को ईट् का आगम हो । आत्=इट् स्=ईट्=त् । इस अवस्था में ॥ १३१ ॥

१३२—इट ईटि ॥ अ० ॥ ८ । २ । २८ ॥

इट् से परे सकार का लोप हो ईट् परे हो तो । फिर त्रिपादी में हुए सिच् के लोप को असिद्ध मान के सन्धि प्राप्त नहीं है इसलिये ॥ १३२ ॥

१३३—वा०—सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वक्तव्यः ॥

दीर्घ एकादेश करने में सिच् के सकार का लोप सिद्ध समझना चाहिये । फिर दीर्घ एकादेश होकर । आतीत् । आतिष्टाम् ॥ १३३ ॥

१३४—सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०९ ॥

सिच् प्रत्यय, अभ्यस्तसंज्ञक धातु और विद धातु से परे जो ङित् लकार का झि उस को जुस् आदेश होवे । यहां सिच् से परे झि को जुस् होता है । आट्+अत्+सिच्+जुस्=आतिषुः ॥ १३४ ॥

१३५—वदव्रजहलन्तस्याचः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३ ॥

परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे हो तो वद, व्रज और हलन्त धातुओं के अच् को वृद्धि होवे । यहां अच् ग्रहण इक् की निवृत्ति के लिये है । वद, व्रज धातु भी हलन्त हैं इन का पृथक् ग्रहण इसलिये है कि लघु अकार जिन की उपधा में हो उन को विकल्प से वृद्धि कही है सो इन दोनों को नित्य ही होगी इस से अत धातु को वृद्धि प्राप्त हुई ॥ १३५ ॥

१३६—नेटि ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४ ॥

इडादि सिच् परे हो तो पूर्वोक्त हलन्त धातुओं के अच् को वृद्धि न होवे। अत् धातु को आट् के आगम पक्ष में तो वृद्धि होने न होने में कुछ भेद नहीं परन्तु जहां आट् का निषेध है वहां विशेष है जैसे । मा भवानतीत् ।'अतिष्टाम् । अतिषुः । आतीः। आतिष्टम् । आतिष्ट । आतिषम् । आतिष्व । आतिष्म । आतिष्यत् । आतिष्यताम् । आतिष्यन् । आतिष्यः । आतिष्यतम् । आतिष्यत । आतिष्यम् । आतिष्याव । आतिष्याम ॥ [चिती]संज्ञाने (ठीक२जानना) (५१) सूत्र से लघूपध चित् धातु को गुण होकर । चित्+शप्+तिप् = चेतति । चेततः । चेतन्ति । चिचेत ॥ १३६ ॥

१३७—असंयोगाल्लिट् कित् ॥ अ० ॥ १ । २ । ५ ॥

असंयोगान्त धातुओं से परे जो अपित् लिट् वह कित्संज्ञक होवे। तिप्, सिप्, मिप् के स्थान में जो आदेश हैं उन को छोड़ के अन्य अपित् समझने चाहिये,(४९) से गुण नहीं होता । चिचिततुः । चिचितुः । चिचेतिथ । चिचितथुः । चिचित । चिचेत। चिचितिव । चिचितिम । चेतिता । चेतिष्यति । चेतिषति। चेतिषाति । चेतति । चेताति । चेतत् । चेतात् । इत्यादि । चेततु । चेततात् । अचेतत् । चेतेत् (८५) (४५) चित्यात् । अचेतीत् । अचेतिष्यत् ॥ [च्युतिर्] आसेचने । (सींचना) (५१) से गुण । च्योतति । चुच्योत । चुच्युततुः । च्योतिता । च्योतिष्यति । च्योतिषति । च्योतिषाति । इत्यादि । च्योततु । च्योततात् । अच्योतत् । च्योतेत् । च्युत्यात् । च्युत्यास्ताम् । च्युत्यासुः । इत्यादि ॥ १३७ ॥

१३८—इरितो वा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५७ ॥

जिस धातु का इर् भाग इत्संज्ञक हुआ हो उस धातु से परे च्लि के स्थान में अङ् आदेश विकल्प करके होवे । अट्+च्युत्+अङ् +तिप्=अच्युतत् । अच्युतताम् । अच्युतन् । अच्युतः । अच्युततम् । अच्युतत । अच्युतम् । अच्युताव । अच्युताम । जिस पक्ष में अङ् नहीं होता वहां । अच्योतीत् ।अच्योतिष्टाम् । अच्योतिषुः । इत्यादि । अच्योतिष्यत् ॥ [श्च्युतिर्] क्षरणे (झरना, वा नाश होना) श्च्योतति । चुश्च्योत । इत्यादि च्युत् के समान जानो ॥ [मन्थ] विलोडने (विलोना) मन्थति । मन्थतः । मन्थन्ति । ममन्थ । मन्थिता । मन्थिष्यति । मन्थिषति। मन्थिषाति। मन्थति । मन्थाति । मन्थतु । अमन्थत् । मन्थेत् ॥ १३८ ॥

१३९—अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २४ ॥

कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो जिस का ह्रस्व इकार इत् न गया हो ऐसा जो हलन्त अङ्ग उस की उपधा के नकार का लोप होवे । मन्थ् +यासुट् +तिप् = मथ्यात् (८५) अमन्थीत् । अमन्थिष्यत् ॥ [कुथि, पुथि, लुथि, मथि] हिंसासंक्लेशनयोः (मारना,और अति दुःख देना) (१२७) से नुम् होके । कुन्थति । चुकुन्थ । कुन्थिता । कुन्थिष्यति । कुन्थिषति । कुन्थिषाति । कुन्थतु । अकुन्थत् । कुन्थेत् । कुन्थ्यात् । इदित् के होने से (कुन्थ्यात्) में (१३९)से नकार का लोप नहीं हुआ । अकुन्थीत् । अकुन्थिष्यत् । पुथि आदि के रूप कुथि के समान होते हैं ॥ [षिधु] गत्याम् (ज्ञान,गमन, प्राप्ति) यहां धातु के आदि षकार को स होकर । सेधति । सेधतः सेधन्ति सिसेध । सिसिधतुः । सिसिधुः । सेधिता । सेधिष्यति । सेधिषति । सेधिषाति । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् । असेधीत् । असेधिष्यत् । [षिधू] शास्त्रे माङ्गल्ये च (शिक्षा और मङ्गलाचरण) इस धातु के सामान्यरूप तो पूर्व सिध् धातु के समान हैं और दीर्घ ऊकार इत् गया है इसलिये विशेष है ॥ १३९ ॥

१४०—स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४४ ॥

स्वरति, सूति, सूयति, धूञ् और ऊदित् धातुओं से परे वलादि आर्द्धधातुक को विकल्प करके इट् का आगम हो । (लिट्) सिषेध । सिषिधतुः । सिषिधुः । अनिट् पक्ष में । सिध्—थल् ॥ १४० ॥

१४१—झषस्तथोर्धोऽधः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४० ॥

धा धातु को छोड़ के झष् प्रत्याहार से परे जो त और थ उन को ध आदेश हो । यहां थल् के थकार को ध होकर । सिसिध्+ध=सिषेद्ध । यहां पूर्व धकार को झष् के परे जश्त्व हो जाता है ।पक्ष में । सिषेधिथ । सिषिधथुः । सिषिध । सिषेध । सिषिध्व । सिषिधिव । सिषिध्म । सिषिधिम (लुट्) सिध्+तास्+डा=सेद्धा । यहां भी पूर्ववत् तास् के तकार को धकार और पूर्व को जश्त्व होता है । सेद्धारौ । सेद्धारः । सेद्धासि । सेद्धास्थः । सेद्धास्थ । सेद्धास्मि । सेद्धास्वः । सेद्धास्मः । सेट् पक्ष में । सेधिता । सेधितारौ । सेधितारः । इत्यादि (लृट्) सिध्+स्य+तिप्=सेत्स्यति । यहां खर् के परे (झल्) धकार को (खरि च) सूत्र से (चर्) तकार हो जाता है । सेत्स्यतः । सेत्स्यन्ति । सेधिष्यति । सेधिष्यतः । सेधिष्यन्ति (लेट्) सेत्सति । सेत्साति ।

सेधिषति । सेधिषाति । सेत्सत् । सेत्सात् । सेत्सद् । सेत्साद् । सेधति । सेधाति । इत्यादि । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् । सिध्यास्ताम् । सिध्यासुः । (लुङ्) अनिट् पक्ष में । अट्+सिध्+सिच्+तिप्=असैत्सीत् (१२५) (१३२) ॥ १४१ ॥

१४२–झलो झलि ॥ अ० ॥ ८ । २ । २६ ॥

झल् से परे जो सकार उस का लोप हो झल् परे हो तो । असिध्+स्+ताम्= असैद्धाम् । यहां स लोप होने के पश्चात् । ताम् के तकार को ध और पूर्व को जशत्व हो जाता है । असिध्+स्+झि=असैत्सुः । असिध्+स्+ईट्+सिप्=असैत्सीः । असिध्+स्+थस्=असैद्धम् । असैद्ध । असैत्सम् । असैत्स्व । असैत्स्म । सेट् पक्ष में । असेधीत् । असेधिष्टाम् । असेधिषुः । इत्यादि । (लृङ्) अट्+सिध्+इट्+स्य+तिप्=असेत्स्यत् । असेत्स्यताम् । असेत्स्यन् । असेत्स्यः । असेत्स्यतम् । असेत्स्यत । असेत्स्यम् । असेत्स्याव । असेत्स्याम । सेट् पक्ष में । असेधिष्यत् । असेधिष्यताम् । असेधिष्यन् ॥ [खादृ] भक्षणे (खाना) इस धातु का ऋकार इत् जाता है । खादति । चखाद । खादिता । खादिष्यति । खादिषति । खादिषाति । खादतु । अखादत् । खादेत् । खाद्यात् । अखादीत् । अखादिष्यत् ॥ [खद] स्थैर्य्ये हिंसायां च (स्थिर होना, मारना) और चकार से भक्षण अर्थ का भी समुच्चय होता है । खदति । खद्+खद्+णल्=चखाद (१२६)। चखदतुः । चखदुः । चखदिथ । चखदथुः । चखद ॥ १४२ ॥

१४३–णलुत्तमो वा ॥ अ० ॥ ७ । १ । ९१ ॥

उत्तम पुरुष का णल् आदेश विकल्प करके णित्संज्ञक होवे । स्वाभाविक णित् को विकल्प करने से प्राप्तविभाषा है । चखाद । चखद । णित्पक्ष में वृद्धि होती है अन्यत्र नहीं । खदिता । खदिष्यति । खदिषति । खदिषाति । खदतु । अखदत् । खदेत् । खद्यात् ॥ १४३ ॥

१४४–अतो हलादेर्लघोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७ ॥

परस्मैपदविषयक इडादि सिच् परे हो तो हलादि अङ्ग के लघु अकार को विकल्प करके वृद्धि होवे । अखादीत् । अखदीत् । यहां इडादि सिच् में वृद्धि का निषेध प्राप्त है इसलिये विधान है । अखदिष्यत् ॥ [बद] स्थैर्य्ये (स्थित होना) बदति । बबाद । बेदतुः । बेदुः ॥ १४४ ॥

१४५—थलि च सेटि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२१ ॥

सेट् थल् परे हो तो लिट् लकार को मान के जिस धातु के आदि को कोई आदेश न हुआ हो उस के अभ्यास का लोप और दो हलों के बीच में जो अकार है उस को एकारादेश हो जावे। बद्+बद्+इट्+थल् = बेदिथ । बेदथुः । बेद । बबाद । बबद । बेदिव । बेदिम । बदिता । बदिष्यति । बादिषति । बादिषाति । बदिषति । बदिषाति । बदति । बदाति । बदतु । अबदत् । बदेत् । बद्यात् अबादीत् (१४४) अबदीत् ॥ [गद] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) गदति । जगाद । जगदतुः । गदिता । गदिष्यति । अगादीत् । अगदीत् । इत्यादि ॥ [रद] विलेखने (काटना और जोतना) रदति । रराद । रदिता । अरादीत् । अरदीत् ॥ [णद] अव्यक्ते शब्दे (अप्रकट शब्द होना) ॥ १४५ ॥

१४६—णो नः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६५ ॥

धातु के आदि णकार को नकारादेश होवे । नदति । ननाद । नेदतुः । नेदुः । नेदिथ । नेदथुः । नेद । ननाद । ननद । नेदिव । नेदिम । नदिता। नदिष्यति । नादिषति । नादिषाति । नदतु । अनदत् । नदेत् । नद्यात् । अनादीत्। अनदीत् । णोपदेश धातुओं की व्यवस्था ॥ भा०—सर्वे नादयो णोपदेशाः । नृति, नन्दि, नर्दि, नकि, नाटि, नाथृ, नाधृ,नृ वर्जम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६५ ॥ नकारादि धातु सब णोपदेश समझने चाहियें परन्तु नृति आदि धातुओं को छोड़ के । अर्थात् नृति आदि णोपदेश नहीं क्योंकि णोपदेशों को कहा कार्य्य नृति आदि को नहीं होगा ॥ [अर्द] गतौ * याचने च (मांगना) अर्दति । अर्दतः । अर्दन्ति ॥ १४६ ॥

१४७—तस्मान्नुड् द्विहलः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७१ ॥

दीर्घ किये हुए अभ्यास के आकार से परे जो द्विहल् धातु उसको नुट् का आगम होवे । नुट् टित् होने से अभ्यास से परे द्वितीय भाग के आदि में होता है । आ+नुट्+अर्द्+णल् = आनर्द । आनर्दतुः । आनर्दुः । आनर्दिथ । आनर्दथुः । आनर्द२ । आनर्दिव । आनर्दिम । अर्दिता । अर्दिष्यति। आर्दिषति । आर्दिषाति । अर्दतु । आर्दत् ।

* इस बात पर भी ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि (गति, हिंसा) आदि अर्थ भी अनेक धातुओं में बहुधा आते हैं उन के अर्थ भाषा में बार २ नहीं लिखेंगे और जिस अर्थ के साथ चकार पढते हैं वहां पूर्व धातु के अर्थ का समुच्चय सर्वत्र समझना चाहिये ॥

अर्देत् । अर्द्यात् । आर्दीत् । आर्दिष्टाम् । आर्दिषुः । आर्दिष्यत् ॥ [नर्द, गर्द] शब्दे (शब्द होना) नर्दति । गर्दति । ननर्द । जगर्द । नर्दिता । नर्दिष्यति । नर्दिषति । नर्दिषाति । नर्दतु । अनर्दत् । नर्देत् । नर्द्यात् । अनर्दीत् । अनर्दिष्यत् ॥ [तर्द] हिंसायाम् (मारना) तर्दति । ततर्द ॥ [कर्द] कुत्सिते शब्दे (निन्दित शब्द करना) कर्दति । चकर्द । अकर्दीत् ॥ [खर्द] दन्तशूके (दांतों से काटना) खर्दति । चखर्द । अखर्दीत् । अखर्दिष्यत् ॥ [अति, अदि] बन्धने (बांधना) (१२७) अन्तति । अन्दति । आ+अन्त्+णल् (१४७) = आनन्त । आनन्द । अन्तिता । अन्तिष्यति । अन्तिषति । अन्तिषाति । अन्ततु । आन्तत् । अन्तेत् । अन्त्यात् । आन्तीत् । आन्तिष्यत् ॥ [इदि] परमैश्वर्य्ये (विद्या, धन, पुत्रादि की प्राप्ति) इद्+शप्+तिप्= इन्दति । यह धातु नुमागम होने के पश्चात् इजादि गुरुमान् हो जाता है । फिर (१००) (१०१) (१०२) (१०३) इत्यादि सूत्रों से इन्द्+आम्+कृ+णल् = इन्दाञ्चकार । इन्दाञ्चक्रतुः । इन्दाञ्चक्रुः ॥ १४७ ॥

१४८–कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ॥ अ० ॥ ७ । २ । १३ ॥

कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, श्रु इन धातुओं से परे जो लिट् वलादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम न होवे । कृ आदि सब धातु अनिट् हैं इन से परे सामान्य आर्द्धधातुक को इट् का निषेध हो ही जाता. फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि जितने अनिट् धातु हैं उन सब से परे लिट् को इडागम हो जावे इन कृ आदि से परे न हो । इसी नियम से । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे । ऊर्दाञ्चकृषे । इत्यादि में इट् नहीं होता और थल् में विशेष है ॥ १४८ ॥

१४९–ऋतो भारद्वाजस्य ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६३ ॥

तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट् जो ऋकारान्त धातु उस से परे थल् वलादि आर्द्धधातुक को भारद्वाज आचार्य के मत में इट् का आगम न होवे । इन्दाञ्चकृ+थल् = इन्दाञ्चकर्थ । थल् के पित् होने से गुण हो जाता है । इन्दाञ्चक्रथुः । इन्दाञ्चक्र । इन्दाञ्चकार (१४३) इन्दाञ्चकर । इन्दाञ्चकृव । इन्दाञ्चकृम । इन्दिता । इन्दिष्यति । इन्दिषति । इन्दिषाति । इन्दतु । ऐन्दत् । इन्देत् । इन्द्यात् । ऐन्दीत् । ऐन्दिष्यत् ॥ [बिदि, भिदि] अवयवे (अवयव करना) बिन्दति । भिन्दति । बिबिन्द । बिभिन्द । बिन्दिता । बिन्दिष्यति । बिन्दिषति । बिन्दिषाति । बिन्दतु । अबिन्दत् । बिन्देत् । बि-

न्द्यात् । अबिन्दीत् । अबिन्दिष्यत् ॥ [गडि] वदनैकदेशे (मुख का अवयव) गण्डति । जगण्ड । गण्डिता । गण्डिष्यति ॥ [णिदि] कुत्सायाम् (निन्दा) निन्दति । निनिन्द ॥ [टुनदि] समृद्धौ (सम्पत् का होना)नन्दति । ननन्द । नन्दिता । नन्दिष्यति॥१४९॥

१५०-आदिर्ञिटुडवः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५ ॥

धातु के आदि जो ञि, टु और डु इन की इत् संज्ञा हो । यहां टुनादि धातु के टु की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है ॥ [चदि] आह्लादने दीप्तौ च (आनन्द और प्रकाश का होना) चन्दति । चचन्द ॥ [त्रदि] चेष्टायाम् (अवयवों का चलाना) त्रन्दति । तत्रन्द । त्रन्दिता ॥ (कदि, क्रदि, क्लदि) आह्वाने रोदने च (बुलाना,रोना) कन्दति । क्रन्दति । क्लन्दति । चकन्द । चक्रन्द । चक्लन्द । कन्दिता । कन्दिष्यति । कन्दिषति । कन्दिषाति । कन्दतु । अकन्दत् । कन्देत् । कन्द्यात् ।अकन्दीत् । अकन्दिष्यत् ॥ [क्लिदि] परिदेवने (क्लेश होना) क्लिन्दति । चिक्लिन्द । क्लिन्दिता ॥ [शुन्ध] शुद्धौ (पवित्र करना) शुन्धति । शुशुन्ध । शुन्धिता । शुन्धिष्यति । शुन्धिषति । शुन्धिषाति । शुन्धतु । अशुन्धत् । शुन्धेत् । शुन्ध्+यासुट्+तिप्=शुध्यात् (१३९) । अशुन्धीत् । अशुन्धिष्यत् ॥अतादय उदात्ता उदात्तेतोऽष्टत्रिंशत् परस्मैपदिनः समाप्ताः॥

अथ द्वानवतिः कवर्गीयान्ताः । अब आगे कवर्गीयान्त ९२ धातुओं का व्याख्यान है उन में प्रथम शीकृ आदि ४२ बयालीस आत्मनेपदी हैं ॥ [शीकृ] सेचने (सींचना) ऋकार की इत् संज्ञा । एधृ के समान प्रयोगसिद्धि जानो । शीकते । शिशीके । शीकिता। शीकिष्यते।शीकिषतै।शीकिषातै। शीकताम् । अशीकत ।शीकेत । शीकिषीष्ट । अशीकिष्ट ।अशीकिष्यत॥ [लोकृ] दर्शने(देखना)लोकते । लोकेते । लोकन्ते । लोकसे । लोकेथे । लोकध्वे । लोके । लोकावहे ।लोकामहे । लुलोके । लुलोकाते ।लुलोकिरे । लुलोकिषे । लुलोकाथे ।लुलोकिध्वे । लुलोके । लुलोकिवहे ।लुलोकिमहे।लोकिता। लोकितारौ । लोकितारः । लोकितासे । लोकितासाथे । लोकिताध्वे । लोकिताहे । लोकितास्वहे । लोकितास्महे । लोकिष्यते। लोकिष्येते।लोकिष्यन्ते । लोकिष्यसे। लोकिष्येथे । लोकिष्यध्वे । लोकिष्ये। लोकिष्यावहे । लोकिष्यामहे । लोकिषतै । लोकिषातै । लोकिषते । लोकिषाते । लोकतै । लोकातै । लोकते । लोकाते । लोकिषैते २ । लोकैते २ । लोकिषन्तै । लोकिषान्तै । लोकिषन्ते । लोकिषान्ते । लोकन्तै । लोकान्तै । लोकन्ते । लोकान्ते । लोकिषसै । लोकिषासै । लोकिषसे । लोकिषासे । लोकसै । लोकासै । लोकसे। लोकासे ।लोकिषैथे २ ।

लोकैथे २ । लोकिषध्वै । लोकिषाध्वै । लोकिषध्वे । लोकिषाध्वे । लोकध्वै । लोकाध्वै । लोकध्वे । लोकाध्वे । लोकिषे २ । लोकिषे २ । लोकै २ । लोके २ । लोकिषावहै २। लोकिषावहे २ । लोकावहै २ । लोकावहे २। लोकिषामहै २। लोकिषामहे २। लोकामहै २। लोकामहे २। लोकताम् । लोकेताम् । लोकन्ताम् । लोकस्व । लोकेथाम् । लोकध्वम् । लोकै । लोकावहै । लोकामहै । अलोकत । अलोकेताम् । अलोकन्त । अलोकथाः । अलोकेथाम् । अलोकध्वम् । अलोके । अलोकावहि । अलोकामहि ॥ लोकेत । लोकेयाताम् । लोकेरन् । लोकेथाः । लोकेयाथाम् । लोकेध्वम् । लोकेय । लोकेवहि । लोकेमहि । लोकिषीष्ट । लोकिषीयास्ताम् । लोकिषीरन् । लोकिषीष्ठाः । लोकिषीयास्थाम् । लोकिषीध्वम् । लोकिषीय । लोकिषीवहि । लोकिषीमहि । अलोकिष्ट । अलोकिषाताम् । अलोकिषत । अलोकिष्ठाः । अलोकिषाथाम् । अलोकिध्वम् । अलोकिषि । अलोकिष्वहि । अलोकिष्महि । अलोकिष्यत । अलोकिष्येताम् । अलोकिष्यन्त । अलोकिष्यथाः । अलोकिष्येथाम् । अलोकिष्यध्वम् । अलोकिष्ये । अलोकिष्यावहि । अलोकिष्यामहि ॥ [श्लोकृ] सङ्घाते (इकट्ठा करना) इस धातु का अर्थ योगरूढ़ होने से धर्म का सञ्चय (कीर्ति) और पदवाक्यों का संचय (श्लोक) कहाता है । श्लोकते । शुश्लोके । श्लोकिता । श्लोकिष्यते । श्लोकिषतै । श्लोकिषातै । श्लोकताम् । अश्लोकत । श्लोकेत । श्लोकिषीष्ट । अश्लोकिष्ट । अश्लोकिष्यत ॥[द्रेकृ, ध्रेकृ] शब्दोत्साहयोः (शब्द करना और उत्साह होना) द्रेकते । दिद्रेके । द्रेकिता । द्रेकिष्यते । द्रेकिषतै । द्रेकिषातै । द्रेकताम् । अद्रेकत । द्रेकेत । द्रेकिषीष्ट । अद्रेकिष्ट । अद्रेकिष्यत । ध्रेकते । दिध्रेके ॥ [रेकृ] शङ्कायाम् (सन्देह करना) रेकते । रिरेके । रेकिता । रेकिष्यते ॥ [सेकृ, स्रेकृ, स्रकि, श्रकि, श्लकि] गत्यर्थाः । इन तीनों का गति अर्थ है । सेकते । सिसेके । स्रेकते । सिस्रेके । स्रङ्कते । सस्रङ्के । श्रङ्कते । शश्रङ्के । श्लङ्कते । शश्लङ्के ॥ [शकि] शङ्कायाम् (संशय होना) शङ्कते । शशङ्के ॥ [अकि] लक्षणे (चिन्ह) अङ्कते । अङ्क+अङ्क्+एश्=आनङ्के (११०) (१४७) आनङ्काते । आनङ्किरे । अङ्किता । अङ्किष्यते ॥ [वकि] कौटिल्ये (टेढ़ा होना) वङ्कते । ववङ्के । वङ्किता । वङ्किष्यते । वङ्किषतै । वङ्किषातै । वङ्कताम् । अवङ्कत । वङ्केत । वङ्किषीष्ट । अवङ्किष्ट । अवङ्किष्यत ॥ [मकि] मण्डने (भूषण) मङ्कते । ममङ्के ॥ [ककि] लौल्ये (चलितहोना) कङ्कते । चकङ्के [कुकृ, वृकृ] आदाने (लेना) कोकते चुकुके । वर्कते । ववृके ॥ १५० ॥

१५१—वा०—ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्त्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन॥

जिन की उपधा में ऋकार हो उन धातुओं से परे लिट् प्रत्यय, गुण होने से पूर्व विप्रतिषेध कर के कित्वत् हो जावे। प्रयोजन यह है कि ऋदुपध धातुओं से भी लुट् आदि आर्द्धधातुक प्रत्ययों के परे गुण को अवकाश है। और अपित् लिट् अतुस् आदि में संप्रसारण गुण का निषेध होना कित्त्व को अवकाश है और (ववृके) आदि में परत्व से गुण प्राप्त है सो न हो जावे॥ [चक] तृप्तौ प्रतिघाते च (तृप्ति होना और मारना) चकते। चेके। चेकाते। चेकिरे। चकिता। चाकिष्यते। चाकिषतै। चाकिषातै। चकिषतै। चकिषातै। चाकिषते। चाकिषाते। चाकिषते। चकिषाते। चकतै। चकातै। चकते। चकाते। चाकिषैते२। चकिषैते२। चकैते२। इत्यादि। चकताम्। अचकत। चकेत। चाकिषीष्ट। अचाकिष्ट। अचाकिष्यत॥ [ककि, वकि, स्वकि, त्रकि, ढौकृ, त्रौकृ, ष्वस्क, वस्क, मस्क, टिकृ, टीकृ, तिकृ, तीकृ, रघि, लघि] गत्यर्थाः। ये १५ पन्द्रह धातु गति (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) अर्थ में हैं। कङ्कते। चकङ्के। वङ्कते। ववङ्के। स्वङ्कते। सस्वङ्के। त्रङ्कते। तत्रङ्के। ढौकते। डुढौके। त्रौकते। तुत्रौके॥ १५१॥

१५२—वा०—सादेशे सुब्धातुष्ठिवुष्वस्कतीनां सत्वप्रतिषेधः॥

सुब्धातु (नामधातु) ष्ठिवु और ष्वस्क धातुओं के आदि षकार को दन्त्य सकार न होवे। (सुब्धातु) षोढ इवाचरति, षोढीयति। षण्डीयति। ष्ठिवु धातु आगे आवेगा (ष्वस्क) ष्वस्कते। ष्वस्केते। ष्वस्कन्ते। पष्वस्के। ष्वस्किता। ष्वस्किष्यते। ष्वस्किषतै। ष्वस्किषातै। ष्वस्कताम्। अष्वस्कत। ष्वस्केत। ष्वस्किषीष्ट। अष्वस्किष्ट। अष्वस्किष्यत। वस्कते। ववस्के। मस्कते। ममस्के। टेकते। टिटिके। टिटिकाते। टिटिकिरे। टेकिता। टेकिष्यते। टेकिषतै। टेकिषातै। टेकताम्। अटेकत। टेकेत। टेकिषीष्ट। अटेकिष्ट। अटेकिष्यत। टीकते। टिटीके। तेकते। तितिके। तीकते। तितीके। रङ्घते। ररङ्घे। लङ्घते। ललङ्घे॥ [लघि] भोजननिवृत्तौ च (लङ्घन करना) [अघि, वघि, मघि] गत्याक्षेपे (निन्दित चलना) अङ्घते। आनङ्घे। आनङ्घाते। आनङ्घिरे। अङ्घिता। अङ्घिष्यते। वङ्घते। ववङ्घे। मङ्घते। ममङ्घे॥ [मघि] कैतवे च (धूर्त्तपना)। [राघृ, लाघृ, द्राघृ, ध्राघृ] सामर्थ्ये (समर्थ होना) राघते। रराघे। लाघते। ललाघे। द्राघते। दद्राघे। ध्राघते। दध्राघे॥ [द्राघृ] आयामे च

(विस्तार होना) [श्लाघृ] कत्थने (प्रशंसा करना) श्लाघते । शश्लाघे । श्लाघिता । श्लाघिष्यते । श्लाघिषतै । श्लाघिषातै । श्लाघताम् । अश्लाघत । श्लाघेत । श्लाघिषीष्ट । अश्लाघिष्ट । अश्लाघिष्यत । इति शीकादय उदात्ता अनुदात्तेतो द्विचत्वारिंशदात्मनेभाषाः समाप्ताः ॥

ये शीक आदि सेट् आत्मनेपदी ४२बयालीस धातु पूरे हुए। अथ परस्मैपदिनः । अब आगे फक्क आदि परस्मैपदी ५० धातु लिखते हैं [फक्क] नीचैर्गतौ (मन्द २ चलना वा अयोग्य व्यवहार करना) फक्कति । पफक्क । फक्किता । फक्किष्यति । फक्किषति । फक्किषाति । फक्कतु । अफक्कत् । फक्केत् । फक्क्यात् । अफक्कीत् । अफक्किष्यत्॥ [तक] हसने (हसना) तकति । तताक । तेकतुः । तेकुः । तेकिथ । तेकथुः । तेक । तताक । ततक । तेकिव । तेकिम । तकिता । तकिष्यति । ताकिषति । ताकिषाति । तकिषति । तकिषाति । तकति । तकाति । तकतु । अतकत । तकेत् । तक्यात् । अताकीत् । अतकीत् । अताकिष्टाम् । अतकिष्टाम् । अतकिष्यत ॥ [तकि] कृच्छ्रजीवने (कठिनता से जीवना) तङ्कति । ततङ्क । तङ्किता ॥ [बुक्क] भषणे (भूंसना) बुक्कति । बुबुक्क । बुक्किता । बुक्किष्यति ॥ [कख] हसने । कखति । चकाख । काखिता । अकाखीत् । अकखीत् ॥ [ओखृ, राखृ, लाखृ, द्राखृ, धाखृ] शोषणालमर्थयोः (सूखना, भूषण, पर्य्याप्ति और निषेध) ऋकार की इत्संज्ञा । ओखति । राखति । ओखाञ्चकार (१००) इत्यादि सूत्र लगते हैं । ओखिता । ओखिष्यति । ओखिषति । ओखिषाति । ओखतु । औखत् । ओखेत् । ओख्यात् । औखीत् । औखिष्यत् ॥ [उख, उखि, वख, वखि, मख, मखि, णख, णखि, रख, रखि, लख, लखि, इख, इखि, ईखि, वल्गु, रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, तगि, त्वगि, श्रगि, श्लगि, इगि, रिगि, लिगि] गत्यर्थाः । ओखति । उ–ओख्–णल् । इस अवस्था में ॥ १५२ ॥

१५३–अभ्यासस्याऽसवर्णे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७८ ॥

असवर्ण अच् परे हो तो अभ्यास के इवर्ण उवर्ण को इयङ् उवङ् आदेश हों। यह सूत्र यणादेश का बाधक है । और गुण हो जाने से यह धातु इजादि गुरुमान् तो हो जाता है परन्तु सन्निपातपरिभाषा अर्थात् जो जिसके आश्रय से समर्थ होता है वह उस का विरोधी न होना चाहिये । यहां लिडादेश (णल्) प्रत्यय को मान के गुण होता है, आम् प्रत्यय के होनेसे उसी लिडादेश णल् का लुक् हो जावे इसलिये

आम् नहीं होता। उ+ओख्+णल्=उवोख। ऊखतुः। यहां सवर्ण अच् के परे उवङ् नहीं होता,सवर्णदीर्घ एकादेश हो जाता है। ऊखुः। उवोखिथ। ऊखथुः। ऊख। उवोख। ऊखिव। ऊखिम। ओखिता। ओखिष्यति। ओखिषति। ओखिषाति। ओखतु। ओखतात्। औखत् ओखेत्। उख्यात्। औखीत्। औखिष्यत्। उङ्खति। उङ्खाञ्चकार। उङ्खाञ्चक्रतुः। उङ्खाञ्चक्रुः। उङ्खाम्बभूव। उङ्खामास। ववाख। ववखतुः (१२८)वङ्खति। ववङ्ख। मखति। ममाख। मेखतुः। मेखुः। मखिता। मखिष्यति। माखिषति। माखिषाति। मखिषति। मखिषाति। मखाति। मखाति। माखिषत्। माखिषात्। माखिषद्। माखिषाद्। मखिषत् मखिषात्। मखिषद्। मखिषाद्। मखत्। मखात्। मखद्। मखाद्। इत्यादि। अमाखीत्। अमखीत्। नखति। ननाख। नेखतुः। नङ्खति। ननङ्ख। एखति। एयेख (१५३) एखिता। एखिष्यति। ऐखिषति। ऐखिषाति। एखतु। एखतात्। ऐखत्। एखेत्। इख्यात्। ऐखीत्। ऐखिष्यत्। इङ्खति। इङ्खाञ्चकार। ऐङ्खीत्। ईङ्खाञ्चकार। बल्गति। बबल्ग। रङ्गति। ररङ्ग। लङ्गति। ललङ्ग। अङ्गति। आनङ्ग (१४७) वङ्गति। ववङ्ग। इङ्गति। इङ्गाञ्चकार। इङ्गामास। इङ्गाम्बभूव। इङ्गिता। इङ्गिष्यति। इत्यादि ॥ [रिख, त्रख, त्रखि, शिखि] इत्यपि केचित्। रिख आदि चार धातु किन्हीं आचार्यों के मत में पूर्व उख आदि धातुओं के समान गत्यर्थ हैं। रेखति। रिरेख। रिरिखतुः। रेखिता। रेखिष्यति। रेखिषति। रेखिषाति। रेखतु। अरेखत्। रेखेत्। रिख्यात्। अरेखीत्। अरेखिष्यत्। त्रखति। तत्राख। त्रङ्खति। तत्रङ्ख। शिङ्खति। शिशिङ्ख ॥ [त्वगि] कम्पने च (कांपना) त्वङ्गति। तत्वङ्ग ॥ [युगि, जुगि, बुगि] वर्जने (वर्ज देना) युङ्गति। युयुङ्ग ॥ (घघ) हसने (हंसना) घघति। जघाघ। जघघ। घाघिषति। घाघिषाति। घघिषति। घघिषाति। अघाघीत्। अघघीत्। अघघिष्यत् ॥ [मघि] मण्डने (समाधान करना) मङ्घति। ममङ्घ ॥ [लाघि] शोषणे। लङ्घति। ललङ्घ ॥ [शिघि] आघ्राणे (सूंघना) शिङ्घति। शिशिङ्घ। शिङ्घिता। शिङ्घिष्यति। शिङ्घिषति। शिङ्घिषाति। शिङ्घतु। अशिङ्घत्। शिङ्घेत्। शिङ्घ्यात्। अशिङ्घीत्। अशिङ्घिष्यत् ॥इति फक्कादय उदात्ता उदात्तेतो द्विपंचाशत् समाप्ताः ॥ फक्क आदि ५२ धातु समाप्त हुए ॥

अथ चवर्गीयान्तास्त्रिनवतिः। अब यहां से आगे ९३ त्रानवे धातुओं का व्याख्यान है ॥ [वर्च] दीप्तौ (प्रकाश होना) वर्चते। वर्चिता। वर्चिष्यते। वार्चिषतै। वर्चिषातै। वर्चताम्। अवर्चत। वर्चेत। वर्चिषीष्ट। अवर्चिष्ट। अवर्चिष्यत ॥

[षच]सेचने सेवने च(सींचना,सेवा करना)सचते। सेचे। सेचाते।सेचिरे।सचिता।सचिष्यते। साचिषतै। साचिषातै। साचिषतै।साचिषातै। सचिषतै।सचिषातै। सचिषतै।साचिषातै। सचतै।सचातै।सचते। सचाते। सचताम्। असचत। सचेत। सचिषीष्ट। असचिष्ट। असचिष्यत॥ [लोचृ] दर्शने (देखना) लोचते। लुलोचे। लोचिषतै। लोचिषातै॥ [शच] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) शचते। शेचे। शाचिषतै। शाचिषातै। अशचिष्ट॥ [श्वच, श्वचि] गतौ। श्वचते। श्वञ्चते। शश्वचे। शश्वञ्चे। श्वाचिषतै॥ [कच] बन्धने (बांधना) कचते। चकचे। कचिता। कचिष्यते। काचिषतै। काचिषातै। कचताम्। अकचत। कचेत।कचिषीष्ट। अकचिष्ट। अकचिष्यत॥[काचि, कचि]दीप्तिबन्धनयोः (प्रकाश और बांधना) कञ्चते। काञ्चते। चकञ्चे। चकाञ्चे। [मच,मुचि] कल्कने (अभिमान करना) मचते। मुञ्चते। मेचे। मुमुञ्चे। माचिता। मचिष्यते। माचिषतै। माचिषातै। मचताम्। अमचत। मचेत। मचिषीष्ट। अमचिष्ट। अमचिष्यत॥ [मचि] धारणोच्छ्रायपूजनेषु (धारणा, बढ़ना, सत्कार करना) मञ्चते। ममञ्चे। मञ्चिषतै। मञ्चिषातै॥ [पचि] व्यक्तीकरणे (प्रकट करना) पञ्चते। पपञ्चे। पञ्चिषतै। पञ्चिषातै॥ [ष्टुच] प्रसादे (प्रसन्न होना) स्तोचते। तुष्टुचे। स्तोचिषतै। स्तोचिषातै। स्तोचताम्। अस्तोचत। स्तोचेत। स्तोचिषीष्ट। अस्तोचिष्ट। अस्तोचिष्यत॥ [ऋज] गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु। (गति-ज्ञान, गमन, प्राप्ति, स्थिति, सञ्चय, समीप में वस्तु जोड़ना) अर्जते। ऋज्+ऋज्+एश्=आनृजे। (१०९) (३८) (११०) (१४७) आनृजाते। आनृजिरे। अर्जिता। अर्जिष्यते। अर्जिषतै। अर्जिषातै। अर्जताम्। आर्जत। अर्जेत। अर्जिषीष्ट। आर्जिष्ट। आर्जिष्यत॥ [ऋजि,भृजी] भर्जने (भूंजना) ऋञ्जते। भर्जते। ऋञ्जाञ्चक्रे। बभृजे। ऋञ्जिता। भर्जिता। ऋञ्जिष्यते। आर्ञ्जिष्ट। अभर्जिष्ट॥ [एजृ, भ्रेजृ, भ्राजृ] दीप्तौ (प्रकाश होना) एजते। एजाञ्चक्रे। एजाम्बभूव। एजामास। एजिता। एजिष्यते। एजिषतै। एजिषातै। एजताम्। ऐजत। एजेत। एजिषीष्ट। ऐजिष्ट। ऐजिष्यत। भ्रेजते। बिभ्रेजे। भ्राजते। बभ्राजे। इत्यादि॥ [ईज] गतिकुत्सनयोः (गति,निन्दा) ईजते। ईजाञ्चक्रे। ईजाम्बभूव। ईजामास।ईजिता। ईजिष्यते। ईजिषतै। ईजिषातै। ईजताम्। ऐजत। ईजेत। ईजिषीष्ट। ऐजिष्ट। ऐजिष्यत। इति वर्चादय उदात्ता अनुदात्तेत एकविंशतिः समाप्ताः॥

अथ द्विसप्ततिर्वृज्यन्ताः परस्मैपदिनः। अब यहां से आगे परस्मैपदी ७२ बहत्तर

धातुओं का व्याख्यान है ॥ [शुच] शोके (शोचना) शोचति । शुशोच । शुशुचतुः । शोचिता । शोचिष्यति । शोचिषति । शोचिषाति । शोचिषत् । शोचिषात् । शोचिषद् । शोचिषाद् । शोचति । शोचाति । शोचतु । अशोचत् । शोचेत् । शुच्यात् । अशोचीत् । अशोचिष्यत् ॥ [कुच] शब्दे तारे (एकरस शब्द होना) कोचति । चुकोच । कोचिषाति । कोचिषाति ॥ [कुञ्च, क्रुञ्च] गतिकौटिल्याल्पीभावयोः (टेढ़ा चलना, थोड़ा होना) कुञ्चति । क्रुञ्चति । चुकुञ्च । चुक्रुञ्च । कुच्यात् (१३९) क्रुच्यात् ॥ [लुञ्च] अपनयने (दूर करना) लुञ्चति । लुलुञ्च । लुञ्चिता । लुच्यात् (१३९) । अलुञ्चुत् । अलुञ्चिष्यत् ॥ [अञ्चु] गतिपूजनयोः (गति और पूजा) अञ्चति । अञ्चिषति । अञ्चिषाति । अच्यात् * ॥ [वञ्चु, चञ्चु, तञ्चु, त्वञ्चु, म्रुञ्चु, म्लुञ्चु, म्रुचु, म्लुचु] गत्यर्थाः । वञ्चति । वच्यात् । चच्यात् । तच्यात् । त्वच्यात् । म्रुच्यात् । म्लुच्यात् ॥ १५३ ॥

१५४—जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ॥ अ०॥ ३ । १ । ५८ ॥

जॄ, स्तम्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, ग्लुचु, ग्लुञ्चु और श्वि धातुओं से परे जो च्लि प्रत्यय उसके स्थान में अङ् आदेश विकल्प करके होवे । अम्रुचत् । अम्रोचीत् । अम्लुचत् । अम्लोचीत् ॥ [ग्रुचु, ग्लुचु, कुजु, खुजु] स्तेयकरणे (चोरी करना) ग्रोचति । जुग्रोच । जुग्रुचतुः । ग्रोचिता । ग्रोचिष्यति । ग्रोचिषाति । ग्रोचिषाति । ग्रोचतु । अग्रोचत् । ग्रोचेत् । ग्रुच्यात् । अग्रुचत् । अग्रोचीत् । ग्लोचति । ग्लुच्यात् । अग्लुचत् । अग्लोचीत् । कोजति । चुकोज । कुज्यात् । अकोजीत् । खुज्यात् । अखोजीत् ॥ [ग्लुञ्चु, षस्ज] गतौ । ग्लुञ्चति । जुग्लुञ्च । ग्लुच्यात् (१३९) । अग्लुचत् । अग्लोचीत् । सज्जति †ससज्ज । सज्जिता । सज्जिष्यति । सज्जिषाति । सज्जिषाति । सज्जतु । असज्जत् । सज्जेत् । सज्ज्यात् । असज्जीत् । असज्जिष्यत् ॥ सज्जतिः स्वरितेदित्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में यह सज्ज धातु स्वरितेत् अर्थात् आत्मनेपदी भी है इस से । सज्जते । ससज्जे । इत्यादि प्रयोग भी होते हैं ॥ [गुजि] अव्यक्ते शब्दे (अप्रकट शब्द का होना) गुञ्जति ।

* अञ्चु धातु के नकार का लोप गति अर्थ में ही होता है और (नाञ्चेः पूजायाम् । अ० ६ । ४।३०) इस सूत्र से पूजा अर्थ में नकार का लोप नहीं होता वहां (अञ्च्यात्) प्रयोग होता है ॥

† सस्ज धातु के हल् सकार को (स्तोः श्चुना श्चुः) इस सूत्र से शकार और उस शकार को (झलां जश् झशि) इस सूत्र से जकार हो जाता है ॥

जुगुञ्ज । गुञ्ज्यात् । अगुञ्जीत् । अगुञ्जिष्यत् ॥ [अर्च] पूजायाम् । अर्चति । आनर्च (११०) (१४७)। आर्चिता । अर्चिष्यति । अर्चिषति । अर्चिषाति। अर्चतु । आर्चत् । अर्चेत् । अर्च्यात् । आर्चीत् । आर्चिष्यत् ॥ [म्लेच्छ] अव्यक्ते शब्दे । म्लेच्छति । मिम्लेच्छ ॥ [लछ,लाछि] लक्षणे (चिन्ह) लच्छति । ललच्छ । लच्छिता । लच्छिष्यति । लच्छिषति । लच्छिषाति । लच्छतु । अलच्छत् । लच्छेत् । लच्छ्यात् । अलच्छीत् । अलच्छिष्यत् । लाञ्छति । ललाञ्छ ॥ [वाछि] इच्छायाम् । वाञ्छति । ववाञ्छ ॥ [आछि] आयामे (विस्तार) आञ्छति । आञ्छ । आञ्छिता । आञ्छिष्यति ।आञ्छिषति । आञ्छिषाति। आञ्छतु । आञ्छत् । आञ्छेत् । आञ्छ्यात् । आञ्छीत्। आञ्छिष्यत् ॥ [ह्रीछ] लज्जायाम् । ह्रीच्छति। जिह्रीच्छ ॥ [हुर्छा] कौटिल्ये (कुटिलपन) (१२०) इस सूत्र से रेफ की उपधा को दीर्घ होकर । हूर्च्छति । जुहूर्च्छ । हूर्च्छिता ।हूर्च्छिष्यति ।हूर्च्छिषति। हूर्च्छिषाति । हूर्च्छतु। अहूर्च्छत् । हूर्च्छेत् । हूर्च्छ्यात् । अहूर्च्छीत् । अहूर्च्छिष्यत् ॥ [मुर्छा] मोहसमुच्छ्राययोः (अज्ञान, बढ़ना) मूर्च्छति मुमूर्च्छ ॥ [स्फुर्छा] विस्तृतौ (विस्तार) स्फूर्च्छति । पुस्फूर्च्छ (१२४)। अस्फूर्च्छीत् ॥ [युच्छ] प्रमादे । युच्छति । युयुच्छ ॥ [उछि] उञ्छे (ऊंछना) उञ्छति । उञ्छाञ्चकार । उञ्छाम्बभूव । उञ्छामास । उञ्छिता। उञ्छिष्यति । उञ्छिषति। उञ्छिषाति। उञ्छतु । औञ्छत्। उञ्छेत् । उञ्छ्यात् । औञ्छीत् । औञ्छिष्यत् ॥ [उछी] विवासे (समाप्ति) व्युच्छति । उच्छति । उछी धातु के बहुधा वि उपसर्गपूर्वक ही प्रयोग आते हैं और इस धातु में छकार के परे तुगागम होने से इजादि गुरुमान् होने से आम् प्रत्यय प्राप्त है परन्तु उपदेश में इजादि गुरुमान् नहीं इस से आम् प्रत्यय नहीं होता ॥ [ध्रज, ध्रजि, धृज, धृजि, ध्वज, ध्वजि] गतौ। ध्रजति । ध्रञ्जति । धर्जति। धृञ्जति । ध्वजति । ध्वञ्जति। दध्राज । दध्रञ्ज । दधर्ज । दधृजतुः । दधृञ्ज । दध्वाज । दध्वज । अध्राजीत् । अध्रजीत् । अध्रञ्जीत् । अधर्जीत् । अधृञ्जीत् । अध्वाजीत् । अध्वजीत् । अध्वञ्जीत् । [कूज] अव्यक्ते शब्दे । कूजति । चुकूज । अकूजीत् ॥ [अर्ज, षर्ज] अर्जने (संचय करना) अर्जति । आनर्ज । अर्जिता । अर्जिष्यति । अर्जिषति । अर्जिषाति । अर्जतु । आर्जत्। अर्जेत्। अर्ज्यात् । आर्जीत्। आर्जिष्यत् । सर्जति ।ससर्ज। [गर्ज] शब्दे (गर्जना)गर्जति। जगर्ज ॥ [तर्ज] भर्त्सने (धमकाना) तर्जति ॥ [खर्ज] पूजने (सत्कार) खर्जति । चखर्ज ॥ [अज] गतिक्षेपणयोः(गति और फेंकना) अजति । अजतः । अजन्ति ॥ १५४।

१५५-अजेर्व्यघञपोः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५६ ॥

घञ् और अप् प्रत्ययों को छोड़ के अन्य आर्द्धधातुकविषय में अज धातु को वी आदेश होवे । यहां लिट् में वी होकर । वी +वी+णल् = विवाय (६०) ॥१५५॥

१५६-एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ॥ अ ०॥ ६ । ४ ।८२ ॥

संयोग जिस के पूर्व न हो ऐसा जो अनेकाच् धातु का अवयव इवर्ण उस को अच् परे हो तो यण् आदेश हो जावे । वी + वी + अतुस् = विव्यतुः। विव्युः । यहां यणादेश होने के पश्चात् वकार की उपधा अभ्यास के इकार को (१३०) सूत्र से दीर्घ प्राप्त है परंतु (स्वरदीर्घयलोपविधिषु लोपाजादेशो न स्थानिवत्) इस वार्त्तिक से दीर्घविधि के करने में लोपरूप जो अच् के स्थान में आदेश है वही स्थानिवत् न हो अन्य आदेश तो स्थानिवत् हो ही जावे, इस से यणादेश के स्थानिवत् हो जाने से दीर्घ नहीं होता । अब इस वी अनिट् धातु से परे थल् में (१४८) सूत्र के नियम से नित्य इडागम प्राप्त हुआ ॥ १५६ ॥

१५७-अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ॥ अ ० ॥ ७ । २ ।६१ ॥

तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट् जो अजन्त धातु उनसे परे जो थल् वलादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम न होवे । फिर (१४९) सूत्र से भारद्वाज आचार्य के मत में ऋकारान्तों के निषेध का नियम होने से भारद्वाज के मत में इस वी धातु से परे थल् को इट् होता है अन्य ऋषियों के मत में नहीं। वि+वी+इट्+थल्=विवयिथ । विवेथ । विव्यथुः । विव्य । विवाय (१४३) विवय । यहां णित् के विकल्प होने से पक्ष में (२१) से गुण हो जाता है। विव्यिव । विव्यिम । और वलादि आर्द्धधातुकविषय में महाभाष्य के (इदमपि सिद्धं भवति प्राजितेति) इत्यादि व्याख्यानरूप प्रमाण से विकल्प कर के वी आदेश होता है इस से थल् में । आजिथ । यह भी प्रयोग होता है। (लुट्) वेता । वेतारौ । वेतारः । वेतासि । वेतास्थः । वेतास्थ । वेतास्मि । वेतास्वः । वेतास्मः । अजिता । अजितारौ । अजितारः । वेष्यति । वेष्यतः । वेष्यन्ति । अजिष्यति । वेषति । वेषाति । वेषत् । वेषात् । वेषद् । वेषाद् । वेषति । वेषाति । वेषत् । वेषात् । वेषद् । वेषाद् । आजिषति । आजिषाति । अजिषति । अजिषाति । इत्यादि । अजतु । आजत् । अजेत् । वीयात् ॥ १५७ ॥

१५८—सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । १ ॥

परस्मैपदविषय में सिच् प्रत्यय परे हो तो इगन्त अङ्ग को वृद्धि होवे । अट्+वी+सिच्+तिप्=अवैषीत् । अवैष्टाम् । अवैषुः । अवैषीः । अवैष्टम् । अवैष्ट । अवैषम् । अवैष्व । अवैष्म । आजीत् । आजिष्टाम् । आजिषुः । अवेष्यत् । आजिष्यत् ॥ [तेज] पालने (पालना) तेजति । तितेज । तेजिता । तेजिष्यति । तेजिषति । तेजिषाति । तेजतु । अतेजत् । तेजेत् । तेज्यात् । अतेजीत् । अतेजिष्यत् । [खज] मन्थे (विलोडना) खजति । चखाज चखज । अखाजीत् । अखजीत् ॥ [खजि] गतिवैकल्ये । (बुरे प्रकार चलना) खञ्जति । चखञ्ज ॥ [एजृ] कम्पने (कांपना) एजति । एजाञ्चकार । एजाम्बभूव । एजामास । एजिता । एजिष्यति । एजिषति । एजिषाति । एजतु । ऐजत् । एजेत् । एज्यात् । ऐजीत् । ऐजिष्यत् ॥ [टुओस्फूर्जा] वज्रनिर्घोषे (भयंकर शब्द होना) टु की इत्संज्ञा (१५०) और ओकार की (उपदेशे०) सूत्र से इत्संज्ञा होकर । स्फूर्जति । पुस्फूर्ज । स्फूर्जिता । स्फूर्जिष्यति । स्फूर्जिषति । स्फूर्जिषाति ॥ [क्षि] क्षये (नाश) यह धातु अकर्म्मक और अनिट् है । (२१) क्षयति । क्षयतः । क्षयन्ति । क्षयसि । क्षयथः । क्षयथ । क्षयामि । क्षयावः । क्षयामः । चिक्षाय (६०) ॥ १५८ ॥

१५९—अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ॥ अ०॥६।४।७७॥

श्नु प्रत्यय, धातु और भ्रू शब्द इन के इवर्ण उवर्ण को इयङ् उवङ् आदेश यथासंख्य करके हों अच् परे हो तो । क्षि+क्षि+अतुस्=चिक्षियतुः । चिक्षियुः । चिक्षयिथ । (१८८) (१४९) चिक्षेथ । चिक्षियथुः । चिक्षिय । चिक्षाय । चिक्षय । चिक्षियिव । चिक्षियिम । क्षेता । क्षेतारौ । क्षेतारः । क्षेष्यति । क्षैषति । क्षैषाति । क्षेषति । क्षेषाति । क्षयतु । अक्षयत् । क्षयेत् ॥ १५९ ॥

१६०—अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २५ ॥

कृत्संज्ञक प्रत्यय और सार्वधातुक विषय को छोड़ के यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो अजन्त अङ्ग को दीर्घ आदेश हो । क्षि+यासुट्+तिप्=क्षीयात् । क्षीयास्ताम् । क्षीयासुः । क्षीयाः । अक्षैषीत् । अक्षैष्टाम् । अक्षैषुः । अक्षैषीः । अक्षैष्टम् । अक्षैष्ट । अक्षैषम् । अक्षैष्व । अक्षैष्म । अक्षेष्यत् ॥ [क्षीज] अव्यक्ते शब्दे क्षीजति । चिक्षीज । अक्षीजीत् । अक्षीजिष्यत् ॥ [लज, लाजि] भर्जने । (भूंजना)

लजति । ललाज । ललज । लाजिषति । लाजिषाति । अलाजीत् । अलजीत् । लञ्जति । ललञ्ज ॥ [लाज, लाजि] भर्त्सने च (धमकाना) लाजति । ललाज । ललाजतुः । लाञ्जति ॥ [जज, जजि] युद्धे (लड़ाई) जजति । जजाज । जजज । जाजिषति । जाजिषाति । अजाजीत् । अजजीत् । जञ्जति । जजञ्ज ॥ [तुज] हिंसायाम् । तोजति । तुतोज । तुतुजतुः । तोजिता ॥ [तुजि] पालने च । चकार से हिंसा अर्थ भी जानो । तुञ्जति । तुतुञ्ज ॥ [गज, गजि, गृज, गृजि, मुज, मुजि] शब्दार्थाः (शब्द होना) गजति । गञ्जति ! गर्जति । गृञ्जति । मोजति । मुञ्जति । जगाज । जगञ्ज । जगर्ज । जगृञ्ज । मुमोज । मुमुञ्ज । अगाजीत् । अगजीत् ॥ [गज] मदे च (अहंकार) चकार से शब्दार्थ भी है ॥ [वज, व्रज] गतौ । वजति । ववाज । ववजतुः । ववजुः । ववाज । ववज । वाजिषति । वाजिषाति । वजतु । अवजत् । वजेत् । वज्यात् । अवाजीत् । अवजीत् । अवजिष्यत् । व्रजति । वव्राज । अव्राजीत् से (१३८) से नित्य वृद्धि होती है ॥ १६० ॥

१६१—तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य ॥ ६ । १ । ७ ॥

तुज आदि जिन धातुओं के अभ्यास को वेद में दीर्घादेश आवे उस की सिद्धि इस सूत्र से समझनी चाहिये । तूतुजानः । जागाज । मूमोज । वावाज । वाव्राज । दाधार । मामहानः । इत्यादि । यह सूत्र सामान्य करके प्रवृत्त होता है ॥

इति शुचादय उदात्ता उदात्तेतः त्विवर्जं परस्मैपदिनः समाप्ताः ॥

अथ टवर्गीयान्ता द्वाविंशत्यधिकं शतम् । अब टवर्गान्त १२२ एकसौ बाईस धातुओं का व्याख्यान है उन में से प्रथम ३६ धातु आत्मनेपदी हैं ॥ [अट्ट] अतिक्रमणहिंसनयोः (उल्लंघना, मारना) अट्टते । आनट्टे । अट्टिता । अट्टिष्यते । अट्टिषतै । अट्टिषातै । अट्टताम् । आट्टत । अट्टेत । आट्टिषीष्ट । आट्टिष्ट । आट्टिष्यत ॥ [वेष्ट] वेष्टने (लपेटना) वेष्टते । विवेष्टे । अवेष्टिष्ट ॥ [चेष्ट] चेष्टायाम् (क्रिया) चेष्टते । चिचेष्टे । अचेष्टिष्ट ॥ [गोष्ट, लोष्ट] सङ्घाते (समुदाय) गोष्टते । जुगोष्टे । गोष्टिता । गोष्टिष्यते । गोष्टिषतै । गोष्टिषातै । गोष्टताम् । अगोष्टत ! गोष्टेत । गोष्टिषीष्ट । अगोष्टिष्ट । अगोष्टिष्यत । लोष्टते । लुलोष्टे ॥ [घट्ट] चलने । घट्टते । जघट्टे । घट्टिता ॥ [स्फुट] विकसने (फैलना) स्फोटते । पुस्फुटे । स्फोटिता । स्फोटिष्यते । स्फोटिषतै । स्फोटिषातै । स्फोटताम् । अस्फोटत । स्फोटेत । स्फोटिषीष्ट ।

अस्फोटिष्ट । अस्फोटिष्यत ॥ [आठ] गतौ । अण्ठते । आनण्ठे ॥ [वठि] एक-चर्य्यायाम् (एक का सेवन) वण्ठते । ववण्ठे ॥ [मठि, कठि] शोके (शोचना) मण्ठते । ममण्ठे । कण्ठते । चकण्ठे । कण्ठिता। कण्ठिष्यते । कण्ठिषतै । कण्ठिषातै । कण्ठताम् । अकण्ठत । कण्ठेत । कण्ठिषीष्ट । अकण्ठिष्ट । अकण्ठिष्यत ॥ [मुठि] पालने (रक्षा) मुण्ठते । मुमुण्ठे ॥ [हेठ] विबाधायाम् (मूर्खता) हेठते । जिहेठे ॥ [एठ] च । एठते । एठाञ्चक्रे । एठाम्बभूव । एठामास ॥ [हिडि] गत्यनादरयोः (चलना, तिरस्कार) हिण्डते । जिहिण्डे । हिण्डिता । हिण्डिष्यते । हिण्डिषतै । हिण्डिषातै । हिण्डताम् । अहिण्डत । हिण्डेत । हिण्डिषीष्ट । अहिण्डिष्ट । अहिण्डिष्यत ॥ [हुडि] सङ्घाते । हुण्डते । जुहुण्डे ॥ [कुडि] दाहे (जलना) कुण्डते । चुकुण्डे ॥ [वडि] विभाजने (विभाग करना) वण्डते । ववण्डे ॥ [मडि] च । मण्डते ॥ [भडि] परिभाषणे (बहुत बोलना) भण्डते । बभण्डे । भण्डिता । भण्डिष्यते । भण्डिषतै । भण्डिषातै । भण्डताम् । अभण्डत । भण्डेत । भण्डिषीष्ट । अभण्डिष्ट । अभण्डिष्यत ॥ [पिडि] सङ्घाते । पिण्डते । पिपिण्डे ॥ [मुडि] मार्जने (शोधना) मण्डते । मुमुण्डे ॥ [तुडि] तोडने (तोड़ना) तुण्डते ॥ [हुडि] वरणे (ग्रहण करना) हरण इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में यह धातु हरने अर्थ में है । हुण्डते । जुहुण्डे ॥ [चडि] कोपे (क्रोध) चण्डते । चचण्डे । चण्डिता । चण्डिष्यते । चण्डिषतै । चण्डिषातै । चण्डताम् । अचण्डत । चण्डेत । चण्डिषीष्ट । अचण्डिष्ट । अचण्डिष्यत ॥ [शडि] रुजायां सङ्घाते च (रोग, समुदाय) शण्डते । शशण्डे ॥ [तडि] ताडने (ताड़ना) तण्डते । ततण्डे ॥ [पडि] गतौ । पण्डते । पपण्डे ॥ [कडि] मदे (अहंकार) कण्डते । चकण्डे ॥ [खडि] मन्थे । खण्डते । चखण्डे ॥ [हेडृ, होडृ] अनादरे (तिरस्कार) हेडते । होडते । जिहेडे । जुहोडे ॥ [वाडृ] आप्लाव्ये (सब प्रकार चलना) वाडते । ववाडे ॥ [द्राडृ, ध्राडृ] विशरणे (मारना) द्राडते । दद्राडे । ध्राडते । दध्राडे ॥ [शाडृ] श्लाघायाम् (अपनी प्रशंसा) शाडते । शशाडे ॥ इत्यट्टादय उदात्ता उदात्तेतः षट्त्रिंशत् समाप्ताः । ये अट्ट आदि ३६ धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिनः षडशीतिः । अब ८६ छयाशी धातु परस्मैपदी कहते हैं ॥ [शौटृ] गर्वे (अभिमान) शौटति । शुशौट । शौटिता । शौटिष्यति । शौटिषति । शौटिषाति । शौटतु । अशौटत् । शौटेत् । शौट्यात् । अशौटीत् । अशौटिष्यत् ॥ [यौटृ] बन्धने

(बांधना) यौटति ॥ [म्लेट्ट, म्रेड्ट] उन्मादे (उन्मत्त होना) म्लेटति । मिम्लेट । म्रेडति । मिम्रेड ॥ [कटे] वर्षावरणयोः (वर्षना, ढांकना) इस धातु का एकार इत्संज्ञक होता है प्रयोजन आगे लिखा है । कटति । चकाट । चकटतुः । चकटुः । कटिता। कटिष्यति । काटिषति । काटिषाति । कटिषति । कटिषाति । कटति । कटाति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् । विकल्प करके वृद्धि (१४४) प्राप्त है इसलिये ॥१६१॥

१६२—ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ॥ अ० ॥ ७।२।५॥

हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण, श्वस, जागृ, णयन्त, श्वि और एकार जिन का इत् गया हो उन धातुओं को वृद्धि न हो इडादि सिच् परे हो तो। अकटीत् । अकटिष्यत् ॥ [चटे] इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में कटे धातु के अर्थ में चटे भी है । चटति । अचटीत् ॥ [अट, पट] गतौ । अटति । आट । आटतुः । आटुः । आटीत् । आटिष्यत् । पटति । पपाट । पेटतुः । पेटुः । पेटिथ । पेटथुः । पेट । पपाट । पपट । पेटिव । पेटिम । पटिता । पटिष्यति । पाटिषति । पाटिषाति । पटतु । अपटत् । पटेत् । पट्यात् । अपाटीत् । अपटीत् । अपटिष्यत् ॥[रट] परिभाषणे (बहुत बोलना) रटति । रराट । रेटतुः । रेटुः । अराटीत् । अरटीत् । अरटिष्यत् ॥ [लट] बाल्ये (बालकपन) लटति । ललाट । लेटतुः । लाटिषति । लाटिषाति । लटतु । अलटत् । लटेत् । लट्यात् । अलाटीत् । अलटीत् । अलटिष्यत् ॥ [शट] रुजाविशरणगत्यवसादनेषु (रोग, हिंसा, गति, पीड़ा) शटति । शशाट । शटिता । शटिष्यति । अशाटीत् । अशटीत् । अशटिष्यत् ॥ [वट] वेष्टने (लपेटना) वटति । ववाट । ववटतुः (१२८) । अवाटीत् । अवटीत् ॥ [किट, खिट] त्रासे (भय) केटति । खेटति । चिकेट । चिकिटतुः । चिखिटुः । अकेटीत् । अखेटीत् ॥ [शिट, षिट] अनादरे (तिरस्कार) शेटति । सेटति । सिषेट ॥ [जट, झट] सङ्घाते (समुदाय) जटति । जजाट जेटतुः । अजाटीत् । अजटीत् । जझाट । जझटतुः ॥ [भट] भृतौ (सेवा) भटति । बभाट ॥ [तट] उच्छ्राये (उंचाई) ॥ [खट] काङ्क्षायाम् (इच्छा) चखाट । अखाटीत् ॥ [णट] नृतौ (नाचना) नटति । ननाट । नेटतुः ॥ [पिट] शब्दसङ्घातयोः (शब्द, समूह) पेटति । पिपेट । अपेटीत् ॥ [हट] दीप्तौ च (प्रकाश) हटति । जहाट । अहाटीत् । अहटीत् ॥ [षट] अवयवे (विभाग करना) सटति । ससाट । सेटतुः । असाटीत् । असटीत् ॥ [लुट] विलोडने (विलोना) लोटति । लुलोट ॥ [चिट] परप्रेष्ये (दूसरे की सेवा करना) चेटति । चिचेट । चेटिता । चेटिष्यति । चेटिषति । चेटिषाति । चेटतु । अचेटत् ।

चेटेत् । चिट्यात् । अचेटीत् । अचेटिष्यत् ॥ [विट] शब्दे । वेटति । विवेट ॥ [विट] आक्रोशे (कोशना) वेटति । विवेट ॥ [हिट] इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में विट के स्थान में हिट धातु आक्रोश अर्थ में है । हेटति । जिहेट ॥ [इट, किट, कटी] गतौ । एटति । केटति । कटति । इयेट (१५३) चिकेट । चकाट । कटिता । कटिष्यति । काटिषति । काटिषाति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् । अकाटीत् । अकटीत् अकटिष्यत् ॥ [मडि] भूषायाम् (शोभा) मण्डति ममण्ड ॥ [कुडि] वैकल्ये (व्याकुलता) कुण्डति । चुकुण्ड ॥ [मुट, पुट] मर्दने (मलना) मोटति । पोटति । मुमोट । पुपोट । मोटिता । मोटिष्यति । मोटिषति । मोटिषाति । मोटतु । अमोटत् । मोटेत् । मुट्यात् । अमोटीत् । अमोटिष्यत् ॥ [चुडि] अल्पीभावे (थोड़ा होना) चुण्डति । चुचुण्ड ॥ [मुडि] खण्डने (काटना) मुण्डति । मुमुण्ड । मुण्डिता । मुण्डिष्यति । मुण्डिषति । मुण्डिषाति । मुण्डतु । अमुण्डत् । मुण्डेत् । मुण्ड्यात् । अमुण्डीत् । अमुण्डिष्यत् ॥ [पुडि] चेत्येके । किन्हीं ऋषियों के मत में पुडि धातु भी मुडि के समान खण्डन अर्थ में है ॥ [रुटि,लुटि] स्तेये (चोरी) रुण्टति । लुण्टति । रुरुण्ट । लुलुण्ट । लुण्टिता । लुण्टिष्यति । लुण्टिषति । लुण्टिषाति । लुण्टतु । अलुण्टत् । लुण्टेत् । लुण्ट्यात् । अलुण्टीत् । अलुण्टिष्यत् ॥ [रुठि,लुठि] इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में रुठि लुठि धातु भी चोरी अर्थ में हैं । रुण्ठति । लुण्ठति । रुरुण्ठ । लुलुण्ठ ॥ [स्फुटिर्] विशरणे (मारना) स्फोटति । पुस्फोट । स्फोटिता । स्फोटिष्यति । स्फोटिषति । स्फोटिषाति । स्फोटतु । अस्फोटत् । स्फोटेत् । स्फुट्यात् । अस्फुटत् । अस्फोटीत् (१२८) । अस्फोटिष्यत् ॥ [पठ] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) पठति । पपाठ । पेठतुः पेठुः । पेठिथ । पठिता । पठिष्यति । पाठिषति । पाठिषाति । पठिषति । पठिषाति । पठतु । अपठत् । पठेत् । पठ्यात् । अपाठीत् । अपठीत् । अपठिष्यत् ॥ [वठ] स्थौल्ये (मोटा होना) वठति । ववाठ । ववठतुः । ववठुः । वठिता । वठिष्यति । वाठिषति । वाठिषाति । वठतु । अवठत् । वठेत् । वठ्यात् । अवाठीत् । अवठीत् । अवठिष्यत् ॥ [मठ] मदनिवासयोः (अभिमान, वसना) मठति । ममाठ । मेठतुः । अमाठीत् । अमठीत् ॥ [कठ] कृच्छ्रजीवने (दुःख से जीवना) कठति । चकाठ । चकठतुः । अकाठीत् । अकठीत् ॥ [हठ] प्लुतिशठत्वयोः (कूदना, मूर्खपन) हठति । जहाठ । जहठतुः । अहाठीत् । अहठीत् । अहठिष्यत् ॥ बलात्कार इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में हठ धातु बल

भे करने अर्थ में है [रुठ,लुठ, उठ] उपघाते (समीप से मारना) रोठति । लोठति । रुरोठ । लुलोठ । रोठिता । रोठिष्यति । रोठिषति । रोठिषाति । रोठतु । अरोठत् । रोठेत् । रुठ्यात् । अरोठीत् । अरोठिष्यत् । ओठति । उवोठ (१५३) । ऊठतुः । ऊठुः । उवोठिथ । औठीत् । औठिष्यत् ॥ [ऊठ] इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में यह ऊठ दीर्घ ऊकारयुक्त धातु है ह्रस्व नहीं । ऊठति । ऊठाञ्चकार । उठाम्बभूव । ऊठामास ॥ [पिठ] हिंसासंक्लेशनयोः (हिंसा, अतिदुःख) पेठति । पिपेठ । पेठिता । पेठिष्यति । पेठिषति । पेठिषाति । पेठतु । अपेठत् । पेठेत् । पिठ्यात् । अपेठीत् । अपेठिष्यत् ॥ [शठ] कैतवे च (चुगली) चकार से हिंसा और संक्लेशन अर्थ भी जानो । शठति । शशाठ । शेठतुः । शठिता । शठिष्यति । शाठिषति । शाठिषाति । शठतु । अशठत् । शठेत् । शठ्यात् । अशाठीत् । अशठीत् । अशठिष्यत् ॥ [शुठ] प्रतिघाते (मारते हुए को मारना) शोठति । शुशोठ ॥ [शुठि] इत्येके । किन्हीं लोगों के मत में शुठि (इदित्) धातु भी प्रतिघात अर्थ में है । शुण्ठति । शुशुण्ठ ॥ [कुठि] च । यहां चकार से प्रतिघात अर्थ का सम्बन्ध होता है । कुण्ठति । चुकुण्ठ ॥ [लुठि] आलस्ये प्रतिघाते च । यहां पूर्वोक्त प्रतिघात अर्थ का समुच्चय चकार से किया और अतिस्पष्ट होने के लिये प्रतिघात शब्द पढ़ भी दिया है । लुण्ठति । लुलुण्ठ ॥ [शुठि] शोषणे (सोखना) शुण्ठति ॥ [रुठि, लुठि) गतौ । रुण्ठति । लुण्ठति ॥ [चुड्ड] भावकरणे (अभिप्राय जताना) चुड्डति । चुचुड्ड ॥ [अड्ड] अभियोगे (सर्वथा योग होना) अड्डति । आनड्ड ॥ [कड्ड] कार्कश्ये (कठोरपन) कड्डति । चकड्ड । अकड्डीत् ॥ [क्रीडृ] विहारे (खेलना) क्रीडति । चिक्रीड । क्रीडिता । क्रीडिष्यति । क्रीडिषति । क्रीडिषाति । क्रीडतु । अक्रीडत् । क्रीडेत् । क्रीड्यात् । अक्रीडीत् । अक्रीडिष्यत् ॥ [तुडृ] तोडने (तोड़ना) तोडति । तुतोड । [तूडृ] इत्येके । तूडति । तुतूड। तूडिता । तूडिष्यति । तूडिषति । तूडिषाति । तूडतु । अतूडत् । तूडेत् । तूड्यात् । अतूडीत् । अतूडिष्यत् ॥ [हुडृ ,हूडृ,होडृ,] गतौ । होडति । जुहोड । जुहुडतुः । होडिता । होडिष्यति। होडिषति । होडिषाति । होडतु । अहोडत् । होडेत् । हुड्यात् । अहोडीत् । अहोडिष्यत् । हूडति । जुहूड । जुहोड । जुहोडतुः । जुहोडुः ॥ [रौडृ] अनादरे । (तिरस्कार) रौडति । ररौड ॥ [रोडृ,लोडृ,] उन्मादे (उन्मत्तपन) रोडति । रुरोड । लोडति । लुलोड ॥ [अड] उद्यमने (उद्यम) अडति । आड । आडतुः । आडुः ॥ [लड]

विलासे । लडति । ललाड । लेडतुः । लडिता । लडिष्यति । लाडिषति । लाडिषाति । लडतु । अलडत् । लडेत् । लड्यात् । अलाडीत् । अलडीत् । अलडिष्यत् ॥ [कडि] मदे (अहंकार) कडति । चकाड । चकडतुः ॥ [काडि] इत्येके । कण्डति । चकण्ड ॥ [गडि] वदनैकदेशे (मुख का अवयव) गण्डति । जगण्ड । गण्डिता । गण्डिष्यति । गण्डिषति । गण्डिषाति । गण्डतु । अगण्डत् । गण्डेत् । गण्ड्यात् । अगण्डीत् । अगण्डिष्यत् । इति शौटादय उदात्ता उदात्तेतो द्वाशीतिः परस्मैपदिनः समाप्ताः । ये ८२ बयासी परस्मैपदी धातु समाप्त हुए ॥

अथ पवर्गीयान्ता द्वाशीतिः । तत्रानुदात्तेतः स्तोभत्यन्ताश्चतुस्त्रिंशत् । अब पवर्गान्त ८२ बयासी धातुओं का व्याख्यान है उन में पहिले ३४ चौतीस धातु आत्मनेपदी हैं [तिपृ, तेपृ, ष्टिपृ, ष्टेपृ,] क्षरणार्थाः (झरना) इन में प्रथम तिप् धातु अनिट् है सो भूमिका में सेट् अनिट् व्यवस्था को देखो । तेपते । तेपेते । तेपन्ते । तितिपे । तितिपाते । तितिपिरे । और लिट् वलादि आर्द्धधातुक में (१४८) सूत्र के नियम से इडागम हो जाता है । तितिपिषे । तितिपाथे । तितिपिध्वे । तितिपे । तितिपिवहे । तितिपिमहे । तिप्+तास्+लुट् (१०८) सूत्र से इडागम का निषेध होकर । तेप्ता । तेप्तारौ । तेप्तारः । तेप्तासे । तेप्तासाथे । तेप्ताध्वे । तेप्ताहे । तेप्तास्वहे । तेप्तास्महे । तेप्स्यते । तेप्स्येते । तेप्स्यन्ते । तेप्सतै । तेप्सातै । तेप्सते । तेप्सातै । तेपतै । तेपातै । तेपते । तेपाते । तेपताम् । अतेपत । तेपेत ॥ १६२ ॥

१६३–लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ॥ अ० ॥ १ । २ । ११ ॥

इग्वान् हलन्त धातु से परे जो झलादि लिङ् और सिच् सो कित्वत् हों आत्मनेपदविषय में । यहां कित्संज्ञा होने से (४५) से गुण नहीं होता । तिप्सीष्ट । तिप्सीयास्ताम् । तिप्सीरन् । लुङ् में । अट्+तिप्+सिच्+त (१४२) = अतिप्त । अतिप्साताम् । अतिप्सत । अतिप्थाः । अतिप्साथाम् । अतिब्ध्वम् (१११)। अतिप्सि । अतिप्स्वहि । अतिप्स्महि । अतेप्स्यत । अतेप्स्येताम् । अतेप्स्यन्त । तितेपे । तिपृ और तेपृ धातु में लिट् में ही रूप भेद होता है । तेपिता । तेपिष्यते । तेपिषतै । तेपिषातै । तेपताम् । अतेपत । तेपेत । तेपिषीष्ट । अतेपिष्ट । अतेपिष्यत । स्तेपते । तिष्टिपे । तिष्टिपाते । तिष्टिपिरे । स्तेपिता । स्तेपिष्यते । स्तेपिषतै । स्तेपिषातै । स्तेपताम् । अस्तेपत । स्तेपेत । स्तेपिषीष्ट । अस्तेपिष्ट । अस्तेपिष्यत । तिष्टेपे ।

तिष्टेपाते ॥ तिष्टेपिरे । [थिपृ,थेपृ] इत्यन्ये । थेपते । तिथिपे । तिथेपे ॥ [तिपृ] कम्पने (कांपना) [ग्लेपृ] दैन्ये (दीनता) ग्लेपते । जिग्लेपे [टुवेपृ] कम्पने । टु की इत्संज्ञा । वेपते । विवेपे । वेपिता । वेपिष्यते । वेपिषतै । वेपिषातै । वेपताम् । अवेपत । वेपेत । वेपिषीष्ट । अवेपिष्ट । अवेपिष्यत ॥ [केपृ,गेपृ,ग्लेपृ] च। यहां चकार से कम्पन अर्थ का समुच्चय होता है । केपते । गेपते । ग्लेपते ॥ [मेपृ, रेपृ, लेपृ] गतौ । मेपते । रेपते । लेपते ॥ [हेपृ, धेपृ] च । गति अर्थ में हैं । हेपते । जिहेपे। धेपते । दिधेपे । धेपिता । धेपिष्यते । धेपिषतै । धेपिषातै । धेपताम् । अधेपत । धेपेत । धेपिषीष्ट । अधेपिष्ट । अधेपिष्यत ॥ (त्रपूष्) लज्जायाम् । त्रपते । त्रेपते । त्रपन्ते ॥ १६३ ॥

१६४–तॄफलभजत्रपश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२२ ॥

तॄ, फल, भज और त्रप धातुओं के अकार को एकारादेश और अभ्यास का लोप होवे । त्रप्+त्रप्+एश् = त्रेपे । त्रेपाते । त्रेपिरे । त्रेपिषे । त्रेपाथे । त्रेपिध्वे । त्रेपे । त्रेपिवहे । त्रेपिमहे । इस धातु का षकार इत् जाता है उस का तो प्रयोजन कृदन्त में आवेगा और ऊकार इत् जाने से ऊदित् होकर (१४०) सूत्र से वलादि आर्द्धधातुक को विकल्प से इडागम होता है । त्रपिता। त्रप्ता । त्रप्तारौ । त्रप्तारः । त्रपिष्यते । त्रप्स्यते । त्रपिषतै । त्रापिषातै । त्रपिषतै । त्रपिषातै । त्रापिषते । त्रापिषाते । त्रपिषते। त्रपिषाते। त्राप्सतै। त्राप्सातै। त्राप्सते। त्राप्साते । त्रप्सतै। त्रप्सातै । त्रप्सते।त्रप्साते। त्रपतै। त्रपातै। त्रपते। त्रपाते ।इसी प्रकार बीस२प्रयोग आतां आदि सब प्रत्ययों में जानो । त्रपताम् । अत्रपत । त्रपेत । त्रापिषीष्ट । त्रप्सीष्ट । अत्रपिष्ट। अत्रप्त (१४२)। अत्रप्साताम् । अत्रप्सत । अत्रपिष्यत । अत्रप्स्यत [कपि] चलने (चलना) कम्पते । चकम्पे । कम्पिता । कम्पिष्यते। कम्पिषतै । कम्पिषातै । कम्पताम् । अकम्पत । कम्पेत । कम्पिषीष्ट । अकम्पिष्ट । अकम्पिष्यत [रबि, लबि, अबि] शब्दे । रम्बते । ररम्बे । लम्बते । ललम्बे । अम्बते । आनम्बे ॥ [लबि) अवस्रंसने च (लटकना) चकार से शब्द [कबृ] वर्णे (रंग) कबते । चकबे । कबिता । काबिष्यते । काबिषतै । काबिषातै । कबताम् । अकबत । कबेत । कबिषीष्ट । अकबिष्ट । अकबिष्यत [क्लीबृ] अधार्ष्ट्ये (भोलापन) क्लीबते । चिक्लीबे ॥ [क्षीबृ] मदे (अहङ्कार) क्षीबते । चिक्षीबे ॥ [शीभृ] कत्थने (कहना)

शीभते । शिशीभे ॥ [चीभृ] च । यहां चकार से कत्थन अर्थ का समुच्चय होता है [रेभृ] शब्दे । रेभते रिरेभे ॥ [अभि, रभि] इत्येके । अम्भते । आनम्भे । रम्भते । ररम्भे ॥ [ष्टभि, स्कभि,] प्रतिबन्धे (बांधना) स्तम्भते । तस्तम्भे । स्तम्भिता । स्ताम्भिष्यते । स्तम्भिषतै । स्तम्भिषातै । स्तम्भताम् । अस्तम्भत । स्तम्भेत । स्तम्भिषीष्ट । अस्ताम्भिष्ट । अस्तम्भिष्यत । स्कम्भते । चस्कम्भे । स्तम्भ धातु में इतना विशेष है कि जो उद् उपसर्ग इस के पूर्व हो तो उस के सकार को पूर्वसवर्ण (उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य) सूत्रसे तकार हो जाता है । उतम्भते । उत्तम्भेते । इत्यादि । [जभी, जृभि] गात्रविनामे (शरीर का मरोरना) जभी धातु का दीर्घ ईकार इत् जाता है ॥ १६४ ॥

१६५–रधिजभोरचि ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६१ ॥

अजादि प्रत्यय परे हो तो रध और जभ धातु को नुम् का आगम हो । जम्भते । जजम्भे । जम्भिता । जम्भिष्यते । जम्भिषतै । जम्भिषातै । जम्भताम् । अजम्भत । जम्भेत । जम्भिषीष्ट । अजम्भिष्ट । अजम्भिष्यत । जृम्भते । जजृम्भे । [शल्भ] कत्थने । शल्भते । शशल्भे । [वल्भ] भोजने । वल्भते । ववल्भे । [गल्भ] धाष्टर्ये (ढीठता) गल्भते । जगल्भे । [स्रम्भु) प्रमादे (प्रमत्तपन) स्रम्भते । सस्रम्भे । यह स्रम्भ धातु तालव्यादि भी है । श्रम्भते [ष्टुभु] स्तम्भे (रोकना) स्तोभते । तुष्टुभे । स्तोभिता । स्तोभिष्यते । स्तोभिषतै । स्तोभिषातै । स्तोभताम् । अस्तोभत । स्तोभेत । स्तोभिषीष्ट । अस्तोभिष्ट । अस्तोभिष्यत । इति तिपादय उदात्ता अनुदात्तेतस्तिपिवर्जमात्मनेभाषा अष्टात्रिंशत् समाप्ताः । ये पवर्गान्तों में तिप आदि ३८ धातु समाप्त हुए ॥

अथ द्वाचत्वारिंशत्परस्मैपदिनः । अब बयालीस ४२ धातु परस्मैपदी कहते हैं ॥

[गुपू] रक्षणे (रक्षा करना) ॥ १६५ ॥

१६६–गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ॥ अ० ॥ ३ । १ । २८ ॥

गुपू, धूप, विच्छ, पण और पन धातुओं से स्वार्थ में आय प्रत्यय हो । यहां ऊदित् गुपू धातु से आय प्रत्यय होकर । गुपू–आय । यहां आय प्रत्ययकी (४९) से आर्द्धधातुक संज्ञा और (५१) से गुण होके । गोपाय ॥ १६६ ॥

१६७–सनाद्यन्ता धातवः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३२ ॥

सन् आदि प्रत्यय जिन के अन्त में हों ऐसे प्रकृति प्रत्यय समुदायों की धातु-संज्ञा हो । सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचार अर्थ का क्विप्, णिच्, यङ्, यक्, आय, ईयङ्, णिङ्, ये सब सनादि प्रत्यय कहाते हैं । यहां गोपाय की धातुसंज्ञा होकर इस से लट् आदि लकारों की उत्पत्ति और भू आदि धातुओं के समान इस को भी धातु संज्ञा के सब कार्य होते हैं । गोपाय+शप्+तिप् = गोपायति । गोपायतः । गोपायन्ति । गोपायसि । गोपायथः । गोपायथ । गोपायामि । गोपायावः । गोपायामः। यहां शप् के अकार के साथ गोपाय के अकार को पररूप एकादेश हो जाता है ॥१६७॥

१६८–आयादय आर्द्धधातुके वा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३१ ॥

आर्द्धधातुक प्रत्ययों की विवक्षा में गोपाय आदि धातुओं से आय आदि प्रत्यय विकल्प करके हों । गोपाय–लिट् । यहां ॥ १६८ ॥

१६९–कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३५ ॥

लिट् लकार परे हो तो कास धातु और प्रत्ययान्त धातुओं से आम् प्रत्यय हो, वेदविषय में न हो ॥ १६९ ॥

१७०–वा०–कास्यनेकाज्ग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥

(कास्प्र०) इस सूत्र पर वार्तिककार प्रत्यय ग्रहण के स्थान में अनेकाच् ग्रहण करते हैं अर्थात् (कासनेकाच आममंत्रे लिटि) ऐसा सूत्र करना चाहिये. इस का प्रयोजन आगे आवेगा । अनेकाच् कहने से प्रत्ययान्त धातुओं का भी ग्रहण हो जाता है । यहां गोपाय प्रत्ययान्त धातु से आम् प्रत्यय होकर। गोपाय–आम्–लिट्। यहां ॥ १७० ॥

१७१–आर्द्धधातुके ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४६ ॥

यह अधिकार सूत्र है ॥ १७१ ॥

१७२–अतो लोपः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४८ ॥

आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हो तो अदन्त अङ्ग का लोप हो यहां गोपाय के अन्त्य अकार का लोप होकर । गोपाय+आम्+कृ+कृ+णल्=गोपायाञ्चकार (१०२)

इत्यादि सूत्र लगते हैं । गोपायाञ्चक्रतुः । गोपायाञ्चक्रुः । गोपायाम्बभूव । गोपायामास । और जिस पक्ष में (१६८) सूत्र से आय प्रत्यय नहीं होता वहां । जुगोप । जुगुपतुः । जुगुपुः । यह धातु ऊदित् है इस कारण वलादि आर्द्धधातुक में (१४०) सूत्र से विकल्प करके इडागम होता है । जुगोपिथ । जुगोप्थ । जुगुपथुः । जुगुप । जुगोप । जुगुपिव । जुगुप्व । जुगुपिम । जुगुप्म । (लुट्)गोपायिता । गोपायितारौ । गोपायितारः । आय प्रत्यय के अभावपक्ष में । गोपिता । गोपितारौ । गोपितारः । अनिट् पक्ष में । गोप्ता । गोप्तारौ । गोप्तारः । गोपायिष्यति । गोपिष्यति । गोप्स्यति । गोपायिषति । गोपायिषाति । गोपिषति । गोपिषाति । गोप्सति ।गोप्साति । गोपायति । गोपायाति । गोपायतु । अगोपायत् । गोपायेत् । गोपाय्यात् (१७२)।गोपाय्यास्ताम् । गोपाय्यासुः । गुप्यात् । अगोपायीत्।अगोपीत्। अगौप्सीत्। अगौप्ताम् (१४२)।अगौप्सुः।अगौप्सीः ।अगौप्तम् ।अगौप्त । अगौप्सम् । अगौप्स्व । अगौप्स्म ।*अगोपायिष्यत् । अगोपिष्यत् । अगोप्स्यत् ॥[धूप] सन्तापे (दुःखहोना)धूपायति । धूपायतः । धूपायाञ्चकार । धूपायाम्बभूव । धूपायामास (१६९)इत्यादि सूत्र लगते हैं । दुधूप (१६८) दुधूपतुः । धूपायिता । धूपिता । धूपायिष्यति । धूपिष्यति । धूपायिषति । धूपायिषाति । धूपिषति । धूपिषाति । धूपायतु । अधूपायत् । धूपायेत् । धूपाय्यात् । धूप्यात् । अधूपायीत् । अधूपीत् । अधूपायिष्यत् । अधूपिष्यत् [जप, जल्प] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) जपति । जल्पति । जजाप । जेपतुः । जेपुः । जपिता । जपिष्यति । जापिषति । जापिषाति । जपतु । अजपत् । जपेत् । जप्यात् । अजापीत् । अजपीत् । अजपिष्यत् ॥ [जप] मानसे च(विचार पूर्वक मन में जपना) [चप] सान्त्वने (शान्त होना) चपति ॥ [षप] समवाये (सम्बन्ध होनां) सपति [रप, लप] व्यक्तायां वाचि । रपति । लपति । प्रलपति ॥ [चुप] मन्दायां गतौ (धीरे २ चलना) चोपति । चुचोप । चोपिता । चोपिष्यति । चोपिषति । चोपिषाति । चोपतु । अचोपत् । चोपेत् । चुप्यात् । अचोपीत् । अचोपिष्यत् । [तुप, तुम्प, त्रुप, त्रुम्प, तुफ, तुम्फ, त्रुफ, त्रुम्फ,] हिंसार्थाः । तोपति। तुतोप । तोपिता । तोपिष्यति । तोपिषति । तोपिषाति । तोपतु । अतोपत् । तोपेत् । तुप्यात् । अतोपीत् । अतोपिष्यत् । तुम्पति । तुतुम्प । तुतुम्पतुः । यहां संयोगान्त तुम्प धातु से परे लिट् (१३७) से कित्वत् नहीं होता इस से नलोप भी नहीं हुआ और प्र उपसर्ग से परे (प्रात्तुम्पतौ गवि कर्त्तरि) यह पारस्करप्रभृति गण का सूत्र है । गौ कर्त्ता हो तो प्र उपसर्ग से परे तुम्प धातु को सुट् का आगम हो जाता है। प्रस्तु-

म्पाति । और गणसूत्र में शितप् का निर्देश करने से । प्रतोतुम्पीति । यहां यङ्लुक् में सुट् नहीं होता । तुप्यात् । त्रुप्यात् । तुफ्यात् । त्रुफ्यात् (१३९) । अतुम्पीत् । अतुम्पिष्यत् ॥ [पर्प, रफ, रफि, अर्ब, पर्ब, लर्ब, बर्ब, मर्ब, कर्ब, खर्ब, गर्ब, शर्ब, षर्ब, चर्ब] गतौ [चर्ब] अदने च । चर्ब धातु (खाने) और गति दोनों अर्थ में है । पर्पति । पपर्प । रफति । रम्फति । अर्बति । आनर्ब । अर्बिता । अर्बिष्यति । अर्बिषति। अर्बिषाति । अर्बतु । आर्बत् । अर्बेत् । अर्ब्यात् । आर्बीत् । आर्बिष्यत् । पर्बति । लर्बति । बर्बति । मर्बति । कर्बति । खर्बति। गर्बति । शर्बति । सर्बति । चर्बति । चचर्ब । चर्बिता । चार्बिष्यति । चर्बिषति । चार्बिषाति । चर्बतु । अचर्बत् । चर्बेत् । चर्ब्यात् । अचर्बीत् । अचर्बिष्यत् ॥ [कुबि] आच्छादने (ढांकना) कुम्बति । चुकुम्ब ॥ [लुबि, तुबि] अर्दने (गति और मांगना) लुम्बति । तुम्बति । लुलुम्ब । तुतुम्ब ॥ [चुबि] वक्त्रसंयोगे । चुम्बति । चुचुम्ब ॥ [षृभु, षृम्भु] हिंसार्थौ । सर्भति। ससर्भ । सर्भिता। सर्भिष्यति । सर्भिषति । सार्भिषाति । सर्भतु । असर्भत् । सर्भेत् । सृभ्यात् । असर्भीत् । असार्भिष्यत् । सृम्भति । ससृम्भ । सृभ्यात् ॥ [षिभु, षिम्भु] इत्येके । किन्हीं लोगों के मत में ये दोनों धातु भी हिंसार्थक हैं । सेभति । सिम्भाति । सिभ्यात् ॥ [शुभ शुम्भ] भाषणे (बोलना) भासने, इत्येके (प्रकाश) हिंसायामित्यन्ये * । शोभाति । शुशोभ । शोभिता । शोभिष्यति । शोभिषति । शोभिषाति । शोभतु । अशोभत् । शोभेत् । शुभ्यात् । अशोभीत् । अशोभिष्यत् । शुम्भति । शुशुम्भ । शुभ्यात् ॥ इति गुपादय उदात्ता उदात्तेत एकचत्वारिंशत्समाप्ताः । ये गुप आदि ४१ इकतालीस धातु समाप्त हुए ॥

अथानुनासिकान्ता द्विचत्वारिंशत् । तत्रानुदात्तेतो दश । अब अनुनासिकान्त ४२ बयालीस धातु कहते हैं उन में प्रथम घिणि आदि दश आत्मनेपदी हैं ॥ [घिणि, घुणि, घृणि] ग्रहणे (ग्रहण करना) घिण्णते । यहां नुम् का आगम होकर (ष्टुना ष्टुः) सूत्र से नुम् के (तवर्ग) नकार को (टवर्ग) णकार हो जाता है । घिण्णेते । घिण्णन्ते । जिघिण्णे । घिण्णिता । घिण्णिष्यते । घिण्णिषतै । घिण्णिषातै । घिण्णताम् । अघिण्णत । घिण्णेत । घिण्णिषीष्ट । अघिण्णिष्ट । अघिण्णिष्यत । घुण्णते । घृण्णते । [घुण, घूर्ण] भ्रमणे (विचरना) घोणते । जुघुणे । घोणिता । घोणिष्यते । घोणिषतै ।

* (इत्येके) और (इत्यन्ये) इत्यादि शब्द धातुपाठ में बहुधा आया करते हैं उन का अर्थ एकबार लिख दिया है अब आगे बार २ नहीं लिखेंगे ॥

घोणिषातै । घोणाताम् । अघोणत । घोणेत । घोणिषीष्ट । अघोणिष्ट । अघोणिष्यत । घूर्णते । जुघूर्णे । [पण] व्यवहारे स्तुतौ च (लेना, देना और प्रशंसा) [पन] च । यहां चकार से स्तुति अर्थ का ही सम्बन्ध होता है व्यवहार का नहीं इसीलिये पन धातु पृथक् पढ़ा है नहीं तो इकट्ठा ही पढ़ते । पण तथा पन धातु अनुदात्तेत् हैं सो पन धातु से स्तुति अर्थ में ही आय प्रत्यय (१६६) सूत्र से होता है इस के साहचर्य से पण धातु से भी आय प्रत्यय स्तुति अर्थ में ही होता है और व्यवहार अर्थ में इस को आत्मनेपद होने का अवकाश मिलने से आयप्रत्ययान्त पण धातु से आत्मनेपद नहीं होता । पण+आय+शप्+तिप्=पणायति । पणायतः । पणायन्ति । पणायाञ्चकार । पणायाम्बभूव । पणायामास (१६८) पेणे । पेणाते । पेणिरे । पणायितासि । पणितासे । पणायिष्यति । पणिष्यते । पणायतु । अपणायत् । पणायेत् । पणाय्यात् । पणिषीष्ट । अपणायीत् । अपणिष्ट । अपणायिष्यत् । अपणिष्यत । व्यवहार अर्थ में । पणते । पणेते । पणन्ते । पन धातु स्तुति अर्थ में ही है । पनायति । पनायाञ्चकार । पनायाम्बभूव । पनायामास । पेने । पेनाते । पेनिरे । पनायितासि । पनितासे । पनायिष्यति । पनिष्यते । पनायिषति । पनायिषाति । पानिषतै । पानिषातै । पनायतु । अपनायत् । पनायेत् । पनाय्यात् । पनिषीष्ट । अपनायीत् । अपनिष्ट । अपनायिष्यत् । अपनिष्यत । [भाम] क्रोधे । भामते । बभामे । भामितासे । भामिष्यते । भामिषतै । भामिषातै । भामताम् । अभामत । भामेत । भामिषीष्ट । अभामिष्ट । अभामिष्यत । [क्षमूष्] सहने (सहना) क्षमते । यह भी धातु ऊदित् है । चक्षमे । चक्षमाते । चक्षमिरे । चक्षमिषे । चक्षंसे (१४०) से इट् का आगम विकल्प करके होता है । चक्षमाथे । चक्षमिध्वे । चक्षन्ध्वे । चक्षमे ॥ १७२॥

१७३—म्वोश्च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६५ ॥

म और व परे हों तो मकारान्त धातु के मकार को नकारादेश होवे । यहां व, म के परे क्षम् धातु के मकार को न होकर मूर्द्धन्य षकार से परे णत्व हो जाता है । चक्षण्वहे । चक्षमिवहे । चक्षण्महे । चक्षमिमहे । क्षमिता । क्षन्ता । क्षन्तारौ । क्षन्तारः । क्षन्तासे । क्षमिष्यते । क्षंस्यते । क्षामिषतै । क्षामिषातै । क्षमिषतै । क्षमिषातै । क्षामिषते । क्षामिषाते । क्षमिषते । क्षमिषाते । क्षांसतै । क्षांसातै । क्षांसते । क्षांसाते । क्षंसतै । क्षंसातै । क्षंसते । क्षंसाते । क्षमतै । क्षमातै । क्षमते । क्षमाते । इसी प्रकार बीस २ प्रयोग (आताम्) आदि सब प्रत्ययों में जानो । क्षमताम् । अक्षमत । क्षमेत ।

क्षमिषीष्ट । क्षंसीष्ट । अक्षमिष्ट ।अक्षंस्त । अक्षमिष्यत । अक्षंस्यत । यहां सर्वत्र अनिट् पक्ष में क्षम धातु के मकारको अनुस्वार हो जाता है ॥ [कमु] कान्तौ (इच्छा) ॥१७३॥

१७४–कमेर्णिङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३० ॥

कम धातु से णिङ् प्रत्यय हो स्वार्थ में । पश्चात् (१६७) से धातुसंज्ञा और णिङ् प्रत्यय के परे (१२६) से कम के अकार को वृद्धि होके कामि धातु से णिङ् प्रत्यय के ङित् होने से आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं । कम्+णिङ्+शप्+त=कामयते । कामयेते । कामयन्ते । कामि–आम् –लिट् ॥ १७४ ॥

१७५–अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु ॥ अ०॥ ६ । ४ । ५५ ॥

आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु और इष्णु प्रत्यय परे हों तो णि के स्थान में अय् आदेश हो । (१७७) सूत्र से लोप पाया था सो न हो अर्थात् लोप का अपवाद यह सूत्र है । कामयाञ्चक्रे (१६९) कामयाञ्चक्राते । कामयाञ्चक्रिरे । कामयाम्बभूव । कामयामास (१६८) सूत्र से णिङ् प्रत्यय के अभाव पक्ष में । चकमे । चकमाते । चकमिरे । कामयिता । कामयितारौ । कामयितारः । कामयितासे । कमितासे । कामयिष्यते । कमिष्यते । कामयिषतै । कामयिषातै । कामिषतै । कामिषातै । कामयताम् । अकामयत । कामयेत । कामयिषीष्ट । कमिषीष्ट । कामि–च्लि—लुङ् । यहां च्लि प्रत्यय के स्थान में सिच् प्रत्यय प्राप्त है उस का अपवाद ॥ १७५ ॥

१७६–णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४८ ॥

णयन्त,श्रि, द्रु और स्रु धातुओं से परे च्लि प्रत्यय के स्थान में चङ् आदेश हो कर्त्ता में लुङ् परे हो तो । अट्–काम्–इ–चङ्–त । इस अवस्था में ॥ १७६ ॥

१७७–णेरनिटि ॥ अ०॥ ६ । ४ । ५१ ॥

अनिडादि आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो णि का लोप हो जावे । इसी विषय में (१५६) सूत्र से यण् आदेश परत्व से प्राप्त है ॥ १७७ ॥

१७८–वा०–णयल्लोपावियङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घेभ्यः पूर्वविप्रतिषेधेन भवतः ॥

णिलोप और (१७२) सूत्र से अकार का लोप ये दोनों कार्य इयङ्, यण्,गुण,

वृद्धि और दीर्घ से पूर्वविप्रतिषेध करके हो जाते हैं । णिलोप को (कार्यते) यहां अवकाश है क्योंकि कारि धातु से यक् प्रत्यय के परे भावकर्मप्रक्रिया में णि का लोप हो जाता है और (श्रियौ) यहां इयङ् आदेश को (विञ्यतुः । विञ्युः) यहां यण् आदेश को (चेता, स्तोता) यहां गुण को (सखायौ) यहां वृद्धि को और (चीयते, स्तूयते) यहां दीर्घादेश को अवकाश है और (णेरनिटि) सूत्र से ये सब इयङ् आदि कार्य परे हैं । इन सब कार्य्यों का और णिलोप का जहां एक प्रयोग में आकर झगड़ा पड़ता है वहां परविप्रतिषेध मानने से इयङ् आदि कार्य प्राप्त हैं वार्त्तिककार के प्रमाण से पूर्वविप्रतिषेध मानके णिलोप हो जाता है इयङ् आदि नहीं होते । जैसे । अट्+तान्नि+चङ्+तिप् = अततन्नत् । यहां (१५६) सूत्रसे इयङ् आदेश प्राप्त है उसको बाध के णिलोप होता है । आट्+आटि+चङ्+तिप् = आटिटत् । यहां (१५८) से यणादेश प्राप्त है उस से पूर्वविप्रतिषेध करके णिलोप हो जाता है । कारि+युच्+टाप् = कारणा । यहां (२१) सूत्र से परत्व से गुण पाता है उस का अपवाद होकर णिलोप होता है । कारि+ण्वुल्+सु = कारकः । यहां (६०) सूत्र से वृद्धि प्राप्त है उस से पूर्वविप्रतिषेध करके णिलोप हो जाता है और । कारि+यक्+त = कार्यते । यहां (१६०) सूत्र से परत्व से दीर्घ प्राप्त है उस से भी पूर्वविप्रतिषेध कर के णिलोप हो जावे इसलिये (णचलोपावि०) यह वार्त्तिक है । और (कामि—चङ्—त) यहां तो (१५६) सूत्र से यणादेश परत्व से प्राप्त है उस से पूर्वविप्रतिषेध करके (१७७) सूत्र से णिलोप हो जाता है । फिर अट्—काम्—चङ्—त । इस अवस्था में ॥ १७८ ॥

१७९—णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १ ॥

चङ्परक णि के परे जिस की अङ्ग संज्ञा है उस की उपधा को ह्रस्वादेश हो जावे । यहां (काम्) को ह्रस्व होकर । अट्—कम्—चङ् त । इस अवस्था में ॥ १७९ ॥

१८०—चङि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ११ ॥

चङ् प्रत्यय परे हो तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव को और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व हो जावे । अट् —कम्—कम्—चङ्—त । यहां (कम्) भाग को द्वित्व हुआ ॥ १८० ॥

१८१—सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९३ ॥

धातु का लघु अक्षर जिस से परे हो ऐसा जो अभ्यास उस को जिस चङ् के परे

अक् प्रत्याहार में किसी वर्ण का लोप न हुआ हो ऐसा णि परे हो तो सन्वत् कार्य हो अर्थात् सन् प्रत्यय के परे जो कार्य होता है सो अभ्यास को भी हो जावे । चङ् प्रत्यय के परे जो णि का लोप होता है वह भी अक्-लोप है परन्तु इसी सूत्र में चङ् जिस से परे हो ऐसे णि की अपेक्षा होने से णिलोप से अन्य अग्लोप समझा जाता है और णिलोप को स्थानिवत् मानके इस सूत्र के अर्थ की प्रवृत्ति होतीहै ॥१८१॥

१८२–सन्यतः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७९ ॥

सन् प्रत्यय परे हो तो अभ्यास के अकार को इकार आदेश हो । अट्–किम्–कम्–चङ्–त । इस अवस्था में ॥ १८२ ॥

१८३–दीर्घो लघोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९४ ॥

धातु के लघु अभ्यास को दीर्घ आदेश हो अनग्लोपी चङ्परक णि परे हो तो । यहां (कि) को दीर्घ और (१०७) से ककार को चकार तथा (३८) से अभ्यास के हल् मकार का लोप और चङ् में (च्,ङ्) का लोप होकर । अट्+ची+कम्+अ+त=अचीकमत । अचीकमेताम् । अचीकमन्त । अचीकमथाः । अचीकमेथाम् । अचीकमध्वम् । अचीकमे । अचीकमावहि । अचीकमामहि । और जिस पक्ष में आयादि णिङ् प्रत्यय (१६८) से नहीं होता वहां ॥ १८३ ॥

१८४–वा०–कमेरुपसङ्ख्यानम् ॥ ६ । १ । ४८ ॥

केवल कम धातु से परे जो च्लि उस के स्थान में चङ् आदेश होवे । अट्+कम्+कम्+चङ्+त = अचकमत (१८०) अचकमेताम् । अचकमन्त । अचकमथाः । अचकमेथाम् । अचकमध्वम् । अचकमे । अचकमावहि । अचकमामहि । इति घिण्यादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषा दश समाप्ताः । ये घिणि आदि दश धातु समाप्त हुए॥

अथ द्वात्रिंशत् परस्मैपदिनः । अब ३२ धातु अनुनासिकान्त परस्मैपदी कहते हैं [अण,रण,वण,भण,मण,कण,क्वण,व्रण,भ्रण,ध्वण] शब्दार्थाः । अणति । रणति । वणति । आण । आणतुः । आणुः । अणिता । अणिष्यति। आणिषति । आणिषाति । अणतु । आणत् । अणेत् । अण्यात् । आणीत् । आणिष्यत् । ववाण । ववणतुः (१२८) ववणुः । वणिता । वणिष्यति । वाणिषति । वाणिषाति । वणतु । अवणत् । वणेत् । वण्यात् । अवाणीत् । अवणीत् । अवणिष्यत् । भणति । बभाण । बभणतुः । अभा-

णीत् । अभणीत् । मणति । कणति । क्रणति । व्रणति । भ्रणति । ध्वणति ॥ [धण] इत्येके । धणति । दधाण । दधणतुः । धणिता । धणिष्यति । धाणिषति । धाणिषाति । धणतु । अधणत् । धणेत् । धण्यात् । अधाणीत् । अधणीत् । अधाणिष्यत् ॥ [ओणृ] अपनयने (हटाना) ओणति । ओणाञ्चकार । ओणाम्बभूव । औणामास । ओणिता । ओणिष्यति । ओणिषति । ओणिषाति । ओणतु । औणत् । ओणेत् । ओण्यात् । औ-णीत् । औणिष्यत् ॥ [शोणृ] वर्णगत्योः (रंग और गति) शोणति । शुशोण ॥ [श्रोणृ] सङ्घाते (समुदाय) श्रोणति । शुश्रोण ॥ [श्लोणृ] च (सङ्घात अर्थ में) श्लोणति । शुश्लोण । [पैणृ] गतिप्रेरणश्लेषणेषु (गति, प्रेरणा और मि-लाना) पैणति । पिपैण । पिपैणतुः । पिपैणुः । पैणिता । पैणिष्यति । पैणिषति । पै-णिषाति । पैणतु । अपैणत् । पैणेत् । पैण्यात् । अपैणीत् । अपैणिष्यत् ॥ [ध्रण,बण] शब्दे । यहां ध्रन धातु उपदेश में नान्त है पीछे रेफ से परे णत्व हो जाता है । ध्र-णति । बणति । बबाण । बेणतुः ॥ [कनी] दीप्तिकान्तिगतिषु (प्रकाश, इच्छा और गति) कनति । चकान । चकनतुः । कनिता । कनिष्यति । कानिषति । कानिषाति । कनतु । अकनत् । कनेत् । कन्यात् । अकानीत् । अकनीत् । अकनिष्यत् । [ष्टन, वन] शब्दे । स्तनति । तस्तान । तस्तनतुः । स्तनिता । स्तनिष्यति । स्तानिषति । स्ता-निषाति । स्तनतु । अस्तनत् । स्तनेत् । स्तन्यात् । अस्तानीत् । अस्तनीत् । अस्तानि-ष्यत् । वनति ॥ [वन,षण] सम्भक्तौ (भक्ति) वन धातु का दूसरा अर्थ होने से फिर पढ़ा है । सनति । ससान । सेनतुः । सेनुः । यह बात सब धातुओं में समझना चाहिये कि जहां लिट् लकार को मानके अभ्यास को कुछ आदेश होता है वहीं (१२५) सूत्र से (अनादेशादि) निषेध लगता है कि जैसे । बभणतुः । बभणुः । और जहां धातु के आदि षकार को स और णकार को न हो जाता है वहां निषेध नहीं लगता इसी से । सेनतुः । सेनुः । यहां एत्वाभ्यासलोप (१२५) से होता है । सनिता । सनिष्यति । सानिषति । सानिषाति । सनतु । असनत् । सनेत् ॥ १८४ ॥

१८५-ये विभाषा ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४३ ॥

यकारादि कित्ङित् प्रत्यय परे हों तो जन, सन और खन धातुओं को आकार आ-देश विकल्प करके हो । अलोन्त्य परिभाषा के आश्रय से अन्त्य अल् नकार के स्थान में होता है, (८५) से यासुट् कित् होता है । सन्+यासुट्+सुट्+तिप्=

सायात् । सन्यात् । असानीत् । असनीत् । असनिष्यत् । [अम] गत्यादिषु । गति आदि (गति,शब्द और सम्भक्ति) अर्थों में अम् धातु है । अमति । आम । आमतुः । आमुः । अमिता । अमिष्यति । आमिषति । आमिषाति । अमतु । आमत् । अमेत् । अम्यात् । आमीत् । आमिष्यत् । [द्रम् हम्म, मीमृ] गतौ । द्रमति । दद्राम । हम्मति । जहम्म । मीमति । मिमीम । द्रम धातु मकारान्त अकारोपध है । इस में विकल्प से वृद्धि (१४४) से प्राप्त है सो (१६२) सूत्र से नहीं होती । अद्रमीत् । अद्रमिष्यत् । [मीमृ] शब्दे च । यहां चकार गति और शब्द दोनों अर्थ का बोध होने के लिये है [चमु, छमु, जमु, झमु] अदने (खाना) ॥ १८५ ॥

१८६–ष्ठिवुक्लमुचमां शिति ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७५ ॥

ष्ठिवु,क्लमु और चमु धातुओं के अच् को दीर्घ आदेश हो शित् प्रत्यय परे हों तो । इस सूत्र से इन धातुओं को सामान्य कर के दीर्घ प्राप्त है ॥ १८६ ॥

१८७–वा०–दीर्घत्वमाङि चम इति वक्तव्यम् ॥

आङ्पूर्वक ही चम धातु को दीर्घ हो सर्वत्र नहीं । आचामति । आचामतः । आचामन्ति । आङ् का नियम इसलिये किया है कि । उच्चमति । विचमति । यहां दीर्घ न हो । चचाम । चेमतुः । चेमुः । आचचाम । आचेमतुः । आचेमुः । चामिता । चामिष्यति । चामिषति । चामिषाति । चमतु । आचामतु । अचमत् । आचामत् । चमेत् । आचामेत् । चम्यात् । आचमीत् (१६२) आचामिष्यत् । छमति । चच्छाम । चच्छमतुः । अच्छमीत् । जमति । जजाम । जेमतुः । जेमुः । जामिता । जामिष्यति । जामिषति । जामिषाति । जमतु । अजमत् । जमेत् । जम्यात् । अजमीत् । झमति । जझाम । जझमतुः [जिम] इत्येके । जेमति । जिजेम [क्रमु] पादविक्षेपे (पग फेंकना) ॥१८७॥

१८८–वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७० ॥

भ्राश, भ्लाश, भ्रमु, क्रमु, क्लमु, त्रसि, त्रुटि और लष धातुओं से विकल्प करके श्यन् प्रत्यय हो कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो । और पक्ष में शप् हो जाता है । इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्त विभाषा है क्योंकि इन में जो धातु दिवादि गण के हैं उन से तो श्यन् प्रत्यय नित्य ही प्राप्त है और अन्य गणों के धातुओं से अप्राप्त है और श्यन्

प्रत्यय तथा अन्य सब विकरण प्रत्यय (स्य, तास्, सिप्) आदि शप् प्रत्यय के अपवाद हैं ॥ १८८ ॥

१८९–क्रमः परस्मैपदेषु ॥ ७ । ३ । ७६ ॥

परस्मैपद संज्ञक शित् प्रत्यय परे हों तो क्रम धातु के अच् को दीर्घ होवे । क्रम्+श्यन्+तिप्=क्राम्यति । क्रम्+शप्+तिप्=क्रामति । और परस्मैपद का ग्रहण इसलिये है कि।आक्रमते आदित्यः । यहां पदव्यवस्था से आत्मनेपद में दीर्घ न होवे । चक्राम । चक्रमतुः । चक्रमुः । क्रमिता । क्रमिष्यति । क्रामिषति । क्रामिषाति । क्राम्यतु । क्रामतु । अक्राम्यत् । अक्रामत् । क्रामेत् । क्राम्येत् । क्रम्यात् । अक्रमीत् । अक्रमिष्यत् ॥ इत्यणादय उदात्ता उदात्तेतो द्वात्रिंशत् परस्मैभाषाः समाप्ताः । ये ३२ बत्तीस धातु परस्मैपदी समाप्त हुए ॥

अथ यवर्गीयान्ता अष्टाविंशत्यधिकं शतम् । अब एकसौ अट्ठाईस १२८ धातु यवर्गीयान्त कहते हैं [अय, वय, पय, मय, चय, तय, णय] गतौ । अय्+शप्+त=अयते ॥ १८९ ॥

१९०–दयायासश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३७ ॥

दय, अय और आस धातुओं से आम् प्रत्यय हो लिट् लकार परे हो तो । अय्+आम्+कृ+कृ+एश्=अयाञ्चक्रे । अयाञ्चक्राते । अयाञ्चक्रिरे । अयितासे । अयिष्यते । आयिषतै । आयिषातै । अयताम् । आयत । अयेत ॥ १९० ॥

१९१–विभाषेटः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७९ ॥

इण् से परे जो इट् उस से परे जो सीध्वं, लुङ् और लिट् का धकार उस को मूर्द्धन्य आदेश विकल्प करके हो जावे । धकार के स्थान में अन्तरतम आदेश ढकार हो जाता है । अयिषीष्ट । अयिषीयास्ताम् । अयिषीरन् । अयिषीष्ठाः । आयिषीयास्थाम् । अयिषीढ्वम् । अयिषीध्वम् । अयिषीय । अयिषीवहि । अयिषीमहि । आयिष्ट । आयिषाताम् । आयिषत । आयिष्ठाः । आयिषाथाम् । आयिढ्वम् । आयिध्वम् । आयिषि । आयिष्वहि । आयिष्महि । आयिष्यत ॥ १९१ ॥

१९२–उपसर्गस्यायतौ ॥ अ० ॥ ८ । २ । १९ ॥

अय धातु के परे पूर्व जो उपसर्ग उस के रेफ को लकार आदेश हो । जैसे प्र+

अयते । प्लायते । पलायते । पलायाञ्चक्रे । निस् और दुस् उपसर्गों के सकार को रु-त्व त्रिपादी में होता है उस को असिद्ध मानने से । निरयते । दुरयते । प्रयोग होते हैं । और जहां निर्, दुर् उपसर्ग हों वहां । निलयते । दुलयते । रूप बनते हैं । वयते । व-वये (१२८) वयिता । वयिष्यते । वायिषतै । वायिषातै । वयताम् । अवयत । व-येत । वयिषीष्ट । वयिषीढ्वम् । वयिषीध्वम् । अवयिढ्वम् । अवयिध्वम् । अवयिष्यत । पयते । पेये । पेयाते । पेयिरे । पयिषीढ्वम् । पयिषीध्वम् । अपयिढ्वम् । अपयिध्वम् । इसी प्रकार मय आदि के जानो [णय] रक्षणे च । णय धातु के गति और रक्षा दोनों अर्थ हैं । नयते । नेये । नयिता । नायिषतै । नायिषातै । नयताम् । अनयत । नयेत । नयिषीष्ट । नयिषीढ्वम् । नयिषीध्वम् । अनयिढ्वम् । अनयिध्वम् । अनयि-ष्यत । [दय] दानगतिरक्षणहिंसादानेषु (देना, गति, रक्षा, मारना और लेना) दयते । दयाञ्चक्रे (१९०) दयिता । दयिष्यते । [रय] गतौ । रयते । रेये [ऊयी] तन्तु-सन्ताने (सूत का फैलाना) ऊयते । ऊयाञ्चक्रे । [पूयी] विशरणे दुर्गन्धे च (मारना और दुर्गन्ध करना) पूयते । पुपूये । पूयिता । [क्नूयी] शब्दे उन्दे च (शब्द और गीलापन) क्नूयते । चुक्नूये । [क्ष्मायी] विधूनने (कम्पाना) क्ष्मायते । चक्ष्माये ॥ [स्फायी, ओप्यायी] वृद्धौ (बढ़ना) स्फायते । पस्फाये । ऊयी आदि धातुओं में दीर्घ ईकार इत् जाता है और प्यायी धातु में ओकार और ईकार दोनों की इत्संज्ञा होती है । प्यायते ॥ १९२ ॥

१९३–लिड्यङोश्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । २९ ॥

लिट् लकार और यङ् प्रत्यय परे हों तो प्यायी धातु को पी आदेश हो । प्या-य– लिट् । इस अवस्था में प्रथम द्विर्वचन प्राप्त है उस को बाध के पी आदेश हो जाता है । पीछे इस की प्राप्ति बनी रहने से द्वित्व होता है । पी+पी+एश्=पिप्ये (१५६) से यणादेश होता है । पिप्याते । पिप्यिरे । पिप्यिषे । प्यायिता । प्यायिष्यते । प्या-यिषतै । प्यायिषातै । प्यायताम् । अप्यायत । प्यायेत । प्यायिषीष्ट । प्यायिषीढ्वम् । प्यायिषीध्वम् (१९१) ॥ १९३ ॥

१९४–दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्य-तरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६१ ॥

दीपी, जनी, बुध, तायृ और प्यायी धातुओं से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में

विकल्प करके चिण् आदेश होवे त शब्द परे हो तो । यहां प्यायी धातु से परे होता है अन्य धातु आगे आवेंगे । अट्—प्याय्—चिण्—त । इस अवस्था में ॥ १९४ ॥

१९५—चिणो लुक् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०४ ॥

चिण् से परे जो प्रत्यय उस का लुक् हो । यहां चिण् से परे (त) का लुक् होता है। अट्+प्याय्+चिण् = अप्यायि । यहां (च् ण्) की इत्संज्ञा और लोप हो जाता है। और जिस पक्ष में च्लि के स्थान में चिण् नहीं होता वहां । अप्यायिष्ट । अप्यायिषाताम् । अप्यायिषत । अप्यायिष्ठाः । अप्यायिषाथाम् । अप्यायिढ्वम् । अप्यायिध्वम् (१६१) अप्यायिषि । अप्यायिष्वहि । अप्यायिष्महि । अप्यायिष्यत ॥ [तायृ] सन्तानपालनयोः (अपत्य और रक्षा) तायते । तायेते । तायन्ते । तताये । ततायिध्वे । ततायिढ्वे । तताये । ततायावहे । ततायामहे । तायितासि । तायिष्यते । तायिषतै । तायिषातै । तायताम् । अतायत । तायेत । तायिषीष्ट । अतायिष्ट । अतायिष्यत [शल] चलनसंवरणयोः (चलना और ढांकना) शलते । शेले । शेलाते । शेलिरे । शलितासे । शलिष्यते । शालिषतै । शालिषातै । शलताम् । अशलत । शलेत । शलिषीष्ट । शलिषीढ्वम् । शलिषीध्वम् । अशलिष्ट । अशलिढ्वम् । अशलिध्वम् । अशलिष्यत [वल, वल्ल] संवरणे संचरणे च (संवरण और सम्यक् विचरना) वलते । वल्लते । ववले (१२८) ववल्ले । वलिता । वलिष्यते । वालिषातै । वालिषातै । वलताम् । अवलत । वलेत । वलिषीष्ट । अवलिष्ट । अवलिष्यत [मल, मल्ल] धारणे (पदार्थों का धारण करना) मलते । मल्लते । मेले । मेलाते । मेलिरे । ममल्ले । मलिता । मलिष्यते । मालिषतै । मालिषातै । मलताम् । अमलत । मलेत । मलिषीष्ट । अमलिष्ट । अमलिष्यत [भल, भल्ल] परिभाषणहिंसादानेषु (बहुत बोलना, मारना और देना) भलते । भल्लते । बभले । बभल्ले । भलितासे । भलिष्यते । भालिषतै । भालिषातै । भलताम् । अभलत । भलेत । भलिषीष्ट । अभलिष्ट । अभलिष्यत [कल] शब्दसंख्यानयोः (शब्द और गणना) कलते । चकले । चकलिढ्वे । चकलिध्वे । कलितासे । कलिष्यते । कालिषतै । कालिषातै । कलताम् । अकलत । कलेत । कलिषीष्ट । कलिषीढ्वम् । कलिषीध्वम् । अकलिष्ट । अकलिढ्वम् । अकलिध्वम् । अकलिष्यत [कल्ल] अव्यक्ते शब्दे (अप्रकट बोलना) कल्लते । चकल्ले [तेवृ, देवृ] देवने (खेलना) तेवते । देवते । तितेवे । दिदेवे । तितेविढ्वे (१६१) तितेविध्वे । तेवितासे । तेविष्यते । तेविषतै । तेविषातै । तेवताम् । अतेवत । तेवेत । तेविषीष्ट । तेविषीढ्वम् । तेविषीध्वम् । अतेविष्ट । अतेविढ्वम् । अतेविध्वम् [षेवृ, गेवृ, ग्लेवृ, पेवृ, मेवृ, म्लेवृ] सेवने (सेवन) सेवते ।

सिषेवे । गेवते । जिगेवे । ग्लेवते । जिग्लेवे । पेवते । पिपेवे । मेवते । मिमेवे । म्लेवते । मिम्लेवे [शेवृ, खेवृ, केवृ] इत्येके । शेवते । शिशेवे । खेवते । चिखेवे । केवते । चिकेवे [रेवृ] प्लवगतौ (शीघ्र चलना) रेवते । रिरेवे । रेवितासे । रेविष्यते । रेविषतै । रेविषातै । रेवताम् । अरेवत । रेवेत । रेविषीष्ट । अरेविष्ट । अरेविष्यत ॥ इत्ययादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः सप्तत्रिंशत्समाप्ताः । ये अय आदि ३७ (सैंतीस) धातु समाप्तहुए ॥

अथ परस्मैपदिन एकनवतिः । अब यवर्गान्तों में ९१ (इक्कानवे) धातु परस्मैपदी कहते हैं [मव्य] बन्धने (बांधना) मव्यति । ममव्य । ममव्यतुः । मव्यिता । मव्यिष्याति । मव्यिषति । मव्यिषाति । मव्यतु । अमव्यत् । मव्येत् । मव्यात् । अमव्यीत् । अमव्यिष्यत् [सूर्क्ष्य, ईर्क्ष्य, ईर्ष्य] ईर्ष्यार्थाः (ईर्षा) सूर्क्ष्यति । ईर्क्ष्यति । ईर्ष्यति । ईर्क्ष्याञ्चकार । ईर्ष्याञ्चकार । ईर्ष्याम्बभूव । ईर्ष्यामास । ईर्ष्यिता । ईर्ष्यिष्याति । ईर्ष्यिषति । ईर्ष्यिषाति । ईर्ष्यतु । ऐर्ष्यत् । ईर्ष्येत् । ईर्ष्यात् । ऐर्ष्यीत् । ऐर्ष्यिष्यत् [हय] गतौ । हयति । जहाय । जहयतुः । हयिता । हयिष्यति । हायिषति । हायिषाति । हयतु । अहयत् । हयेत् । हय्यात् । अहयीत् (१६२) वृद्धि नहीं होती [शुच्य, चुच्य] अभिषवे (यंत्र से साररूप रस खींचना) शुच्यति । चुच्यति [हर्य] गतिकान्त्योः (गति और इच्छा) हर्यति । जहर्य [अल] भूषणपर्याप्तिवारणेषु (भूषण , सामर्थ्य और निषेध) अलति । आल । आलतुः । आलुः । अलिता । अलिष्यति । आलिषति । आलिषाति । अलतु । आलत । अलेत् । अल्यात् ॥ १९५ ॥

१९६–अतो ल्रान्तस्य ॥ अ० ॥ ७ । २ । २ ॥

अकार के समीप जो रेफ और लकार तदन्त अङ्ग के अकार को वृद्धि हो परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे हो तो । (१४४) सूत्र से विकल्प करके वृद्धि प्राप्त है उस का यह अपवाद है । मा भवानालीत् । आलिष्टाम् । आलिषुः । अकार के समीप रेफ लकार इसलिये कहे हैं कि । अवभ्रीत् । यहां अकार के समीप भकार है रेफ नहीं । [ञिफला] विशरणे (मरना) इस धातु में (ञि) और (आ) दो वर्ण इत् जाते हैं । फलति । पफाल । फेलतुः । फेलुः । यहां अभ्यास के झल् फकार को चर् पकार होता है इस कारण अनादेशादि के न होने से (१२५) एत्वाभ्यासलोप नहीं प्राप्त है सो (१६४) सूत्र से हो जाता है । फलिता । फलिष्यति । फालिषति । फालिषाति । फलतु । अफलत् । फलेत् । फल्यात् । अफालीत् (१९६) अफलिष्यत् [मील, श्मील, स्मील, क्ष्मील] निमेषणे (नेत्रों को शीघ्र खोलना मींचना] मीलति ।

मिमील । मीलिता । मीलिष्यति । मीलिषति । मीलषाति । मीलतु । अमीलत् । मीलेत् । मील्यात् । अमीलीत् । अमीलिष्यत् । श्मीलति । शिश्मील । स्मीलति । सिस्मील । क्ष्मीलति । चिक्ष्मील । [पील] प्रतिष्टम्भे (रोकना) पीलति । पिपील [नील] वर्णे (नीला रंग) नीलति । निनील [शील] समाधौ (निरन्तर योगाभ्यास करना) शीलति । शिशील [कील] बन्धने (बांधना) कीलति । चिकील [कूल] आवरणे (ढांकना) कूलति । चुकूल । कूलिता । कूलिष्यति । कूलिषति । कूलिषाति । कूलतु । अकूलत् । कूलेत् । कूल्यात् । अकूलीत् । अकूलिष्यत् [शूल] रुजायां सङ्घाते च (पीड़ा और समूह) शूलति । [तूल] निष्कर्षे (बाहर निकालना) तूलति । तुतूल [पूल] सङ्घाते पूलति । पुपूल । [मूल] प्रतिष्ठायाम् । मूलति । [फल] निष्पत्तौ (सिद्ध होना) फलति । पफाल । फेलतुः । फेलुः (१६४) अफालीत् (१९६) [चुल्ल] भावकरणे (अभिप्राय जनाना) चुल्लति । चुचुल्ल । [फुल्ल] विकसने (फूलना) फुल्लति । पुफुल्ल [चिल्ल] शैथिल्ये भावकरणे च (शिथिलता और अभिप्राय जनाना) चिल्लति । चिचिल्ल । चिल्लिता । चिल्लिष्यति । चिल्लिषति । चिल्लिषाति । चिल्लतु । अचिल्लत् । चिल्लेत् । चिल्ल्यात् । अचिल्लीत् । अचिल्लिष्यत् । [तिल] गतौ तेलति । तितेल । तितिलतुः । तेलिता । तेलिष्यति । तेलिषति । तेलिषाति । तेलतु । अतेलत् । तेलेत् । तिल्यात् । अतेलीत् । अतेलिष्यत् [तिल्ल] इत्यन्ये । तिल्लति [वेलृ, चेलृ, केलृ, खेलृ , क्ष्वेलृ, वेल्ल] चलने (चलना) वेलति । विवेल । विवेलतुः । वेलिता । वेलिष्यति । वेलिषति । वेलिषाति । वेलतु । अवेलत् । वेलेत् । वेल्यात् । अवेलीत् । अवेलिष्यत् । चेलति । चिचेल । केलति । चिकेल । खेलति । चिखेल । क्ष्वेलति । चिक्ष्वेल वेल्लति । विवेल्ल [पेलृ, फेलृ खेलृ, शेलृ, षेलृ] गतौ खेलृ धातु दूसरी वार अर्थ भिन्न होने से पढ़ा है । पेलति । पिपेल । फेलति । पिफेल । शेलति । शिशेल । सेलति । सिषेल [स्खल] सञ्चलने (चलायमान होना) स्खलति । चस्खाल (१२४) स्खलिता । स्खलिष्यति । स्खालिषति । स्खालिषाति । स्खलतु । अस्खलत् स्खलेत् । स्खल्यात् । अस्खालीत् (१९६) अस्खलिष्यत् [खल] सञ्चये । खलति । चखाल । अखालीत् [गल] अदने (खाना) गलति । जगाल । अगालीत् [षल] गतौ । सलति । ससाल । सेलतुः । सेलुः । असालीत् [दल] विशरणे (मारना) दलति । ददाल । देलतुः । दलिता । दलिष्यति । दालिषति । दालिषाति । दलतु । अदलत् । दलेत् । दल्यात् । अदालीत् । अदलिष्यत् [श्वल, श्वल्ल] आशुगमने (शीघ्र चलना) श्वलति । शश्वाल । अश्वालीत् । श्वल्लति । शश्वल्ल [खोलृ, खोर्ऋ,] गतिप्रतिघाते

(चलते से रुकजाना) खोलति । चुखोल । खोरति । चुखोर । अखोलीत् । अखोरीत् [घोर्ऋ] गतिचातुर्य्ये (चतुराई से चलना) घोरति । दुघोर । अघोरीत् [त्सर] छद्मगतौ (टेढ़ा चलना) त्सरति । तत्सार । तत्सरतुः । त्सरिता । त्सरिष्यति । त्सारिषति । त्सारिषाति । त्सरतु । अत्सरत् । त्सरेत् । त्सर्यात् । अत्सारीत् (१९६) अत्सरिष्यत् [क्मर] हूर्च्छने (कुटिलता) क्मरति । चक्मार । चक्मरतुः । अक्मारीत् [अभ्र, वभ्र, मभ्र, चर] गत्यर्थाः । अभ्रति । वभ्रति । मभ्रति । चरति । आचरति । प्रचरति । विचरति । आनभ्र (१४७) यहां अभ्यास को दीर्घ और उस से परे द्विहल् धातु को नुट् का आगम (११०) इत्यादि सूत्रों से होता है । ववभ्र । आभ्रीत् । अवभ्रीत् । अमभ्रीत् । यहां अकार के समीप रेफ के न होने से (१९६) सूत्र से वृद्धि नहीं होती । चचार । चेरतुः । चरिता । चरिष्यति । चारिषति । चारिषाति । चरतु । अचरत् । चरेत् । चर्य्यात् । अचारीत्(१९६)अचरिष्यत् [चर] भक्षणे च । चर धातु का यह दूसरा अर्थ होने से पुनः पढ़ा है [ष्ठिवु] निरसने (थूकना) इस धातु के आदि षकार को (१५२) वार्त्तिक से सकार नहीं होता और (१८६)सूत्र से इकार को दीर्घ होकर । ष्ठीवति । तिष्ठेव । तिष्ठिवतुः । तिष्ठिवुः । और इस धातु का दूसरा वर्ण किन्हीं आचार्यों के मत में ठकार ही है अर्थात् जब ठकार है तो षोपदेश नहीं और जब थकार है तब षोपदेश है ठकार पक्ष में । टिष्ठेव । टिष्ठिवतुः । टिष्ठिवुः।इत्यादि प्रयोग अभ्यास ही में विशेष होंगे । टिष्ठेविथ । टिष्ठिवथुः । टिष्ठिव । टिष्ठेव । टिष्ठिविव । टिष्ठिविम । ष्ठेविता । ष्ठेविष्यति । ष्ठेविषति । ष्ठेविषाति । ष्ठीवति । ष्ठीवाति । ष्ठीवतु । अष्ठीवत् । ष्ठीवेत् ॥ १९६ ॥

१९७–हलि च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७७ ॥

हल् प्रत्याहार में कोई वर्ण परे हो तो रेफान्त और वकारान्त धातु की उपधा जो इक् उस को दीर्घ आदेश होवे । ष्ठिव्+यासुट्+सुट्+तिप् = ष्ठीव्यात् । यहां यासुट् का यकार हल् प्रत्याहार में है । अष्ठेवीत् । अष्ठेविष्टाम् । अष्ठेविष्यत् [जि] जये (उन्नति को प्राप्त होना) यह धातु अनिट् और अकर्मक है क्योंकि इवर्णान्तों में जो सेट् पढ़े हैं उन में इस का पाठ नहीं । और इस धातु का स्वार्थ कर्त्ता से भिन्न अन्य किसी में नहीं घटता इस कारण अकर्मक है । जि+शप्+तिप् = जयति (२१) सूत्र से गुण और अय् आदेश होता है । जयतः । जयन्ति ॥ १९७ ॥

१९८–सन्लिटोर्जेः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५७ ॥

सन् और लिट् प्रत्यय परे हों तो जि धातु के अभ्यास से परे उत्तरभाग को कव-

र्गादेश हो । जि—णल् । इस अवस्था में प्रथम (६०) सूत्र से वृद्धि होकर द्वित्व हो- ता है । जै+जै+णल्=जिगाय । यहां परभाग के जकार को गकार हो जाता है जिग्य- तुः । जिग्युः (१८६) सूत्र से यणादेश होता है। जिगेथ (१५७) सूत्र से थल में इट् का निषेध और जिगयिथ (१४९) सूत्र से भारद्वाज के मत में अकारान्तों के निषेध का नियम होने से इडागम हो जाता है। जिग्यथुः। जिग्य। जिगाय (१४३) जिगय । जिग्यिव । जिग्यिम (लुट्) जेता । जेतारौ । जेतारः । जेतासि । जेतास्थः । जेतास्थ । जेतास्मि । जेतास्वः।जेतास्मः । (लृट्) जेष्यति । जेष्यतः।जेष्यन्ति। जेष्यसि। जेष्यथः । जेष्यथ।जे- ष्यामि। जेष्यावः । जेष्यामः। (लेट्) जैषति । जैषाति । जैषत् । जैषात्। जैषद् । जैषाद् । जेषति । जेषाति। जेषत् । जेषात्। जेषद्। जेषाद् ।जयति। जयाति । जयत्। जयात्। जयद्। जयाद् ।इत्यादि।इसी प्रकार तस् आदि में जानो। जयतु । जयतात्। जयताम्। जयन्तु। जय। जयतात्। जयतम्। जयत। जयानि।जयाव । जयाम। अजयत् । अजयताम् अजयन्। अजयः। अजयतम्।अजयत। अजयम्। अजयाव।अजयाम।जयेत्। जयेताम्।जयेयुः।जयेः।जये- तम्। जयेत।जयेयम् । जयेव।जयेम। (१६०) सूत्र से दीर्घ होकर ।जीयात्। जीयास्ताम् । जीयासुः । जीयाः । जीयास्तम्। जीयास्त । जीयासम् । जीयास्व । जीयास्म । अट्+जि+ सिच्+तिप् = अजैषीत् (१५८) सूत्र से इकार को वृद्धि हो जाती है । अजैष्टाम् । अजैषुः। अजैषीः। अजैष्टम्। अजैष्ट। अजैषम्। अजैष्व। अजैष्म। अजेष्यत्। अजेष्यताम्। अजेष्यन्। [जीव] प्राणधारणे (प्राणों का धारण करना) जीवति। जिजीव । जीविता । जीविष्यति । जीविषति । जीविषाति । जीवतु। अजीवत् । जीवेत् । जीव्यात् । अजीवी- त्। अजीविष्यत् । जीव धातु के गुरूपध होने से (५१) सूत्र से गुण नहीं होता । [पीव, मीव, तीव, णीव] स्थौल्ये (मोटापन) पीवति । मीवति । तीवति । नीवति [क्षिवु, क्षेवु] निरसने (फेंकना) क्षेवति । चिक्षेव। चिक्षिवतुः । चिक्षिवुः ।क्षेविता। क्षेविष्यति। क्षेविषति।क्षेविषाति । क्षेवतु । अक्षेवत्। क्षेवेत्। क्षीव्यात् (१९७) सूत्र से वकार की उपधा को दीर्घ होता है । क्षेव्यात्। अक्षेवीत् ।अक्षेविष्यत् । [उर्वी , तुर्वी, थुर्वी, दुर्वी, धुर्वी] हिंसार्थाः (१३०) सूत्र से रेफ की उपधा उकारों को दीर्घ आदेश हो जाता है। ऊर्वति । ऊर्वाञ्चकार । ऊर्वाञ्चक्रतुः । ऊर्वाञ्चक्रुः । ऊर्वाञ्चकर्थ । ऊर्वाम्बभूव। ऊर्वामास । ऊर्विता। ऊर्विष्यति । ऊर्विषति । ऊर्विषाति । ऊर्वतु । और्वत् । ऊर्वेत् । ऊ- र्व्यात् । और्वीत् । और्विष्यत्। तूर्वति। तुतूर्व । तुथूर्व। दूर्वति । दुदूर्व । धूर्वति । दुधूर्व । [गुर्वी] उद्यमने (उद्यम) गूर्वति । जुगूर्व [मुर्वी]बन्धने (बांधना) मूर्वति । मुमूर्व [पुर्व, पर्व,

मर्व] पूरणे (पूरा होना) पूर्वति । पुपूर्व । पर्वति । पपर्व । पार्विता । पर्विष्यति । पर्विषति । पर्विषाति । पर्वतु । अपर्वत् । पर्वेत् । अपर्वीत् । अपार्विष्यत् [चर्व] अदने (खाना) चर्वति । चचर्व । [भर्व] हिंसायाम् । भर्वति । बभर्व [कर्व, खर्व, गर्व] दर्पे (अहंकार करना) कर्वति । चकर्व । खर्वति । चखर्व । गर्वति । जगर्व । [अर्व, शर्व, षर्व] हिंसायाम् । अर्वति । आनर्व । आनर्वतुः।शर्वति । सर्वति । [इवि] व्याप्तौ (व्याप्त होना) इन्वति । इस धातु में नुम् के नकारको परसवर्ण की प्राप्ति न होने से व कार में मिल जाताहै। इन्वाञ्चकार।इन्वाम्बभूव। इन्वामास ।इन्विता। इन्विष्यति । इन्विषति । इन्विषाति। इन्वतु । ऐन्वत्। इन्वेत् । इन्व्यात् । ऐन्वीत् । ऐन्विष्यत् । [पिवि, मिवि, णिवि] सेवने सेचने च (सेवन करना और सींचना) पिन्वति। पिपिन्व । मिन्वति । मिमिन्व । निन्वति । निनिन्व । [हिवि,दिवि,धिवि, जिवि] प्रीणनार्थाः (तृप्ति होना) हिन्वति । जिहिन्व । दिन्वति । दिदिन्व। दिन्विता । दिन्विष्यति । दिन्विषति । दिन्विषाति । दिन्वतु । अदिन्वत् । दिन्वेत् । दिन्व्यात् । अदिन्वीत् । अदिन्विष्यत् ॥ १९८ ॥

१९९–धिन्विकृण्व्योर च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८० ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो धिन्वि और कृणिव धातुसे उ प्रत्यय और इन धातुओं को अकार आदेश हो जावे । अकार आदेश सामान्य विधान होने से अलोन्त्यपरिभाषा के बल से अन्त्य अल् वकार के स्थान में होता है और यह उ प्रत्यय शप् का अपवाद है। उ प्रत्यय की तिङ् और शित् से भिन्न होने के कारण(४९) सूत्र से आर्द्धधातुक संज्ञा होती है । धि–न्–अ–उ (१७२) सूत्र से अकार का लोप हो कर । धिन्–उ–तिप् । इस अवस्था में उ (आर्द्धधातुक) प्रत्यय को मान के धि के इकार को (५१) सूत्र से गुण प्राप्त है सो (अचः परस्मिन् पूर्वविधौ) इस परिभाषा सूत्र से अकारलोप के स्थानिवत् होने से गुण नहीं होता फिर उ प्रत्यय को (२१) सूत्र से गुण होकर । धिन्+उ+तिप् = धिनोति । धिन्+उ+तस् = धिनुतः । यहां(९७) सूत्र से तस् की ङित् संज्ञा होकर (४५) से गुण का निषेध होता है। धिन्वन्ति । धिनोषि। धिनुथः । धिनुथ । धिनोमि ॥ १९९ ॥

२००–लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ॥ अ०॥६। ४ ।१०७ ॥

संयोग जिस के पूर्व न हो ऐसा जो प्रत्यय का उकार उस का विकल्प करके लोप

हो व और म परे हों तो । धिनु+वस् = धिन्वः । धिन्मः । धिनुवः । धिनुमः । दिधिन्व । दिधिन्वतुः । धिन्विता । धिन्विष्यति । धिन्विषति । धिन्विषाति । धिनवति । धिनवाति । यहां (२१) सूत्र से गुण होकर ओकार को अट् आट् निमित्त अव् आदेश होता है । धिनोतु । धिनुतात् । धिनुताम् । धिन्वन्तु ॥ २०० ॥

२०१–उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्॥ अ०॥६।४।१०६॥

संयोगी अक्षर जिस के पूर्व न हों ऐसा जो प्रत्यय का उकार तदन्त अङ्ग से परे जो हि उस का लुक् होवे । धिनु+हि = धिनु । धिनुतात् । धिनुतम् । धिनुत । धिनु+मिप्=धिनवानि । यहां (७२) सूत्र से (नि) आदेश और(११८)सूत्रसे आट् का आगम पित् होकर वस् मस् में भी गुण हो जाता है । धिनवाव । धिनवाम । अधिनोत् । अधिनुताम् । अधिन्वन् । अधिनोः अधिनुतम् । अधिनुत । अधिनवम् । अधिन्व।अधिनुव। अधिन्म । अधिनुम । विधिलिङ् में अदन्त अङ्ग से परे यासुट् के न होने से (८१)सूत्र से इय् आदेश नहीं होता । धिनुयात् । धिनुयाताम् । धिनुयुः । धिनुयाः । धिनुयातम् । धिनुयात । धिनुयाम् । धिनुयाव । धिनुयाम । और यहां (७८) से यासुट् के ङित् होने से (४९) सूत्र से गुण का निषेध होताहै और आशिष्लिङ् की(८४)सूत्र से अर्द्धधातुक संज्ञा होने से उ प्रत्यय नहीं होता। धिन्व्यात् । धिन्व्यास्ताम् । धिन्व्यासुः । अधिन्वीत् । अधिन्विष्टाम् । अधिन्विषुः । अधिन्विष्यत् । जिन्वति । जिजिन्व । जिन्विता । जिन्विष्यति । जिन्विषति । जिन्विषाति । जिन्वतु । अजिन्वत् । जिन्वेत् । जिन्व्यात् । अजिन्वीत् । अजिन्विष्यत्[रिवि,रवि, धवि] गत्यर्थाः । रिण्वति । रिरिण्व । रण्वति । ररण्व । यहां नुम् के नकार को णत्व होता है । धन्वति । दधन्व [कृवि] हिंसाकरणयोश्च (हिंसा और करना) चकार से यह धातु गत्यर्थ भी है । और धिवि धातु में जो सूत्र लगते हैं वे सब इस में भी जानो परन्तु ॥ २०१ ॥

२०२–वा०–ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम् ॥ ८ । ४ । १ ॥

ऋवर्ण से परे जो नकार उस को णकार आदेश सामान्य से अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् के व्यवधान में भी हो । इस वार्त्तिक से नुम् के नकार को सर्वत्र ऋकार से परे णत्व होता है । कृ+नुम्+व्+उ+तिप् = कृणोति । कृणुतः । कृण्वन्ति । कृणोषि ।कृणुथः । कृणुथ । कृणोमि । कृण्वः।कृणुवः । कृण्मः । कृणुमः । चकृण्व । चकृण्वतुः।कृण्विता ।कृण्विष्यति।कृण्विषति कृण्विषाति। कृणवति । कृणवाति । कृणोतु।

अकृणोत् । अकृणव । अकृणुव । अकृणम । अकृणुम । कृणुयात् । कृण्व्यात् । अकृणवोत् । अकृणिवष्यत् [मव] बंधने (बांधना) मवति । ममाव । मेवतुः । मेवुः । मविता । मविष्यति । माविषाति । माविषाति । मवतु । अमवत् । मवेत् मव्यात् । अमावीत् । अमवीत् । अमाविष्यत् । [अव] रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु (गति, रक्षा,शोभा, प्रीति, तृप्ति, बोधहोना, प्रवेश करना, सुनना, अध्यक्षका कार्य साधना, मांगना, चेष्टा, इच्छा, प्रकाश, प्राप्ति,लिपटना, हिंसा, देना, विभाग करना और बढ़ाना) अवति । आव । आवतुः । आवुः । अविष्यति । आविषति । आविषाति। अवतु । आवत् । अवेत् । अव्यात् । आवीत् । आविष्यत् ॥ इति मव्यादय उदात्ता उदात्तेतो जयतिवर्जं परस्मैभाषाः षराणवतिः । ये ९६ मव्य आदि धातु समाप्त हुए ॥

[धावु] गतिशुद्ध्योः (गति और शुद्धि) यह धातु स्वरितेत् है अर्थात् इस का अन्त्य वर्ण स्वरित् इत्संज्ञक होता है (१०३) सूत्र से क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद अन्यत्र परस्मैपद होता है इसलिये उभयपद के प्रयोग होते हैं । धावते । धावेते । धावन्ते । धावति । धावतः । धावन्ति । दधावे । दधाव। धावितासे । धावितासि । धाविष्यते । धाविष्यति । धाविषतै । धाविषातै । धाविषति । धाविषाति ।धावताम् । धावतु । अधावत ।अधावत् । धावेत। धावेत् । धाविषीष्ट । धाव्यात् । अधाविष्ट । अधावीत् । अधाविष्यत । अधाविष्यत् ॥

अथोष्मान्ता आत्मनेपदिनो द्विपञ्चाशत् । अब ऊष्मान्त अर्थात् श, ष, स, ह, ये वर्ण जिन के अन्त में हों ऐसे ५२ (बावन) धातु कहते हैं । [धुक्ष, धिक्ष] सन्दीपनक्लेशनजीवनेषु (प्रकाश, दुःख और जीवन) धुक्षते । दुधुक्षे । धिक्षते । दिधिक्षे । धुक्षितासे । धुक्षिष्यते । धुक्षिषतै । धुक्षिषातै । धुक्षताम् । अधुक्षत । धुक्षेत ।धुक्षिषीष्ट । अधुक्षिष्ट । अधुक्षिष्यत । [वृक्ष] वरणे (ग्रहण करना) वृक्षते । ववृक्षे । [शिक्ष] विद्योपादाने (विद्या का ग्रहण करना) शिक्षते ।शिशिक्षे [भिक्ष]भिक्षायामलाभे लाभे च (भीख मांगना मिले वा न मिले) भिक्षते । बिभिक्षे । [क्लेश] अव्यक्तायां वाचि, बाधन इत्यन्ये (अस्पष्ट बोलना) और किसी२ के मतमें दुःख देने अर्थ में भी है । क्लेशते । चिक्लेशे । क्लेशितासे । क्लेशिष्यते । क्लेशिषतै । क्लेशिषातै । क्लेशताम् । अक्लेशत । क्लेशेत । क्लेशिषीष्ट । अक्लेशिष्ट । अक्लेशिष्यत । [दक्ष] वृद्धौ शीघ्रार्थे च (बढ़ना और शीघ्रता करना) दक्षते । ददक्षे [दीक्ष] मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु (मुण्डन,

यज्ञ, यज्ञोपवीतधारण, नियम, सत्य भाषण आदि वा चान्द्रायण आदि तथा ब्रह्मचर्य्यादि का उपदेश) दीक्षते । दिदीक्षे [ईक्ष] दर्शने (विचारपूर्वक देखना) ईक्षते । ईक्षाञ्चक्रे । ईक्षाम्बभूव । ईक्षामास । [ईष] गतिहिंसादर्शनेषु (गति, हिंसा और देखना) ईषते । ईषाञ्चक्रे । ईषाम्बभूव । ईषामास । ईषितासे । ईषिष्यते । ईषिषतै । ईषिषातै । ईषताम् । ऐषत । ईषेत । ईषिषीष्ट । ऐषिष्ट । ऐषिष्यत । [भाष] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) भाषते । बभाषे । भाषिता । भाषिष्यते । भाषिषतै । भाषिषातै । भाषताम् । अभाषत । भाषेत । भाषिषीष्ट । अभाषिष्ट । अभाषिष्यत । [वर्ष] स्नेहने (चिकनाई) वर्षते । ववर्षे । [गेषृ] अन्विच्छायाम् (खोजना) गेषते । जिगेषे । [ग्लेषृ] इत्येके । ग्लेषते । जिग्लेषे [पेषृ] प्रयत्ने । पेषते । पिपेषे । पेषिता । पेषिष्यते । पेषिषतै । पेषिषातै । पेषताम् । अपेषत । पेषेत । पेषिषीष्ट । अपेषिष्ट । अपेषिष्यत ।[जेषृ, णेषृ, एषृ, प्रेषृ] गतौ । जेषते । नेषते । एषते । एषाञ्चक्रे एषाम्बभूव एषामास । प्रेषते । [रेषृ, हेषृ, ह्रेषृ] अव्यक्ते शब्दे (गड़बड़ शब्द होना) रेषते । रिरेषे । हेषते । जिहेषे । ह्रेषते । जिह्रेषे । [कासृ] शब्दकुत्सायाम् (निन्दित शब्द का होना) कासते । कासाञ्चक्रे । कासाम्बभूव । कासामास (१६९) (१७०) सूत्र वार्त्तिकों से यहां आम् प्रत्यय होता है । कासितासे । कासिष्यते । कासिषतै । कासिषातै । कासताम् । अकासत । कासेत । कासिषीष्ट । अकासिष्ट । अकासिष्यत । [भासृ] दीप्तौ । भासते । बभासे । [णासृ, रासृ] शब्दे । नासते । रासते । ररासे । रासितासे । रासिष्यते । रासिषतै । रासिषातै । रासताम् । अरासत । रासेत । रासिषीष्ट । अरासिष्ट । अरासिष्यत । [णस] कौटिल्ये (कुटिलता) नसते । नेसे । नेसाते । [भ्यस] भये (डरना) भ्यसते । बभ्यसे । [आङःशसि] इच्छायाम् । इस धातु के पूर्व आङ् उपसर्ग इसलिये पढ़ा है कि इसी आङ् उपसर्ग का नियम रहे अन्य उपसर्ग इस के पूर्व न लगे । आशंसते । आशशंसे । आशंसिता । आशंसिष्ट [ग्रसु, ग्लसु] अदने (खाना) ग्रसते । ग्लसते । जग्रसे । जग्लसे । ग्रसिता । ग्रसिष्यते । ग्रसिषतै । ग्रसिषातै । ग्रसताम् । अग्रसत । ग्रसेत । ग्रसिषीष्ट । अग्रसिष्ट । अग्रसिष्यत [ईह] चेष्टायाम् (क्रिया) ईहते । ईहाञ्चक्रे । ईहाम्बभूव । ईहामास । ईहितासे । ईहिष्यते । ईहिषतै । ईहिषातै । ईहताम् । ऐहत । ईहेत । ईहिषीष्ट । ऐहिष्ट । ऐहिष्यत [वहि, महि] वृद्धौ (बढ़ना) वंहते । मंहते । ववंहे । वंहिता । वंहिष्यते । वंहिषतै । वंहिषातै । वंहताम् । अवंहत । वंहेत । वंहिषीष्ट । अवंहिष्ट । अवंहिष्यत । [अहि] गतौ । अंहते । आनंहे । आनंहाते । अंहिता । अंहिष्यते । अंहि-

षतै । अंहिषातै । अंहताम् । आंहत । अंहेत । अंहिषीष्ट । आंहिष्ट । आंहिष्यत । [गर्ह, गल्ह] कुत्सायाम् (निन्दा) गर्हते । गल्हते । जगर्हे । जगल्हे । [बर्ह, बल्ह] प्राधान्ये (श्रेष्ठता) बर्हते । बबर्हे । बल्हते । बबल्हे । [वर्ह, वल्ह] परिभाषणहिंसाच्छादनेषु (बहुत बोलना, हिंसा और दबाना) वर्हते ।वल्हते । पूर्व दोनों धातुओं और इन दोनों में इतना ही भेद है कि पहिले दोनों पवर्गीय बकार और इन दोनों में यवर्गीय है [प्लिह] गतौ (चलना) प्लेहते । पिप्लिहे । प्लेहिता । प्लेहिष्यते । प्लेहिषतै । प्लेहिषातै । प्लेहताम् । अप्लेहत । प्लेहेत । प्लेहिषीष्ट । अप्लेहिष्ट । अप्लेहिष्यत । [वेहृ, जेहृ, बाहृ] प्रयत्ने (पुरुषार्थ) वेहते । विवेहे । विवेहिढ्वे । विवेहिध्वे ।वेहिता । वेहिष्यते । वेहिषतै । वेहिषातै । वेहताम् । अवेहत । वेहेत । वेहिषीष्ट । वेहिषीढ्वम् । वेहिषीध्वम् । अवेहिष्ट । अवेहिढ्वम् । अवेहिध्वम् । अवेहिष्यत । जेहते । जिजेहे । अजेहिष्ट । बाहते । बबाहे । [द्राहृ] निद्राक्षये (जागना) द्राहते । दद्राहे । दद्राहिढ्वे।दद्राहिध्वे । द्राहितासे । द्राहिषतै । द्राहिषातै । द्राहताम् । अद्राहत । द्राहेत । द्राहिषीष्ट । अद्राहिष्ट। अद्राहिढ्वम् । अद्राहिध्वम् । अद्राहिष्यत । निक्षेप इत्यन्ये । किन्हीं लोगों के मत में यह धातु किसी के निकट धन रखने अर्थ में है । [काशृ] दीप्तौ (प्रकाश होना) काशते । चकाशे । काशितासे । काशिष्यते । काशिषतै । काशिषातै । काशताम् । अकाशत । काशेत । काशिषीष्ट । अकाशिष्ट । अकाशिष्यत । [ऊह] वितर्के (अनेक प्रकार के तर्क उठाना) ऊहते । ऊहाञ्चक्रे । ऊहाम्बभूव । ऊहामास । ऊहिता । ऊहिष्यते । ऊहिषतै । ऊहिषातै । ऊहताम् । औहत । ऊहेत । ऊहिषीष्ट। औहिष्ट । औहिढ्वम् । औहिध्वम् । औहिष्यत । [गाहू] विलोडने (विलोना) यह भी धातु ऊदित् है । गाहते। गाहेते । गाहन्ते । गाहसे । गाहेथे । गाहध्वे । गाहे । गाहावहे । गाहामहे । जगाहे । जगाहाते । जगाहिरे । जगाहिषे । और जिस पक्ष में (१४०) से इट् नहीं होता वहां । जगाहृ—से । इस अवस्था में ॥ २०२ ॥

२०३—हो ढः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३१ ॥

झल् जिस से परे हो वा पदान्त में जो हकार उस को ढकार आदेश हो । यहां गाहू धातु के हकार को ढकार होकर ॥ २०३ ॥

२०४—एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३७ ॥

झलादि स और ध्व परे हों तो वा पदान्त में धातु का अवयव जो झषन्त एकाच् बश्

प्रत्याहार में कोई वर्ण हो उस को भष् आदेश हो। यहां गाह् धातु के (बश्) गकार को (भष्) घकार हो जाता है। बश् प्रत्याहार में (ब, ग, ड, द,) चार वर्ण हैं और भष् प्रत्याहार में भी (भ, घ, ढ, ध,) चार वर्ण हैं इन का यथासंख्य क्रम तो लगता है परन्तु (ड) स्थानी के न होने से ढ आदेश कहीं नहीं आता। अब जघाढ्—से। इस अवस्था में ॥ २०४ ॥

२०५—षढोः कः सि ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४१ ॥

सकारादि प्रत्यय परे हो तो षकार और ढकार को ककार आदेश हो जावे। यहां ढकार होकर। जघाक्+से=जघाक्षे (५६) से षत्व हो जाता है और इसी ककार षकार के संयोग को (क्ष) बोलते हैं। परन्तु यह लिखने और बोलने की परिपाटी यथार्थ नहीं। ठीक तो यही है कि लिखने और बोलने में (क्—ष्) के स्वरूप स्पष्ट विदित हों। जगाहाथे। जगाहिद्वे (१९१) जगाहिध्वे। और जिस पक्ष में (१४०) से इट् का आगम नहीं होता वहां । जघाढ्—ध्वे। इस अवस्था में तवर्ग ध्वे के धकार को ढकार हो जाता है पीछे ॥ २०५ ॥

२०६—ढो ढे लोपः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १३॥

ढकार का लोप हो ढकार परे हो तो। इस से गाह् धातु के ढकार का लोप होकर । जगाढ्वे । जगाहे। जगाहिवहे । जगाह्वहे । जगाहिमहे । जगाह्महे । (लुट्) गाहिता । गाहितारौ। गाहितारः । गाहितासे। अनिट् पक्ष में। गाह्+तास्+डा = गाढा। यहां (१४१) से तास् के तकार को धकार और (२०३) से ढत्व (ष्टुना ष्टुः) से धकार को ढकार और प्रथम ढकार का (२०६) से लोप होता है। गाढारौ। गाढारः। गाढासे। गाढासाथे। गाढाध्वे। गाढाहे। गाढास्वहे। गाढास्महे। गाहिष्यते। गाहिष्येते। गाहिष्यन्ते। अनिट् पक्ष में। गाह्+स्य+ते=घाक्ष्यते।घाक्ष्येते। घाक्ष्यन्ते गाहिषते। गाहिषातै। गाह् +स् + अट् +त=घाक्षतै।घाक्षातै। गाहतै।गाहातै। गाहते। गाहाते।गाहताम्। अगाहत। गाहेत। गाहिषीष्ट। घाक्षीष्ट। गाहिषीढ्वम्। गाहिषीध्वम्। घाक्षीध्वम्। अगाहिष्ट। अगाहिषाताम्। अगाहिषत। अनिट् पक्ष में। अट्+गाह्+सिच्+त=अगाढ। यहां (१४२) से सिच् के सकार का लोप (१४१) से तकार को धकार और पूर्वोक्त रीति से सब काम जानो। अगाह्+सिच्+आताम्= अघाक्षाताम्। अघाक्षत। अगाह्+सिच्+थास्=अगाढाः। अघाक्षाथाम्। अगाहिढ्वम्।

अगाहिध्वम् । अघाढ्वम् । अघाक्षि । अघाक्ष्वहि । अघाक्ष्महि । अगाहिष्यत । अघाक्ष्यत । अघाक्ष्येताम् । अघाक्ष्यन्त [गृहू] ग्रहणे (ग्रहण) गर्हते। जगृहे । जगृहाते । जगृहिरे । यह भी धातु ऊदित् है और गाहू के समान सब काम हकारान्त के होंगे । जगृहिषे । जघृक्षे। जगृहाथे । जगृहिढ्वे । जगृहिध्वे । जघृढ्वे।जगृहे । जगृहिवहे । जगृह्वहे । जगृहिमहे । जगृह्महे । गर्हितासे । गर्ढा । गर्ढारौ । गर्ढारः । गर्ढासे । गर्हिष्यते । घर्क्ष्यते । घर्क्ष्येते घर्क्ष्यन्ते । गर्हिषतै । गर्हिषातै । घर्क्षतै । घर्क्षातै । गर्हतै । गर्हातै । गर्हताम् । अगर्हत । गर्हेत । गर्हिषीष्ट । घृक्षीष्ट (१६३) से कित्वत् हो जाने से गुण नहीं होता । गर्हिषीढ्वम् । गर्हिषीध्वम् । घृक्षीध्वम् । अगर्हिष्ट । अगर्हिषाताम् । अगर्हिषत । अनिट् पक्ष में । अट्—गृह—च्लि—त । इस अवस्था में ॥ २०६ ॥

२०७—शल इगुपधादनिटः क्सः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४५ ॥

इक् जिस की उपधा में हो ऐसा जो शलन्त धातु उस से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में क्स आदेश हो । यह सूत्र (८८) का अपवाद है । क्स में से ककार की इत्संज्ञा हो कर । अट्+गृह्+स+त=अघृक्षत । अट्—गृह्—स—आताम् । इस अवस्था में ॥ २०७ ॥

२०८—क्सस्याचि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७२ ॥

क्स प्रत्यय का लोप हो अजादि प्रत्यय परे हो तो । यहां लोपरूप आदेश अन्त्य अल् के स्थान में होता है । अट्+गृह्+स+आताम्=अघृक्षाताम् । अघृक्षन्त । अघृक्षथाः । अघृक्षाथाम्। अगर्हिढ्वम् । अगर्हिध्वम्। अघृक्षध्वम्। अट्+गृह्+क्स+इट्= अघृक्षि । यहां भी अजादि इट् प्रत्यय के परे क्स के अकार का लोप हो जाता है । अघृक्षावहि । अघृक्षामहि । अगर्हिष्यत । अघर्क्ष्यत । [ग्लह] च । यह धातु भी ग्रहण अर्थ में ही है । ग्लहते । जग्लहे । ग्लहिता । ग्लहिष्यते । ग्लाहिषतै । ग्लाहिषातै । ग्लहताम्। अग्लहत । ग्लहेत । ग्लहिषीष्ट । अग्लहिष्ट । अग्लहिष्यत। [घुषि] कान्तिकरणे (इच्छा करना) घुंषते । जुघुंषे । घुंषिता । घुंषिष्यते । घुंषिषतै । घुंषिषातै । घुंषताम् । अघुंषत । घुंषेत ।घुंषिषीष्ट । अघुंषीष्ट । अघुंषिष्यत । इति घुक्षादय उदात्ता अनुदात्तेत् आत्मनेभाषा द्विपंचाशत् समाप्ताः । ये घुक्ष आदि आत्मनेपदी ५२ (बावन) धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिनः पञ्चनवतिः । अब ९५ (पंचानवे) धातु परस्मैपदी कहते हैं।

[घुषिर्] अविशब्दने। इस शब्द में से तीन प्रकार का अर्थ होता है एक तो विशब्दन (प्रतिज्ञा) उस का निषेध दूसरा अवि (भेड़) का शब्द होना और तीसरा वि (पक्षी) के शब्द का निषेध अर्थात् अन्य प्राणी का शब्द होना। घोषति। जुघोष। घोषितासि। घोषिष्यति। घोषिषति। घोषिषाति। घोषतु। अघोषत्। घोषेत्। घुष्यात्। और इस धातु में इर् भाग की इत्संज्ञा होती है। इस कारण (१३८) से च्लि के स्थान में अङ् विकल्प करके होता है। अघुष्+अङ्+तिप्=अघुषत्। अघुषाताम्। अघुषन्। अघुषः। अघुषतम्। अघुषत। अघुषम्। अघुषाव। अघुषाम॥ सिच् पक्ष में। अघोषीत्। अघोषिष्टाम्। अघोषिषुः। अघोषिष्यत्। अक्षू] व्याप्तौ (व्यापकता)॥ २०८॥

२०९–अक्षोऽन्यतरस्याम्॥ अ०॥ ३। १। ७५॥

कर्तावाची सार्वधातुक परे हो तो अक्षू धातु से श्नु प्रत्यय विकल्प करके होवे। यह सूत्र (१९) का अपवाद है। इस कारण पक्ष में शप् ही होता है। श्नु प्रत्यय के शकार की इत्संज्ञा होके। अक्ष्+नु+तिप्=अक्ष्णोति। यहां नु के उकार को (३१) से गुण होता है अक्ष्णुतः। अक्ष्णुवन्ति। यहां (१५९) से श्नु प्रत्यय को उवङ् आदेश होता है। अक्ष्णोषि। अक्ष्णुथः। अक्ष्णुथ। अक्ष्णोमि। अक्ष्णुवः। अक्ष्णुमः (२००) संयोग पूर्व होने से उकार का लोप विकल्प से नहीं होता। जिस पक्ष में श्नु प्रत्यय नहीं होता वहां शप्। अक्षति। अक्षतः। अक्षन्ति। आनक्ष। आनक्षतुः। आनक्षुः। यह भी धातु ऊदित् है इस कारण इट् का विकल्प होता है। आनक्षिथ। अनिट् पक्ष में। आनक्ष्–थल्। इस अवस्था में॥ २०९॥

२१०–स्कोः संयोगाद्योरन्ते च॥ अ०॥ ८। २। २९॥

पदान्त में वा झल् जिस से परे हो ऐसा जो संयोग उस की आदि के जो स् और क् हैं उन का लोप होवे। यहां संयोग की आदि ककार है और झल् थकार परे है उस (क्) का लोप हो कर थल् के थकार को (ष्टुना ष्टुः) सूत्र से ठकार हो जाता है। आनष्ठ। आनक्षथुः। आनक्ष। आनक्षिव। आनक्ष्व। आनक्षिम। आनक्ष्म। अक्षिता। अक्षितारौ। अनिट् पक्ष में। अक्ष्+तास्+डा=अष्टा। अष्टारौ। अष्टारः। अक्षिष्यति। अक्ष्–स्य–तिप्। यहां (२१०) संयोगादि ककार का लोप मूर्द्धन्य ष् को (२०५) क् और षत्व होकर। अक्ष्यति। अक्ष्यतः। अक्ष्यन्ति। अक्षिषति। अक्षिषाति। अक्षति। अक्षाति। अक्ष्णवति। अक्ष्णवाति। इत्यादि। अक्ष्णोतु। अक्ष्णुतात्। अक्ष्णुताम्। अक्ष्णुवन्तु (१५९) अक्ष्णुहि। यहां संयोगपूर्वक उकार

के होने से हि का लुक् (२०१) से नहीं होता । अक्ष्णुतात् । अक्ष्णुतम् । अक्ष्णुत । अक्ष्णवानि । अक्ष्णवाव । अक्ष्णवाम । यहां आट् के आगम के पित् (११८) होने से श्नु को गुण हो जाता है । अक्षतु । आक्ष्णोत् । आक्ष्णुताम् । अक्ष्णुवन् । आक्ष्णोः । आक्ष्णुतम् । आक्ष्णुत । आक्ष्णवम् । आक्ष्णुव । आक्ष्णुम । आक्षत् । अक्ष्णुयात् । अक्ष्णुयाताम् । अक्ष्णु+यासुट्+जस्=अक्ष्णुयुः । यहां (८१) से इयू आदेश की प्राप्ति न होने से (८३) सूत्र से पररूप एकादेश हो जाता है । अक्ष्णुयाः । अक्ष्णुयाताम् । अक्ष्णुयात । अक्ष्णुयाम् । अक्ष्णुयाव । अक्ष्णुयाम । अक्षेत् । अक्षेताम् । अक्षेयुः । अक्ष्यात् । अक्ष्यास्ताम् । अक्ष्यासुः । माभवानक्षीत् । आक्षिष्टाम् । आक्षिषुः (१३६) से वृद्धि नहीं होती और अनिट् पक्ष में तो वृद्धि (१३५) से हो जाती है । आक्ष्+सिच्+ईट्+तिप्=आक्षीत् । आक्ष्+सिच्+तस्=आष्टाम् । यहां संयोगादि ककार का लोप (२१०) और सिच् के सकार का लोप (१४२) से होता है आक्ष्+सिच्+ईट्+सिप्=आक्षीः । आष्टम् । आष्ट । आक्षम् । आक्ष्व । आक्ष्म । आक्षिष्यत् । आक्ष्यत् । आक्ष्याताम् । आक्ष्यन् [तक्षू, त्वक्षू] तनूकरणे (सूक्ष्म करना)॥२१०॥

२११-तनूकरणे तक्षः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७६ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो तनूकरण अर्थ में वर्त्तमान तक्ष धातु से श्न प्रत्यय विकल्प करके हो । यह सूत्र भी शप् का ही अपवाद है । और यह धातु भी ऊदित् है इसलिये सब लकारों में इस का साधुत्व अक्षू धातु के समान जानना चाहिये । तक्ष्णोति । तक्ष्णुतः । तक्ष्णुवन्ति । तक्षति । ततक्ष । ततक्षतुः । ततक्षुः । ततक्षिथ । ततष्ठ । तक्षिता । तष्टा । तष्टारौ । तष्टारः । तक्षिष्यति । तक्ष्यति । तक्षिषति । तक्षिषाति । तक्षति । तक्षाति । तक्ष्णवति । तक्ष्णवाति । तक्ष्णोतु । तक्षतु । अतक्ष्णोत् । अतक्षत् । तक्ष्णुयात् । तक्षेत् । तक्ष्यात् । अतक्षीत् । अताक्षिष्टाम् । अताक्षिषुः । अताक्षीत् । अताष्टाम् । अताक्षुः । अतक्षिष्यत् । अतक्ष्यत् । त्वक्षू धातु के प्रयोग आर्द्धधातुक विषय में ऊदित् के होने से तक्षू के तुल्य होते हैं और सार्वधातुक में कुछ विशेष नहीं । त्वक्षति । तत्वक्ष । तत्वक्षिथ । तत्वष्ठ । त्वक्षिता । त्वष्टा । त्वक्षिष्यति । त्वक्ष्यति । त्वक्षिषति । त्वक्षिषाति । त्वक्षति । त्वक्षाति । त्वक्षतु । अत्वक्षत् । त्वक्षेत् । त्वक्ष्यात् । अत्वक्षीत् । अत्वाक्षीत् । अत्वाष्टाम् । अत्वाक्षुः । अत्वक्षिष्यत् । अत्वक्ष्यत् [उक्ष] सेचने (सींचना) उक्षति । उक्षाञ्चकार । उक्षाम्बभूव । उक्षामास । उक्षिता । उक्षिष्यति । उक्षिषति । उक्षिषाति । उक्षतु । औक्षत् । उक्षेत् । उक्ष्यात् । औक्षीत् । औक्षिष्यत् । [रक्ष]

पालने । रक्षति । ररक्ष । रक्षिता । रक्षिष्यति । रक्षिषति । रक्षिषाति । रक्षतु । अरक्षत् । रक्षेत् । रक्ष्यात् । अरक्षीत् । अरक्षिष्यत् । [णिक्ष] चुम्बने । (चूंवना) निक्षति । निनिक्ष । [तृक्ष, सृक्ष, णक्ष] गतौ । तृक्षति । ततृक्ष । सृक्षति । ससृक्ष । नक्षति । ननक्ष । [वक्ष] रोषे (रिषाना) वक्षति । ववक्ष । वाक्षिता । वाक्षिष्यति । वक्षिषति । वक्षिषाति । वक्षतु । अवक्षत् । वक्षेत् । वक्ष्यात् । अवक्षीत् । अवाक्षिष्यत् । सङ्घात इत्यन्ये । किन्हीं लोगों के मत में यह धातु संघात अर्थ में है [मृक्ष] सङ्घाते । मृक्षति । ममृक्ष [म्रक्ष] इत्येके । किन्हीं के मत में यह धातु रेफवान् है ऋकारवान् नहीं [तक्ष] त्वचने (ढांपना) तक्षति [पक्ष] परिग्रह इत्येके (हठ करना) किन्हीं का मत है। पक्षति । पपक्ष [सूर्क्ष्य] आदरे (मान्य करना) सूर्क्ष्यति । सुसूर्क्ष्य । [काक्षि, वाक्षि, माक्षि] काङ्क्षायाम् (अभिलाषा) काङ्क्षति । वाङ्क्षति । माङ्क्षति [द्राक्षि, ध्राक्षि, ध्वाक्षि] घोरवासिते च (पाप में वसना) द्राङ्क्षति । दद्राङ्क्ष । ध्राङ्क्षति । दध्राङ्क्ष । ध्वाङ्क्षति । दध्वाङ्क्ष [चूष] पाने (चूषना) चूषति । चुचूष । चूषिता । चूषिष्यति । चूषिषति । चूषिषाति । चूषतु । अचूषत् । चूषेत् । चूष्यात् । अचूषीत् । अचूषिष्यत् [तूष] तुष्टौ (सन्तोष करना) तूषति । तुतूष [पूष] वृद्धौ (बढ़ना) पूषति । पुपूष । [मूष] स्तेये (चोरी) मूषति । मुमूष [लूष, रूष] भूषायाम् । (शोभा) लूषति । रूषति । लुलूष । रुरूष [शूष] प्रसवे (उत्पत्ति) शूषति । शुशूष [यूष] हिंसायाम् । यूषति । युयूष [जूष] च । जूषति । जुजूष [भूष] अलङ्कारे (गहना) भूषति । बुभूष । भूषिता । भूषिष्यति । भूषिषति । भूषिषाति । भूषतु । अभूषत् । भूषेत् । भूष्यात् । अभूषीत् अभूषिष्यत् [ऊष] रुजायाम् (रोग) ऊषति । ऊषाञ्चकार । ऊषाम्बभूव । ऊषामास [ईष] उञ्छे (उंछना) ईषति । ईषाञ्चकार । ईषाम्बभूष । ईषामास [कष, खष, शिष, जष, झष, शष, वष, मष, रुष रिष] हिंसार्थाः । इन सब में शिष धातु अनिट् है । कषति । चकाष । चकषतुः । कषिता । कषिष्यति । काषिषति । काषिषाति । कषतु । अकषत् । कषेत् । कष्यात् । अकाषीत् । अकषीत् । अकषिष्यत् । खषति । चखाष । शेषति । शिशेष । शिशिषतुः । शिशेषिथ यहां (१४८) सूत्र के नियम से इट् हो जाता है नहीं तो प्राप्ति नहीं थी । शेष्टा । शेष्टारौ । शेष्टारः । शेक्ष्यति । शेक्षति । शेक्षाति । शेषति । शेषाति । शेषतु । अशेषत् । शेषेत् । शिष्यात् । अट्+शिष्+क्स+तिप्=अशिक्षत् । अशिक्षताम् । अशिक्षन् । अशिक्षः । अशिक्षतम् । अशिक्षत । अशिक्षम् ।

अशिक्षाव । अशिक्षाम । यहां च्लि के स्थान में क्स आदेश (२०७) से हो जाता है अशिक्ष्यत् । जषति । जजाष । जेषतुः । जेषुः । जषिता । जषिष्यति । जाषिषति । जाषिषाति । जषतु । अजषत् । जषेत् । जष्यात् । अजाषीत् । अजषत् । झषति । जझाष । शषति । शशाष । शेषतुः । वषति । ववाष । ववषतुः (१२८) से एत्वाभ्यासलोप का निषेध होता है । मषति । ममाष । मेषतुः । रोषति । रुरोष । रेषति । रिरेष । ये दोनों धातु सेट् ही हैं परन्तु तकारादि अर्द्धधातुक में विशेष है ॥ २११ ॥

२१२–तीषसहलुभरुषरिषः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४८ ॥

इषु, सह, लुभ, रुष और रिष धातुओं से परे जो तादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम विकल्प कर के हो । इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इसलिये है कि सर्वत्र नित्य इट् प्राप्त है उसका विकल्प विशेष विषय में किया है । रोषिता । रोष्टा । रोष्टारौ । रोष्टारः । रेषिता । रेष्टा । रेषिष्यति । रेषिषति । रेषिषाति । रेषतु । अरेषत् । रेषेत् । रिष्यात् । अरेषीत् । अरेषिष्यत् । [भष] भर्त्सने (धमकाना) भषति । बभाष । [उष] दाहे (जलन) ओषति । ओषतः । ओषन्ति ॥ २१२ ॥

२१३–उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३७ ॥

उष, विद और जागृ धातुओं से आम् प्रत्यय विकल्प करके हो लिट् लकार परे हो तो वेद विषय को छोड़ के । यह बात सर्वत्र के लिये ध्यान में रखनी चाहिये कि जिन २ एध आदि धातुओं से आम् प्रत्यय किया है वहां २ सर्वत्र वेद में आम् प्रत्यय का निषेध है जैसे । एध्+एध्+एश् । इयेधे (१९३) इत्यादि प्रयोगों की योजना वैदिक प्रयोगों में समझ लेनी चाहिये । ओषाञ्चकार । उवोष । ऊषतुः । और वेद में भी । उवोष ही होगा । ओषिता । ओषिष्यति । ओषिषति ओषिषाति । ओषतु । औषत् । ओषेत् । उष्यात् । औषीत् । औषिष्यत् । [जिषु, विषु, मिषु,] सेचने (सींचना) जेषति । जिजेष । विष धातु अनिट् है । वेषति । विवेष । विवेषिथ । विविषिव । विविषिम । वेष्टा । वेक्ष्यति । वेक्षति । वेक्षाति । वेषति । वेषाति । वेषतु । अवेषत् । वेषेत् । विष्यात् । अविष्+क्स+तिप्=अविक्षत् । अविक्षताम् । अविक्षन् । अवेक्ष्यत् । [पुष] पुष्टौ । पुष धातु अनिट् कारिका में दिवादि गण का निर्देश किया है इस कारण यह सेट् है । पोषति । पुपोष । पोषिता । पोषिष्यति । पोषिषति । पोषिषाति । पोषतु । अपोषत । पोषेत् । पुष्यात् । अपोषीत् । अपोषिष्यत् [श्रिषु, श्लिषु, प्रुषु, प्लुषु] दाहे

श्रेषति । श्लेषति । शिश्रेष । शिश्लेष । प्रोषति । पुप्रोष । प्लोषति । पुप्लोष । श्लिष धातु भी अनिट् व्यवस्था में दिवादि गण का ही पढ़ा है [पृषु, वृषु, मृषु] सेचने पर्षति । वर्षति । मर्षति । पपर्ष । पपृषतुः । पपृषुः । पर्षिता । पर्षिष्यति । पर्षिषति । पर्षिषाति । पर्षति । पर्षाति । पर्षतु । अपर्षत् । पर्षत् । पृष्यात् । अपर्षात् । अपर्षिष्यत् [मृषु] सहने च । इतरौ हिंसासंक्लेशनयोश्च । मृषु धातु के सहना और सींचना तथा पृषु, वृषु धातुओं के सींचना, हिंसा और संक्लेशन तीनों अर्थ हैं [घृषु] संघर्षे (घिसना) घर्षति । जघर्ष [हृषु] अलीके (झूठ) हर्षति । जहर्ष [तुस, ह्रस, ह्लस, रस] शब्दे । तोसति । तुतोस । तोसिता । तोसिष्यति । । तोसिषति । तोसिषाति । तोसतु । अतोसत् । तोसेत् । तुस्यात । अतोसीत् । अतोसिष्यत् । ह्रसति । जह्रास । ह्लसति । जह्लास । रसति । ररास । रेसतुः । रेसुः । रासिता । रसिष्यति । रासिषति । रासिषाति । रसतु । अरसत् । रसेत् । रस्यात् । अरसीत् । अरासीत् । अरसिष्यत् [लस] श्लेषणक्रीडनयोः (मिलना और खेलना) लसति । ललास । लेसतुः [घस्लृ] अदने (खाना) घसति । जघास । जघस्–अतुस् । इस अवस्था में ॥ २१३ ॥

२१४–गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ॥अ०॥६।४।९८॥

गम, हन, जन, खन और घस धातुओं के उपधा अकार का लोप हो अङ्भिन्न अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो । यहां घकारस्थ अकार का लोप होकर (खरि च) सूत्र से घ् को (क्) करते समय (अचः परस्मिन् पूर्वविधौ) सूत्र से अकार को स्थानिवत् होने से चर् आदेश न हो सके सो (न पदान्त०) सूत्र से चर्विधि में स्थानिवत् का निषेध होकर चर् होता है । पीछे षत्व होकर । जक्षतुः । जक्षुः । जघस्–थल् । इस अवस्था में ॥ २१४ ॥

२१५–उपदेशेऽत्वतः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६२ ॥

तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट् उपदेश में जो अकारवान् धातु है उस से परे जो थल् उस को इट् का आगम न हो । (१४८) सूत्र के नियम में लिट् मात्र में इट् प्राप्त है उस का विशेष विषय में यह अपवाद है । जघस्थ । और भारद्वाज के मत में ऋकारान्तों को तास्वत्कार्य्य के नियम (१४९) से उपदेश में अकारवान् और अजन्तों को इडागम हो जाता है । जघसिथ । जक्षथुः । जक्ष । जघास । जघस । जक्षिव । जक्षिम । घस्ता । घस्तारौ । घस्तारः । घस्–स्य–तिप् । इस अवस्था में ॥ २१५ ॥

२१६—सः स्यार्द्धधातुके ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४९ ॥

सकारादि आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो सकार को तकार आदेश हो। यहां घस् के सकार को तकार होकर। घत्स्यति। घत्स्यतः। घत्स्यन्ति। घत्स्यसि। घात्सति। घात्साति। घत्सति। घत्साति। घसति। घसाति। घसतु। अघसत्। घसेत्। घस्यात्। ॥ २१६ ॥

२१७—पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु ॥ अ०॥ ३।१। ५५ ॥

* दिवादि गण के पुष आदि, द्युतादि और लृ जिन का इत् गया हो उन धातुओं से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश हो परस्मैपद विषय में कर्त्ता विषय-में लुङ् लकार परे हो तो। यहां लृदित् घस् धातु से अङ् हो कर। अट्+घस्+अङ्+तिप्= अघसत्। अघसताम्। अघसन्। अघसः। अघसतम्। अघसत। अघसम्। अघसाव। अघसाम। अघत्स्यत्। अघत्स्यताम्। अघत्स्यन् [जर्ज, चर्च, झर्झ,] परिभाषणहिंसातर्जनेषु (अधिक बोलना, हिंसा और धमकाना) जर्जति। जजर्ज। जर्जिता। जर्जिष्यति। जार्जिषति। जर्जिषाति। जर्जतु। अजर्जत्। जर्जेत्। जर्ज्यात्। अजर्जीत्। अजार्जिष्यत्। चर्चति। झर्झति। जझर्झ [पिसृ, पेसृ] गतौ। पेसति। पिपेस। पिपिसतुः। पिपेसतुः। पेसिता। पेसिष्यति। पेसिषति। पेसिषाति। पेसतु। अपेसत्। पेसेत्। पिस्यात्। अपेसीत्। अपेसिष्यत् [हसे] हसने (हँसना) इस धातु का एकार इत् जाता है। हसति। जहास। जहसतुः। हसिता। हसिष्यति। हासिषति। हासिषाति। हसतु। अहसत्। हसेत् हस्यात्। अहसीत् (१६२) अहसिष्यत् [णिश] समाधौ (समाहित होना) नेशति। निनेश। नेशिता। नेशिष्यति। नेशिषति। नेशिषाति। नेशतु। अनेशत्। नेशेत्। निश्यात्। अनेशीत्। अनेशिष्यत् [मिश, मश] शब्दे रोषकृते च (शब्द और रिष करना) मेशति। मशति। ममाश। मेशतुः। मशिता। मशिष्यति। माशिषति। माशिषाति। मशतु। अमशत्। मशेत्। मश्यात्। अमाशीत्। अमशीत्। अमशिष्यत् [शव] गतौ। शवति। शशाव। शेवतुः। अशावीत्। अशवीत्। अशविष्यत् [शश] प्लुतगतौ (कूद२ कर चलना) शशति। शशाश। शेशतुः। अशाशीत्। अशशीत् [शसु) हिंसायाम्। शसति। शशास। शशसतुः।

* इस सूत्र में इस भ्वादि गण के पुषादि धातुओं का ग्रहण इसकारण नहीं होता कि पुषादि के अन्तर्गत द्युतादि धातु भी आ जाते फिर भ्वादिग्रहण ज्ञापक से दिवादिगण के पुषादिकों का ग्रहण होता है ॥

(१२८) एत्वाभ्यास लोप का प्रतिषेध हो जाता है । शशसुः । शशासिथ । अशासी-त् । अशसीत् [शंसु] स्तुतौ (गुणों का वर्णन) शंसति । शशंस । अशंसीत् [चह] परिकल्कने (सर्वथा मूर्खपन) चहति । चचाह । चेहतुः । चेहुः । चाहिता । चहिष्यति । चाहिषति । चाहिषाति । चहतु । अचहत् चहेत् चह्यात् । अचहीत् (१६२) अचहि-ष्यत् । [मह] पूजायाम् (सत्कार) महति । ममाह । मेहतुः । अमहीत् [रह] त्यागे (छोड़ना) रहति । रराह । रेहतुः । रहिता । रहिष्यति । राहिषति । राहिषाति । रह-तु । अरहत् । रहेत् । रह्यात् । अरहीत् (१६२) अरहिष्यत् [रहि] गतौ । रंहति । ररं-ह । रंह्यात् [दृह, दृहि, बृह, बृहि] वृद्धौ । दर्हति । दृंहति । बर्हति । बृंहति । ददर्ह । दद्दहतुः । दर्हिता । दर्हिष्यति । दर्हिषति । दर्हिषाति । दर्हतु । अदर्हत् । दर्हेत् । दृह्यात् । अदर्हीत् । अदर्हिष्यत् [बृहि] शब्दे च । बृंहति [बृहिर्] इत्येके । बर्हति । बबर्ह । अबृहत् (१३८) अबर्हीत् [तुहिर्, दुहिर्, उहिर्] अर्दने (गति और मांगना) तो-हति । तुतोह । तुतुहतुः । तोहिता । तोहिष्यति । तोहिषति । तोहिषाति । तोहतु । अ-तोहत् । तोहेत् । तुहयात् । अतुहत् । अतोहीत् । अतोहिष्यत् । दोहति । दुदोह । अदुहत् । अदोहीत् । अनिट्व्य वस्था में जो दुह धातु पढ़ा है वह दिह धातु के सा-हचर्य से अदादि का समझना चाहिये । ओहति । उवोह । ऊहतुः । ओहिता । मा भवा-नुहत् । औहीत् । औहिष्यत् [अर्ह] पूजायाम् (सत्कार) अर्हति । आनर्ह । आन-र्हतुः । आनर्हुः । अर्हिता । अर्हिष्यति । अर्हिषति । अर्हिषाति । अर्हतु । आर्हत् । अ-र्हेत् । अर्ह्यात् । आर्हीत् । आर्हिष्यत् । इति घुषिरादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः समाप्ताः । ये घुषिर् आदि ९५ धातु समाप्त हुए ॥

अथ कृपूपर्यन्ताः षड्विंशत्यात्मनेपादिनः । अब २६ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [द्युत] दीप्तौ (प्रकाश होना) द्योतते । द्युत्—द्युत्-एश् । इस अवस्था में ॥ २१७ ॥

२१८—द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम् ॥ अ० ॥ ७ । ४।६७ ॥

द्युति और स्वापि धातु के अभ्यास को संप्रसारण हो । इस सूत्र में णिच् प्रत्य-यान्त स्वापि धातु का ग्रहण है । सो णिजन्तप्रक्रिया में आवेगा । द्यु—द्युत्—एश् । य-हां प्रथम द्यु के यकार के स्थान में (इ) संप्रसारण होकर । द्—इ—उ—द्युत्—ए-श् ॥ २१८ ॥

२१९-संप्रसारणाच्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १०८ ॥

संप्रसारण से अच् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होवे । यहां

(इ) संप्रसारण से परे उकार को पूर्वरूप होकर । दि+द्युत्+एश् = दिद्युते । दिद्युताते । दिद्युतिरे । द्योतितासे । द्योतिष्यते। द्योतिषतै । द्योतिषातै । द्योतताम्। अद्योतत । द्योतेत । द्योतिषीष्ट ॥ २१९ ॥

२२०—द्युद्भ्यो लुङि ॥ अ० ॥ १ । ३ । ९१ ॥

द्युत आदि धातुओं से परे जो लुङ् लकार उस के स्थान में परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों । ये द्युत आदि धातु सामान्य करके आत्मनेपदी हैं लुङ् में परस्मैपद किसी से प्राप्त नहीं इस कारण इस सूत्र में अप्राप्त विभाषा है । फिर परस्मैपदविषय में अङ् होकर । अद्युतत् । अद्युतताम् । अद्युतन् । अद्युतः । अद्युततम् । अद्युतत । अद्युतम् । अद्युताव । अद्युताम । आत्मनेपद पक्ष में । अद्योतिष्ट । अद्योतिषाताम् । अद्योतिषत । अद्योतिष्यत । यहां से लेकर कृपू धातु पर्य्यन्त सब धातुओं में (२२०) (२१७) ये दोनों सूत्र लुङ लकार में लगा करेंगे [ष्विता] वर्णे (श्वेतवर्ण) इस धातु का आकार इत् संज्ञक होता है उस का फल कृदन्त में आवेगा । श्वेतते । शिश्विते । श्वेतितासे । श्वेतिष्यते । श्वेतिषतै। श्वेतिषातै । श्वेतताम् । अश्वेतत । श्वेतेत । श्वेतिषीष्ट । अश्वितत् । अश्वेतिष्ट । अश्वेतिष्यत । [ञिमिदा] * स्नेहने (प्रीति) यहां (१५०) सूत्र से ञि की इत्संज्ञा और आकार भी इस धातु का इत् जाता है । मेदते । मिमिदे । मिमिदाते । मिमिदिरे । मेदिता । मेदिष्यते । मेदिषतै । मेदिषातै । मेदताम् । अमेदत । मेदेत । मेदिषीष्ट । अमिदत् । अमेदिष्ट । अमेदिष्यत [ञिष्विदा] स्नेहनमोचनयोः (प्रीति और छोड़ देना) यहां भी पूर्ववत् ञि और आ इत् जाते हैं । स्वेदते । सिष्विदे । अस्विदत् । अस्वेदिष्ट । अस्वेदिष्यत [ञिक्ष्विदा] इत्येके । क्ष्वेदते । चिक्ष्विदे । अक्ष्विदत् । अक्ष्वेदिष्ट । [रुच] दीप्तावभिप्रीतौ च (प्रकाश और अत्यन्त प्रीति) रोचते । रुरुचे । रुरुचाते । रुरुचिरे । रोचितासे । रोचिष्यते । रोचिषतै । रोचिषातै । रोचताम् । अरोचत । रोचेत । रोचिषीष्ट । अरुचत् । अरोचिष्ट । अरोचिष्यत [घुट] परिवर्त्तने (सब ओर से वर्तना) घोटते । जुघुटे । घोटितासे । घो-

---

* इस धातु पर जो भट्टोजिदीक्षित ने (मिदेर्गुणः) सूत्र लगाया [illegible] सो अन्यथा व्यर्थ है क्योंकि यह सूत्र दिवादि गण के मिद धातु से श्यन् प्रत्यय के अपित् होने से (५१) गुण प्राप्त नहीं होता वहां लगता है । और काशिकाकार ने भी दिवादि गण के ही उदाहरण इस सूत्र पर दिये हैं । और लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन(एश्) में शित्करण सर्वदेशार्थ है गुण होने के लिये नहीं और यह बात कभी नहीं हो सकती कि जो अन्त में शित् हो उस को शित्कार्य न हो क्योंकि आगमप्रत्ययादि को सार्वधातुक संज्ञा होती है । इस कारण एश् में भी गुण की प्राप्ति नहीं हो सकती फिर यह सूत्र इस धातु पर लिखना अत्यन्त विरुद्ध है ॥

टिष्यते । घोटिषतै । घोटिषातै । घोटताम् । अघोटत । घोटेत । घोटिषीष्ट । अघुटत् । अघोटिष्ट । अघोटिष्यत [रुट,लुट, लुठ,उठ] उपघाते (मारना) रोटते । रुरुटे । लोटते । लुलुटे । लोठते । लुलुठे । ओठते । ऊठे । ऊठाते । ऊठिरे । अरुटत् । अरोटिष्ट । अलुटत् । अलोटिष्ट । अलुठत् । अलोठिष्ट । औठत् । औठिष्ट । [शुभ] दीप्तौ । शोभते । शुशुभे । शोभितासे । शोभिष्यते । शोभिषतै । शोभिषातै । शोभताम् । अशोभत । शोभेत । शोभिषीष्ट । अशुभत् । अशोभिष्ट । अशोभिष्यत । [क्षुभ] संचलने (चलायमान होना) क्षोभते । चुक्षुभे । अक्षुभत् । अक्षोभिष्ट । [णभ, तुभ] हिंसायाम् । नभते । नेभे । नेभाते । नेभिरे । नभितासे । नभिष्यते । नाभिषतै । नाभिषातै । नभताम् । अनभत । नभेत । नभिषीष्ट । अनभत् । अनभिष्ट । अनभिष्यत । अतुभत् । अतोभिष्ट [स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु] अवस्रंसने (गिरना) [ध्वंसु] गतौ च । स्रंसते । सस्रंसे । ध्वंसते । दध्वंसे । भ्रंसते । बभ्रंसे । लुङ् लकार में अङ् प्रत्यय के परे (१३९) सूत्र से नकार के अनुस्वार का लोप होकर । अस्रसत् । अस्रंसिष्ट । अध्वसत् । अध्वंसिष्ट । अभ्रसत् । अभ्रंसिष्ट [भ्रशु,भ्रंशु] अधःपतने (नीचे गिरना) भ्रशते । भ्रंशते । बभ्रशे । बभ्रंशे । भ्रशिताशे । भ्रशिष्यते भ्राशिषतै । भ्राशिषातै । भ्रशताम् । अभ्रशत । भ्रशेत ! भ्रशिषीष्ट । अभ्रशत् २ । अभ्रशिष्ट । अभ्रंशिष्ट । अभ्रशिष्यत [स्रंभु] विश्वासे । स्रम्भते । सस्रम्भे । अस्रभत् । अस्रम्भिष्ट । [वृतु] वर्त्तने (वर्त्तना) वर्त्तते । वर्त्तेते । वर्त्तन्ते । वर्त्तसे । वर्त्तेथे । वर्त्तध्वे । वर्त्ते । वर्त्तावहे । वर्त्तामहे । ववृते । ववृताते । ववृतिरे । ववृतिषे । ववृताथे । ववृतिध्वे । ववृते । ववृतिवहे । ववृतिमहे । वर्त्तितासे ॥ २२० ॥

२२१-वृद्भ्यः स्यसनोः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ९२ ॥

वृतु आदि पांच धातुओं से परे स्य और सन् प्रत्यय के विषय में परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों । यहां लृट् लकार में परस्मैपद तिप् आदि होकर । वृत्—स्य —तिप् । इस अवस्था में इट् का आगम प्राप्त है इसलिये ॥ २२१ ॥

२२२–न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५९ ॥

वृतु आदि चार धातुओं से परे जो सकारादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम न हो परस्मैपद विषय में । फिर (५१) से गुण हो कर । वर्त्स्यति । वर्त्स्यतः । वर्त्स्यन्ति । जिस पक्ष में परस्मैपद प्रत्यय नहीं होते वहां । वर्त्तिष्यते । वर्तिष्येते । वर्तिष्यन्ते । वर्तिषतै । वर्तिषातै । वर्त्तताम् । वर्त्तेताम् । वर्त्तन्ताम् । अवर्त्तत । वर्त्तेत ।

वर्तिषीष्ट । अवृतत् । अवर्तिष्ट । अवर्त्स्यत् । अवर्तिष्यत [वृधु] वृद्धौ (बढ़ना) [शृधु] शब्दकुत्सायाम् (निन्दित शब्द होना) इन दोनों धातुओं में वृतु के समान साधुत्व जानो । वर्धते । वर्धेते । वर्धन्ते । ववृधे । वर्धितासे । वर्त्स्यति । यहां दन्त्योष्ठ वकार के होने से भकार (२०४) नहीं होता । वर्धिष्यते । वर्धिषतै । वर्धिषातै । वर्धताम् । अवर्धत । वर्धेत । वर्धिषीष्ट । अवृधत् । अवर्धिष्ट । अवर्त्स्यत् । अवार्धिष्यत । शर्धते । शशृधे । शर्त्स्यति । शार्धिष्यते । अशृधत् । अशर्धिष्ट । अशर्त्स्यत् । अशार्धिष्यत [स्यन्दू] प्रस्रवणे (झरना) यह धातु ऊदित् है इस कारण वलादि आर्द्धधातुक विषय में इट् का आगम विकल्प से (१४०) होता है। स्यन्दते। स्यन्देते । स्यन्दन्ते । सस्यन्दे । सस्यन्दाते । सस्यन्दिरे । सस्यान्दिषे । सस्यन्त्से । सस्यन्दाथे । सस्यन्दिध्वे । सस्यन्ध्वे । यहां (झरो झरि सवर्णे) इस सूत्र से न् से परे दकार का लोप विकल्प करके होता है। सस्यन्दे । सस्यन्दिवहे । सस्यान्दिमहे । सस्यन्द्वहे । सस्यन्न्महे । यहां दकार को अनुनासिक (यरोऽनुनासिके०) सूत्र से विकल्प करके होता है । स्यन्दिता । स्यन्दितारौ । स्यन्दितारः । स्यन्दितासे । स्यन्ता । यहां भी (झरो झरि०) सूत्र से दकार लोप होता है और लृट् में स्य प्रत्यय के परे परस्मैपद (२२१) हो के (१४०) सूत्र अन्तरङ्ग भी है तो भी उसके विकल्प को बाध के (२२२) सूत्र में चतुर्ग्रहण सामर्थ्य से परस्मैपद विषय में निषेध ही होता है। स्यन्त्स्याति । स्यन्दिष्यते । स्यन्त्स्यते । स्यन्दिषतै । स्यन्दिषातै । स्यन्त्सतै । स्यन्त्सातै । स्यन्दताम् । अस्यन्दत । स्यन्देत । स्यन्दिषीष्ट । स्यन्त्सीष्ट । अट्+स्यन्द्+अङ्+तिप् (२२०) (२१७) (१३९)=अस्यदत् । अस्यदताम् । अस्यदन् । आत्मनेपद विषय में । अस्यन्दिष्ट । अस्यन्दिषाताम् । अनिट्पक्ष में । अस्यन्त । अस्यन्त्साताम् । अस्यन्त्सत । अस्यन्थाः । अस्यन्त्साथाम् । अस्यन्ध्वम् । अस्यान्त्सि । अस्यन्त्स्वहि । अस्यन्त्स्महि । अस्यन्त्स्यत् । अस्यन्दिष्यत । अस्यन्त्स्यत [कृपू] सामर्थ्ये (समर्थ होना) ॥ २२२ ॥

२२३—कृपो रो लः ॥ अ० ॥ ८ । २ । १८ ॥

कृप धातु के गुण हुए और ऋकारविशिष्ट जो रेफ है उन दोनों को लकार आदेश होता है । यहां ऋकार में जितना अंश रेफ का है उस को ल होकर क्लृप् धातु होता है । फिर गुण (५१) होकर । कल्पते । कल्पेते । कल्पन्ते । चक्लृपे । चक्लृपाते । चक्लृपिरे । यह भी धातु ऊदित् है इस कारण इडागम भी विकल्प करके होता है । चक्लृपिषे । चक्लृप्से । चक्लृपिध्वे । चक्लृब्ध्वे । चक्लृपिवहे । चक्लृप्वहे ।

चक्लृपिमहे । चक्लृम्महे । चक्लृब्महे ॥ २२३ ॥

२२४–लुटि च क्लृपः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ९३ ॥

लुट् लकार, स्य और सन् प्रत्यय परे हों तो क्लृप् धातु से परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प कर के होवें । यहां परस्मैपद पक्ष में ॥ २२४ ॥

२२५—तासि च क्लृपः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७२ ॥

क्लृप् धातु से परे जो तास् और सकारादि आर्द्धधातुक प्रत्यय उन को इट् का आगम न होवे परस्मैपद विषय में । कल्प्ता । कल्प्तारौ । कल्प्तारः । कल्प्तासि । कल्पितासे । कल्प्तासे । कल्प्स्यति । कल्पिष्यते । कल्प्स्यते । काल्पिषतै । काल्पिषातै । कल्प्सतै । कल्प्सातै । कल्पताम् । अकल्पत । कल्पेत । काल्पिषीष्ट । कल्प्सीष्ट । अक्लृपत् । अकल्पिष्ट । अक्लृप्त (१४२) सकार का लोप होता है । अकल्प्स्यत् । अकल्पिष्यत । अकल्प्स्यत (वृत्) सम्पूर्णो द्युतादिर्वृतादिश्च । ये द्युत आदि और वृतु आदि धातु समाप्त हुए ॥

अथ त्वरत्यन्ता आत्मनेपदिनः । अब त्वर धातु पर्यन्त १६ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [घट] चेष्टायाम् । घटते । जघटे । जघटाते । घाटितासे । घटिष्यते । घाटिषतै । घाटिषातै । घटताम् । अघटत । घटेत । घाटिषीष्ट । अघटिष्ट । अघटिष्यत [व्यथ] भयसञ्चलनयोः (डरना और चंचल होना) व्यथते । व्यथेते । व्यथन्ते ॥ २२५ ॥

२२६—व्यथो लिटि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६८ ॥

व्यथ धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण हो लिट् लकार परे हो तो । व्यथ् के (य्) को इ सम्प्रसारण होके (२१९) से पूर्वरूप एकादेश होता है । व्यथ्+व्यथ्+एश्= विव्यथे । विव्यथाते विव्यथिरे । व्यथितासे । व्यथिष्यते । व्याथिषतै । व्याथिषातै । व्यथताम् । अव्यथत । व्यथेत । व्यथिषीष्ट । अव्याथिष्ट । अव्याथिष्यत । [प्रथ] प्रख्याने (प्रसिद्धि) प्रथते । पप्रथे । अप्राथिष्ट [प्रस] विस्तारे । प्रसते । पप्रसे [म्रद] मर्दने (मलना) म्रदते । मम्रदे [स्खद] स्खदने (दौड़ना) स्खदते । चस्खदे [क्षजि] गतिदानयोः (गति और देना) क्षञ्जते । चक्षञ्जे । [दक्ष] गतिहिंसनयोः (गति और मारना) दक्षते । ददक्षे । दाक्षितासे । दक्षिष्यते । दाक्षिषतै । दाक्षिषातै । दक्षताम् । अदक्षत । दक्षेत । दाक्षिषीष्ट । अदक्षिष्ट । अदाक्षिष्यत [क्रप] कृपायां गतौ च । क्रपते । क्रपेते । क्रपन्ते । चक्रपे । [कदि, क्रदि, क्लदि] वैक्लव्ये वैकल्य इत्यन्ये

(विविध प्रकार की गति और संख्या) ये तीनों धातु तवर्गान्तोंमें परस्मैपदी आह्वान और रोदन अर्थ में लिख चुके हैं फिर इन का यहां लिखना मित्संज्ञा, अर्थभेद, और आत्मनेपद आदि के लिये है और इस प्रकरण (घट धातु से लेके फण, गतौ पर्यन्त) में बहुत ऐसे धातु लिखे हैं जिन में से किन्हीं को पूर्व लिख चुके कोई आगे के गणों में आवेंगे और बहुतेरे ऐसे भी हैं जो कहीं नहीं आवेंगे । मित् संज्ञा का गणसूत्र इसी प्रकरण में आगे लिखा है । कन्दते । क्रन्दते । क्लन्दते । चकन्दे । चक्रन्दे । चक्लन्दे । कन्दितासे । कन्दिष्यते । कन्दिषतै । कन्दिषातै । कन्दताम् । अकन्दत । कन्देत । कन्दिषीष्ट । अकन्दिष्ट । अकन्दिष्यत [कद, क्रद, क्लद] इत्यन्ये । कदते । क्रदते । क्लदते । चकदे । चक्रदे । चक्लदे । कदितासे । कदिष्यते । कादिषतै । कादिषातै । कदताम् । अकदत । कदेत । कादिषीष्ट । अकादिष्ट । अकादिष्यत । [ञित्वरा] सम्भ्रमे (सम्यक् भ्रान्ति) त्वरते । तत्वरे । त्वरिता । त्वरिष्यते । त्वारिषतै । त्वारिषातै । त्वरताम् । अत्वरत । त्वरेत । त्वरिषीष्ट । अत्वरिष्ट । अत्वरिष्यत । इति घटादयः षित उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः षोडश समाप्ताः । ये घट आदि १६ धातु षित्संज्ञक समाप्त हुए षित् का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा ॥

अथ फणान्ताः परस्मैपदिनः । अब फण धातु पर्यन्त परस्मैपदी कहते हैं [ज्वर] रोगे । ज्वरति । जज्वार [गड] सेचने (सींचना) गडति । जगाड । जगडतुः । गडितासि । गाडिष्यति । गाडिषति । गाडिषाति । गडतु । अगडत् । गडेत् । गड्यात् । अगाडीत् । अगडीत् । अगाडिष्यत् । [हेड] वेष्टने (लपेटना) हेडति । जिहेड । यह धातु अनादर अर्थ में आत्मनेपदविषय में आ चुका है इस धातु की अनादर अर्थ में मित् संज्ञा नहीं होगी वहां । हेडयति । और मित्संज्ञा में ह्रस्व होकर । हिडयति [वट, भट] परिभाषणे । वटति। ववाट । ववटतुः । वटितासि । वटिष्यति। वाटिषति। वाटिषाति। वटतु । अवटत् । वटेत् । वट्यात् । अवटीत् । अवाटीत् । अवटिष्यत् । भटति । बभाट [णट] नृतौ (नाचना) नटति । ननाट । यह धातु इसी अर्थ में परस्मैपदी आ चुका है फिर यहां पढ़ने से यही प्रयोजन है कि नृत्य में भी दो भेद हैं एक नाटक दूसरा नाचना । सो यहां नाचने अर्थ में मित्संज्ञा होती है [ष्टक] प्रतिघाते (मारना) स्तकति । तस्ताक [चक] तृप्तौ । चकति । चचाक । चेकतुः । चेकुः । अचाकीत् । अचकीत् [कखे] हसने । कखति । अकखीत् (१६२) [रगे] शङ्कायाम् । रगति । रराग । रेगतुः । रेगुः । रगिता । रगिष्यति । रागिषति । रागिषाति । रगतु । अरगत् । रगेत् । रग्यात् ।

अरगीत्। अरगिष्यत्। [लगे] सङ्गे (मिलना) लगति। अलगीत्। [ह्रगे, ह्लगे, षगे, ष्टगे] सम्बरणे (ढांकना) ह्रगति। ह्लगति। सगति। स्तगति। अह्रगीत्। अह्लगीत्। असगीत्। अस्तगीत् [कगे] नोच्यते। कग धातु की विशेष अर्थ में मित्संज्ञा नहीं कहते क्योंकि यह धातु सामान्यार्थवाची है। कगति। चकाग। अकगीत्। [अक, अग] कुटिलायां गतौ (टेढ़ा चलना) अकति। अगति [कण, रण] गतौ। कणति। चकाण। रणति। रराण। रेणतु। अकाणीत्। अकणीत्। अराणीत्। अरणीत् [चण, शण, श्रण] दाने च [शण] गतावित्यन्ये। किन्हीं के मत में शण धातु केवल गत्यर्थ ही है दानार्थ नहीं। चण और श्रण धातुओं के दान और गति दोनों अर्थ हैं [श्रथ, श्लथ, क्नथ, क्लथ] हिंसार्थाः। श्रथति। श्लथति। क्नथति। क्लथति [चन] च। चकार से हिंसा अर्थ का सम्बन्ध होता है। चनति। चचान। चेनतु। चनिता। चनिष्यति। चानिषति। चानिषाति। चनतु। अचनत्। चनेत्। चन्यात्। अचानीत्। अचनीत्। अचनिष्यत् [वनु] च नोच्यते। एक वनु धातु तनादि गण में भी पढ़ा है। परन्तु उस का पाठ यहां मित्संज्ञा के लिये नहीं इसी कारण इस के अपूर्व होने से इस का विशेष अर्थ यहां मित्संज्ञा प्रकरणमें नहीं कहते और तनादि गण का वनु धातु इसी प्रकरण में आगे पढ़ा है। वनति। ववान। अवानीत्। अवनीत् [ज्वल] दीप्तौ। ज्वलति। जज्वाल। जज्वलतुः। जज्वलुः। अज्वालीत् (१०६)। अज्वलिष्यत् [ह्वल, ह्मल] सञ्चलने। ह्वलति। ह्मलति। जह्वाल। जह्माल। अह्वालीत्। अह्वलीत्। अह्मालीत् [स्मृ] आध्याने (प्राप्ति की इच्छापूर्वक स्मरण करना) यह धातु इसी गण में आगे चिन्ता अर्थ में लिखा है। इस के प्रयोग भी वहीं लिखे हैं। यहां आध्यान अर्थ में मित्संज्ञा होती है [दॄ] भये (डर) [नॄ] नये (नम्रता) ये दोनों धातु क्र्यादि गण में आवेंगे [श्रा] पाके (पकाना) यह अदादि गण का है। मारणतोषणनिशामनेषु [ज्ञा] (मारना, सन्तोष और प्रत्यक्ष ज्ञान) इन अर्थों में ज्ञा धातु की मित्संज्ञा है अन्यत्र नहीं। और यह धातु भी क्र्यादि गण का है [चलिः] कम्पने (कांपना) यह धातु पीछे आ चुका है [छदिः] ऊर्जने (बल, वा प्राणपोषण) यह चुरादि गण में आवेगा। जिह्वोन्मथने [लडिः] (जीभ चलाना) यह भी चुरादि का है [मदी] हर्षग्लेपनयोः (आनन्द और दीनता) यह दिवादि गण का है [ध्वन] शब्दे। यह इसी गण में आगे लिखा है [दलि, वलि, स्खलि, रणि, ध्वनि, त्रपि, क्षपयश्च] इन में ध्वन और रण दोनों धातु आ चुके। और दल धातु विशरण, वल

सम्चरण, स्खल संचलन और त्रपूष् लज्ज अर्थ में आ चुके हैं । और दो धातु आगे इसी गण म आवेंगे उसका गन्त लपि निर्देश किया है [स्वन] अवतंसने । यह धातु शब्द अर्थ म आगे लिखा है ॥ घटादयो मितः ॥ घट चेष्टायां धातु से लेकर जितने धातु लिख चुके हैं उन सब की मित्संज्ञा होवे इस मित्संज्ञा का प्रयोजन णिजन्त तथा कर्मकर्तृ प्रक्रिया और णमुल् प्रत्यय में आवेगा ।[जनी, जृष्, क्नसु, रञ्जोऽमन्ताश्च] जनी, जृष्, और रंज ये तीनों दिवादि गण क हैं । और क्नसु धातु यहां नवीन सामान्यार्थवाची पढ़ा है । अम् जिस के अन्त में हो ऐसे श्रम्, जम्, गम्, रम्, नम् आदि सब गणों के धातु मित्संज्ञक होते हैं । क्नसति । चक्नास । क्नसिता । क्नसिष्यति । क्नासिषति । क्नासिषाति । क्नसतु । अक्नसत् । क्नसेत् । क्नस्यात् । अक्नासीत् । अक्नसीत् । अक्नासिष्यत् [ज्वल, ह्वल, ह्मल, नमामनुपसर्गाद्वा] इन में ज्वल, ह्वल, और ह्मल, धातु तो इसी मित्संज्ञा प्रकरण में लिख चुक हैं आर नम धातु अमन्त है इन सब की नित्य मित्संज्ञा प्राप्त है । उस का विकल्प होने से प्राप्तविभाषा है, परन्तु ये धातु उपसर्ग से परे न हों इतना विशेष है [ग्ला, स्ना, वनु, वमाञ्च] अनुपसर्गपूर्वक ग्लै, स्ना, वनु और वम धातु की मित्संज्ञा विकल्प करके होवे, इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्त विभाषा यों है कि ग्ला, वनु और स्ना धातु की मित्संज्ञा प्राप्त नहीं और वम धातु की अमन्त होने से प्राप्त है उन दोनों का विकल्प किया है [न कम्यमिचमाम्] कम्, अम्, और चम्, धातुओं की मित्संज्ञा अमन्त होने से नित्य प्राप्त है सो न होवे [शमो दर्शने] शम धातु की दर्शन अर्थ में मित्संज्ञा न होवे । निशामयति [यमोऽपरिवेषणे] यम धातु की अपरिवेषण अर्थात् भोजन से अन्य अर्थ में मित्संज्ञा न होवे [स्खदिरवपरिभ्याञ्च] अव और परि उपसर्गों से परे जो स्खद धातु उस की मित्संज्ञा न होवे [फण] गतौ । फणति । पफाण ॥ २२६ ॥

२२७–फणां च सप्तानाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२५ ॥

फण, राजृ, भ्राजृ, भ्राशृ, भ्लाशृ, स्यमु और स्वन इन सात धातुओं के अवर्ण को एकारादेश और अभ्यास का लोप विकल्प करके हो कित्संज्ञक लिट् और सेट् थल् परे हों तो । इन धातुओं को एत्वाभ्यासलोप किसी सूत्र से प्राप्त नहीं इसलिये यह अप्राप्त विभाषा है । फेणतुः । फेणुः । पफणतुः । पफणुः । फेणिथ । पफणिथ । फणिता । फणिष्यति । फाणिषति । फाणिषाति । फणतु । अफणत् । फणेत् । फण्यात् ।

अफणीत्। अफाणीत्। अफणिष्यत् (वृत्) घटादयः समाप्ताः। ये घट आदि मित्-संज्ञक धातु समाप्त हुए ॥

[राजृ] दीप्तौ। उदात्तः स्वरितेत्। यह धातु स्वरितेत् है अर्थात् क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद (१०३) होता और अन्यत्र परस्मैपद, इस प्रकार उभयपद के प्रयोग जानो। राजते। राजेते। राजन्ते। राजति। राजतः। राजन्ति। रेजे (२२७)रराजे। रराज। रेजतुः। रराजतुः। राजितासे। राजितासि। राजिष्यते। राजिष्यति। राजिषतै। राजिषातै। राजिषति। राजिषाति। राजतु। राजताम्। अराजत। अराजत्। राजेत। राजेत्। राजिषीष्ट। राज्यात्। अराजिष्ट। अराजीत्। अराजिष्यत। अराजिष्यत्। [टुभ्राजृ, टुभ्राशृ, टुभ्लाशृ] दीप्तौ। उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेपदिनः। ये तीनों धातु आत्मनेपदी सेट् हैं। इन धातुओं के टु की इत्संज्ञा (१५०) भ्राजते। भ्रेजे (२२७) बभ्राजे। भ्राजितासे। भ्राजिष्यते। भ्राजिषतै। भ्राजिषातै। भ्राजताम्। अभ्राजत। भ्राजेत। भ्राजिषीष्ट। अभ्राजिष्ट। अभ्राजिष्यत। भ्राश तथा भ्लाश धातु से विकल्प करके श्यन् (१८८) पक्ष में शप् होता है। भ्राश्यते। भ्राश्येते। भ्राश्यन्ते। भ्राशते। भ्रेशे। बभ्राशे। भ्राशितासे। भ्राशिष्यते। भ्राशिषतै। भ्राशिषातै। भ्राश्यतै। भ्राश्यातै। भ्राशतै। भ्राशातै। भ्राश्यताम्। भ्राशताम्। अभ्राश्यत। अभ्राशत। भ्राश्येत। भ्राशेत। भ्राशिषीष्ट। अभ्राशिष्ट। अभ्राशिष्यत। भ्लाश्यते। भ्लाशते। भ्लेशे। बभ्लाशे ॥

अथ स्यमादयः परस्मैपदिनः षड्विंशतिः। अब स्यम आदि २६ (छब्बीस) धातु परस्मैपदी कहते हैं [स्यमु, स्वन, ध्वन] शब्दे। स्यमति। सस्याम। स्येमतुः। (२२१) सस्यमतुः। स्यमितासि। स्यमिष्यति। स्यामिषति। स्यामिषाति। स्यमतु। अस्यमीत् (१६२) अस्यमिष्यत्। स्वनति। स्वेनतुः। सस्वनतुः। अस्वानीत्। अस्वनीत् (१४४) यहां तक फणादि सात धातु जो (२२७) सूत्र में कहे हैं समाप्त हुए। ध्वनति। दध्वान। दध्वनतुः। ध्वनितासि। ध्वनिष्यति। ध्वानिषति। ध्वानिषाति। ध्वनतु। अध्वनत्। ध्वनेत्। ध्वन्यात्। अध्वानीत्। अध्वनीत्। अध्वनिष्यत् [षम, ष्टम] अवैकल्ये। (सुस्थिर होना) समति। ससाम। सेमतुः। असमीत् (१६२) स्तमति। तस्ताम। तस्तमतुः। अस्तमीत्। [ज्वल] दीप्तौ। ज्वलति। जज्वाल। अज्वालीत् (१९६) [चल] कम्पने (कांपना) चलति। चचाल। चेलतुः। चालितासि। चलिष्यति। चालिषति। चालिषाति। चलतु। अचलत्। चलेत्। चल्यात्। अचालीत्। (१९६) अचालिष्यत्। [जल] घातने (मारना) जलति। जजाल। जेलतुः।

अजालीत् (१९६) [टल ट्वल] वैक्लव्ये (विरुद्ध चाल) टलति । टटाल । टेलतुः । ट्वलति । टट्वाल । टट्वलतुः । अटालीत् । अट्वालीत् । अट्वालिष्यत् [ष्ठल] स्थाने । स्थलति । तस्थाल । अस्थालीत् । [हल] विलेखने (खोदना वा जोतना] हलति । जहाल । अहालीत् । [णल] गन्धे । बन्धन इत्येके । नलति । ननाल । नेलतुः । अनालीत् । [पल] गतौ । पलति । पेलतुः । अपालीत् [बल] प्राणने धान्यावरोधे च (जीवन और धानों का रोकना) बलति । बबाल । बेलतुः । बेलुः । अबालीत् [पुल] महत्वे (बड़ा होना) पोलति । पुपोल । पुपुलतुः । अपोलीत् । [कुल] संस्त्याने बन्धुषु (भाई बन्धुओं का समूह) कोलति । चुकोल । चुकुलतुः । कोलितासि । कोलिष्यति । कोलिषति । कोलिषाति । कोलतु । अकोलत् । कोलेत् । कुल्यात् । अकोलीत् । अकोलिष्यत् । [शल, हुल, पत्लृ] गतौ । शलति । शशाल । शेलतुः । शेलुः । अशालीत् । (१९६) होलति । जुहोल । अहोलीत् । पतति । पपात । पेततुः । पातितासि । पातिष्यति । पातिषति । पातिषाति । पततु । अपतत् । पतेत् । पत्यात् । इस पत धातु का लृ इत् जाता है इस से अङ् (२१७) होकर ॥ २२७ ॥

२२८—पतः पुम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १९ ॥

अङ् परे हो तो पत धातु को पुम् का आगम होवे । पुम् (मित्) होने से अन्त्य अच् पकार से परे होता है । अट्+पपुम्त्+अङ्+तिप्=अपप्तत् । पुम् में से उम् भाग की इत्संज्ञा होती है । अपप्तताम् । अपप्तन् । अपप्तः । अपप्ततम् । अपप्तत । अपप्तम् । अपप्ताव । अपप्ताम । अपतिष्यत् [क्थे] निष्पाके (अच्छे प्रकार पकाना) क्थति । चक्काथ । एदित् होने से । अक्थीत् । (१६२) [मथे] विलोडने । मथति । ममाथ । मेथतुः । मथिता । मथिष्यति । माथिषति । माथिषाति । मथतु । अमथत् । मथेत् । मथ्यात् । अमथीत् । अमथिष्यत् [टुवम्] उद्गिरणे (उगिलना) टुइत् (१५०) वमति । ववाम । ववमतुः (१२८) एत्वाभ्यास लोप का निषेध । वमिता । वमिष्यति । वामिषति । वामिषाति । वमतु । अवमत् । वमेत् । वम्यात् । अवमीत् (१६२) अवमिष्यत् । [भ्रमु] चलने । यहां (१८८) से विकल्प करके श्यन् होता है । भ्राम्यति । भ्रमति ॥ २२८ ॥

२२९—वा जृभ्रमुत्रसाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२४ ॥

कित् लिट् और सेट् थल् परे हों तो जृ, भ्रमु और त्रस धातुओं के अभ्यासका लोप

और इन को एकारादेश विकल्प करके होवे । इन धातुओं में एत्वाभ्यासलोप किसी सूत्र से प्राप्त नहीं था इस कारण यहां अप्राप्तविभाषा है । बभ्राम । भ्रेमतुः । बभ्रमतुः । बभ्रमुः । अभ्रमीत् [क्षर] संचलने (अच्छे प्रकार चलना) क्षरति । चक्षार । चक्षरतुः । क्षरितासि । क्षरिष्यति । क्षारिषति । क्षारिषाति । क्षरतु । अक्षरत् । क्षरेत् । क्षर्यात् । अक्षारीत् (१९६) अक्षरिष्यत् ॥

इति स्यमादय उदात्ता उदात्तेतः समाप्ताः ॥

अथ द्वावनुदात्तेतौ । अब दो धातु आत्मनेपदी कहते हैं । उन में सह धातु सेट् और रमु अनिट् है [षह] मर्षणे (सहना) । सहते । सहेते । सहन्ते । सेहे । सेहाते । सहिता ॥ २२९ ॥

२३०—सहिवहोरोदवर्णस्य ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ११२ ॥

सह और वह धातु के अवर्ण को ओकार आदेश होवे ढकार का लोप हुआ हो तो । यहां (२१२) सूत्र से इट् के निषेध पक्ष में लुट् में तास् प्रत्यय के परे सह के हकार को ढ (२०२) और ढलोप (२०६) से होकर । सह्+तास्+डा = सोढा । सोढारौ । सोढारः । सोढासे । सोढासाथे । सोढाध्वे । सोढाहे । सोढास्वहे । सोढास्महे । सहिष्यते । साहिषतै । साहिषातै । सहताम् । असहत । सहेत । साहिषीष्ट । असहिष्ट । असाहिष्यत [रमु] क्रीडायाम् (खेलना) यह धातु अनिट् है । रमते । रमेते । रमन्ते । रेमे । रेमाते । रेमिरे । रेमिषे । रन्तासे । रंस्यते । रांसतै । रांसातैं । रमताम् । अरमत । रमेत । रंसीष्ट । अरंस्त । अरंसाताम् । अरंस्यत ॥

अथ कसन्ताः सप्त परस्मैपदिनः [षद्लृ] विशरणगत्यवसादनेषु (मारना, गति और क्लेश होना) ॥ २३० ॥

२३१—पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७८ ॥

पा, घ्रा, ध्मा, स्था, म्ना, दाण्, दृशि, ऋ, सृ, शद और सद धातुओं को पिब, जिघ्र, धम, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋच्छ, धौ, शीय और सीद आदेश यथासंख्य करके होवें शित् प्रत्यय परे हों तो । यहां शप् के परे सद को सीद होकर । सीदति । सीदतः । सीदन्ति । ससाद । सेदतुः । सेदुः । यह धातु अनिट् है । सेदिथ (१४९) स-

सत्थ (२१५) सेदथुः । सेद । ससाद । सेदिव । सेदिम । सत्ता । सत्तारौ । सत्तारः । सत्तासि । सत्स्यति । सात्सति । सात्साति । सत्सति । सत्साति । सीदति । सीदाति । सीदतु । असीदत् । सीदेत् । सद्यात् । लृदित् होने से अङ् (२१७) असदत् । असदताम् । असदन् । असदः । असदतम् । असदत । असदम् । असदाव । असदाम । असत्स्यत् [शद्लृ] शातन (तीक्ष्णता होनी) ॥ २३१ ॥

२३२-शदेः शितः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६० ॥

शित् प्रत्ययविषयक शद धातु से आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों (जिन लकारों में शप् होता है वहां) । यह सूत्र परस्मैपद का अपवाद है । शीय (२३१) आदेश । शीयते । शीयेते । शीयन्ते । शीयसे । शशाद । शेदतुः । शेदुः । शेदिथ । शशत्थ (१४८ । २१५) शत्तासि । शत्स्यति । शात्सति । शात्साति । शत्सति । शत्साति । शीयतै । शीयातै । शीयते । शीयाते शीयताम् । अशीयत । शीयेत । शद्यात् । लृदित् होने से अङ् (२१७) अशदत् । अशदताम् । अशदन् । अशत्स्यत् । [क्रुश] आह्वाने रोदने च (बुलाना और रोना) क्रोशति । चुक्रोश । चुक्रुशतुः । चुक्रुशुः । चुक्रोशिथ (१४८) सूत्र के नियम से इट् । क्रुश-तास्-डा । यहां ॥ २३२ ॥

२३३-व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३६ ॥

व्रश्च, भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, राज, भ्राज और छकारान्त शकारान्त धातुओं के अन्त्य वर्ण का ष आदेश होवे झल् परे हो वा पदान्त में । इस सूत्र में राज और भ्राज धातु का ग्रहण पदान्त में षत्व होने के लिये है क्योंकि इन दोनों के सेट् होने से झलादि आर्द्धधातुक में इट् के व्यवधान में प्राप्ति नहीं होती । यहां प्रकृत में शान्त क्रुश धातु के शकार को मूर्द्धन्य और (ष्टुना ष्टुः) सूत्र से तास् के तकार को टकार होकर । क्रोष्टा । क्रोष्टारौ । क्रोष्टारः । क्रुश+स्य+ति = क्रोक्ष्यति (२०५) इसी प्रकार लेट् में जाना । क्रुश्+स्+अट्+तिप् = क्रोक्षति । क्रोक्षाति । क्रोशति । क्रोशाति । क्रोशतु । अक्रोशत् । क्रोशेत् । क्रुश्यात् । अट्+क्रुश्+क्स+तिप् = अक्रुक्षत् (२०७) अक्रुक्षताम् । अक्रुक्षन् । अक्रुक्षः । अक्रोक्ष्यत् । ये षद् आदि तीन धातु अनिट् थे [कुच] सम्पर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भविलेखनेषु (छूना, टेढ़ाई, रोक रखना और खोदना) कोचति । चुकोच । चुकुचतुः । कोचिता । कोचिष्यति । कोचिषति । कोचिषाति । कोचतु ।

अकोचत् । कोचेत् । कुच्यात् । अकोचीत् । अकोचिष्यत् [बुध] अवगमने (ज्ञान होना) बोधति । बुबोध । बुबुधतुः । बुबुधुः। बोधिता । बोधिष्यति । बोधिषति । बोधिषाति । बोधतु । अबोधत् । बोधेत् । बुध्यात् । अबोधीत् । अबोधिष्यत् । [रुह] बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च (बीज की उत्पत्ति और प्रकट होना) रोहति । रुरोह । रुरुहतुः । यह धातु भी अनिट् है । रुह्+तास्+डा = रोढा (२०३) (१४१) और (ष्टुना ष्टुः) (२ ६) रोढारौ । रोढारः । रोढासि । रोह्+स्य+ति = रोक्ष्यति (२०३) (२०५) रोक्ष्यतः रोक्ष्यन्ति । रोक्षति । रोक्षाति । रोहति । रोहाति । रोहतु । अरोहत् । रोहेत् । रुह्यात् । अट्+रुह्+क्स+तिप् = अरुक्षत् (२०७) अरुक्षताम् । अरुक्षन् । अरोक्ष्यत् [कस] गतौ । कसति । चकास । चकसतुः । कसितासि । कसिष्यति । कासिषति । कासिषाति । कसतु । अकसत् । कसेत् । कस्यात् । अकासीत् । अकसीत् । अकसिष्यत् [वृत्] ज्वलादिगणः समाप्तः । ज्वल दीप्तौ धातु से लेकर यहांतक ज्वलादि गण कहाता है । इस का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा । और ये पद आदि परस्मैपद सात धातु समाप्त हुए ॥

अथ गूहत्यन्ताः स्वरितेतोऽष्टत्रिंशत् । अब गुहू पर्यन्त स्वरितेत् (जिन में क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद अन्यत्र परस्मैपद होता है वे उभयपदी) ३८ (अड़तीस) धातु कहते हैं [हिक्क] अव्यक्ते शब्दे । हिक्कते । हिक्कति [अञ्चु] गतौ याचने च (गति और मांगना) अञ्चते । अञ्चति । आनञ्चे । आनञ्च । अच्यात् (१३९) [अचु] इत्येके । अचते । अचति । आचे । आच । अचितासे । अचितासि । आचिष्यत । आचिष्यति । आचिषत । आचिषात । आचिषति । आचिषाति । अचताम् । अचतु । आचत । आचत् । अचेत । अचेत् । अचिषीष्ट । अच्यात् । आचिष्ट । आचीत् । आचिष्यत् । आचिष्यत [अचि] इत्यपरे । इस में इतना ही भेद है कि इदित् होने से । अञ्च्यात् (१३९) नलोप नहीं होता [टुयाचृ] याच्ञायाम् (मांगना) याचते । याचति । ययाचे । ययाच । याचितासे । याचितासि । याचिष्यते । याचिष्यति । याचिषतै । याचिषातै । याचिषति । याचिषाति । याचताम् । याचतु । अयाचत । अयाचत् । याचेत । याचेत् । याचिषीष्ट । याच्यात् । अयाचिष्ट । अयाचीत् । अयाचिष्यत । अयाचिष्यत् [रेटृ] परिभाषणे (बहुत बोलना) रेटते । रेटति । रिरेटे । रिरेट [चते,चदे] याचने । चतते । चदते । चतति । चदति । चेते । चेदे । चचात । चेततुः । अचतीत् (१६२) अचदीत् । [प्रोथृ] पर्य्याप्तौ (सामर्थ्य) प्रोथते । प्रोथति । पुप्रोथे । पुप्रोथ [मिदृ,मेदृ] मेधाहिंसनयोः (तीक्ष्ण बुद्धि और मारना) मेदते । मेदति । मिमिदे । मिमेदे । मिमेद ।

मिमिदतुः । मिमेदतुः । [मिधृ,मेधृ] सङ्गमे च (मेल करना) और चकार से पूर्वोक्त दोनों अर्थों का समुच्चय जानो । मेधते । मेधति । मिमिधे । मिमेधे । मिमेध । मिमिधतुः । मिमेधतुः [मिथृ,मेथृ] मेधाहिंसनयोरित्येके । मेथते । मेथति [णिदृ, णेदृ) कुत्सासन्निकर्षयोः (निन्दा और समीप होना) नेदते । नेदति । नेदतः । निनिदे । निनेदे । निनिदतुः । निनेदतुः । [शृधु,मृधु] उन्दने (गीलापन) शर्धते । मर्धते । शर्धति । मर्धति । शश्रृधे । शश्रृधतु [बुधिर्] बोधने (बोध होना) बोधते । बोधति । अबोधिष्ट । यह आत्मनेपदविषय में (१९४) सूत्र से जन धातु के साहचर्य से दिवादि के बुध का ग्रहण होता है इसलिये चिण् न हुआ । अबुधत् । इरित् होने से अङ् (१९८) अबोधीत् । [उबुन्दिर] निशामने (सुनाना) इस धातु में उ और इर् भाग की इत् संज्ञा हो जाती है । बुन्दते । बुन्दति । बुबुन्दे । बुबुन्दतुः । अबुन्दिष्ट । अबुदत् (१३८) (१३९) अबुन्दीत् [वेणृ] गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु (गति, ज्ञान, चिन्ता और वाजों (ढोलआदि) का ग्रहण करना) [वेनृ] इत्येके । वेणते । वेनते । वेणति । वेनति । विवेने । विवेणे । विवेणतुः । वेणितासि । वेणितासे । वेणिष्यते । वेणिष्यति । वेणिषतै । वेणिषातै । वेणिषति । वेणिषाति । वेणताम् । वेणतु । अवेणत । अवेणत् । वेणेत । वेणेत् । वेण्यात् । वेणिषीष्ट । अवेणिष्ट । अवेणीत् । अवेणिष्यत । अवेणिष्यत् [खनु] अवदारणे (खोदना) खनति । खनते । चखने । चखान । अतुस् में उपधालोप (२१४) चख्नतुः । चख्नुः । खानितासे । खनितासि । खानिष्यते । खनिष्यति । खानिषतै । खानिषातै । खानिषति । खानिषाति । खनताम् । खनतु । अखनत । अखनत् । खनेत । खनेत् । खानिषीष्ट । खन्+यासुट्+सुट्+तिप् (१८५) न् को आकार विकल्प से होकर=खायात् । खन्यात् । अखनीत् । अखानीत् (१४४) अखनिष्ट । अखनिष्यत । अखनिष्यत् । [चीवृ] आदानसंवरणयोः । (ग्रहण, आच्छादन) चीवते । चीवति । चिचीवे । चिचीव । [चायृ] पूजानिशामनयोः (सत्कार और सुनाना) चायते । चायति । चचाये । चचाय । यहां वेद में कुछ विशेष है ॥ २३३ ॥

२३४—चायः की ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३५ ॥

चायृ धातु को वेद में बहुल करके की आदेश होवे । यहां द्विर्वचन होने से प्रथम ही अनेकाल् होने से चाय्मात्र के स्थान में की होकर पश्चात् द्विर्वचन होता है ।

की+की+एश्=चिक्ये। चिक्यतुः। चिक्युः। चचाय। बहुलग्रहण से कहीं होता है कहीं नहीं भी होता [व्यय] गतौ। व्ययते। व्ययति। वव्यये। वव्याय। यकारान्त होने से वृद्धि का निषेध (१६२) अव्ययीत्। अव्ययिष्ट। [दाशृ] दाने (देना) दाशते। दाशति। ददाशे। ददाश। दाशितासे। दाशितासि। दाशिष्यते। दाशिष्यति। दाशिषते। दाशिषातै। दाशिषति। दाशिषाति। दाशताम्। दाशतु। अदाशत। अदाशत्। दाशेत दाशेत्। दाशिषीष्ट। दाश्यात्। अदाशिष्ट। अदाशीत्। अदाशिष्यत। अदाशिष्यत्। [भेषृ] भये (डर) गतावित्येके। भेषति। भेषते। बिभेष। बिभेष [भ्रेषृ, भ्लेषृ] गतौ। भ्रेषते। भ्रेषति। भ्लेषते। भ्लेषति [अस] गतिदीप्त्यादानेषु (गति, प्रकाश और लेना) असते असति। आस। आसतुः। आसुः। आसे। आसाते। आसिरे [अष] इत्येके। किन्हीं के मत में पूर्वोक्त दन्त्य सकारान्त धातु नहीं मूर्द्धन्य षकारान्त है। अषति। अषते। [स्पश] बाधनस्पर्शनयोः (दुःख देना और स्पर्श करना) स्पशति। स्पशते। पस्पशे। पस्पाश (१२४) अस्पशिष्ट। अस्पाशीत्। अस्पशीत् [लष] कान्तौ (इच्छा) लष्यति। लषति। लषते। लष्यते (१८८) श्यन्। ललाष। लेषतुः। लेषुः। लेषे। लेषाते। लेषिरे। लषितासे। लषितासि। लषिष्यते। लषिष्यति। लाषिषतै। लाषिषातै। लाषिषति। लाषिषाति। लषताम्। लषतु। अलषत्। लषेत्। लष्यात्। लाषिषीष्ट। अलषिष्ट। अलाषीत्। अलषीत्। अलषिष्यत। अलषिष्यत्। [चष] भक्षणे (खाना) चषति। चषते। चेषतुः। चेषे [छष] हिंसायाम्। छषति। छषते। चच्छषतुः। चच्छषे [झष] आदानसम्बरणयोः (लेना, आच्छादन) झषति। झषते। जझाष। जझषे। (भ्रक्ष, भ्लक्ष] अदने। भ्रक्षति। भ्रक्षते। भ्लक्षति। भ्लक्षते। बभ्रक्ष। बभ्रक्षे [भक्ष] इत्येके। भक्षति। भक्षते [दासृ] दाने। दासति। दासते। ददास। ददासे [माहृ] माने (तोलना) माहति। माहते। ममाह। ममाहे। अमाहिष्ट। अमाहीत्। (गुहू) सम्बरणे (आच्छादन करना) गुह्–शप्–तिप्। यहां ॥ २३४ ॥

२३५–ऊदुपधाया गोहः ॥ अ० ॥ ६। ४। ८९ ॥

गुण का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो गुह धातु की उपधा को ऊकार आदेश होवे। इस सूत्र में गुण किये गुह का ग्रहण इसलिये किया है कि जहां इस को गुण होता है वहीं ऊकार होवे अन्यत्र नहीं। ऊकार होने के पश्चात् लघूपध के न होने से गुण नहीं होता। गूहति। गूहत। गूहन्ति। गूहते। गूहेते। गूहन्ते। जुगूह। जुगुहतुः। जुगुहुः। जुगुहिथ। जुगोढ (२०३)(१४१)(२०६) जुगुहथुः। जुगुह। जुगूह। जुगुहिव। जुगुह्व। जुगुहिम। जुगुह्म।

जुगुहे । जुगुहाते । जुगुहिरे । जुगुहिषे । जुगुह् + से=जुघुक्षे (२०३) (२०४) (२०५) जुगुहाथे । जुगुहिध्वे । जुगुहिढ्वे । जुघुढ्–ढ्वे । यहां प्रथम ढकार का लोप (२०६) होकर ॥ २३५ ॥

२३६-ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १११ ॥

जहां रेफ और ढकार का लोप हुआ हो वहां पूर्व अण् को दीर्घ होवे । यहां घु के उकार को दीर्घ होकर । जुघूढ्वे । जुगूहे । जुगुहिवहे । जुगुह्वहे । जुगुहिमहे । जुगुह्महे । गूहितासि । गूहितासे । अनिट् पक्ष में । गुह्+तास्+डा=गोढा । यहां अजादि प्रत्यय के न होने से उपधा को ऊकार (२३५) नहीं होता । गोढारौ । गोढारः । गोढासि । गोढासे । गूहिष्यति । गूहिष्यते । घोक्ष्यति । घोक्ष्यतः । घोक्ष्यन्ति । घोक्ष्यते । गूहिषति । गूहिषाति । घोक्षति । घोक्षाति । गूहति । गूहाति । गूहिषतै । गूहिषातै । घोक्षतै । घोक्षातै । गूहतै । गूहातै । गूहताम् । गूहतु । अगूहत । अगूहत् । गूहेत । गूहेत् । गूहिषीष्ट । अनिट् पक्ष में । गुह्+सीयुट्+सुट्+त (२०३ । २०४ । २०५ । ५६ । १६३ । ४५)=घुक्षीष्ट । घुक्षीयास्ताम् । घुक्षीरन् । गूहिषीढ्वम् । गूहिषीध्वम् । घुक्षीध्वम् । गुह्यात् । अगूहिष्ट । अगूहिषत । अगूहीत् । और अनिट् पक्ष में । अट्–गुह्–क्स–त । इस अवस्था में ॥ २३६ ॥

२३७-लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७३ ॥

आत्मनेपदविषय में दन्त्य अक्षर परे हो तो दुह्, दिह्, लिह् और गुह् धातुओं से परे जो क्स प्रत्यय उस का लुक् विकल्प करके होवे प्रत्ययमात्र का लुक् और लोप अन्त्य अल् के स्थान में होता है । यहां दन्त्य अक्षर त, ध्वम् और थास् के परे क्स का लुक् होता है । अट्+गुह्+क्स+त (२३७ । २०३ । (१४१) ष्टुत्व और (२३६)=अगूढ । अघुक्षत । अघुक्षाताम् (२०८) अघुक्षन्त । अगुह् + क्स + थास् (२३७ । २०३ । १४१)=अगूढाः । अघुक्षथाः । अघुक्षाथाम् । अगुह् + क्स+ध्वम् (२३७ । २०३ । २०४ । २०६ । २३६)=अघूढ्वम् । अघुक्षि । अघुक्षावहि । अघुक्षामहि । अगूहिष्यत । अगूहिष्यत् । अघोक्ष्यत । अघोक्ष्यत् । इति हिक्कादय उदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः समाप्ताः । ये हिक्क आदि अड़तीस उभयपदी धातु समाप्त हुए ॥

अथाजन्ता उभयपदिनः पञ्च । अब अजन्त उभयपदी पांच धातु कहते हैं [श्रिञ्] सेवायाम् (सेवा करना) यह धातु सेट् है । ञ् की इत्संज्ञा होने से (१०३) उभयपद

इसी प्रकार सर्वत्र ञित् धातुओं से उभयपद जानो। श्रि + शप् + तिप् (२१) गुण= श्रयति।श्रयतः। श्रयन्ति। श्रयसि। श्रयते। श्रयेते। श्रयन्ते। शिश्राय। शिश्रियतुः (१५६) शिश्रिये। श्रयितासि। श्रयितासे। श्रयिष्यति। श्रयिष्यते। श्रायिषति। श्रायिषाति। श्रयति। श्रयाति। श्रायिषते। श्रायिषातै। श्रयतु। श्रयताम्। अश्रयत्। अश्रयत्। श्रयेत्। श्रयेत। श्रीयात् (१६०) दीर्घ। श्रयिषीष्ट। अशिश्रियत् (१७६) चङ् (१८०) द्वित्व (१५९) इयङ्। अशिश्रियताम्। अशिश्रियन्। अशिश्रियः। अशिश्रियत। अशिश्रियेताम्। अशिश्रियन्त। अश्रयिष्यत्। अश्रयिष्यत [भृञ्] भरणे (धारण और पोषण) गुण होकर। भरति। भरते। बभार। बभ्रतुः। बभ्रुः। यहां यणादेश होता है विशेष नियम के होने से सामान्य लिट् में इट् का निषेध (१४८) भारद्वज.के मत में थल् में इट् का निषेध (१४९) और अन्य ऋषियों के मत में थल् में इट् का निषेध (१५७) होकर। बभर्थ। बभ्रथुः। बभ्र। बभार। बभर। बभृव। बभृम। बभ्रे। बभ्राते। बभ्रिरे। बभृषे। बभृढ्वे। बभृवहे। बभृमहे। भर्त्तासि। भर्त्तासे॥ २३७॥

२३८ — ऋद्धनोः स्ये ॥ अ० ॥ ७। २ ७० ॥

ह्रस्व ऋकारान्त और हन धातु से परे जो स्य वलादि आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम होवे। भरिष्यति। भरिष्यते। भार्षति। भार्षाति। भरति।। भराति। भार्षतै। भार्षातै। भरतु। भरताम्। अभरत्। अभरत। भरेत्। भरेत ॥२३८॥

२३९—रिङ् शयग्लिङ्क्षु ॥ अ० ॥ ७। ४। २८ ॥

श, यक् और यकारादि कित् ङित् आर्द्धधातुक लिङ् लकार परे हो तो ऋकारान्त अङ्ग को रिङ् आदेश हो। ङित् होने से अन्त्य अल् ऋकार के स्थान में होता है। और यह सूत्र रीङ्विधान का अपवाद है। भ्रियात्। भ्रियास्ताम्। भ्रियासुः। आत्मनेपदविषय में॥ २३९॥

२४०—उश्च ॥ अ० ॥ १। २। १२ ॥

-ऋवर्णान्त धातु से परे आत्मनेपदविषय में जो झलादि लिङ् और सिच् सो कित्वत् हों। कित् होने से गुण वृद्धि का निषेध (४५) होकर। भृषीष्ट। भृषीयास्ताम्। भृषीरन्। भृषीष्ठाः। भृषीयास्थाम्। भृषीढ्वम्। भृषीय। भृषीवहि। भृषीमहि। अभार्षीत् (१५८) वृद्धि। अभार्ष्टाम्। अभार्षुः। अभार्षीः। अभार्ष्टम्। अभार्ष्ट।

अभार्षम् । अभार्ष्व । अभार्ष्म । आत्मनेपदविषय में सिच् कित्वत् (२४०) होकर अट्-भृ-सिच्-त । इस अवस्था में ॥ २४० ॥

२४१-ह्रस्वादङ्गात् ॥ अ० ॥ ८ । २ । २७ ॥

ह्रस्वान्त अङ्ग से परे जो सिच् उस का लोप होवे झल् परे हो तो । अभृत । अभृषाताम् । यहां झलादि प्रत्यय के न होने से सिच् का लोप नहीं होता । अभृषत । अभृथाः । अभृषाथाम् । अभृढ्वम् । अभृषि । अभृष्वहि । अभृष्महि । अभरिष्यत् (२३८) इट् । अभरिष्यत [हृञ्] हरणे (पहुंचाना, ग्रहण, चोरी और नाश करना आदि) [धृञ्] धारणे (धारण करना) इन दोनों धातुओं का भृञ् धातु के समान साधुत्व जानो । हरति । हरते । जहार । जह्रतुः । जहर्थ । जहार । जहर । जहृव । जहृम । जह्रे । जह्राते । जहृषे । जहृढ्वे । जहृवहे । हर्त्तासि । हर्त्तासे । हरिष्यति (२३८) इट् । हरिष्यते । हार्षति । हार्षाति । हार्षतै । हार्षातै । हरतु । हरताम् । अहरत् । अहरत । हरेत् । हरेत । ह्रियात् (१३९) रिङ् । हृषीष्ट (२४०) कित्वत् । हृषीढ्वम् । अहार्षीत् (१५८) वृद्धि । अहृत (२४१) सिच् लोप । अहृषाताम् । अहृषत । अहारिष्यत् । अहरिष्यत । धरति । दधार । और (१६१) सूत्र में तुजादि धातु सामान्य करके लिये जाते हैं जिन में वैदिक प्रयोगों में अभ्यास को दीर्घादेश देख पड़े वे सब तुजादि गणस्थ जानो । इस कारण । दाधार । ऐसा भी प्रयोग वेद में होता है । दध्रतुः । दधर्थ । दध्रे । दधृषे । धर्त्तासि । धर्त्तासे । धरिष्यति । धरिष्यते । धार्षतै । धार्षातै । धार्षते । धार्षाते । धरतु । धरताम् । अधरत् । अधरत । धरेत् । ध्रियात् । धृषीष्ट । धृषीढ्वम् । अधार्षीत् । अधृत । अधृषाताम् । अधृषत । अधृढ्वम् । अधरिष्यत् । अधारिष्यत । [णीञ्] प्रापणे (ले चलना) नयति । नयते । निनाय । नी+नी+अतुस्=निन्यतुः (१९६) यण् । निन्युः । निनयिथ (१४६) निनेथ (१९७) निन्यथुः । निन्य । निनाय । निनय । निन्यिव । निन्यिम । निन्ये । निन्याते । निन्यिरे । नेतासि । नेतासे । नेष्यति । नेष्यते । नैषति । नैषाति । नयति । नयाति । नैषतै । नैषातै । नेषतै । नैषाते । नेषते । नेषाते । नयतै । नयातै । नयतु । नयताम् । अनयत् । अनयत । नयेत् । नयेत । नीयात् । नीयास्ताम् । नेषीष्ट । अनैषीत् । अनेष्ट । अनेषाताम् । अनेष्यत् । अनेष्यत । भरत्यादयश्चत्वारोऽनुदात्ताः ॥

अथाजन्ताः परस्मैपदिनः । अब अजन्त परस्मैपदी धातु कहते हैं [धेट्] पाने (पीना) ट् की इत्संज्ञा और एकार को अय् आदेश होकर । धे+शप्+तिप्=धयति । धयतः । धयन्ति ॥ २४१ ॥

२४२—आदेच उपदेशेऽशिति ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४५ ॥

अशित् अर्थात् आर्द्धधातुकविषय में उपदेश में जो एजन्त धातु उस को आकार होवे। आकारान्त धातु सब अनिट् हैं। धा—णल्। इस अवस्था में ॥ २४२ ॥

२४३—आत औ णलः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३४ ॥

आकारान्त धातु से परे जो णल् उस को औकार आदेश होवे। धा—औ। द्वित्व हो कर। दधौ। धा—अतुस्। यहां ॥ २४३ ॥

२४४—आतो लोप इटि च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६४ ॥

अजादि कित् ङित् आर्द्धधातुक और इट् परे हों तो आकारान्त अङ्ग का लोप होवे। इस लोप के पहिले द्वित्व की प्राप्ति तो है फिर सब विधियों से लोपविधि के अति बलवान् होने से प्रथम लोप ही होता है फिर एकाच् के न होने से द्वित्व (३४) नहीं प्राप्त है इसलिये ॥ २४४ ॥

२४५—द्विर्वचनेऽचि ॥ अ० ॥ १ । १ । ५९ ॥

द्विर्वचन का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो अच् के स्थान में जो आदेश है सो स्थानीरूप हो जावे। यहां रूपातिदेश मानने से आकार का पुनरागमन होकर द्विर्वचन होता है। धा+धा+अतुस्=दधतुः। यहां द्विर्वचन होने के पश्चात् दूसरे धा के आकार का लोप हुआ है। दधुः। दधा+इट्+थल्=(२४४) दधिथ (१४९) भारद्वाज के मत में इट् का विधान और। दधाथ (१५७) इट् का निषेध। दधथुः। दध। दधौ। दधिव। दधिम। धाता। धातारौ। धातारः। धातासि। धास्यति। धास्यतः। धास्यन्ति। धासति। धासाति। धयति। धयाति। धयतु। अधयत्। धयेत् ॥ २४५ ॥

२४६—दाधा घ्वदाप् ॥ अ० ॥ १ । १ । २० ॥

दा रूप और धा रूप जो धातु तथा इन की जो प्रकृति हैं उन की घु संज्ञा होवे। दाप् और दैप् धातु को छोड़ के। इस का फल ॥ २४६ ॥

२४७—एर्लिङि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६७ ॥

घुसंज्ञक धातु, मा, स्था, गा, पा, ओहाक्, सा इन धातुओं के आकार को एकार आदेश होवे कित् ङित् लिङ् परे हो तो। धे को आकार (२४२) होता है उसी आकार को ए होकर। धेयात्। धेयास्ताम्। धेयासुः। धेयाः। धेयास्तम्। धेयास्त। धेयासम्। धेयास्व। धेयास्म ॥ २४७ ॥

२४८-विभाषा धेट्श्व्योः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४९ ॥

धेट् और श्वि धातु से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में चङ् आदेश विकल्प करके होवे । अट् +धा+धा+चङ्+तिप्=अदधत् (१८०) द्वित्व और (२४४) आ का लोप । अदधताम् । अदधन् । अदधः । अदधतम् । अदधत । अदधम् । अदधाव । अदधाम । अब जिस पक्ष में चङ् न हुआ वहां उत्सर्ग सिच् होकर ॥२४८॥

२४९-विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७८ ॥

घ्रा, धेट्, शा, छा और सा इन धातुओं से परे जो सिच् उस का विकल्प करके लुक् हो परस्मैपदविषय में । धेट् धातु की घुसंज्ञा होने से (८९) सूत्र से सिच् लुक् नित्य प्राप्त और अन्य धातुओं से अप्राप्त है इन दोनों का विकल्प होने से प्राप्ताप्राप्तविभाषा इस सूत्र में समझनी चाहिये सिच् का लुक् होकर । अट्+धा+तिप्=अधात् । अधाताम् । अधा+झि यहां जुस् आदेश किसी से प्राप्त नहीं है इसलिये ॥ २४९ ॥

२५०-आतः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११० ॥

जिस से परे सिच् का लुक् हुआ हो ऐसे आकारान्त धातु से परे जो झि उस को जुस् आदेश होवे । सिच् लुक् होने के पश्चात् प्रत्ययलक्षण कार्य्य मान के जुस् (१३४) हो जाता है फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि सिज्लुगन्त से परे प्रत्ययलक्षण मान के आकारान्त धातुओं से परे ही जुस् हो अन्य से नहीं । अभूवन् । यहां भी सिच्लुक् (८९) हुआ है तो भी प्रत्ययलक्षण मान के जुस् नहीं होता । अट्+धा+जुस् = अधुः (८३) पररूप एकादेश । अधाः । अधातम् । अधात । अधाम् । अधाव । अधाम । सिच्लुक् (२४९) विकल्प से होता है जिस पक्ष में न हुआ वहां ॥२५० ॥

२५१-यमरमनमातां सक् च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७३ ॥

यम,रम, नम और आकारान्त धातुओं से परे जो सिच् उस को इट् का आगम और इन धातुओं को सक् का आगम होवे परस्मैपदविषय में । अट् + धा+ सक्+इट्+सिच् + ईट्+तिप्=अधासीत् । सिच् के सकार का लोप (१३२) हो जाता है । अधासिष्टाम् । अधासिषुः । अधासीः । अधासिष्टम् । अधासिष्ट । अधासिषम् । अधासिष्व । अधासिष्म । अधास्यत् । अधास्यताम् । अधास्यन् । [ग्लै म्लै] हर्षक्षये (आनन्द का नाश) ग्लै + शप् + तिप्=ग्लायति । ग्लायतः । ग्लायन्ति । लिट् आदि आर्द्धधातुक लकारों में धेट् के समान साधुत्व जानो । जग्लौ । जग्लतुः । मम्लौ । मम्लतुः ।

जग्लिथ। जग्लाथ। जग्लौ। जग्लिव। जग्लिम। ग्लातासि। ग्लास्यति। ग्लासति। ग्लासाति। ग्लायतु। अग्लायत्। ग्लायेत्। आशिषि लिङ् में एकारादेश (२४७) नित्य प्राप्त है ॥ २५१ ॥

२५२—वाऽन्यस्य संयोगादेः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६८॥

(२४७) सूत्र में कहे घु संज्ञक आदि से अन्य संयोगादि आकारान्त धातुओं के आकार को एकार विकल्प करके हो कित् ङित् लिङ् परे हो तो। ग्लेयात्। ग्लायात्। म्लेयात्। म्लायात्। लुङ् में (२५१) सक् और इट् होकर। अग्लासीत्। अग्लासिष्टाम्। अम्लासीत्। अग्लास्यत् [द्यै] न्यक्करणे (नीचों का तिरस्कार करना) द्यायति। दद्यौ। दद्यिथ। दद्याथ। द्याता। द्यास्यति। द्यासति। द्यासाति। द्यायतु। अद्यायत्। द्यायेत्। द्येयात्। द्यायात्। अद्यासीत्। अद्यासिष्टाम्। अद्यासिषुः। अद्यास्यत्। [द्रै] स्वप्ने (सोना) द्रायति। दद्रौ। द्राता। द्रेयात्। द्रायात्। अद्रासीत्। (धै) तृप्तौ। धायति। दधौ। धेयात्। धायात्। अधासीत् [ध्यै] चिन्तायाम् (विचारना) ध्यायति। दध्यौ। ध्याता। ध्यास्यति। ध्यासति। ध्यासाति। ध्यायतु। अध्यायत्। ध्यायेत्। ध्येयात्। ध्यायात्। अध्यासीत्। अध्यास्यत्। [रै] शब्दे। रायति। ररौ। रातासि। रायात्। अरासीत्। [स्त्यै, ष्ट्यै] शब्दसङ्घातयोः (शब्द और समुदाय) इन दोनों में एक धातु षोपदेश है उस को भी सत्व होने पश्चात् एक ही प्रकार के रूप होते हैं षोपदेश का फल णिजन्त और सन्नन्त प्रक्रिया में आवेगा। स्त्यायति। तस्त्यौ। स्त्येयात्। स्त्यायात्। अस्त्यासीत्। [खै] खदने (खाना) खायति। चखौ। चखतुः। चखुः। चखिथ। चखाथ। खातासि। खास्यति। खासति। खासाति। खायतु। अखायत्। खायेत्। खायात्। अखासीत्। अखास्यत् [क्षै, जै, षै] क्षये (नाश) क्षायति। चक्षौ। क्षेयात्। क्षायात्। अक्षासीत्। जायति। जजौ। जायात्। अजासीत्। यहां भी षै धातु को आकार होकर सा हो जाता है परन्तु (२४७। २४८) सूत्रों में सा धातु के ग्रहण से दिवादि गण का (षो) लिया जाता है। सायति। ससौ। सायात्। असासीत् [कै, गै] शब्दे। कायति। चकौ। कायात्। अकासीत्। गायति। जगौ। गायात्। अगासीत् [शै, श्रै] पाके (पकाना) शायति। शशौ। शायात्। अशासीत्। श्रायति। शश्रौ। श्रातासि। श्रास्यति। श्रासति। श्रासाति। श्रायति। श्रायाति। श्रायतु। अश्रायत्। श्रायेत्। श्रेयात् (२४७) श्रायात्। अश्रासीत्। अश्रास्यत् [पै, ओवै] शोषणे (सोखना) पायति। पपौ। पपतुः। पपुः। पपिथ। पपाथ। पपथुः।

पप। पपौ। पपिथ। पपिम। पातासि। पास्यति। पासति। पासाति। पायति। पायाति। पायतु। अपायत्। पायेत्। और पा धातु से भी उपदेश में आकारान्त पा धातु का ग्रहण (२४७) सूत्र में होता है। पायात्। इस कारण एत्व न हुआ अपासीत्। अपासिष्टाम्। अपासिषुः। अपास्यात्। ओवै धातु में ओकार इत् जाता है प्रयोजन कृदन्त में आवेगा। वायति। ववौ। वायात्। अवासीत् [ष्टै] वेष्टने (लपेटना) स्तायति। तस्तौ। स्तेयात्। स्तायात्। अस्तासीत् [ष्णै] वेष्टने शोभायां चेत्येके। किन्हीं के मत में ष्णै धातु का शोभा अर्थ भी है। स्नायति। सस्नौ। स्नेयात्। स्नायात्। अस्नासीत्। अस्नास्यत्। [दैप्] शोधने (शोधना) इस में प् की इत्संज्ञा होती है और घुसंज्ञा का निषेध होने से एकार का निषेध (२४७) और सिच्लुक् (८९) नहीं होता दायति। ददौ। दायात्। अदासीत् [पा] पाने (पीना) यहां पा के स्थान में पिब आदेश (२३१) पिबति। पिबतः। पिबन्ति। पपौ पपतु। पपुः। पपिथ। पपाथ। पातासि। पास्यति। पासति। पासाति। पिबति। पिबाति। पिबतु। अपिबत्। पिबेत्। पेयात्। पेयास्ताम्। पेयासुः। अट्+पा+तिप् = अपात् (८९) सिच् का लुक्। अपाताम्। अपुः। अपास्यत् [घ्रा] गन्धोपादाने (गन्ध का ग्रहण वा गन्ध के द्वारा किसी पदार्थ का ग्रहण करना) घ्रा के स्थान में (२३१) जिघ्र आदेश। जिघ्रति। जिघ्रतः। जिघ्रन्ति। जघ्रौ। जघ्रतुः। घ्राता। घ्रास्यति। घ्रासति। घ्रासाति। जिघ्रति। जिघ्राति। जिघ्रतु। अजिघ्रत्। जिघ्रेत्। संयोगादि होने से एकार का विकल्प (२५३) घ्रेयात्। घ्रायात्। और सिच् लुक् का विकल्प (२४९) अघ्रात्। अघ्राताम्। अघ्रुः। अघ्राः। अघ्रातम्। अघ्रात। अघ्राम्। अघ्राव। अघ्राम। अघ्रासीत्। अघ्रासिष्टाम्। अघ्रासिषुः। अघ्रास्यत् [ध्मा] शब्दाग्निसंयोगयोः (शब्द और अग्नि के साथ वायु का संयोग) ध्मा के स्थान में धम (२३१) आदेश। धमति। धमतः। धमन्ति। दध्मौ। दध्मतुः। दध्मुः। दध्मिथ। दध्माथ। दध्मथुः। दध्म। दध्मौ। दध्मिव। दध्मिम। ध्मातासि। ध्मास्यति। ध्मासति। ध्मासाति। धमति। धमाति। धमतु। अधमत्। धमेत्। ध्मेयात्। ध्मायात्। अध्मासीत्। अध्मास्यत् [ष्ठा] गतिनिवृत्तौ (ठहर जाना) (२३१) से तिष्ठ होकर तिष्ठति। तिष्ठतः। तिष्ठन्ति। तस्थौ। तस्थतुः। स्थातासि। स्थास्यति। स्थासति। स्थासाति। तिष्ठति। तिष्ठाति। तिष्ठतु। अतिष्ठत्। तिष्ठेत्। स्थेयात् (२४७) एकारादेश होता है। अस्थात् (८९) सिच्लुक्। अस्थाताम्। अस्थुः। अस्थास्यत् [म्ना] अभ्यासे (अभ्यास करना) मन आदेश (२३१) मनति। मम्नौ। म्नाता। म्नास्यति।

म्नासति । मनति । मनाति । मनतु । अमनत् । मनेत । म्नेयात् । म्नायात् । अम्नासीत् । अम्नास्यत् [दाण] दाने (देना) दाण् को यच्छ (२३१) यच्छति । यच्छतः । यच्छन्ति । प्रयच्छति । ददौ । दातासि । दास्यति । दासति । दासाति । यच्छति । यच्छाति । यच्छतु । अयच्छत् । यच्छेत् । इस धातु में णकार अनुबन्ध यच्छ आदेश विधायक सूत्र में विशेष बोध के लिये है । निरनुबन्ध दारूप की घुसंज्ञा (२४६) होकर एकार (२४७) होता है । देयात् । देयास्ताम् और घुसंज्ञा से ही सिच्लुक् अदात् । अदाताम् । अदुः । अदाः । अदास्यत् ॥ २५२ ॥

२५३ – ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १० ॥

लिट् लकार परे हो तो ऋकारान्त संयोगादि धातु को गुण होवे । लिट् की कित् संज्ञा (१३७) होने से गुण (४५) नहीं प्राप्त है इसलिये यह सूत्र है । और णल् प्रत्यय में जहां वृद्धि प्राप्त है वहां इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती पूर्वविप्रतिषेध मानकर वृद्धि ही हो जाती है । जह्वार । जह्वरतुः । जह्वरुः । थल् में भारद्वाज के मत में इट् का निषेध (१४९) और अन्यों के मत में इट् (१५७) नहीं होता । जह्वर्थ । जह्वरथुः । जह्वर । जह्वार । जह्वर । जह्वरिव । जह्वरिम । ह्वर्तासि । लिट् में गुण (२३८) ह्वरिष्यति । ह्वार्षति । ह्वार्षाति । ह्वर्षति । ह्वर्षाति । ह्वरति । ह्वराति । ह्वरतु । अह्वरत् । ह्वरेत् ॥ २५३ ॥

२५४–गुणोर्त्तिसंयोगाद्योः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २९ ॥

ऋ धातु और संयोगादि ऋकारान्त धातु को गुण होवे यक् और कित् आर्द्धधातुक लिङ् परे हो तो । ह्वर्यात् । ह्वर्यास्ताम् । ह्वर्यासुः । लुङ् में वृद्धि (१५८) होकर । अह्वार्षीत । अह्वार्ष्टाम् । अह्वार्षुः । अह्वार्षीः । अह्वार्ष्टम् । अह्वार्ष्ट । अह्वार्षम् । अह्वार्ष्व । अह्वार्ष्म । अह्वरिष्यत् [स्वृ] शब्दोपतापयोः (शब्द और पीड़ा देना) स्वरति । स्वरतः । स्वरन्ति । वलादि लिट् लकार में विकल्प से इट् (१४०) सस्वार । सस्वरतुः (२५३) गुण । सस्वरुः । सस्वरिथ । सस्वर्थ । सस्वर । सस्वार । सस्वर ॥ २५४ ॥

२५५–श्र्युकः किति ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११ ॥

श्रिञ् और एकाच् उगन्त धातु से परे जो कित् आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम न होवे । (१४०) सूत्र यद्यपि इस सूत्र से पर है तथापि उस विकल्प को बाध के

पीछे विधान के प्रथम निषेध प्रकरण के आरम्भ सामर्थ्य से इट् का निषेध इस सूत्र से प्राप्त है फिर (१४८) सूत्र के नियमानुसार वसु मसु में नित्य इट् होता है। सस्वरिव । सस्वरिम । स्वरिता । स्वर्त्ता । स्वरिष्यति । यहां परत्व से नित्य इट् (२३८) होता है । स्वार्षति । स्वार्षाति । स्वरतु । अस्वरत् । स्वरेत् । स्वर्यात् (२५४) अस्वारीत् । अस्वारिष्टाम् । अस्वार्षीत् । अस्वार्ष्टाम् । अस्वरिष्यत् । [स्मृ] चिन्तायाम् (स्मरण करना) स्मरति । सस्मार । सस्मरतुः । सस्मरुः । सस्मर्थ । स्मर्त्ता । स्मरिष्यति । स्मार्षति । स्मार्षाति । स्मरतु । अस्मरत् । स्मरेत् । स्मर्यात् । अस्मार्षीत् । अस्मार्ष्टाम् । अस्मरिष्यत् । [वृ] संवरणे (ढांकना) वरति । वरतः । वरन्ति । ववार । वव्रतुः । वव्रुः । ववर्थ । वर्त्तासि । वरिष्यति । वार्षति । वार्षाति । वरतु । अवरत् । वरेत् । व्रियात् (२३९) रिङ् । अवार्षीत् । अवरिष्यत् । [सृ] गतौ (२३१) से सृ को धौ आदेश शीघ्र चलने में होकर । धावति । धावतः । अन्यत्र । सरति । ससार । सस्रतुः । सस्रुः । ससर्थ (१४८) सूत्र के नियम से इट् का निषेध । ससृव । ससृम । सर्त्ता । सरिष्यति । सार्षति । सार्षाति । धावति । धावाति । धावतु । सरतु । अधावत् । असरत् । धावेत् । सरेत् । स्रियात् । स्रियास्ताम् ॥ २५५ ॥

२५६—सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५६ ॥

सृ, शासु और ऋ धातु से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश होवे परस्मैपदविषय में । इस से अङ् होकर अट्—सृ—अङ्—तिप् । इस अवस्था में अङ् के ङित् होने से गुण की प्राप्ति नहीं है इसलिये ॥ २५६ ॥

२५७—ऋदृशोऽङि गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १६ ॥

ऋवर्णान्त और दृश धातु को गुण होवे अङ् परे हो तो । यहां ऋवर्णान्त सृ धातु को अर् गुण होकर । असरत् । असरताम् । असरन् । असरः । असरतम् । असरत । असरम् । असराव । असराम । असरिष्यत् । असरिष्यताम् । असरिष्यन् [ऋ] गतिप्रापणयोः । यहां प्रापण अर्थ के पृथक् कहने से गमन और प्राप्ति दो ही अर्थ इस धातु के समझे जाते हैं अर्थात् ज्ञान अर्थ नहीं (२३१) से ऋच्छ आदेश होकर । ऋच्छति । ऋच्छतः । ऋच्छन्ति । ऋ—णल् । यहां परत्व से ऋ को आर् वृद्धि होकर आकार को द्वित्व और सवर्णदीर्घ होकर । आर ॥ २५७ ॥

२५८—ऋच्छत्यृताम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ११ ॥

तुदादि गण का ऋच्छ, ऋ और ऋकारान्त धातुओं को गुण हो लिट् परे हो तो ।

यहां भी कित् लिट् में गुण नहीं प्राप्त है इसलिये यह सूत्र है। अर् + अर्+अतुस्= आरतुः। आरुः (१४८) सूत्र के नियम से लिट् में सर्वत्र नित्य इट् प्राप्त है। भारद्वाज के मत में थल् में इट् का निषेध (१४९) प्राप्त और अन्य लोगों के मत में थल् में इट्का निषेध (१५७) प्राप्त है इन सब का अपवाद ॥ २५८ ॥

२५९–इडत्त्यर्त्तिव्ययतीनाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६६ ॥

अद्, ऋ और व्येञ् इन धातुओं से परे थल् को नित्य इडागम होवे। आरिथ। आरथुः। आर २। आरिव। आरिम। यहां व, म में (१४८) सूत्र के नियम से ही नित्य इट् होता है। अर्त्ता। अर्त्तारौ। अर्त्तारः। अर्त्तासि। अरिष्यति (२६८) इट्। आर्षति। आर्षाति। अर्षति। अर्षाति। अर्षत्। अर्षात्। ऋच्छति। ऋच्छाति। ऋच्छतु। आर्च्छत्। ऋच्छेत्। अर्यात् (२५४) गुण। लुङ् में च्लि के स्थान में अङ् (२५६) और अङ् के परे गुण (२५७) होकर आरत्। आरताम्। आरन्। आरः। आरतम्। आरत। आरम्। आराव। आराम। आरिष्यत्। [गृ, घृ] सेचने (सींचना) गरति। घरति। जगार। जग्रतुः। जगर्थ। जघर्थ। जग्रिव। जग्रिम। गर्त्तासि। गरिष्यति। गार्षति। गार्षाति। गरतु। अगरत्। गरेत्। ग्रियात्। (२३९) रिङ्। घ्रियात्। अगार्षीत् (१५८) वृद्धि होकर। अगार्ष्टाम्। अगार्षुः। अघार्षीत्। अगरिष्यत् [ध्वृ] हूर्छने। ध्वरति। ध्वरतः। ध्वरन्ति। दध्वार। दध्वरतुः (२५३) गुण। दध्वरुः। ध्वर्त्ता। ध्वरिष्यति। ध्वार्षति। ध्वार्षाति। ध्वरतु। अध्वरत्। ध्वरेत्। ध्वर्यात् (२५४) गुण। ध्वर्यास्ताम्। ध्वर्यासुः। अध्वार्षीत्। अध्वार्ष्टाम्। अध्वरिष्यत् [स्रु] गतौ। स्रवति। स्रवतः। स्रवन्ति। सुस्राव। सुस्रुवतुः। (२५१) उवङ्। सुस्रुवुः। सुस्रोथ। सुस्रुवथुः। सुस्रुव। सुस्राव। सुस्रव (१४८) सूत्र के नियम से इट् का निषेध। सुस्रुव। सुस्रुम। स्रोतासि। स्रोष्यति। स्रौषति। स्रौषाति। स्रोषति। स्रोषाति। स्रवति। स्रवाति। स्रवतु। अस्रवत्। स्रवेत्। स्रूयात् (१६०) दीर्घ लुङ्में (१७९) सूत्र से च्लि के स्थान में चङ् और द्विर्वचन (१८०) हो कर। अट्+स्रु+स्रु+चङ्+तिप् = असुस्रवत्। अस्रोष्यत् [षु]प्रसवैश्वर्य्ययोः (उत्पत्ति और सामर्थ्य का होना) सवति। सुषाव। सुषुवतुः। सुषुवुः। सुषोथ। सुषुविव। सोता। सोष्यति। सौषति। सौषाति। सवति। सवाति। सवतु। असवत्। सवेत्। सूयात् (१६०) दीर्घ। असौषीत्। असौष्टाम्। असौषुः। असोष्यत् [श्रु] श्रवणे (सुनना) शप्विकरण प्राप्त है उसका बाधक ॥ २५९ ॥

२६०–श्रुवः शृ च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७४ ॥

श्रु धातु से श्नु प्रत्यय और श्रु धातु को शृ आदेश होवे। श्नु प्रत्यय में शकार की इत्संज्ञा होकर शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा हो जाती है फिर ऋकार से णत्व(२०२) होकर। शृ+णु+तिप् (२१) गुण=शृणोति। शृणुतः। झि प्रत्यय में उवङ् (१५१) आदेश प्राप्त है इसलिये ॥ २६० ॥

२६१-हुश्नुवोः सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ८७ ॥

संयोग जिस के पूर्व न हो ऐसे हु और श्नु प्रत्ययान्त अनेकाच् धातु के उवर्ण को यण् आदेश होवे अजादि सार्वधातुक परे हो तो। शृण्वन्ति। शृणोषि। शृणुथः। शृणुथ। शृणोमि। शृणु+वस्=शृण्वः (२००) उकार लोप का विकल्प। शृणुवः। शृण्मः। शृणुमः। शुश्राव। शुश्रुवतुः। (१५१) उवङ्। शुश्रुवुः। शुश्रोथ। शुश्रुवथुः। शुश्रुव। शुश्राव। शुश्रव। शुश्रुव। शुश्रुम। श्रोता। श्रोतारौ। श्रोतासि। श्रोष्यति। श्रौषति। श्रौषाति। शृण्वति। शृण्वाति। शृणोतु। शृणुतात्। शृणुताम्। शृण्वन्तु। शृणु (२०१) हिलुक्। शृणुतात्। शृणुतम्। शृणुत। शृणवानि। शृणवाव। शृणवाम। अशृणोत्। अशृणुताम्। अशृण्वन्। अशृणोः। अशृणुतम्। अशृणुत। अशृणवम्। अशृण्व। अशृणुव। अशृण्म। अशृणुम। शृणुयात्। शृणुयाताम्। शृणुयुः। शृणुयाः। शृणुयातम्। शृणुयात। शृणुयाम्। शृणुयाव। शृणुयाम। श्रूयात् (१६०) दीर्घ। अश्रौषीत् (१५८) वृद्धि। अश्रौष्टाम्। अश्रौषुः। अश्रोष्यत् [ध्रु] स्थैर्य्ये (स्थिर होना) ध्रुवति। दुध्राव। दुध्रुवतुः। दुध्रोथ। दुध्रुविथ। दुध्रुविव। ध्रोता। ध्रोष्यति। ध्रौषति। ध्रौषाति। ध्रुवति। ध्रुवाति। ध्रुवतु। अध्रुवत्। ध्रुवेत्। ध्रूयात्। अध्रौषीत्। अध्रोष्यत् [दु, द्रु] गतौ। दवति। द्रवति। दुदाव। दुद्राव। दुदुवतुः। दुद्रुवतुः। दुदोथ। दुदविथ। दुदुविव। दुद्रोथ। यहां (१४८) नियम से नित्य इट् का निषेध हो जाता है परन्तु भारद्वाज के मत में ऋकारान्त के निषेध का नियम होने से थल् में इट् प्राप्त है उस का भी क्रयादि नियामक सूत्र अपवाद जाना। द्राता। द्रातासि। द्रोष्यति। द्रौषति। द्रौषाति। द्रवतु। अद्रवत। द्रवेत्। द्रूयात्। दूयात्। अदौषीत्। लुङ् में (१७६) चङ् और (१८०) द्विर्वचन होकर। अदुद्रुवत्। अदुद्रुवताम्। अदुद्रुवन् अद्रोष्यत् [जि, ज्रि] अभिभवे (तिरस्कार) जयति। जयतः। जयन्ति। लिट् में कुत्व (१९८) जिगाय। जिग्यतुः। जिग्युः। जिगेथ। जिगयिथ। जिज्राय। जिज्रियतुः। जिज्रेथ। जिज्रयिथ। जेतासि। ज्रेतासि। जेष्यति। ज्रेष्यति। जेषति। जेषाति। जयतु अजयत्। जयेत्। जीयात् (१६०) दीर्घ। अजैषीत्। अजेष्यत्। अज्रैषीत्। अज्रेष्यत्।

इति धेटादयोऽनुदात्ता उदात्तेतः। परस्मैपदिनः षट्चत्वारिंशत् समाप्ताः ये धेट् आदि ४६ धातु अनिट् परस्मैपदी समाप्त हुए॥

अथ डीङन्ता ङितस्त्रयोविंशतिः। अब डीङ् पर्यन्त २३ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [ष्मिङ्] ईषद्धसने (थोड़ा हँसना) स्मयते (२१) गुण। स्मयेते। स्मयन्ते। सिष्मिये। सिष्मायिढ्वे। सिष्मियिध्वे। स्मेतासे। स्मेष्यते। स्मैषतै। स्मैषातै। स्मयतै। स्मयातै। स्मयताम्। अस्मयत। स्मयेत। स्मेषीष्ट। स्मेषीढ्वम्। अस्मेष्ट। अस्मेढ्वम्। अस्मेष्यत। [गुङ्] अव्यक्ते शब्दे। गवते। जुगुवे। जुगुविढ्वे। जुगुविध्वे। गोतासे। गोष्यते। गौषतै। गौषातै। गवतै। गवातै। गवताम्। अगवत। गवेत्। गोषीष्ट। गोषीढ्वम्। अगोष्ट। अगोढ्वम्। अगोष्यत [गाङ्] गतौ। इस धातु के अनुबन्ध का लोप होने पश्चात् आकारान्त के रहने से शप् के अकार के साथ सवर्ण दीर्घ एकादेश होता है। गा+शप्+त=गाते। गाते। गाते (१२३) अत्। गासे। गाथे। गाध्वे। गे। गावहे। गामहे। गा+एश् यहां आकारलोप (२४४) और द्विर्वचन की व्यवस्था (२४५) होकर। जगे। जगाते। जगिरे। जगिषे। जगाथे। जगिध्वे। जगे। जगिवहे। जगिमहे। गाता। गास्यते। गासतै। गासातै। गासते। गासाते। गातै २। गाताम् ३। अगात। अगाताम्। अगात। गेत। गेयाताम्। गेरन्। गासीष्ट। अगास्त। अगासाताम्। अगासत। अगास्थाः। अगासाथाम्। अगाध्वम्। अगासि। अगास्वहि। अगास्महि। अगास्यत। [उङ्, कुङ्, खुङ्, गुङ्, घुङ्, ङुङ्] शब्दे। अवते। ऊवे। ऊवाते। ऊविरे। ऊविढ्वे। ऊविध्वे। ओतासे। ओष्यते। औषतै। औषातै। अवतै। अवातै। अवताम्। अवेताम्। अवन्ताम्। आवत। अवेत। ओषीष्ट। ओषीढ्वम्। औष्ट। औषाताम्। औषत। औढ्वम्। औष्यत। कवते। चुकुवे। कोतासे। कोष्यते। कौषतै। कौषातै। कवताम्। अकवत। कवेत। कोषीष्ट। अकोष्ट। अकोष्यत। खवते। चुखुवे। गवते। जुगुवे। घवते। जुघुवे। ङवते। उङुवे। ङोता। ङोष्यते। ङोषतै। ङोषातै। ङवताम्। अङवत। ङवेत। ङोषीष्ट। अङोष्ट। अङोष्यत [च्युङ्, ज्युङ् प्रुङ्, प्लुङ्] गतौ [क्लुङ्] इत्येके [रुङ्] गतिरेषणयोः (गति और हिंसा) च्यवते। ज्यवते। प्रवते। प्लवते। क्लवने। रवते। रुरुवे। रुरुविढ्वे। रुरुविध्वे। और रुधातु सेट् अनिट् व्यवस्था में पढ़ा है वहां यु, रु आदि अदादि धातुओं के साहचर्य से अदादि का ही रु धातु भी लिया जाता है। रोतासे। रोष्यते। रौषतै। रौषातै। रवताम्। अरवत। रवेत। रोषीष्ठ। रोषीढ्वम्। अरोष्ट। अरोढ्वम्। अरोष्यत [धृङ्] अवध्वंसने

(नाश करना) धरते । दध्रे । धर्त्तासे । धारिष्यते (२३८) इट् । धार्षतै । धार्षातै । धरताम् । अधरत । धरेत । धृषीष्ट (२४०) इस से कित्वत् होकर (४९) गुण का निषेध होता है । अधृत (२४० । २४१) अधृषाताम् । अधृषत । अधरिष्यत [मेङ्] प्रणिदाने (किसी पदार्थ के बदले में दूसरा वस्तु देना) मयते । मयेते । मयन्ते । ममे (२४२ । २४४ । २४५) ममाते । ममिरे । मातासे । मास्यते । मासतै । मासातै । मयताम् । अमयत । मयेत । मासीष्ट । अमास्त । अमासाताम् । अमासत । अमास्यत [देङ्] रक्षणे । दयते ॥ २६१ ॥

२६२—दयतेर्दिगि लिटि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९ ॥

दयति धातु को दिगि आदेश होवे लिट् लकार परे हो तो । इस सूत्र में (दय; दानगतिरक्षणहिंसादानेषु) इस लिखित धातु का ग्रहण इसलिये नहीं होता कि दय धातु से लिट् में आम् प्रत्यय कह चुके हैं और यह सूत्र द्विर्वचन का अपवाद है दिगि+एश्=दिग्ये (१८६) यण् । दिग्याते । दिग्यिरे । दातासे । दास्यते । दासतै । दासातै । दयताम् । अदयत । दयेत । दासीष्ट । दा धातु की प्रकृति होने से इस की घु संज्ञा (२४६) होकर ॥ २६२ ॥

२६३—स्थाघ्वोरिच्च ॥ अ० ॥ १ । २ । १७ ॥

स्था धातु और घुसंज्ञक धातुओं को इकारादेश और इन से परे जो सिच् प्रत्यय सो कित्वत् हो आत्मनेपदविषय में । स्था धातु प्रथम लिख चुके हैं परन्तु वहां आत्मनेपद के न होने से इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई पदव्यवस्थाप्रक्रिया में काम आवेगा । यहां दा धातु के आकार को इकार होकर । अट् + दि + सिच्+त=अदित (२४१) सूत्र से सिच् के सकार का लोप । अदिषाताम् । अदिषत । अदिथाः । अदिषाथाम् । अदिध्वम् । अदिषि । अदिष्वहि । अदिष्महि । [श्यैङ्] गतौ । श्यायते । शिश्ये । श्यातासे । श्यास्यते । श्यासतै । श्यासातै । श्यायताम् । अश्यायत । श्यायेत । श्यासीष्ट । अश्यास्त । अश्यास्यत [प्यैङ्] वृद्धौ (बढ़ना) प्यायते । पप्ये । प्यातासे । अप्यास्त । अप्यास्यत [त्रैङ्] पालने । (रक्षा) त्रायते । तत्रे । त्राता । त्रास्यते । त्रासतै । त्रासातै । त्रायताम् । अत्रायत । त्रायेत । त्रासीष्ट । अत्रास्त । अत्रास्यत । ष्मिङ्प्रभृतयोऽनुदात्ता आत्मनेपदिनः । ष्मिङ् से यहांतक सब धातु अजन्त अनिट् जानो ॥

[पूङ्] पवने (शुद्धि) पवते । पुपुवे । पुपुविढ्वे । पुपुविध्वे । पवितासे । पविष्यते ।

पाविषतै । पाविषातै । पविषतै । पविषातै । पवतै । पवातै । पवताम् । अपवत । पवेत। पविषीष्ट । अपविष्ट। अपविष्यत । [मूङ्] बन्धने (बांधना) मवते । [डीङ्] विहायसागतौ । (आकाश में उड़ना) डयते । डिड्ये । डयिता । डयिष्यते। डायिषतै । डायिषातै । डायिषते डायिषाते । डयताम् । अडयत । डयेत । डयिषीष्ट । अडायिष्ट । अडयिष्यत । ये पूङ् आदि तीन धातु सेट् हैं ॥ [तॄ] प्लवनसंतरणयोः (कूदना और तरना) उदात्तः परस्मैपदी । यह धातु सेट् परस्मैपदी है । तरति । तरतः । तरन्ति । ततार । यहां प्रथम वृद्धि होकर द्वित्व होता है । तृ—अतुस् । यहां अप्राप्त गुण (२५८) और एत्वाभ्यास लोप (१६४) होकर । तेरतुः । तेरुः । तेरिथ । तेरथुः । तेर । ततार । ततर । तेरिव । तेरिम ॥ २६३ ॥

२६४—वॄतो वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३८ ॥

वृङ्, वृञ् और ॠकारान्त धातुओं से परे जो इट् का आगम उस को विकल्प करके दीर्घ होवे परन्तु लिट् लकार परे न हो । तरीतासि । तरितासि । इस सूत्र में लिट् का निषेध इसलिये है कि तेरिथ । यहां दीर्घ न होवे । तरीष्यति । तरिष्यति । तारीषति । तारीषाति । तारिषति । तारिषाति । तरीषति । तरीषाति । तरिषति । तरिषाति । तरति । तराति । तरतु । अतरत् । तरेत् ॥ २६४ ॥

२६५—ॠत इद्धातोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । १०० ॥

ॠकारान्त धातु अङ्ग को इत् आदेश होवे। इस इत् आदेश के कहने में कुछ विशेष नहीं है परन्तु जहां गुण वृद्धि की प्राप्ति है वहां तो परविप्रतिषेध मानके गुण वृद्धि ही होते हैं और जहां गुण वृद्धि की प्राप्ति नहीं वहां इत्व होता है। तिर्+या+तिप् = तीर्यात् (१९७) दीर्घ । तीर्यास्ताम् । तीर्यासुः ॥ २६५ ॥

२६६—सिचि च परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४० ॥

परस्मैपदविषय में सिच् परे हो तो वृङ् वृञ् और ॠकारान्त धातुओं से परे इट् को दीर्घ न होवे। (२६४) सूत्र से सर्वत्र दीर्घ प्राप्त है उस का विशेष विषय में बाधक है । अतारीत् । अतारिष्टाम् । अतारिषुः । अतरीष्यत् ॥ २६६ ॥

अथाष्टावनुदात्तेतः । अब आठ ८ धातु सेट् आत्मनेपदी कहते हैं [गुप] गोपने । यहां गोपन धातु का स्वार्थ लिया जाता है सन् के विना इस का प्रयोग स्वतन्त्र कहीं नहीं आता सन्नन्त का अर्थ निन्दा होता है वही इस का स्वार्थ है । [तिज] निशाने इस धातु का स्वार्थ सहन अर्थ है ॥ २६६ ॥

२६७–गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५ ॥

गुप्, तिज् और कित् इन तीन धातुओं से स्वार्थ में सन् प्रत्यय हो । गुप् धातु से निन्दा और तिज् से सहने अर्थ में सन् प्रत्यय जानो । गुप्+सन् ॥ २६७ ॥

२६८—सन्यङोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ९ ॥

सन् और यङ् प्रत्यय परे हों तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव को और अजादि के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होवे । जुगुप्स (१०७) अभ्यास को चवर्गादेश होकर इस की धातु संज्ञा (१६७) होकर अनुदात्त अनुबन्ध के केवल गुप् आदि में चरितार्थ न होने से सन्नन्त धातुओं से भी आत्मनेपद होते हैं । जुगुप्स+शप् + त=जुगुप्सते । जुगुप्सेते । जुगुप्सन्ते । जुगुप्साञ्चक्रे (१६९ । १७०) जुगुप्साम्बभूव । जुगुप्सामास । जुगुप्सितासे । जुगुप्सिष्यते । जुगुप्सिषतै । जुगुप्सिषातै । जुगुप्सताम् । अजुगुप्सत । जुगुप्सेत । जुगुप्सिषीष्ट । अजुगुप्सिष्ट । अजुगुप्सिष्यत । तिज्—तिज्—सन् । यहां द्वितीय चवर्ग जकार को (खरि च) सूत्र से क् होकर सन् के सकार को ष (२०५) होकर तितिक्ष+शप्+त = तितिक्षते । तितिक्षाञ्चक्रे । तितिक्षामास । तितिक्षाम्बभूव । तितिक्षितासे । इत्यादि [मान] पूजायाम् (सत्कार) [बध] बन्धने (बांधना) ॥ २६८ ॥

२६९–मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ अ० ॥३।१।६॥

मान, बध, दान और शान धातुओं से सन् प्रत्यय होवे और सन् प्रत्यय के परे इन के अभ्यास को दीर्घ होवे । मान धातु से जानने की इच्छा में और बध धातु से चित्तविकार अर्थ में सन् जानो । मान धातु के अभ्यास को प्रथम ह्रस्व (३९) होकर अभ्यास के अकार को इकार (१८२) होता है उसी इकार को (मानबध०) सूत्र से दीर्घ जानो । मीमांसते । मीमांसेते । मीमांसन्ते । मीमांसाञ्चक्रे । मीमांसाम्बभूव । मीमांसामास । बध् + बध्+सन्+शप्+त=बीभत्सते (२०४) भष्भाव अभ्यास को दीर्घ और चर्त्व होकर । बीभत्सेते । बीभत्साञ्चक्रे । बीभत्सितासे । बीभत्सिष्यते । बीभत्सिषतै । बीभत्सिषातै । बीभत्सताम् । अबीभत्सत । बीभत्सेत । बीभत्सिषीष्ट । अबीभत्सिष्ट । अबीभत्सिष्यत । गुप् आदि धातुओं से परे सन् प्रत्यय को इट् का आगम(४६)और पूर्व को गुण प्राप्त है सो गुप् आदि धातुओं से परे सन् प्रत्यय के न कहने से सन् की आर्द्धधातुक संज्ञा नहीं होती जो धातु से विहित हैं उन्हीं प्रत्ययों की आर्द्धधातुक संज्ञा (४९) कही है , और आर्द्धधातुक संज्ञा के न होने से इट् और गुण दोनों ही नहीं

होते। गुपादयश्चत्वार उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः। ये गुप् आदि ४ चार सेट् आत्मनेपदी धातु समाप्त हुए [रभ] राभस्ये (शीघ्र करना) रभते। रभेते। रेभे। रेभाते। रभ् + तास्+डा—रब्धा (१४१) धत्व और भकार को जश् बकार होता है। रब्धारौ। रब्धासे। रप्स्यते। (चर्) राप्सते। राप्साते। रभताम्। अरभत। रभेत। रप्सीष्ट। अरब्ध (१४२) सलोप। अरप्साताम्। अरब्धाः। अरप्साथाम्। अरब्ध्वम्। अरप्सि। अरप्स्वहि। अरप्स्महि। अरप्स्यत। [डुलभष्] प्राप्तौ। डु की इत्संज्ञा (१५०) और ष् की इत्संज्ञा का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा। लभते। लभेते। लभन्ते। लभसे। लेभे। लेभाते। लेभिरे। लेभिषे। लब्धासे। लप्स्यते। लाप्सतै। लाप्सातै। लभताम्। अलभत। लभेत। लप्सीष्ट। अलब्ध। अलप्साताम्। अलप्स्यत (ष्वञ्ज) परिष्वङ्गे (लपेटना) ॥ २६९ ॥

२७० — दंशसञ्जस्वञ्जां शपि ॥ अ० ॥ ६। ४। २५ ॥

दंश, सञ्ज और स्वञ्ज धातुओं के उपधा नकार का लोप होवे शप् प्रत्यय परे हो तो। स्वजते। स्वजेते। स्वजन्ते। यह धातु संयोगान्त है इस कारण इस से परे लिट् की कित् संज्ञा (१३७) नहीं प्राप्त है और कित्संज्ञा के न होने से उपधा नकार का लोप भी नहीं पाता इसलिये ॥ २७० ॥

२७१ — वा० — श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनामिति वक्तव्यम् ॥

श्रन्थ, ग्रन्थ, दम्भ, स्वञ्ज इन धातुओं से परे जो लिट् सो कित्वत् हो। यहां स्वञ्ज धातु से परे कित्व होकर उपधा नकार का लोप (१३९) होकर। सस्वजे। सस्वजाते। सस्वजिरे। इस धातु के अनिट् होने से स्वञ्ज + तास्+डा = स्वङ्क्ता। कुत्व चर्त्व और परसवर्ण। स्वङ्क्तासे। स्वङ्क्ष्यते। स्वङ्क्षतै। स्वङ्क्षातै। स्वजताम्। अस्वजत। स्वजेत। स्वङ्क्षीष्ट। अस्वङ्क्त। अस्वङ्क्ष्यत। [हद] पुरीषोत्सर्गे (हगना) हदते। जहदे। जहदाते। जहदिरे। हत्ता। हत्स्यते। हात्सतै। हात्सातै। हदताम्। अहदत। हदेत। हत्सीष्ट। अहत्त। अहत्साताम्। अहत्सत। अहत्स्यत। रभादयश्चत्वारोऽनुदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः। ये रभ आदि अनिट् आत्मनेपदी चार धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिनः पंचदश। अब १५ पन्द्रह धातु परस्मैपदी कहते हैं [ञिष्विदा] अव्यक्ते शब्दे। उदात्तः परस्मैपदी। स्वेदति। सिस्वेद। सिस्विदतुः। सिस्विदुः। स्वेदिता। स्वेदिष्यति। स्वेदिषति। स्वेदिषाति। स्वेदतु। अस्वेदत्। स्वेदेत्। स्विद्यात्।

अस्वेदीत् । अस्वेदिष्यत् । [स्कन्दिर्] गतिशोषणयोः (गति और शोखना)स्कन्दति । चस्कन्द । चस्कन्दतुः । चस्कन्दिथ ॥ २७१ ॥

२७२—झरो झरि सवर्णे ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६५ ॥

हल् से परे जो झर् उस का लोप हो सवर्णी झर् परे हो तो । स्कन्द्+थल् = स्कन्थ । यहां नकार से परे दकार का लोप होता है । स्कन्तासि । स्कन्त्स्यति । स्कन्त्सति । स्कन्त्साति । स्कन्दतु । अस्कन्दत् । स्कन्देत् । स्कद्यात् (१३९) नकार का लोप । लुङ् में इरित् होने से अङ् (१३८) विकल्प । अस्कदत् (१३९) नलोप । पक्ष में । अस्कान्त्सीत् । अस्कान्ताम् । अस्कान्त्सुः (१३५) वृद्धि । अस्कान्त्सीः । अस्कान्तम् अस्कान्त । अस्कान्त्सम् । अस्कान्त्स्व । अस्कन्त्स्म [यभ] मैथुने (स्त्रीसंग करना) यभति । यभतः । यभन्ति । ययाभ । येभतुः । येभुः । येभिथ (२१५) ययब्ध । यब्धासि । यप्स्यति । याप्सति । याप्साति । यभति । यभाति । यभतु । अयभत् । यभेत् । यभ्यात् । अयाप्सीत् । अयाब्धाम् । अयाप्सुः । अयाप्सीः । अयाब्धम् । अयाब्ध । अयाप्सम् । अयाप्स्व । अयाप्स्म । अयप्स्यत् । [णम] प्रह्वत्वे शब्दे (नम के बोलना)नमति । ननाम । नेमतुः । नेमुः । नेमिथ । ननन्थ । नेमथुः । नेम । ननाम । ननम । नेमिव । नेमिम । नन्तासि । नंस्यति । नांसति । नांसाति । नमति । नमाति । नमतु । अनमत् । नमेत् । नम्यात् । यह धातु अनिट् तो है परन्तु लुङ् लकार में इट् और सक् का आगम (२५१) होजाता है । अनंसीत् । अनंसिष्टाम् । अनंसिषुः । अनंस्यत् [गम्लृ,सृप्लृ] गतौ ॥ २७२ ॥

२७३—इषुगमियमां छः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७७ ॥

इषु,गम और यम धातुओं को छकारादेश होवे शित् प्रत्यय परे हो तो । यहां अन्त्य अल् गम के मकार को छकार होकर । गच्छति । गच्छतः । गच्छन्ति । जगाम । जग्मतुः । जग्मुः (२१४) उपधालोप । जगमिथ । जगन्थ (२१५) । गन्ता । गन्तारौ । गन्तारः । गन्तासि ॥ २७३ ॥

२७४—गमेरिट् परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५८ ॥

परस्मैपदविषय में गम धातु से परे सकारादि आर्द्धधातुक को इट् का आगम होवे । गमिष्यति । गमिष्यतः । गमिष्यन्ति । गच्छति । गच्छाति । गच्छत् । गच्छात् । गच्छतु । अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् । लुङ् लकार में (२१७) सूत्र से अङ् और अङ् के परे उपधालोप का निषेध (२१४) होने से उपधालोप नहीं होता । अगमत् । अगमताम् ।

अगमन् । अगमः । अगमतम् । अगमत । अगमम् । अगमाव । अगमाम । अगमिष्यत् । सर्पति । सर्पतः । सर्पन्ति । ससर्प । ससृपतुः । ससर्पिथ । ससृपथुः ॥ २७४ ॥

२७५—अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५९ ॥

कित्भिन्न झलादि प्रत्यय परे हो तो ऋकार जिस की उपधा में हो ऐसा जो उपदेश में अनुदात्त (अनिट्) धातु उस को अम् का आगम होवे विकल्प करके । मित् आगम अन्त्य अच् से परे होता है । सृ अम्+प्+तासि+डा=स्रप्ता । सर्प्ता । स्रप्तासि । सर्प्तासि अम् के अकार को मान के यण् होता और पक्ष में गुण (५१) हो जाता है । स्रप्स्यति सर्प्स्यति । स्रप्सति । स्रप्साति । सर्प्सति । सर्प्साति । सर्पति । सर्पाति । सर्पतु । असर्पत् । सर्पेत् । सृप्यात् । असृपत् (२१७) अङ् । असृपताम् । असृपन् । असृपः । असृपतम् । असृपत । असृपम् । असृपाव । असृपाम । अस्रप्स्यत् । असर्प्स्यत् । [यम] उपरमे (शान्त होना) (२७३) छकारादेश होकर । यच्छति । यच्छतः । यच्छन्ति । ययाम । येमतुः । येमिथ । ययन्थ । येमिव । यन्तासि । यंस्यति । यांसति । यांसाति । यच्छतु । अयच्छत् । यच्छेत् । यम्यात् । लुङ् में (१५१) इट् और सक् । अयंसीत् । अयंसिष्टाम् । अयंसिषुः । अयंस्यत् [तप] सन्तापे । (दुःख भोगना) तपति । तताप । तेपतुः । तप्ता । तप्स्यति । ताप्सति । ताप्साति । तपति । तपाति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम् । अताप्सुः । अताप्सीः । अतप्स्यत् । [त्यज] हानौ (हानि होनी). त्यजति । त्यजतः । त्यजन्ति । तत्याज । तत्याजिथ । तत्यक्थ । तत्यजिव । वैदिक प्रयोगविषय में त्यज आदि निम्नलिखित धातुओं के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं । यद्यपि प्रथम स्पर्द्ध धातु पर ही इस सूत्र को लिखना था तो भी सर्वत्र समझ लेना चाहिये ॥ २७५ ॥

२७६—अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजश्राताःश्रितमाशीराशीर्त्तः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३६ ॥

(अपस्पृधेथाम्) इस प्रयोग में लङ् लकार उत्तम पुरुष के द्विवचन में (स्पर्द्ध, संघर्षे) धातु को द्विर्वचन रेफ को सम्प्रसारण और अनभ्यास के अकार का लोप निपातन से किया है । अट्+स्पर्द्ध+स्पर्द्ध+आथाम्=अपस्पृधेथाम् । और दूसरा प्रकार यह भी है कि अप उपसर्गपूर्वक स्पर्द्ध धातु के रेफ को सम्प्रसारण और अकार का लोप ही निपातन है वेद में माङ् का योग न हो तो भी अट् का निषेध है । (आनृचुः) और

(आनृहुः) यहां (अर्च,पूजायाम्) और (अर्ह, पूजायाम्) इन दोनों धातुओं से लिट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन (उस्) में रेफ को संप्रसारण अकार का लोप तत्पश्चात् द्वित्व निपातन से और (१०६) सूत्र से अभ्यास के ऋकार को अकार होता है (चिच्युषे) यहां (च्युङ्,गतौ)धातु से लिट् लकार मध्यम पुरुष के एक वचन में अभ्यास को सम्प्रसारण और इट् का अभाव निपातन से किया है (तित्याज) यहां इसी त्यज धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण निपातन से किया है । तित्यजतुः। इत्यादि (श्रातः) यहां (श्रीञ् पाके) धातु को कृदन्त क्त प्रत्यय के परे श्राभाव निपातन किया है (श्रितम्) और यहां भी उक्त धातु को क्त के परे श्रिभाव है (आशीः) (आशीर्तः) यहां भी आङ्पूर्वक उक्त श्रीञ् धातु को क्विप् और क्त प्रत्यय के परे शीर् आदेश हुआ है । त्यक्तासि । त्यक्ष्यति । त्यक्षति । त्यक्षाति । त्यजतु । अत्यजत् । त्यजेत् । त्यज्यात् । अत्याक्षीत् । अत्याक्ताम् । अत्याक्षुः । अत्याक्षीः । अत्याक्तम् । अत्याक्त । अत्याक्षम् । अत्याक्ष्व। अत्याक्ष्म । अत्यक्ष्यत् [षञ्ज] सङ्गे (मेल) (२७०) सूत्र से उपधा नकार का लोप होकर । सजति । सजतः । ससञ्ज । ससञ्जतुः । ससञ्जिथ । ससङ्क्थ । सङ्क्तासि । सङ्क्ष्यति । सङ्क्षति । सङ्क्षाति । सजतु । असजत् । सजेत् । सज्यात् । असाङ्क्षीत् । असाङ्क्ताम् । असाङ्क्षुः (१३५) वृद्धि । असङ्क्ष्यत् । [दृशिर्] प्रेक्षणे (अच्छे प्रकार देखना) पश्य आदेश (२३१) सूत्र से होकर । पश्यति । पश्यतः । पश्यन्ति । ददर्श । ददृशतुः । ददृशुः ॥ २७६ ॥

२७७ – विभाषा सृजिदृशोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६५ ॥

सृज और दृश धातु से परे जो थल् उस को विकल्प करके इडागम होवे । इट् पक्ष में । ददर्शिथ । अनिट् पक्ष में । ददृश्–थल् । यहां ॥ २७७ ॥

२७८ – सृजिदृशोर्झल्यमकिति ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५८ ॥

कित्भिन्न झलादि प्रत्यय परे हो तो सृज और दृश धातुओं को अम् आगम होवे । यह सूत्र (२७५) सूत्र का अपवाद है क्योंकि (२७५) सूत्र में सामान्य ऋदुपध धातुओं को अम् आगम विकल्प से कहा है उस का यह विशेष है । दृद अम् +श्+ थल्—दद्रष्ठ । ऋकार को यण् और (२३३) सूत्र से शकार को षकार होता है । ददृशथुः । ददृश । ददर्श । ददृशिव । ददृशिम । द्रष्टासि । द्रक्ष्यति । द्राक्षति । द्राक्षाति । पश्यति । पश्याति । पश्यतु । अपश्यत् । पश्येत् । दृश्यात् । (१३८) सूत्र से अङ् का विकल्प होकर अङ्पक्ष में । अदर्शत् । (२५७) गुण और

जिस पक्ष में अङ् नहीं होता वहां (२०७) सूत्र से च्लि के स्थान में क्स प्राप्त है इसलिये ॥ २७८ ॥

२७९—न दृशः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४७ ॥

दृश धातु से परे च्लि के स्थान में क्स आदेश न होवे । फिर अम् (२७८) और वृद्धि (१३५) होकर । अद्राक्षीत् । अद्राष्टाम् । अद्राक्षुः । अद्राक्षीः । अद्राष्टम् अद्राष्ट । अद्राक्षम् । अद्राक्ष्व । अद्राक्ष्म । अद्रक्ष्यत् [दंश] दशने (काट खाना) नकारलोप (२७०) दशति । दशतः । दशन्ति । ददंश । ददंशतुः । ददंशिथ । ददंष्ठ (२३३) श को ष । दंष्टासि । दङ्क्ष्यति । दङ्क्षति । दङ्क्षाति । दशति । दशाति । दशतु । अदशत् । दशेत् । दश्यात् (१३६) अदाङ्क्षीत् । अदांष्टाम् । अदाङ्क्षुः । अदङ्क्ष्यत् [कृष] बिलेखने (जोतना , खींचना वा खोदना) कर्षति । चकर्ष । चकृषतुः । चकर्षिथ । क्रष्टासि । यहां विकल्प से अम् (२७५) और पक्ष में गुण होता है । क्रक्ष्यति । कर्क्ष्यति । क्रक्षति । क्रक्षाति । कर्क्षति । कर्क्षाति । कर्षति । कर्षाति । कर्षतु । अकर्षत् । कर्षेत् । कृष्यात् । लुङ् में च्लि के स्थान में नित्य क्स (२०७) प्राप्त है इसलिये ॥ २७९ ॥

२८० — वा०—स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज् वा ॥

स्पृश, मृश , कृष , तृप और दृप धातुओं से परे च्लि के स्थान में सिच् विकल्प करके हो अर्थात् एक पक्ष में क्स और दूसरे पक्ष में सिच् भी रहे । जिस पक्ष में सिच् हुआ वहां वृद्धि (१३५) और अम् होकर । अक्राक्षीत् । अक्राष्टाम् । अकार्क्षीत् । अकार्ष्टाम् । अकाक्षुः । और जिस पक्ष में क्स होता है वहां । अकृक्षत् । अकृक्षताम् । अकृक्षन् । अकर्क्ष्यत् [दह] भस्मीकरणे (भस्म कर देना) दहति । ददाह । देहतुः । देहिथ । ददग्ध । दग्धासि । धक्ष्यति । धाक्षति । धाक्षाति । दहति । दहाति । दहतु । अदहत् । दहेत् । दह्यात् । अधाक्षीत् । अदाग्धाम् । अधाक्षुः । अधाक्षीः । अदाग्धम् । अदाग्ध । अधाक्षम् । अधाक्ष्व । अधाक्ष्म । अधक्ष्यत् [मिह] सेचने (सींचना) मेहति । मिमेह । मिमेहिथ । मेढा । मेक्ष्यति । मेक्षति । मेक्षाति । मेहति । मेहाति । मेहतु । अमेहत् । मेहेत् । मिह्यात् । अमिक्षत् (२०७) क्स । अमिक्षाताम् । अमिक्षन् । अमेक्ष्यत् । इति स्कन्दादयोऽनुदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः । ये अनिट् परस्मैपदी धातु समाप्त हुए ॥

[कित] निवासे रोगापनयने च (निवास और रोगों को हटाना) (२६७) सूत्र से सन् और द्वित्व (२६८) होकर। चिकित्सति। इस धातु का सन्नन्त में केवल रोगापनयन ही अर्थ घटता है। और विपूर्वक सन्नन्त केवल संशय अर्थ में ही आता है। विचिकित्सति। संदेहं करोतीत्यर्थः। और निवास अर्थ में चुरादिस्थ होने से णिच् होकर केतयति प्रयोग बनता है। चिकित्साञ्चकार। चिकित्साम्बभूव। चिकित्सामास। चिकित्सिता चिकित्सिषति। चिकित्सिषाति। चिकित्सतु। अचिकित्सत्। चिकित्सेत्। चिकित्स्यात्। अचिकित्सीत्। अचिकित्सिष्यत्। उदात्तः परस्मैपदी। यह धातु सेट् परस्मैपदी है परन्तु कोई २ लोग इस को आत्मनेपदी भी कहते हैं उन के मत में। चिकित्सते। चिकित्साञ्चक्रे आदि रूप होगें॥

इतो वहत्यन्ताः स्वरितेतः। अब यहां से वह धातु पर्य्यन्त स्वरितेत् (उभयपदी) कहते हैं क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद (१०३) अन्यत्र परस्मैपद होते हैं [दान] खण्डने (काटना) [शान] तेजने (तीक्ष्ण करना) इन दोनों धातुओं से सन् और अभ्यास को दीर्घ (२६९) और द्वित्व (२६८) होकर। दीदांसते। दीदांसति। शीशांसते। शीशांसति। दीदांसाञ्चक्रे। दीदांसाञ्चकार। दीदांसितासे। दीदांसितासि। अदीदांसिष्ट। अदीदांसीत्। ये दोनों धातु सेट् हैं [डुपचष्] पाके। इस धातु के डु और ष् इत् जाते हैं। पचते। पचति। पचतः। पचन्ति। पपाच। पेचतुः। पेचिथ। पपक्थ। पेचे। पेचाते। पक्तासे। पक्तासि। पक्ष्यते। पक्ष्यति। पाक्षतै। पाक्षातै। पचतै। पचातै। पाक्षति। पाक्षाति। पचति। पचाति। पचताम्। पचतु। अपचत। अपचत्। पचेत्। पचेत। पक्षीष्ट। पच्यात्। अपक्त। अपक्षाताम्। अपाक्षीत्। अपाक्ताम्। अपाक्षुः। अपक्ष्यत। अपक्ष्यत् [षच] समवाये (संबन्ध करना) यह धातु सेट् है। सचते। सचति। ससाच। सेचतुः। सेचिथ। सेचे। सचितासे। सचितासि। असचिष्ट। असाचीत्। असचीत्। [भज] सेवायाम् (सेवा करना) भजते। भजति। बभाज। भेजतुः। (१६४) एत्वाभ्यासलोप। भेजिथ। बभक्थ। भेजे। भक्तासि। भक्तासे। भक्ष्यते। भक्ष्यति। भक्षीष्ट। भज्यात्। अभक्त। अभाक्षीत्। अभक्ताम्। अभक्ष्यत। [रञ्ज] रागे (रंगना) ॥ २८० ॥

२८१—रञ्जेश्च ॥ अ० ॥ ६। ४। २६ ॥

रञ्ज धातु के अनुनासिक का लोप हो शप् परे हो तो रजते। रजति। ररञ्ज। ररञ्जे। रङ्क्तासे। रङ्क्ष्यते। अरङ्क्त। अराङ्क्षीत्। अराङ्क्ताम्। अरङ्क्ष्यत्। [शप]

आक्रोशे (कोशना) शपते । शपति । शशाप । शेपतुः । शेपिथ । शशप्थ । शप्तासे । शप्तासि शप्स्यते । शप्स्यति । शप्सतै । शाप्सातै । शपते । शपाते । शाप्सति । शाप्साति । शपति । शपाति शपताम् । शपतु । अशपत । अशपत् । शपेत् । शप्सीष्ट । शप्यात् । अशप्त । अशप्साताम् । अशप्सत । अशाप्सीत् । अशाप्ताम् । अशाप्सुः । अशप्स्यत । अशप्स्यत् । [त्विष] दीप्तौ (प्रकाश) त्वेषते । त्वेषति । तित्वेष । तित्विषतुः । तित्वेषिथ । तित्विषे । त्वेष्टासे । त्वेष्टासि । त्वेक्ष्यते । त्वेक्षतै । त्वेक्षातै । त्वेक्षते । त्वेक्षाते । त्वेषतै । त्वेषातै । त्वेक्षति । त्वेक्षाति । त्वेषति । त्वेषाति । त्वेषताम् । त्वेषतु । अत्वेषत । अत्वेषत् । त्वेषेत । त्वेषेत् । त्विक्षीष्ट (१६३) कित्व होकर (४५) गुण का निषेध हो जाता है, त्विक्षीयास्ताम् । त्विक्षीरन् । अत्विक्षत (२०७) क्स । अत्विक्षाताम् (२०८) क्सलोप । अत्विक्षत । अत्विक्षत् । अत्विक्षताम् । अत्विक्षन् । अत्वेक्ष्यत । अत्वेक्ष्यत् । [यज] देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु (विद्वानों का सत्कार, मेल करना और दान करना) यजते । यजति ॥ २८१ ॥

२८२-लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७ ॥

लिट् लकार परे हो तो (२८३) सूत्र में पढ़े वचि आदि और (२८६) सूत्र में कहे ग्रहि आदि धातुओं के अभ्यास को संप्रसारण होवे । इस सूत्र में अभ्यास को सम्प्रसारण कहने से द्वित्व होने पश्चात् सम्प्रसारण होता है । यह सूत्र अकित् विषय में सम्प्रसारण होने के लिये है । यज्+यज्+णल् =इयाज । यहां अभ्यास के यकार को इ हुआ है और कित् विषय में ॥ २८२ ॥

२८३-वचिस्वपियजादीनां किति ॥ अ० ॥ ६ । १ । १५ ॥

वच, स्वप और यजादि धातुओं को संप्रसारण होवे । यज धातु से ले कर भ्वादि गण के अन्तपर्य्यन्त यजादि समझने चाहियें । यहां द्वित्व होने से प्रथम ही संप्रसारण होता है । इ-अज्-अतुस् (२१९) पूर्वरूप एकादेश होकर द्वित्व की पुनः प्राप्ति होने से इज् मात्र को द्वित्व होता है । इज्+इज्+अतुस्=ईजतुः । सवर्णदीर्घ एकादेश होता है । ईजुः । इयजिथ । इयष्ट (२३३) ष आदेश । ईजथुः । ईज । इयाज । इयज । ईजिव । ईजिम । ईजे । ईजाते । ईजिरे । यष्टासे । यष्टासि । यक्ष्यते । यक्ष्याते । याक्षतै । याक्षातै । यजतै । यजातै । याक्षति । याक्षाति । यजति । यजाति । यजताम् । यजतु । अयजत । अयजत् । यजेत । यजेत् । यक्षीष्ट । इज्यात् (२८३) संप्रसारण । अयष्ट । अयक्षाताम् । अयक्षत । अयष्ठाः । अयाक्षीत् । अयाष्टाम् । अयाक्षुः ।

अयदयत । अयदयत् [टु वप] बीजसन्ताने (बीज बोना खेत में वा स्त्री में) छेदने च। यह धातु काटने अर्थ में भी है । वपते । वपति । पूर्ववत् लिट् में संप्रसारण (२८२) होकर । उवाप । ऊपतुः (२८३) ऊपुः । उवपिथ । उवप्थ । ऊपे । ऊपाते । ऊपिरे । वप्तासे । वप्तासि । वप्स्यति । वप्स्यते । वाप्सते । वाप्सातै । वाप्सति । वाप्साति । वपाति। वपाति । वपताम् । वपतु । अवपत । अवपत् । वपेत । वपेत् ।वप्सीष्ट । उप्यात् (२८३) सम्प्रसारण । अवाप्सीत् । अवाप्ताम् । अवाप्सुः । अवप्त । अवप्साताम् । अवप्सत । अवप्स्यत । अवप्स्यत् [वह] प्रापणे (पहुंचाना) वहति । वहते । उवाह (२८२) ऊहतुः (२८३) ऊहुः । उवहिथ । उवोढ (२३०) अवर्ण को ओकार । ऊहथुः । ऊह । ऊवाह । उवह । ऊहिव । ऊहिम । ऊहे । ऊहाते । ऊहिरे । वोढासि । वोढासे । वक्ष्यति । वक्ष्यते । वाक्षतै । वाक्षातै । वक्षतै । वक्षाते । वाक्षते । वाक्षाते । वक्षते । वाक्षाते । वहतै । वहातै । वाक्षति । वाक्षाति । वक्षति । वक्षाति । वहति । वहाति। वहतु । वहताम् । अवहत् । अवहत । वहेत । वहेत् । उह्यात् (२८३) सम्प्रसारण । वक्षीष्ट । अवाक्षत् । अवोढाम् । अवाक्षुः । अवाक्षीः । अवोढम् । अवोढ । अवाक्षम् । अवाक्ष्व । अवाक्ष्म । अवोढ । अवक्षाताम् । अवक्षत । अवोढाः । अवक्षाथाम् । अवोढ्वम् । अवक्षि । अवक्ष्वहि । अवक्ष्महि । अवक्ष्यत् । अवक्ष्यत । पचादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः सचतिवर्जम् । सच धातु को छोड़के पच आदि सेट् उभयपदी धातु हैं [वस] निवासे (वसना) वसति । वसतः । वसन्ति । उवास ॥ २८३ ॥

२८४—शासिवसिघसीनां च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६० ॥

इण् और कवर्ग से परे शास, वस और घस धातु के सकार को षकार आदेश होवे घस धातु का । जक्षतुः प्रयोग लिख चुके हैं वहां आदेश का सकार न होने से (५६) सूत्र की प्राप्ति नहीं है इसलिये इस का सम्बन्ध वहां भी समझना चाहिये यहां ऊषतुः वस के सकार को षकार होता है । ऊषुः । उवसिथ । उवस्थ । वस्तासि । वत्स्यति (२१६) स को त होता है । वात्साति । वात्साति । वसति । वसाति । वसतु । अवसत् । वसेत् । उष्यात् । अवात्सीत् । आवात्ताम् । अवात्सुः । अवत्स्यत् । [वेञ्] तन्तुसन्ताने (वस्त्र विनना) वयते । वयति । एकार को अय् आदेश हो जाता है ॥ २८४ ॥

२८५— वेञो वयिः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४१ ॥

वेञ् धातु को वयि आदेश विकल्प करके होवे लिट् लकार परे हो तो । वयि

आदेश में इकार उच्चारणार्थ है उस की इत्संज्ञा होकर । वय् + वय्+णल्=उवाय (२८२) अभ्यास को संप्रसारण ॥ २८५ ॥

२८६—ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६ ॥

ग्रह, ज्या, वयि, व्यध, वश, व्रश्चू, प्रच्छ और भ्रस्ज धातुओं को संप्रसारण हो ङित् और चकार से कित्संज्ञक प्रत्यय परे हों तो । वेञ् धातु को वयि आदेश (२८५) होता है उस में व और य दोनों संप्रसारण के स्थानी हैं । वय्—अतुस् । यहां परत्व से यकार को प्राप्त है इसलिये ॥ २८६ ॥

२८७—लिटि वयो यः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३८ ॥

लिट् लकार परे हो तो वय धातु के यकार को संप्रसारण न होवे किन्तु ॥ २८७ ॥

२८८—वश्चास्याऽन्यतरस्यां किति ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३९ ॥

कित् लिट् परे हो तो इस वय धातु के यकार को वकार आदेश विकल्प करके होवे । जिस पक्ष में वकार हुआ वहां प्रथम अभ्यास के वकार को संप्रसारण होकर । उव्+उव्+अतुस्=ऊवतुः । ऊवुः । तास् प्रत्यय के परे वयि आदेश के न होने से (१५७) और (१४९) सूत्रों से थल् में इट् का विकल्प नहीं होता किन्तु नित्य इट् । उवयिथ । ऊवथुः । और जिस पक्ष में यकार को वकार (२८८) नहीं हुआ वहां । ऊयतुः । ऊयुः । ऊयथुः । ऊव । ऊय । उवाय । उवय । ऊयिव । ऊयिम । वयि आदेश को स्थानिवत् होने से ञित् होकर आत्मनेपद (१०३) होते हैं यकार को वकारपक्ष में । ऊवे । ऊवाते । ऊविरे । अब जिस पक्ष में वेञ् को वयि आदेश (२८५) नहीं होता वहां एकार को आकारादेश (२४२) होकर अकित्विषय में (२८२) और कित्विषय में (२८३) से संप्रसारण प्राप्त है इसलिये ॥ २८८ ॥

२८९—वेञः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४० ॥

लिट् लकार परे हो तो वेञ् धातु को संप्रसारण न होवे । फिर धेट् आकारान्त के समान । ववौ । ववतुः । ववुः । वविथ । ववाथ । ववथुः । वव । ववौ । ववित्र । ववम । ववे । ववाते । वविरे । वातासि । वातासे । वासति । वासाति । वयति । वयाति । वासतै । वासातै । वयतु । वयताम् । अवयत् । अवयत । वयेत् । वयेत । ऊयात् । वासीष्ट । अवासीत् । अवासिष्टाम् । अवासिषुः (२५१) अवास्त । अवासाताम् । अवासत ।

अवास्यत् । अवास्यत । [व्येञ्] संवरणे । व्ययति । व्ययते । आर्द्धधातुकाविषय में व्येञ् धातु को भी आकारादेश (२४२) प्राप्त है इसलिये ॥ २८९ ॥

२९०—न व्यो लिटि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४६ ॥

व्येञ् धातु को आकार आदेश न होवे लिट् लकार परे हो तो । व्ये+व्ये+णल्= विव्याय। यहां अभ्यास के यकार को संप्रसारण (२८२) परत्व से प्राप्त और उसी का लोप (३८) सूत्र से प्राप्त है । यद्यपि लोपविधि सब विधियों से बलीय है तथापि (उभयेषाम्) ग्रहण (२८२) का यही प्रयोजन होने से कि (३८) से प्राप्त लोप को भी बाध के संप्रसारण ही होवे । अभ्यास के यकार को संप्रसारण होता है । कित्विषय में प्रथम संप्रसारण होकर। वि+वि+अतुस्=विव्यतुः (१५६)यण् । विव्युः । विव्ययिथ। (१९९) नित्य इट्। विव्यिथुः । विव्य । विव्याय । विव्यय । विव्यिव । विव्यिम । विव्ये। विव्याते। विव्यिरे । व्यातासि (२४२) आकारादेश । व्यातासे । व्यास्यति । व्यास्यते । व्यासतै । व्यासातै । व्ययतै । व्ययातै । व्यासति । व्यासाति । व्ययति । व्ययाति । व्ययतु। व्ययताम् । अव्ययत्। अव्ययत । व्ययेत् । व्ययेत । वीयात् (२८३) संप्रसारण होकर दीर्घ (१६०) । व्यासीष्ट । अव्यासीत् । अव्यासिष्टाम्। अव्यास्त । अव्यास्यत् । (ह्वेञ्) स्पर्द्धायां शब्दे च (ईर्षा और बुलाना)ह्वयति । ह्वयते ॥ २९० ॥

२९१ – अभ्यस्तस्य च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३३ ॥

अभ्यस्त होनेवाले ह्वा धातु को द्वित्व होने से प्रथम ही संप्रसारण होवे । अकित्विषय में अभ्यास ही को संप्रसारण प्राप्त है इसलिये यह सूत्र है । संप्रसारण होकर द्वित्व होता है । जुहाव । जुहुवतुः । जुहुवुः (१५८) संप्रसारण किये उकार को उवङ् होता है । जुहोथ। जुहविथ । जुहुवथुः । जुहुव । जुहाव । जुहव । जुहुविव । जुहुविम । जुहुवे । जुहुवाते । ह्वातासि । ह्वातासे । ह्वास्यति । ह्वास्यते । ह्वासतै । ह्वासातै । ह्वयतै । ह्वयातै । ह्वासति । ह्वासाति । ह्वयति । ह्वयाति । ह्वयतु। ह्वयताम् । अह्वयत् । अह्वयत । ह्वयेत् । ह्वयेत । हूयात् (२८३) संप्रसारण और दीर्घ (१६०) । ह्वासीष्ट ॥ २९१ ॥

२९२—लिपिसिचिह्वश्च ॥ अ०॥ ३ । १ । ५३ ॥

लिप, सिच और ह्वा धातु से परे जो च्लि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश होवे । अह्वत् (२४४) आकारलोप । अह्वताम् । अह्वन् ॥ २९२ ॥

२९३ — आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५४ ॥

लिप, सिच और ह्वेञ् धातु से परे च्लि के स्थान में अङ् विकल्प करके हो आत्मनेपदविषय में । अह्वत । अह्वेताम् । अह्वन्त । अह्वथाः । अह्वास्त । अ-ह्वासाताम् । अह्वास्यत् । अह्वास्यत । वेञादयस्त्रयोऽनुदात्ता उभयपदिनः । ये वेञ् आदि तीन धातु अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथ द्वौ परस्मैपदिनौ। अब दो धातु सेट् परस्मैपदी कहते हैं [वद] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) वदति । वदतः। वदन्ति । उवाद (२८२) ऊदतुः । ऊदुः । उवदिथ । वदितासि । वादिष्यति । वादिषति । वादिषाति । वदति । वदाति । वदतु । अवदत् । वदेत् । उद्यात् (२८३) अवादीत् (१३५) वृद्धि । अवादिष्टाम् । अवादिषुः । अवदिष्यत् । [टुओश्वि] गतिवृद्ध्योः (गति और बढ़ना) इस में से टु और ओकार की इत्संज्ञा होती है । श्वयति । श्वयतः । श्वयन्ति ॥ २९३ ॥

२९४ - विभाषा श्वेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३० ॥

लिट् और यङ् परे हों तो श्वि धातु को विकल्प करके संप्रसारण होवे । यङ् के परे संप्रसारण किसी से प्राप्त नहीं है और कित् लिट् में (२८३) से और अकित्-विषय में (२८२) संप्रसारण नित्य प्राप्त है उस का विकल्प करने से प्राप्ताप्राप्त वि-भाषा इस सूत्र में जानो । सो जिस पक्ष में इस सूत्र से संप्रसारण होता है वहीं अ-भ्यास को भी (२८२) होता है निषेध पक्ष में अभ्यास को भी नहीं होता । शुशाव । शुशुवतुः । शुशुवुः (१५९) शुशविथ । शुशुवथुः । शुशुव । शुशाव । शुशव । शुशुविव । शुशुविम । सम्प्रसारण के निषेधपक्ष में । शिश्वाय । शिश्वियतुः (१५९) इयङ् । शिश्वयिथ । श्वयितासि । यहां गुण होकर अयादेश होता है । श्वयिष्यति । श्वायिषति श्वायिषाति । श्वयति । श्वयाति । श्वयतु । अश्वयत् । श्वयेत् । शूयात् (२८३) सम्प्रसारण होकर दीर्घ (१६०) लुङ् में अङ् का विकल्प (१५४) होकर अङ्-पक्ष में ॥ २९४ ॥

२९५—श्वयतेरः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १८ ॥

श्वि धातु के इकार को अकार आदेश होवे अङ् परे हो तो । अट् + श्वि + अङ् + तिप् = अश्वत् । यहां अङ् के अकार के साथ पररूप होता है । अश्वताम् । अश्वन् । अश्वः । अश्वतम् । अश्वत । अश्वम् । अश्वाव । अश्वाम । जिस पक्ष में अङ् (१५४) न हुआ वहां चङ् (२४८) और द्वित्व (१८०) होकर । अशिश्वियत् ।

(१५९) इयङ् । अशिश्वियताम् । अशिश्वियन् । अत्र जिस पक्ष में चङ् भी (२४८) न हुआ वहां वृद्धि का निषेध (१६२) होकर । अश्वयीत् । अश्वयिष्टाम् । अश्वयिषुः । अश्वयिष्यत् । वृत् । ये यजादि धातु समाप्त हुए और इस भ्वादि गण को आकृतिगण मानते हैं इसी से । चुलुम्पति आदि प्रयोग समझने चाहियें । इति शब्विकरणा भ्वादयः समाप्ताः । ये शप्विकरणवाले भू आदि धातु समाप्त हुए ॥

२९६ – ऋतेरीयङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २९ ॥

ऋत धातु से ईयङ् प्रत्यय हो स्वार्थ में । इस धातु का स्वार्थ निन्दा वा कृपा है । और यह सौत्रधातु है अर्थात् किसी गण का नहीं । ऋत् — ईय । इस की धातु संज्ञा (१६७) होकर भ्वादि को आकृतिगण मानने से शप् होता है । ऋतीयते । ऋतीयेते । ऋतीयन्ते । यहां ईयङ् प्रत्यय के ङित् होने से गुण नहीं होता और ईयङ् प्रत्यय के ङित् होने से ही ऋतीय धातु से आत्मनेपद होते हैं । ऋतीयाञ्चक्रे। ऋतीयामास । ऋतीयाम्बभूव । आर्द्धधातुक की विवक्षा में ईयङ् प्रत्यय (१६८) विकल्प करके होता है । जिस पक्ष में ईयङ् न हुआ वहां । ऋत् + ऋत् + णल् = आनर्त । यहां शेष होने से परस्मैपद । आनृततुः । आनृतुः (१४७) नुट् (११०) अभ्यास को दीर्घ (१०६) अकार । आनर्तिथ । आनृतथुः । ऋतीयितासे । अर्तितासि । ऋतीयिष्यते । अर्तिष्यति । ऋतीयिषतै । ऋतीयिषातै । अर्तिषति । अर्तिषाति । ऋतीयताम् । आर्त्तीयत । ऋतीयेत । ऋतीयिषीष्ट । ऋत्यात् । आर्त्तीयिष्ट । आर्त्तीत् । आर्त्तिष्टाम् । आर्त्तीयिष्यत । आर्त्तिष्यत् ॥ (अद) भक्षणे (खाना) ॥ २९६॥

२९७–अदिप्रभृतिभ्यः शपः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७२ ॥

अद आदि धातुओं से परे जो शप् उस का लुक् होवे । जहां २ लुक् कहते हैं वहां २ प्रत्ययमात्र का होता है । अद्+शप्+तिप् = अत्ति । अत्तः । अदन्ति । अत्सि । अत्थः । अत्थ । अद्मि । अद्वः । अद्मः ॥ २९७ ॥

२९८–बहुलं छन्दसि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७३ ॥

वेदविषय में अद आदि धातुओं से परे शप् का लुक् बहुल करके होवे । बहुल के कहने से जिन से परे कहा है उन से परे नहीं भी होता । अदति । हनति । इत्यादि । और जिन से नहीं कहा वहां भी हो जाता है । त्राध्वं नो देवाः । यहां त्रैङ् भ्वादिस्थ धातु से शप् का लुक् हुआ है । त्रायध्वम् । लोक में होता है ॥ २९८ ॥

२९९ – लिट्यन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४० ॥

लिट् लकार परे हो तो अद धातु को घस्लृ आदेश विकल्प करके होवे । जघास ।

घस् + अतुस् (२८४) से उपधालोप होकर उस उपधालोप को चर्विधि के प्रति स्थानिवत् का निषेध होने से घकार को चर् क् होता है उस ककार से परे षत्व (२८४) होकर जक्षतुः । जक्षुः । जघसिथ । जघस्थ । जक्षथुः । जक्ष । जघास । जघस । जक्षिव । जक्षिम । आद । आदतुः । आदुः । थल् में नित्य इट् (२५८) आदिथ । आदथुः । आद । आद । आदिव । आदिम । अत्ता । अत्तासि । अत्स्यति । अत्सति । अत्साति । अदति । अदाति । अत्तु । अत्तात् । अत्ताम् । अदन्तु ॥ २९९ ॥

३००—हुझल्भ्यो हेर्धिः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०१ ॥

हु और झलन्त धातुओं से परे जो हि उस को धि आदेश होवे । यहां झलन्त अद् से परे धि होकर । अद्+हि = अद्धि । अत्तात् । अत्तम् । अत्त । अदानि । अदाव । अदाम ॥ ३०० ॥

३०१—अदः सर्वेषाम् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । १०० ॥

अद धातु से परे जो अपृक्त हलादि सार्वधातुक उस को अट् का आगम हो सब आचार्यों के मत में । यह अपृक्त हलादि सार्वधातुक लङ् लकार के तिप् और सिप् दो ही में मिलता है । आट् + अद् + अट् + तिप् = आदत् । आत्ताम् । आदन् । आदः । आत्तम् । आत्त । आदम् । आद्व । आद्म । अद्यात् । अद्याताम् । अद्या+ उस् = अद्युः (८३) पररूपएकादेश । अद्याः । अद्यातम् । अद्यात । अद्याम् । अद्याव । अद्याम । अद्यात् । अद्यास्ताम् । अद्यासुः ॥ ३०१ ॥

३०२—लुङ्सनोर्घस्लृ ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३७ ॥

लुङ् लकार और सन् प्रत्यय परे हों तो अद धातु को घस्लृ आदेश होवे । लृदित् घस्लृ आदेश के पढ़ने से च्लि के स्थान में अङ् (२१७) अघसत् । अघसताम् । अघसन् । आत्स्यात् [हन] हिंसागत्योः (मारना और गति) शप् का लुक्(२९७) हन्ति ॥ ३०२ ॥

३०३—अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३७ ॥

उपदेश में जो अनुदात्त (अनिट्) धातु, वन और तनु से लेकर जो धातु हैं उन सब के अनुनासिक का लोप होवे झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो । अनुदात्तोपदेश अनुनासिकान्त यम, रम, नम, गम, हन और दिवादिगण का मन ये छः धातु हैं और तनोत्यादि अनुनासिकान्त तनु, षणु, क्षणु, क्षिणु, ऋणु, तृणु, घृणु, वनु और

मनु ये नौ धातु हैं और वनति धातु भ्वादिगण का लिया है इन सब के अन्त्य अनुनासिक का लोप जहां२ झलादि कित् ङित् हों वहां २ होता है यहां हन धातु से परे तस् की ङित् संज्ञा (९७) होने से हन्+ तस् = हतः । यहां अनुनासिकलोप हुआ है । हन्–झि ॥ ३०३ ॥

३०४– हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५४ ॥

हन् धातु के हकार को कवर्ग आदेश होवे ञित्, णित् और नकार परे हों तो । यहां झि के झकार को अन्त आदेश होने के पश्चात् उपधा अकार का लोप (२१४) होकर केवल नकार के परे ह को घ घ्नन्ति । हंसि । हथः । हथ । हन्मि । हन्वः । हन्मः । हन्+हन्+ णल् = जघान (३०४) णित् के परे ह को कुत्व । जघ्नतुः (२१४) उपधालोप और न के परे ह को कुत्व (३०४) जघ्नुः ॥ ३०४ ॥

३०५–अभ्यासाच्च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५५ ॥

अभ्यास से परे हन धातु के हकार को कुत्व होवे । जघनिथ । जघन्थ । यहां कुत्व (३०४) नहीं प्राप्त है । जघ्नथुः जघ्न । जघान । जघन । जघ्निव । जघ्निम । हन्ता । हन्तारौ । हन्तारः । हन्तासि । हनिष्यति । हनिष्यतः (२३८) अप्राप्त इट् हांसति । हांसाति । हंसति । हंसाति । हनति । हनाति । हन्तु । हतात् । हताम् । घ्नन्तु ॥ ३०५ ॥

३०६–हन्तेर्जः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३६ ॥

हन् धातु को ज आदेश होवे हि परे हो तो । अब हन् धातु के स्थान में ज आदेश होने के पश्चात् हि का लुक् (७१) प्राप्त है उस ज आदेश को असिद्ध (४२) मानकर नहीं होता । जहि । हतात् । हतम् । हत । हनानि । हनाव । हनाम । अहन् । यहां हल् नकार से परे अपृक्त तिप् के तकार का लोप होता है । अहताम् । अघ्नन् । अहन् । अहतम् । अहत । अहनम् । अहन्व । अहन्म । हन्यात् । हन्याताम् । हन्युः । हन्याः ॥ ३०६ ॥

३०७—आर्द्धधातुके ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३५ ॥

यह अधिकार सूत्र है ॥ ३०७ ॥

३०८–हनो वध लिङि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४२ ॥

हन् धातु को वध आदेश होवे आर्द्धधातुकविषय में लिङ् परे हो तो । वध

अकारान्त होता है । बध्यात् (१७२) अकारलोप । बध्यास्ताम् । बध्यासुः । बध्याः । बध्यास्तम् ॥ ३०८ ॥

३०९—लुङि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४३ ॥

आर्द्धधातुक विषयक लुङ् परे हो तो भी हन धातु को बधादेश होवे । इस सूत्र का पृथक् निर्देश इस से अगले सूत्र में अनुवृत्ति के लिये है । अबधीत् । बध आदेश के अदन्त होने से सिच् के परे अकारलोप (१७२) होकर उस के स्थानिवत् होने से वृद्धि (१३५) नहीं होती । अबाधिष्टाम् । अबाधिषुः । अबधीः । अहनिष्यत् । (२३८) अहनिष्यताम् । अहनिष्यन् । अदिहनी अनुदात्तावुदात्तेतौ परस्मैपदिनौ । अद और हन दोनों धातु अनिट् परस्मैपदी हैं ॥

अथ चत्वारः स्वरितेतः । अब चार धातु उभयपदी कहते हैं [द्विष] अप्रीतौ (वैर करना) द्वेष्टि । द्विष्टः । द्विषन्ति । द्वेक्षि । द्विष्ठः । द्विष्ठ । द्वेष्मि । द्विष्वः । द्विष्मः । द्विष्टे । द्विषाते । द्विषते । द्विक्षे । द्विड्ढ्वे । द्विषे । द्विष्वहे । द्विष्महे । दिद्वेष । दिद्विषतुः । दिद्विषे । द्वेष्टासि । द्वेष्टासे । द्वेक्ष्यति । द्वेक्ष्यते । द्वेक्षतै । द्वेक्षातै । द्वेषतै । द्वेषातै । द्वेक्षति । द्वेक्षाति । द्वेषति । द्वेषाति । द्वेष्टु । द्विष्टात् । द्विष्टाम् । द्विषन्तु । द्विड्ढि । द्विष्टात् । द्विष्टम् । द्विष्ट । द्वेषाणि । द्वेषाव । द्वेषाम । द्विष्टाम् । द्विषाताम् । द्विषताम् । द्विक्ष्व । द्विषाथाम् । द्विड्ढ्वम् । द्वेषै । द्वेषावहै । द्वेषामहै । अद्वेट् तिप् के तकार का लोप (हल्ङ्या०) होता है । अद्विष्टाम् ॥ ३०९ ॥

३१०—द्विषश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११२ ॥

शाकटायन आचार्य्य ही के मत में द्विष धातु से परे लङ् लकार के झि को जुस् आदेश होवे । अद्विषुः । अन्य लोगों के मत में अद्विषन् । अद्वेट् । अद्विष्टम् । अद्विष्ट । अद्विषम् । अद्विष्व । अद्विष्म । अद्विष्ट । अद्विषाताम् । अद्विषत । द्विष्यात् । द्विष्याताम् । द्विष्युः । द्विषीत । द्विषीयाताम् । द्विषीरन् । द्विषीथाः । द्विष्यात् । द्विष्यास्ताम् । द्विक्षीष्ट । द्विक्षीयास्ताम् । द्विक्षीरन् (१६३) कित्व । अद्विक्षत् । अद्विक्षताम् । अद्विक्षन् (२०७) क्स । अद्विक्षत । अद्विक्षाताम् (२०८) क्सलोप । अद्वेक्ष्यत् । अद्वेक्ष्यत । [दुह] प्रपूरणे (तृप्त करना) ॥ ३१० ॥

३११—दादेर्धातोर्घः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३२ ॥

दकारादि धातुओं के हकार को घकार आदेश हो झल् परे हो वा पदान्त में ।

दुह्+तिप् = दोग्धि (१४१) त को ध और घ को जश्त्व। दुग्धः। दुहन्ति। धोक्षि (२०४) दुग्धः। दुग्ध। दोह्मि। दुह्वः। दुह्मः। दुग्धे। दुहाते। दुहते। धुक्षे। दुहाथे। धुग्ध्वे। दुहे। दुह्वहे। दुह्महे। दुदोह। दुदुहतुः। दुदोहिथ। दुदुहे। दोग्धा। धोक्ष्यति। धोक्ष्यते। धोक्षतै। धोक्षातै। दोहतै। दोहातै। धोक्षति। धोक्षाति। दोहति। दोहाति। दोग्धु। दुग्धात्। दुग्धाम्। दुहन्तु। दुग्धि। दुग्धात्। दुग्धम्। दुग्ध। दोहानि। दोहाव। दोहाम। दुग्धाम्। दुहाताम्। दुहताम्। धुक्ष्व। दुहाथाम्। धुग्ध्वम्। दोहै। दोहावहै। दोहामहै। अधोक्। यहां पदान्त में संयोगान्त हल् तकार का लोप होकर कुत्व होजाता है। अदुग्धाम्। अदुहन्। अधोक्। अदोहम्। अदुग्ध। अदुहाताम्। अधुग्ध्वम्। दुह्यात्। दुह्याताम्। दुह्युः। दुहीत। दुहीयाताम्। दुहीरन्। दुह्यात्। दुह्यास्ताम्। धुक्षीष्ट (१६३) धुक्षीयास्ताम्। धुक्षीरन्। अधुक्षत् (२०७) क्स। अधुक्षताम्। अधुक्षन्। अधुक्षः। अधुक्षत। अधुक्षाताम् (२०८) अधुक्षन्त। विकल्प से क्स लुक् (२३७) अदुग्ध। अदुग्धाः। अधुक्षथाः। अधुग्ध्वम्। अधुक्षध्वम्। अधोक्ष्यत्।अधोक्ष्यत। [दिह] उपचये। (बढ़ना) सब कार्य और प्रयोग दुह के तुल्य जानो। देग्धि। अधिक्षत्। अदिग्ध। अधिक्षत। (लिह) आस्वादने (स्वाद लेना) लिह्+तिप्=लेढि (२०३। १४१। २०६) लीढः (२३६) लिहन्ति। लेक्षि (१०५) लीढः। लीढ। लेह्मि। लिह्वः। लिह्मः। लीढे। लिहाते। लिहते। लिक्षे। लिहाथे। लीढ्वे। लिहे। लिह्वहे। लिह्महे। लिलेह। लिलिहतुः। लिलेहिथ। लिलिहे। लिलिहाते। लिलिहिरे। लीढासि। लीढासे। लेक्ष्यति। लेक्ष्यते। लेक्षतै। लेक्षातै। लेक्षति। लेक्षाति। लेढु। लीढात्। लीढाम्। लिहन्तु। लीढि। लीढात्। लीढम्। लीढ। लेहानि। लेहाव। लेहाम। अलेट्। अलीढाम्। लिह्यात्। लिक्षीष्ट। अलिक्षत्। अलिक्षत (२३७) अलीढ। अलिक्षाताम्। अलिक्षन्त। अलिक्षथाः। अलीढाः। अलेक्ष्यत्। अलेक्ष्यत। द्विषादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः। ये द्विष आदि अनिट् उभयपदी धातु हैं [चक्षिङ्] व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शनेऽपि (स्पष्ट बोलना और देखना) इस धातु में जो अनुदात्त इकार है उस की इत्संज्ञा हो जाती है फिर अनुदात्तेत् के होने से आत्मनेपद हो ही जाता फिर ङकार पढ़ने से अनुदात्तेत् धातुओं से आत्मनेपदविधान का अनित्य ज्ञापक होता है और इस का इकार अन्त में इत् नहीं गया इस कारण नुम् नहीं होता। चक्ष्+ते = चष्टे (२१०) संयोगादि ककार का लोप। चक्षाते। चक्षते। चक्षे। चक्षाथे चड्ढ्वे। चक्षे। चक्ष्वहे। चक्ष्महे ॥ ३११ ॥

३१२ — चक्षिङः ख्याञ् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५४ ॥

सामान्य आर्द्धधातुकविषय में चक्षिङ् धातु को ख्याञ् आदेश होवे ॥ ३१२ ॥

३१३— वा लिटि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५५ ॥

लिट् लकार में चक्षिङ् धातु को ख्याञ् विकल्प करके होवे । पूर्व सूत्र से सर्वत्र नित्य प्राप्त है उस का विकल्प करने से प्राप्त विभाषा है । ख्याञ् होकर आकारान्त के समान प्रयोग और ञित् होने से उभयपद (१०३) चख्यौ (२४३) चख्यतुः (२४४) (२४५) चख्युः । चख्यिथ । चख्याथ । चख्ये । चख्याते ॥ ३१३ ॥

३१४—वा०—ख्शादिर्वा ॥

यह ख्याञ् आदेश जो कहा है सो ख्शाञ् आदेश कहना चाहिये । फिर ख्याञ् धातु के प्रयोग किस प्रकार बनने चाहियें ॥ ३१४ ॥

३१५- वा०—असिद्धे शस्य यवचनं विभाषा ॥

असिद्ध अर्थात् अष्टमाऽध्याय के अन्त के तीन पादों में ख्शाञ् के शकार को विकल्प करके यकार होवे । सो जब यकार होगा तब ख्याञ् के प्रयोग और ख्शाञ् रहेगा वहां ख् को चर्त्व क् होकर । चक्शौ ।चक्शतुः ।चक्शे । चक्शाते । ख्शाञ् आदेश विधान करके असिद्धप्रकरण में शकार को यकार कहने से जो २ कार्य सपाद सप्ताऽध्यायी में ख्या धातु को कहे हैं वे इस को नहीं होते । क्योंकि सपाद सप्ताऽध्यायी में वह ख्याञ् नहीं किंतु ख्शाञ् है । इस प्रकार के कई प्रयोजन महाभाष्यकार ने (३१२) सूत्र पर गिनाये हैं । अब जिस पक्ष में ख्शाञ् आदेश (३१३) नहीं हुआ वहां चचक्षे । चचक्षाते । चचक्षिरे । ख्याताासि। ख्यातासे। क्शातासि। क्शातासे। ख्यास्यति । ख्यास्यते । क्शास्यति । क्शास्यते । ख्यासति । ख्यासाति । क्शासति। क्शासाति । ख्यासतै। ख्यासातै । क्शासतै । क्शासातै। चक्षतै । चक्षातै । चक्षते । चक्षाते । चष्टाम्। चक्षाताम् । चक्षव । चक्षाथाम् । चड्ढ्वम् । चक्षै । चक्षावहै । चक्षामहै । अचष्ट । अचक्षाताम् । अचक्षत । अचष्ठाः । अचक्षाथाम् । अचड्ढ्वम् । अचक्षि । अचक्ष्वहि । अचक्ष्महि । चक्षीत । चक्षीयाताम् । चक्षीरन् । ख्यायात् । ख्येयात् । क्शायात् । क्शेयात् । (२५२) एत्वाविकल्प । ख्यासीष्ट । क्शासीष्ट ॥ ३१५ ॥

३१६—अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५२ ॥

असु दिवादिगण का, वच और ख्या अदादि गण के धातुओं से परे च्लि के स्थान में अङ्

होवे। सो जिस पक्ष में यकार होता है वहां अङ् जानो। अख्यत्। अख्यताम्। अख्यन्। अख्यत। अख्येताम्। अख्यन्त। ख्शाञ् पक्ष में। अक्शासीत्। (२५१) अक्शास्त। अख्यास्यत्। अख्यास्यन। अक्शास्यत॥ ३१६॥

३१७—वा॰—वर्जने प्रतिषेधः॥

वर्जन अर्थ में चक्षिङ् धातु को ख्शाञ् आदेश न होवे। संचक्षितासे। संचक्षिष्यते। संचक्षिषीष्ट। समचक्षिष्ट। सम् उपसर्ग पूर्वक इस धातु का वर्जन अर्थ होता है। अथ पृच्यन्ता अनुदात्तेतश्चतुर्दश। अब पृची धातु पर्यन्त १४ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [ईर] गतौ कम्पने च (गति और कांपना) ईर्त्ते। प्रेर्त्ते। ईराते। ईर्षे। ईराथे। ईर्ध्वे। ईरे। ईर्वहे। ईर्महे। ईराञ्चक्रे। ईरितासे। ईरिष्यते। ईरिषते। ईरिषातै। ईरतै। ईरातै। ईर्ताम्। ईराताम्। ईरताम्। ऐर्त। ईरीत। ईरीयाताम्। ईरीरन्। ईरिषीष्ट। ऐरिष्ट। ऐरिष्यत। [ईड] स्तुतौ (स्तुति करना) [ईश] ऐश्वर्ये (मालिकका होना) ईट्टे। चर्त्वे। ईडाते। ईडते। ईट्से। ईष्टे। (२३३) षत्व। ईशाते। ईशते॥ ३१७॥

३१८—ईशः से॥ अ॰॥ ७। २। ७७॥

ईश धातु परे जो सार्वधातुक उस को इट् का आगम होवे। ईशिसे॥ ३१८॥

३१९—ईडजनोर्ध्वे च॥ अ॰॥ ७। २। ७८॥

ईश, ईड और जन धातुओं से परे जो से और ध्वे वलादि सार्वधातुक उन को इट् आगम हो। पूर्व सूत्र की यहां सब अनुवृत्ति आती है इन दोनों सूत्रों से बराबर कार्य्य होता है फिर एक सूत्र पढ़ते पृथक् २ पढ़ने से आचार्य्य की विचित्र क्रिया दीख पड़ती है। ईडिषे। ईडाथे। ईडिध्वे। ईडे। ईशे। ईडाञ्चक्रे। ईशाञ्चक्रे। ईडामास। ईडाम्बभूव। ईशामास। ईशाम्बभूव। ईडितासे। ईशितासे। ईट्टाम्। ईडाताम्। ईडताम्। ईड्ढ्व (३१६) ईशिष्व। ईडिध्वम्। ईशिध्वम्। यहां एकादेश एकार को विकृत मान कर इट् हो जाता है और से ध्वे (३१८। ३१९) एकारान्त पढ़ने से ही लङ् लकार में इट् नहीं होता। ऐट्ट। ऐडाताम्। ऐडत। ऐड्ढ्वम्। ईडीत। ईशीत [आस] उपवेशने (बैठना) आस्ते। आसाते। आसते। आसाञ्चक्रे (१९०) आम्। आसाम्बभूव। आसामास। आसितासे। आसिष्यते। आसिषतै। आसिषातै। आस्ताम्। आस्स्व। आध्वम्। आस्त। आसीत। आसिषीष्ट। आसिष्ट। आसिष्यत [आङः शासु] इच्छायाम्। बहुधा आङ्पूर्वक ही इस धातु

के प्रयोग आते हैं इसलिये आङ् इस के साथ लगा दिया है। आशास्ते । आशासाते । आशासते । आशशासे । अशशासाते । आशासितासे । आशास्ताम् । आशास्व । आशाध्वम् । आशासै । आशासावहै । आशासामहै । आशास्त । आशासीत । आशासिषीष्ट । आशासिष्ट [वस] आच्छादने (ढांकना) वस्ते । वसाते । वसते । ववसे । ववसाते (१२८) एत्वाभ्यासलोप निषेध । वसितासे । वसिष्यते । वासिषतै । वासिषातै । वसतै । वसातै । वस्ताम् । वसाताम् । वस्स्व । वध्वम् । अवस्त । वसीत । वसिषीष्ट । अवसिष्ट । अवसिष्यत [कसि] गतिशासनयोः (गति और शिक्षा) कंस्ते । कंसाते । कंसते । कन्ध्वे । चकंसे । कंस्ताम् । कंस्स्व । कन्ध्वम् । अकंस्त । कंसीत [कस] इत्यन्ये । कस्ते । कसाते । चकसे । चकसाते । कस्ताम् । कस्स्व । कध्वम् । अकस्त । कसीत । अकासिष्ट [कंश] इत्येके । कष्टे (२३३) षत्व । कशाते । चकशे चकशाते । कशितासे । काशिष्यते । कांशिषतै । काशिषातै । कष्टाम् । कशाताम् । कशताम् । कक्ष्व । कड्ढ्वम् । अकष्ट । कशीत । काशिषीष्ट । अकशिष्ट । अकाशिष्यत । [णिसि] चुम्बने । (चूंबना) निंस्ते । निंसाते निनिंसे निंसितासे । निंसिष्यते । निंसिषतै । निंसिषातै । निंस्ताम् । निंस्स्व । निन्ध्वम् । अनिंस्त । निंसीत । निंसिषीष्ट । अनिंस्त । अनिंसिष्यत [णिजि] शुद्धौ । निङ्क्ते । निञ्जाते । निङ्क्ते । निनिञ्जे । निञ्जितासे । [शिजि) अव्यक्ते शब्दे । शिङ्क्ते । शिशिञ्जे । [पिजि] वर्णे (श्वेत आदि) पिङ्क्ते । सम्पर्चन इत्येके । यह धातु किसी के मत में स्पर्श करने अर्थ में है । उभयत्रेत्यन्ये । कोई कहते हैं कि वर्ण और सम्पर्चन दोनों अर्थ हैं । अवयव इत्यपरे । अव्यक्ते शब्द- इतीतरे । किन्हीं के मत में अवयव और कोई के मत में अव्यक्त शब्द अर्थ में पिजि धातु है [पृजि] इत्येके । पूर्वोक्त सब अर्थों में पिजि के स्थान में कोई लोग पृजि धातु कहते हैं । पृङ्क्ते [वृजी] वर्जने [निषेध करना) वृक्ते । वृजाते । वृजते । वृक्षे । वृग्ध्वे । ववृजे । वर्जिता । वर्जिष्यते । वर्जिषतै । वर्जिषातै । वृजतै । वृजातै । वृक्ताम् । वृक्ष्व । वृग्ध्वम् । अवृक्त । वृजीत । वर्जिषीष्ट । अवर्जिष्ट । अवर्जिष्यत [पृची] सम्पर्चने (सम्बन्ध) पृक्ते । पृचाते । ईरादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः । ये ईर आदि धातु समाप्त हुए ॥

[षूङ्] प्राणिगर्भविमोचने (गर्भस्थप्राणियों का जन्म) सूते । सुवाते (१५९) उवङ् । सुवते । सुषुवे (१४०) सूत्र में सूति करके इसी सू धातु का ग्रहण है । इस कारण इट् का विकल्प होता है । सुषुविषे । सुषूषे । सुषुविढ्वे । सुषुविध्वे । सुषूढ्वे । सवितासे । सोतासे । सविष्यते । सोष्यते । साविषतै । साविषातै । सविषतै । सविषातै ।

साविषते । साविषाते । सविषते । सविषाते । सौषतै । सौषातै । सोषतै । सोषातै । सोषते । सोषाते । सौषते । सौषाते । सुवतै । सुवातै । सुवते । सुवाते । सूताम् । सुवाताम् । सुवताम् । सुवै (११) गुणनिषेध । सुवावहै । सुवामहै । असूत । सुवीत । सविषीष्ट । सोषीष्ट । सविषीढ्वम् । सविसीध्व । सोषीढ्वम् । असविष्ट । असोष्ट । असविढ्वम् । असविध्वम् । असोढ्वम् । असाविष्यत । असोष्यत । [शीङ्] स्वप्ने (सोना) ङित्वत् (८७) होने से गुण नहीं प्राप्त है इसलिये ॥ ३१९ ॥

३२०—शीङः सार्वधातुके गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २१ ॥

शीङ् धातु को गुण होवे सामान्य सार्वधातुक परे हों तो । यह सूत्र (४५) सूत्र के निषेध का अपवाद है । शेते । शी+आताम् =शयाते । गुण होकर अवादेश होता है ॥ ३२० ॥

३२१—शीङो रुट् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६ ॥

शीङ् धातु से परे झकार के स्थान में जो अत् आदेश उस को रुट् का आगम होवे । टित् आगम उस की आदि में होकर । शेरते । शेषे । शयाथे । शेध्वे । शये । शेवहे । शेमहे । शिश्ये । (१५६) यण् । शिश्यिढ्वे । शिश्यिध्वे । शयितासे । शयिष्यते । शायिषतै । शायिषातै । शेताम् । शयाताम् । शेरताम् । शेष्व । शयाथाम् । शेध्वम् । शयै । शयावहै । शयामहै । अशेत । अशयाताम् । अशेरत । शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । शयिषीष्ट । शयिषीढ्वम् । शयिषीध्वम् । अशयिष्ट । अशयिढ्वम् । अशयिध्वम् । अशयिष्यत । आत्मनेभाषावुदात्तौ । शीङ् और सूङ् दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ स्तौत्यन्ताः परस्मैपदिनो द्वादश । अब स्तु धातु पर्यन्त १२ बारह धातु परस्मैपदी कहते हैं [यु] मिश्रणे अमिश्रणे च (मिलाना वा पृथक् करना) ॥ ३२१ ॥

३२२—उतो वृद्धिर्लुकि हलि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८९ ॥

हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो लुक् विषय में उकारान्त अङ्ग को वृद्धि होवे परन्तु अभ्यस्तसंज्ञक उकारान्त को पूर्वोक्त लक्षणों में भी वृद्धि न होवे । यु+ तिप्= यौति । युतः । युवन्ति (१५९) यौषि । युथः । युथ । यौमि । युवः । युमः । युयाव । युयुवतुः । युयविथ । यवितासि । यविष्यति । याविषाति । याविषाति । यविषति । यविषाति । यवति । यवाति । यौतु । युतात् । युहि । यवानि । यवाव । यवाम । अयौत् । अयुताम् । अयुवन् । अयौः । अयुतम् । अयुत । अयवम् । युयात् । यहां विशेष विधायक जो यासुट्

को ङित्व (७८) है वह पित् का बाधक होने से वृद्धि (३२२) नहीं होती। युयाताम्। युयुः। यूयात्। (१६०) दीर्घ। अयावीत्। अयाविष्टाम्। अयाविषुः। (१५८) अयाविष्यत् [णु] स्तुतौ। नौति। नौषि। नौमि। नवितासि। नाविषति। नाविषाति। नौतु। अनौत्। नुयात्। नूयात्। अनावीत्। अनविष्यत् [रु] शब्दे ॥३२२॥

३२३–तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९५ ॥

तु, रु, स्तु, शम और अम धातुओं से परे जो हलादि सार्वधातुक उस को विकल्प करके इट का आगम होवे (अम,गत्यादिषु) यह धातु भ्वादि गण में लिख चुके हैं। उससे परे वेद में शप् का लुक् (२९७) होने पश्चात् हलादि सार्वधातुक मिलता है। अभ्यमीति। अभ्यमति। प्रयोग होंगे। और शम धातु दिवादि गण का है। रु+ईट+तिप् =रवीति। रौति। रुवीतः। उवङ् (१५९) रुतः। रुवन्ति। यहां हलादि के न होनेसे ईट् न हुआ। और इस सूत्र में सार्वधातुक की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती थी फिर सार्वधातुक ग्रहण का यही प्रयोजन है कि अपित् सार्वधातुक में भी हो जावे। रवीषि। रौषि। रुवीथः। रुथः। रुवीथ। रुथ। रवीमि। रौमि। रुवीमः। रुमः। रवीतु। रौतु। अरवीत्। अरौत्। [टुक्षु] शब्दे। क्षौति। क्षुतः। चुक्षाव। क्षौतु। क्षूयात्। शेष यु के समान [क्ष्णु] तेजने (तीक्ष्ण करना) क्ष्णौति। क्ष्णुतः। चुक्ष्णाव। क्ष्णूयात्। अक्ष्णावीत् [ष्णु] प्रस्रवणे (झरना) स्नौति। सुस्नाव। स्नविता। स्नौतु। स्नूयात्। उदात्ताः परस्मैपदिनः। यु आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं [ऊर्णुञ्] आच्छादने (ढांकना) ॥ ३२३ ॥

३२४–ऊर्णोतेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ७। ३ । ९० ॥

हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो ऊर्णु धातु को विकल्प करके वृद्धि होवे। (३२२) सूत्र से नित्य वृद्धि प्राप्त है इसलिये यह प्राप्तविभाषा जानो। ऊर्णौति ऊर्णोति। ऊर्णुतः। ऊर्णुवन्ति। यहां हलादि के न होने से वृद्धि नहीं होती। ऊर्णौषि। ऊर्णोषि। ऊर्णुते। ऊर्णवाते। ऊर्णुवते। ऊर्णु धातु के इजादि गुरुमान् होने से लिट् में आम् प्रत्यय (१००) प्राप्त है इसलिये ॥ ३२४ ॥

का०–वाच्य ऊर्णोर्णुवद्भावो यङ्प्रसिद्धिः प्रयोजनम्।
आमश्च प्रतिषेधार्थमेकाचश्चेडुपग्रहात् ॥

ऊर्णुञ् धातु को णुवत्भाव कहना चाहिये। अर्थात् जैसे एकाच् हलादि

(णु, स्तुतौ) धातु को कार्य्य होते हैं वैसे इस को भी होवें। प्रयोजन यह है कि एक तो यङ् प्रत्यय एकाच् हलादि से होता है वह इससे भी होवे और इजादि गुरुमान् के न होने से आम् प्रत्यय (१००) न होवे । और (श्रुचकः किति) सूत्र में उगन्त एकाच् धातुओं से परे कित् आर्द्धधातुक को इट् का निषेध कहा है सो इस को भी एकाच् मानकर निषेध हो जावे । ऊर्णुतः । ऊर्णुवान् । इत्यादि में । अब यहां आम् का निषेध होकर । ऊर्णु—णल् । यहां णु को वृद्धि होकर अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव र्णु मात्र को द्वित्व (३५ । ३६) प्राप्त है इसलिये ॥ ३२५ ॥

३२६—न न्द्राः संयोगादयः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३ ॥

अच् से परे संयोग के आदि जो न द और र इन को द्वित्व न होवे इस से रेफ को द्वित्व का निषेध होकर णु शब्द को द्वित्व होता है । ऊर्णुनाव । रेफ को द्वित्व हो जाता तो अभ्यास का आदि हल् वही रेफ है उस से परे अन्य हल् णकार का लोप (३८) हो जाता । ऊर्णुनुवतुः । ऊर्णुनुवुः ॥ ३२६ ॥

३२७—विभाषोर्णोः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३ ॥

ऊर्णु धातु से परे जो इडादि प्रत्यय सो विकल्प करके ङित्वत् हो । ऊर्णुनुविथ । ङित् पक्ष में गुण का निषेध (४५) ऊर्णुनविथ । ऊर्णुनुवे । ऊर्णुनुवाते । ऊर्णुनुविषे । ऊर्णुनविषे । ऊर्णुवितासि । ऊर्णवितासि । ऊर्णुवितासे । ऊर्णवितासे । ऊर्णुविष्यति । ऊर्णविष्यति । ऊर्णुविष्यते । ऊर्णविष्यते । ऊर्णुविषति । ऊर्णुविषाति । ऊर्णुविषत् । ऊर्णुविषात् । ऊर्णविषति । ऊर्णविषाति । ऊर्णविषति । ऊर्णविषाति । ऊर्णवति । ऊर्णवाति । ऊर्णुविषतै । ऊर्णुविषातै । ऊर्णुविषते । ऊर्णुविषाते । ऊर्णविषतै । ऊर्णविषातै । ऊर्णविषतै । ऊर्णविषातै । ऊर्णोतु । ऊर्णोतु । ऊर्णुतात् । ऊर्णुताम् ऊर्णुवन्तु । ऊर्णुहि । ऊर्णुतात् । ऊर्णुतम् । ऊर्णुत । ऊर्णवानि । ऊर्णवाव । ऊर्णवाम । ऊर्णुताम् । ऊर्णुवाताम् । ऊर्णुवताम् । ऊर्णुस्व । ऊर्णवै । ऊर्णवावहै । ऊर्णवामहै ॥ ३२७ ॥

३२८—गुणोऽपृक्ते ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९१ ॥

ऊर्णुञ् धातु को गुण हो अपृक्त हलादि सार्वधातुक परे हो तो। अपृक्त विषय में भी वृद्धि (३२४) प्राप्त है उस का अपवाद यह सूत्र है । और्णोत् । और्णोः। और्णवम् । और्णुत । और्णुवाताम् । और्णुवत । ऊर्णुयात । ऊर्णुयाताम् । ऊर्णुयुः । ऊर्णुवीत । ऊर्णुवीयाताम् । ऊर्णूयात् (१६०) दीर्घ । ऊर्णुविषीष्ट । ऊ[illegible]ष्ट । ऊर्णविषीढ्वम् । ऊर्णविषीध्वम् ॥ ३२८ ॥

३२९–ऊर्णोतेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६ ॥

परस्मैपदविषय में इडादि सिच् परे हो तो ऊर्णु धातु को विकल्प करके वृद्धि होवे । पक्ष में गुण हो जाता है । और्णावीत् । और्णाविष्टाम् । और्णाविषुः । और्णुवीत् । और्णुविष्ट । और्णविष्ट । और्णुविष्यत् । और्णविष्यत् । और्णुविष्यत । और्णविष्यत [द्यु] अभिगमने (सन्मुख चलना) (३२२) वृद्धि । द्यौति । द्युतः । दुद्याव । दुद्युवतुः । दुद्यविथ । द्योतासि । द्योष्यति । द्यौषति । द्यौषाति । द्योषति । द्योषाति । द्यवति।द्यवाति ।द्यौतु । द्युहि । द्यवानि । अद्यौत् । द्युयात् ।द्यूयात्। अद्यौषीत्। (१५८) वृद्धि । अद्योष्यत् ।[षु] प्रसवैश्वर्ययोः (उत्पत्ति और संपत्ति का होना) सौति । सोता । सौतु ॥ ३२९॥

३३०–स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु*॥ अ० ॥ ७ । २ ७२ ॥

स्तु, सु और धूञ् धातु से परे जो सिच् उस को इट् का आगम होवे परस्मैपद विषय में । असावीत् । असाविष्टाम् । असाविषुः । असावीः (१५८) वृद्धि [कु] शब्दे । कौति । चुकाव । कोता । कोष्यति । कौषति । कौषाति । कौतु । अकौत् । कुयात् । कूयात् । अकोषीत् । अकोष्यत् । [तु] गतिवृद्धिहिंसासु । तौति । तवीति (३२३) तुवीतः । तुतः। तुवन्ति । तुताव । तुतुविथ । तुतोथ ।तोतासि । तोष्यति । तौषति तौषाति । तवीतु । तौतु → तुवीतात् । तुतात् । तुवीताम् । तुताम् । अतवीत् । अतौत् । अतवीः । अतौः । तुयात् । तुवीयात् । तुवीयाताम् । तुवीयुः । तूयात् ।तूयास्ताम् । अतौषीत्।अतौष्टाम् । अतोष्यत् । ये द्यु आदि चार धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [ष्टुञ्] स्तुतौ ।स्तवीति। (३२३) स्तौति।स्तुवीतः। स्तुतः । स्तुवीते । स्तुवाते। स्तुवते । स्तुवीषे। स्तुषे। स्तुवीध्वे ।स्तुध्वे। स्तुवे ।स्तुवीवहे ।स्तुवहे । स्तुवीमहे । स्तुमहे । तुष्टाव।तुष्टुवतुः । तुष्टुवुः ।तुष्टोथ(१४८) इट् निषेध ।स्तोतासि । स्तोतासे । स्तोष्यति। स्तोष्यते । स्तौषति । स्तौषाति । स्तोषति । स्तोषाति । स्तौषतै स्तौषातै। स्तोषते । स्तोषाते । स्तोतु । स्तवीतु । स्तुवीताम् । स्तुताम् । अस्तवीत । अस्तौत् । अस्तुवीत । अस्तुत ।अस्तुवीयात् । स्तुयात् । स्तुवीत। स्तुवीयाताम्।स्तूयात्। स्तूयास्ताम्।स्तोषीष्ट । स्तोषीढ्वम् । अस्तावीत् (३३०) इट् । अस्ताविष्टाम् ।अस्ताविषुः । अस्तावीः (३३०)

---

* इस सूत्र को भट्टोजिदीक्षित ने भ्वादिगण के सु धातु पर लिखा है सो स्तु धातु के साहचर्य से लुग्विकरण अदादि के सु धातु का ग्रहण होना चाहिये इसलिये वहां लिखना ठीक नहीं है।

सूत्र में परस्मैपद के कहने से आत्मनेपद में इट् नहीं होता । अस्तोष्ट । अस्तोषाताम् । अस्तोषत । अस्तोष्यत् । अस्तोष्यत [ब्रूञ्] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) ॥३३०॥

३३१—ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ॥अ०॥३।४।८४॥

ब्रूञ् धातु से परे लट् लकार के परस्मैपद संज्ञक आदि के तिप् आदि पांच वचनों को णल् आदि पांच आदेश यथासंख्य करके होवें और उन्हीं आदेशों के सम्बन्ध में ब्रूञ् धातु को आह आदेश हो जावे । इस सूत्र में दूसरी वार ब्रू धातु इसलिये पढ़ा है कि आह आदेश किसी प्रत्यय के स्थान में न हो जावे । ब्रू+तिप् = आह । आहतुः। आहुः । प्राहः । आह+थल् ॥ ३३१ ॥

३३२—आहस्थः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३५ ॥

आह धातु के हकार को थकार आदेश होवे झल् परे हो तो । आत्थ । प्रथम थकार को चर्त्व तकार हो जाता है । आहथुः (३३१) सूत्र में आदि के पांच वचनों के कहने से ब्रूथ । यहां प्रत्यय और धातु को आदेश नहीं होते ॥ ३३२ ॥

३३३—ब्रुव ईट् ॥ अ०॥ ७ । ३ । ९३ ॥

ब्रूञ् धातु से परे जो हलादि पित् सार्वधातुक उस को ईट् का आगम होवे । ब्रवीति । आत्थ । यहां ब्रूञ् को स्थानिवत् मानने से ईट् प्राप्त है परन्तु (३३२) सूत्र से हकार को थकार विधान सामर्थ्य से नहीं होता । ब्रूतः । ब्रुवन्ति । ब्रवीषि । ब्रूथः । ब्रूथ । ब्रवीमि । ब्रूवः । ब्रूमः । ब्रूते । ब्रुवाते । ब्रुवते ॥ ३३३ ॥

३३४—ब्रुवो वचिः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५३ ॥

आर्द्धधातुक विषय में ब्रूञ् धातु को वचि आदेश होवे । इकार व्यंजन की सहायता के लिये है । वच्+वच्+णल् = उवाच (२८३) सम्प्रसारण । ऊचतुः । ऊचुः । (२८२) उवचिथ । उवक्थ । ऊचे । ऊचाते । ऊचिरे । वक्तासि । वक्तासे । वक्ष्यति । वक्ष्यते । वाक्षति । वाक्षाति । वक्षति । वक्षाति । ब्रवति । ब्रवाति । वाक्षतै । वाक्षातै । वक्षतै । वक्षातै । वक्षते । वक्षाते । ब्रवतै । ब्रवातै ब्रवते । ब्रवाते । ब्रवीतु । ब्रूतात् । ब्रूताम् । ब्रुवन्तु । ब्रूहि । ब्रूतात् । ब्रूतम् । ब्रूत । ब्रवाणि । ब्रवाव । ब्रवाम । ब्रूताम् । ब्रुवाताम् ब्रुवताम् । ब्रवै । ब्रवावहै । ब्रवामहै । अब्रवीत् । अब्रूताम् । अब्रुवन् । अब्रूत । ब्रूयात् । ब्रूयाताम् । ब्रूयुः । ब्रुवीत । ब्रुवीयाताम् । ब्रुवीरन् । उच्यात् (३३४) वचि (२८२) सम्प्रसारण । उच्यास्ताम् । वक्षीष्ट । लुङ् में अङ् (३१६) होकर ॥३३५।

३३५ – वच उम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २० ॥

अङ् परे हो तो वच् धातु को उम् का आगम होवे । मित् आगम अन्त्य अच् से परे होकर । अट्+व –उम् च्+अङ्+तिप् = अवोचत् । अवोचताम् । अवोचन् । अवोचत । अवोचेताम् । अवोचन्त । अवदयत् । अवद्यत । आशिषि लिङ् में वच आदि कई धातुओं के प्रयोग वैदिक विषय में कुछ विशेष होते हैं ॥ ३३५ ॥

३३६ –लिङ्याशिष्यङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८६ ॥

आशीर्वाद अर्थ में लिङ् परे हो तो वेदविषय में सामान्य धातुओं से अङ् प्रत्यय होवे ॥ ३३६ ॥

३३७– छन्दस्युभयथा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११७ ॥

वेदविषय में जिन प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा कही है उन की आर्द्धधातुक और जिन की आर्द्धधातुक संज्ञा कही है उन की सार्वधातुक संज्ञा भी होवे । प्रकृत में आशीर्वाद अर्थ में लिङ् की आर्द्धधातुक संज्ञा (८४) कह चुके हैं उस की सार्वधातुक संज्ञा भी होवे (भा०—स्थागागमिवचिवदिशकिरुहयः प्रयोजनम्) स्था, गा, गम, वच, वद, शक और रुह इन धातुओं से बहुधा आशिष् लिङ् में अङ् होता है । यह नियम नहीं है कि इन्हीं धातुओं से होवे अन्य से नहीं (स्था) उपस्थ + अङ् + यासुट् + मिप् = उपस्थेयम् (२४४)आकारलोप और सार्वधातुक संज्ञा मान के इय् आदेश (८१) (गा) गै धातु भ्वादिगण में लिख चुके हैं उसी को यहां जानो । उपगा + अङ् + यासुट् + अम् = उपगेयम् । पूर्ववत् (गम) गम् + अङ् + इय् + मस् = गमेम । यहां लिङ् की सार्वधातुक संज्ञा होने से इय् और अङ् की आर्द्धधातुक संज्ञा मान के गम् को छकारादेश (२७३) नहीं होता (वच) वउम्च् + अङ् + यासु+ मस् = वोचेम (विद) विद् + अङ् + इय् + मिप् = विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् (शकि) शक्+अङ् + इय् +मिप्=शकेयम् (रुह)रुह्+अङ्+इय्+मिप्=रुहेयम् ॥ ३३७॥

३३८–दृशेरग्वक्तव्यः ॥

दृश धातु से अक् प्रत्यय कहना चाहिये । दृश्+अक् + इय् + अम् = दृशेयम् जो यहां (३३६) सूत्र से अङ् होता तो अकित् होने से अम् (२७८) हो जाता इसलिये अक् पढ़ा है ॥

अथ शास्त्यन्ताः परस्मैपदिनः । इक्त्वात्मनेपदी । अब शासु धातुपर्यंत परस्मैपदी

कहते हैं परन्तु इङ् धातु एक आत्मनेपदी है [इण्] गतौ । एति । इतः ॥ ३३८ ॥

३३९—इणो यण् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ८१ ॥

इण् धातु को यण् आदेश होवे अच् परे हो तो । यन्ति । यह सूत्र इयङ् (१५९) का अपवाद है । इ+णल् = इयाय । यहां इकार को ऐकार वृद्धि और ऐ को द्वित्व होकर इयङ् (१५३) होता है ॥ ३३९ ॥

३४० — दीर्घ इणः किति ॥ अ०॥ ७ । ४ । ६९ ॥

इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ आदेश होवे कित् लिट् परे हो तो । इ—अतुस् । इस अवस्था में यण् होकर । यण् को स्थानिरूप (२४५) मानकर द्वित्व होता है । ईयतुः । ईयुः। इययिथ । इयेथ। ईयथुः । ईय । इयाय । इयय । ईयिव । ईयिम । एतासि । एष्यति । ऐषाति । ऐषाति । एषति । एषाति । अयति । अयाति । एतु । इतात् । इताम् । यन्तु (३३९) यण्। इहि । इतात् । इतम् । इत । अयानि । अयाव । अयाम । ऐत् । ऐताम् । आयन् । ऐः । ऐतम् । ऐत । आयम् । ऐव । ऐम । इयात् । इयाताम् । इयुः । ईयात् (१६०) दीर्घ । ईयास्ताम् ॥ ३४० ॥

३४१ —एतेर्लिङि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २४ ॥

उपसर्ग से परे इण् धातु के अण् को ह्रस्व होवे कित् लिङ् परे हो तो । उदियात् समियात् । अन्वियात् । सम् + आ + इ + यासुट् +तिप् = समेयात् । यहां एकार अण् नहीं है इसलिये ह्रस्व नहीं होता ॥ ३४१ ॥

३४२—इणो गा लुङि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४५ ॥

इण् धातु को गा आदेश होवे लुङ् लकार परे हो तो । गा होकर सिच् का लुक् (८९) सूत्र में गाति करके यही गा आदेश लिया जाता है । अगात् । अगाताम् । अगुः [इङ्] अध्ययने (पढ़ना) इस धातु के प्रयोग नित्य अधि उपसर्गपूर्वक ही आते हैं । अधि+इ+त = अधीते । सवर्णदीर्घ एकादेश होता है । अधीयाते । अधीयते । इयङ् (१५९) अधीषे । अधीयाथे । अधीध्वे । अधीये । अधीवहे । अधीमहे ॥ ३४२ ॥

३४३—गाङ् लिटि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४९ ॥

इङ् धातु को गाङ् आदेश होवे लिट् लकार की विवक्षा में । अधि+गा+एश्=अधिजगे । यहां प्रथम आकारलोप (२४४) होकर स्थानिरूप (२४५) मान के द्वित्व होता है । अधिजगाते । अधिजगिरे । अधिजगिषे । अध्येतासे । यहां अधि के इकार

को यण् हो जाता है । अध्येष्यते । अध्यैषतै । अध्यैषातै । अध्येषतै । अध्येषातै । अध्यैषते । अध्यैषाते । अध्येषते । अध्येषाते । अधीताम् । अधीयाताम् । अधीयताम् । अध्ययै । अध्ययावहै । अध्ययामहै । अध्यैत । अध्यैयाताम् । यहां परत्व से प्रथम इयङ् (१५९) और पीछे आट् होकर उस के साथ वृद्धि होती है । अध्यैयत । अध्यैथाः । अध्यैयाथाम् । अध्यैध्वम् । अध्यैयि । अध्यैवहि । अध्यैमहि । अधीयीत । अधीयीयाताम् । अधीयीरन् । अधीयीध्वम् । अधीयीय । अध्येषीष्ट । अध्येषीयास्ताम् । अध्येषीढ्वम् ॥ ३४३ ॥

३४४—विभाषा लुङ्लृङोः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५० ॥

इङ् धातु को गाङ् आदेश विकल्प करके होवे लुङ् और लृङ् लकार परे हों तो। गाङ् आदेश पक्ष में ॥ ३४४ ॥

३४५ – गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् ॥ अ० ॥ १ । २ । १ ॥

गाङ् और कुटादि धातुओं से परे जो ञित् णित् भिन्न प्रत्यय वे ङित्वत् हों । यहां लुङ् में सिच् और लृङ् में स्य ङित्वत् होकर ॥ ३४५ ॥

३४६—घुमास्थागापाजहातिसां हलि ॥ अ० ॥ ६ । ४।६६॥

घुसंज्ञक (२४६) मा, स्था, गा, पा, ओहाक् और षो धातु के आकार को ईकारादेश होवे हलादि कित् ङित् आर्द्धधातुक परे हो तो। अध्यगीष्ट । अध्यगीषाताम् । अध्यगीषत । अध्यगीष्ठाः । अध्यगीढ्वम् । जिस पक्ष में गाङ् (३४४) न हुआ वहां । अध्यैष्ट । अध्यैषाताम् । अध्यैढ्वम् । अध्यगीष्यत । अध्यगीष्येताम् । अध्यगीष्यन्त । अध्यैष्यत । [इक] स्मरणे (स्मरण करना) यहभी धातु अधि उपसर्गपूर्वक ही है इस में कारकविषयक (अधीगर्थदयेशां कर्मणि) सूत्र का प्रमाण है । अध्येति । अधीतः । अधीयन्ति । अध्येषि । अधीयाय । अधीयतुः । अधीयुः। अध्येतासि । अध्येष्यति । अध्यैषति । अध्यैषाति । अध्येषति । अध्येषाति । अध्येतु । अधीतात् । अधीताम् । अधीयन्तु । अधीहि । अध्ययानि । अध्ययाव । अध्ययाम । अध्यैत् । अध्यायन् । अध्यैः । अध्यायम् । अधीयात् । अधीयाताम् । अधीयुः । अधीयात् । अधीयास्ताम् ॥ ३४६ ॥

३४७—वा०—इण्वदिक इति वक्तव्यम्† ॥

आर्द्धधातुक अधिकार में इक् धातु को इण् के तुल्य कार्य होवें अर्थात् लुङ् लकार में जो इण् धातु को गा आदेश (३४२) कहा है सो इक् को भी होवे। अध्यगात् । अध्यगाताम् । अध्यगुः । अध्येष्यत् [वी] गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु (गति, व्याप्ति, गर्भ होना, इच्छा, फेंकना और खाना) वेति । वीतः । वियन्ति (१५९) इयङ् । वेषि । विवाय । विव्यतुः । विव्युः विवयिथ । विवेथ । वेता । वेष्यति । वैषति । वैषाति । वेषति । वेषाति । वयति । वयाति । वेतु । वीतात् । वीहि । वयानि । अवेत् । अवीताम् । अवियन् । अवेः । वीयात् । वीयाताम् । वीयुः । वीयास्ताम् । अवैषीत् । अवैष्टाम् । अवैषुः । अवेष्यत् । इस वी धातु में मिला उन्हीं अर्थों में ई धातु भी मानते हैं । एति । ईतः । इयन्ति । इयाय । ईयतुः । एता । एष्यति । ऐषति । ऐषाति [या] प्रापणे (प्राप्त होना) याति । यातः । यान्ति । ययौ । ययतुः । ययुः । ययिथ । ययाथ । यातासि । यास्यति यासति । यासाति । यातु । अयात् । अयाताम् ॥३४७ ॥

३४८—लङः शाकटायनस्यैव ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १११ ॥

आकारान्त धातु से परे जो लङ् लकार का झि उस को जुस् आदेश होवे शाकटायन आचार्य ही के मत में । अयुः (८३) पररूपएकादेश । अयाः । अयातम् । अयात । अयाम् । अयाव । अयाम । यायात् । यायाताम् । यायास्ताम् । अयासीत् । अयासिष्टाम् । अयासिषुः । अयास्यत् [वा] गतिगन्धनयोः (गति और सूचना) वाति । वातः । वान्ति । वासि । ववौ । वातासि । वास्यति । वासति । वासाति । वातु । वाहि । अवात् । अवासीत् । अवास्यत् । [भा] दीप्तौ (प्रकाश) भाति । बभौ [ष्णा] शौचे । स्नाति । सस्नौ । स्नेयात् (२५२) स्नायात् । अस्नासीत् [श्रा] पाके । श्रेयात् । श्रायात् [द्रा] कुत्सायां गतौ च (निन्दा और गति) द्रेयात् [प्सा] भक्षणे (खाना) प्साति । पप्सौ । प्सेयात् । प्सायात् । [पा]

---

† इस वार्तिक को भट्टोजिदीक्षित ने लट् लकार में लगा के और (अधियन्ति) प्रयोग इक् धातु को यण् (३३९) कर के बनाया और पीछे यह भी लिखा है कि कोई लोग इस को आर्द्धधातुक विषय में कहते हैं उन के मत में (अधीयन्) होगा। सो यह महाभाष्य से विरुद्ध होने के कारण माननीय नहीं भाष्यकार ने इस वार्तिक को (३४२) सूत्र पर लिखकर लुङ् लकार के उदाहरण दिये हैं और (३४२) सूत्र भी आर्द्धधातुक अधिकार में होने से लट् लकार में इक् धातु को इणवत् कार्य कदापि नहीं हो सकता फिर (अधियन्ति) प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है ॥

रक्षणे । पायास्ताम् (२५२) सूत्र में पा धातु से पिबति का ग्रहण होने से इस धातु को एकारादेश (२५२) नहीं होता । अपासीत् (८९) सूत्र में भी पिबति का ही ग्रहण होने से सिच्लुक् नहीं होता [रा] दाने । राति [ला] आदाने । लाति । लायात् [दाप्] लवने (काटना) दाति । दायास्ताम् । घुसंज्ञा के (२४६) न होने से ईकार आदेश और । अदासीत् । सिच्लुक् (८९) नहीं होता [ख्या] प्रकथने (अच्छे प्रकार कहना) इस धातु के प्रयोग सार्वधातुकविषय में ही समझने चाहियें क्योंकि आर्द्धधातुक विषय में चक्षिङ् धातु को ख्याञ् आदेश (३१२) कह चुके हैं उसी के प्रयोग आते हैं । ख्याति । ख्येयात् । ख्यायात् । [प्रा] पूरणे (तृप्त करना) प्राति । प्रेयात् । प्रायात् । अप्रासीत् [मा] माने (समा जाना) माति । ममौ । ममिथ । ममाथ । मातासि । मास्यति । मासति । मासाति । मातु । माहि । अमात् । मेयात् (२४७) मेयास्ताम् । अमासीत् । अमास्यत् [वच] परिभाषणे (व्याख्यान करना) वक्ति । वक्तः । वचन्ति । वक्षि । वक्थः । वच्मि । उवाच (२८२) संप्रसारण । ऊचतुः (२८३) ऊचुः । उवचिथ । उवक्थ । वक्तासि । वक्ष्यति । वाक्षति । वाक्षाति । वक्तु । वग्धि । वचानि । अवक् । अवक्ताम् । अवचन् । अवक् । वच्यात् । उच्यात् (२८३) उच्यास्ताम् । अवोचत् । अङ् । और (३३५) उम् आगम । ये इण् आदि अनिट् परस्मैपदी धातु समाप्त हुए [विद] ज्ञाने ॥ ३४८ ॥

३४९—विदो लटो वा ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८३ ॥

विद धातु से परे लट् लकार संबन्धी परस्मैपदसंज्ञक प्रत्ययों के स्थान में णल् आदि ९ आदेश यथासंख्य और विकल्प करके होवें । वेद । विदतुः । विदुः । वेत्थ । विदथुः । विद । वेद । विद्व । विद्म । पक्ष में । वेत्ति । वित्तः । विदन्ति । आम्प्रत्ययविधायक (२१३) सूत्र में विद धातु अकारान्त निपातन भाष्यकार ने किया है आम् प्रत्यय के परे विद धातु के अकार का लोप (१७२) होकर स्थानिवत् होने से आम् प्रत्यय को मानकर गुण नहीं होता । विदाञ्चकार । विदाञ्चक्रतुः । विदाञ्चक्रुः । पक्ष में । विवेद । विविदतुः । विविदुः । विवेदिथ । वेदितासि । वेदिष्यति । वेदिषति । वेदिषाति । वेदति । वेदाति । वेत्तु । वित्तात् । वित्ताम् ॥ ३४९ ॥

३५०—विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्* ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४१ ॥

लोट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में विदाङ्कुर्वन्तु विकल्प से निपातन किया है। विद् धातु से आम् प्रत्यय कृञ् का अनुप्रयोग और उ प्रत्यय विकरण आदि निपातन से होते हैं। और पक्ष में। विदन्तु। भी होता है। विद्धि। वित्तात्। वित्तम्। वित्त। वेदानि। वेदाव। वेदाम। अवेत्। अवित्ताम्। अविदुः (१३४) झि को जुस् ॥ ३५० ॥

३५१—दश्च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७५ ॥

धातु के पदान्त दकार को रु आदेश विकल्प करके होवे सिप् परे हो तो। अवेः। रु को विसर्जनीय पक्ष में। अवेत्। अवित्तम्। अवित्त। अवेदम्। अविद्व। अविद्म। विद्यात्। विद्युः। विद्यास्ताम्। अवेदीत्। अवेदिष्टम्। अवेदिषुः। अवेदिष्यत् [अस] भुवि। यह धातु भू धातु के अर्थ में है। अस्ति ॥ ३५१ ॥

३५२—श्नसोरल्लोपः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १११ ॥

श्नम् प्रत्यय और अस् धातु के अकार का लोप होवे कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो। अस्+तस् = स्तः। सन्ति। असि (५४) स्थः। स्थ। अस्मि। स्वः। स्मः ॥ ३५२ ॥

३५३—अस्तेर्भूः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५२ ॥

अस धातु को भू आदेश होवे सामान्य आर्द्धधातुक विषय में अर्थात् आर्द्धधातुक लकारों में भू धातु के ही प्रयोग होते हैं अस् के नहीं। बभूव। बभूवतुः। बभूविथ। भवितासि। भविष्यति। भाविषति। भाविषाति। असति। असाति। असत्। असात्। अस्तु। स्तात्। स्ताम्। सन्तु (३५२) अस्—हि। यहां ॥ ३५३ ॥

---

*इस सूत्र में जो इति शब्द पढ़ा है उससे शब्द के स्वरूप का बोध होता है और इति शब्द का यही प्रयोजन सर्वत्र आता है। काशिकाकार आदि और भट्टोजिदीक्षित ने लिखा है कि इति शब्द पढ़ने से पुरुष और वचन की विवक्षा नहीं कि लोट् के प्रथम पुरुष बहुवचन का ही प्रयोग निपातन किया होवे किन्तु लोट् लकार के सब प्रयोगों में निपातन किया है। विदाङ्करोतु। आदि भी प्रयोग होते हैं सो यह व्याख्यान माननीय नहीं है क्योंकि मूल और महाभाष्य से विरुद्ध है। इस से अगले। अभ्युत्सादयां०। सूत्र में ऐसे ही आम्प्रत्ययांत निपातन किये हैं वहां भी इति शब्द पढ़ा है उसका व्याख्यान इन लोगों ने भी स्वरूपबोधक ही रक्खा है। इस से इनका व्याख्यान पूर्वापर विरुद्ध भी है।

३५४–घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४।११९ ॥

घुसंज्ञक और अस धातु को एकारादेश और घुसंज्ञक के अभ्यास का लोप होवे हि परे हो तो। अस धातु के अन्त्य अल् सकार के स्थान में एकारादेश होता है पीछे एकारादेश को असिद्ध (४२) मानकर हि को धि (३००) और अकार का लोप (३५२) होता है। एधि। स्तात्। स्तम्। स्त। असानि। असाव। असाम। लङ् में ईट् (१३१) आसीत्। यहां भी तस् आदि में लोप के वलीय होने से अकार-लोप (३५२) होकर अजादि के न होने से आट् (११९) नहीं प्राप्त है सो अकार-लोप को असिद्ध (४२) मानकर आट् हो जाता है। आस्ताम्। आसन्। आसीः। आस्तम्। आस्त। आसम्। आस्व। आस्म। स्यात्। स्याताम्। स्युः। स्याः। भूयात्। भूयास्ताम्। अभूत्। अभूताम्। अभूवन्। अभविष्यत्। [मृजूष] शुद्धौ (पवित्रता) यह धातु ऊदित् है ॥ ३५४ ॥

३५५ – मृजेर्वृद्धिः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११४ ॥

मृज धातु के इक् को वृद्धि होवे सामान्य प्रत्ययों के परे। ऋकार को आर् वृद्धि। मार्ष्टा (२३३) षत्व। मृष्टः ॥ ३५५ ॥

३५६ – वा० – इहान्ये वैयाकरणा मृजेरजादौ संक्रमे विभाषा वृद्धिमारभन्ते ॥

यह वार्तिक (इको गुणवृद्धी) सूत्र पर है। इस व्याकरण शास्त्र में बहुतेरे वैयाकरण लोग मृज धातु की अजादि कित् ङित् प्रत्ययों के परे विकल्प करके वृद्धि कहते हैं। मार्जन्ति। मृजन्ति। मार्ष्टि। मृष्ठः। मृष्ठ। मार्ज्मि। मृज्वः। मृज्मः ममार्ज। ममार्जतुः। ममृजतुः। ममार्जुः। ममृजुः। ऊदित् होने से इट् का विकल्प (१४०) ममार्जिथ। ममार्ष्ठ। ममार्जथुः। ममृजथुः। ममार्ज। ममृज। ममार्ज। ममर्ज। ममार्जिव। ममृजिव। ममृज्व। ममार्जिम। ममृजिम। ममृज्म। मार्जितासि। मार्ष्टासि। मार्जिष्यति। मार्क्ष्यति। मार्जिषति।मार्जिषाति।मार्क्षति। मार्क्षाति। मार्जाति। मार्जाति। मार्ष्टु। मृष्टात्। मृष्टाम्। मार्जन्तु। मृजन्तु। मृड्ढि। यहां षत्व होने के पश्चात् (२३३) जश्त्व ष्टुत्व होते हैं। मार्जानि।। मार्जाव। मार्जाम। अमार्ट्। अमृष्टाम्। अमार्जन्। अमृजन्। अमार्जम्। मृज्यात्। मृज्याताम्। मृज्यास्ताम्। अमार्जीत्। अमार्जिष्टाम्।

अमार्ज्जीत् । अमार्ष्टाम् । अमार्ज्जुः । अमार्जिष्यत् । अमार्द्यत् [रुदिर्] अश्रुविमोचने (रोना) ॥ ३५६ ॥

३५७ – रुदादिभ्यः सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७६ ॥

रुद्, स्वप्, श्वस्, अन और जक्ष इन पांच धातुओं से परे वलादि सार्वधातुक को इट् का आगम होवे । रोदिति । रुदितः । रुदन्ति । रोदिषि। रुदिथः । रुदिथ । रोदिमि । रुदिवः । रुदिमः । रुरोद। रुरुदतुः। रुरुदुः । रुरोदिथ । रोदितासि । रोदिष्यति । रोदिषति। रोदिषाति । रोदति । रोदाति । रोदितु । रुदिहि । रोदानि । रोदाव । रोदाम ॥ ३५७ ॥

३५८–रुदश्च पञ्चभ्यः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९८ ॥

रुद आदि उक्त पांच धातुओं से परे हलादि पित् अपृक्त सार्वधातुक को ईट् होवे। अरोदीत् । अरोदीः ॥ ३५८ ॥

३५९–अड् गार्ग्यगालवयोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९९ ॥

गार्ग्य और गालव आचार्यों के मत में रुद आदि पांच धातुओं से परे उक्त सार्वधातुक को अट् का आगम होवे। यह ईट् और अट् इट् के आगम का निषेध है। अरोदत् । अरुदताम् । अरुदन् । अरोदः अरुदितम् । अरुदित अरोदम् । अरुदिव । अरुदिम । प्रकृति और प्रत्यय की विशेष अपेक्षा रखनेवाले अट् और ईट् आगमों से अन्तरङ्ग होने के कारण यासुट् प्रथम हो जाता है फिर ईट् और अट् की प्राप्ति नहीं है । रुद्यात् । रुद्याताम् । रुद्यास्ताम् । इरित् होने से अङ् विकल्प (१३८) अरुदत् । अरुदिताम् । अरुदन् । अरोदीत् । अरोदिष्टाम् । अरोदिषुः [ञिष्वप] शये (सोना) स्वपिति (३५६) इट्। स्वपितः । स्वपन्ति । सुष्वाप (२८२) संप्रसारण सुषुपतुः (२८३) सुषुपुः । सुष्वपिथ । सुष्वप्थ । स्वप्तासि । स्वप्स्यति । स्वाप्सति । स्वाप्साति । स्वप्सति । स्वप्साति । स्वपति । स्वपाति । स्वपितु । स्वपितात् । स्वपिहि । अस्वपीत् (३९८) अस्वपत् (३५९) अस्वपिताम् । अस्वपन् । अस्वपीः । अस्वपः। अस्वपम् । स्वप्यात् । स्वप्याताम् । सुप्यात् । सुप्यास्ताम् (२८३) अस्वाप्सीत् । अस्वाप्ताम् । अस्वाप्सुः । अस्वाप्सीः । अस्वाप्तम् । अस्वाप्त । अस्वाप्सम् । अस्वाप्स्व । अस्वाप्स्म । अस्वप्स्यत् [श्वस] प्राणने (ऊपर का श्वास) श्वसिति । श्वसितः । श्वसन्ति । शश्वास । शश्वसतुः। शश्वसुः । शश्वसिथ । श्वसितासि । श्वसिष्यति । श्वासिषति । श्वासिषाति । श्वसितु । श्वसिहि । अश्वसीत् । अश्वसत् । अश्वसीः । अश्वसः।

श्वस्यात् । अश्वसीत् (१६२) वृद्धि का निषेध । अश्वसिष्यत् [अन] च । यह धातु भी प्राणन अर्थ में है । अनिति । आन । आनतुः । अनितु । आनीत् । आनत् । आनीः । आनः । अन्यात् । आनीत् । आनिष्टाम् । आनिष्यत् [जक्ष] भक्षहसनयोः (खाना और हंसना) जक्षिति । जक्षितः ॥ ३५९ ॥

३६०—जक्षित्यादयः षट् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६ ॥

जक्ष धातु से लेकर वेवीङ्पर्यन्त सात धातुओं की अभ्यस्त संज्ञा होवे । इस सूत्र में अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है । अर्थात् जक्ष धातु जिन के आदि में हो ऐसे अन्य छः धातु और जक्ष सातवां हुआ । अभ्यस्त का फल ॥ ३६० ॥

३६१—अदभ्यस्तात् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ४ ॥

अभ्यस्तसंज्ञक धातुओं से परे जो प्रत्यय का आदि झकार उस को अत् आदेश होवे । यह अन्त आदेश का बाधक है । जक्षति । जक्षिषि । जजक्ष । जजक्षिथ । जक्षितासि । जक्षिष्यति । जक्षिषति । जक्षिषाति । जक्षति । जक्षाति । जक्षितु । जक्षतु । जक्षिहि । अजक्षीत् । अजक्षत् । अजक्षिताम् । अजक्षुः (१३४) अभ्यस्त होने से जुस् । अजक्षीः । अजक्षः । जक्ष्यात् । जक्ष्याताम् । जक्ष्यास्ताम् । अजक्षीत् । अजक्षिष्यत् । ये रुदादि पांच धातु समाप्त हुए ॥

[जागृ] निद्राक्षये (जागना) इस धातु के अन्त्य ऋकार का लोप नहीं होता क्योंकि वह उपदेश में अनुनासिक नहीं पढ़ा है । जागर्त्ति । जागृतः । जाग्रति । अभ्यस्त संज्ञा (३६०) होने से प्रत्ययादि झकार को अत् । जागर्ति । जागृथः । जागृथ । जागर्मि । जागृवः । जागृमः । लिट् में विकल्प से आम् (२१३) जागराञ्चकार । जागराम्बभूव । जागरामास । पक्ष में यह धातु दो स्वरवाला है इसलिये प्रथम एकाच् अवयव जामात्र को द्वित्व होता है । जजागार ॥ ३६१ ॥

३६२—जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८५ ॥

जागृ धातु को गुण होवे वृद्धिविषय और निषेधविषय में परन्तु वि, चिण्, णल् और ङित् प्रत्ययों के परे न होवे । वि करके उणादि का विन् प्रत्यय लिया है । इस सूत्र से तीन प्रकार का नियम निकलता है । एक तो कित् ङित् प्रत्ययों में गुण नहीं प्राप्त है वहां कित् में होना ङित् में नहीं । विन् प्रत्यय में गुण प्राप्त है वहां न होना । जागृविः । चिण् और णल् को छोड़के अन्यत्र वृद्धि-

विषय में गुण होना वृद्धि नहीं । फिर चिण् और णल् में वृद्धि ही होती है । जजागरतुः । जजागरुः । जजागरिथ । जागरितासि । जागरिष्यति । जागरिषति । जागरिषाति । जागर्त्तु । जागृतात् । जागृताम् । जाग्रतु । जागृहि । जागराणि । जागराव । जागराम । अजागः । अजागृताम् । अभ्यस्त होने से जुस् (१३४)॥ ३६२ ॥

३६३-जुसि च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८३ ॥

अजादि जुस् परे हो तो इगन्त अङ्ग को गुण होवे । अजागरुः । यहां ङित् होने से गुण नहीं प्राप्त है इसलिये यह सूत्र है । अजागः । अजागरम् । जागृयात् । जागृयाताम् । जागृयुः । अजादि के कहने से यहां जुस् में गुण नहीं होता । जागर्यात् । जागर्यास्ताम् । जागर्यासुः । लुङ् में । अट्-जागृ-इस्-ईट्-तिप् । इस अवस्था में जागृ धातु के ऋकार को यणादेश प्राप्त है उस का बाधक गुण (२१) प्राप्त और गुण का अपवाद वृद्धि (१५८) प्राप्त है उस का भी अपवाद गुण (३६२) होता है फिर अर् गुण होकर हलन्त होने से वृद्धि (१३५)प्राप्त है उस का निषेध(१३६) होकर विकल्प से वृद्धि (१४४) प्राप्त है उसका बाधक नित्य वृद्धि (१९६) प्राप्त है उस का भी निषेध (१६२) हो जाता है । अजागरीत् । अजागरिष्टाम् । अजागरिष्यत् [दरिद्रा] दुर्गतौ (बुरा हाल) दरिद्राति ॥ ३६३ ॥

३६४-इद्दरिद्रस्य ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११४ ॥

हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हों तो दरिद्रा धातु को इकारादेश हो । अन्त्य अल् आकार को होता है । दरिद्रितः ॥ ३६४ ॥

३६५-श्नाभ्यस्तयोरातः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११२ ॥

श्ना प्रत्यय और अभ्यस्तसंज्ञक धातुओं के आकार का लोप हो कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो । दरिद्रति । दरिद्रासि । दरिद्रिथः । दरिद्रिथ । दरिद्रामि । दरिद्रिवः । दरिद्रिमः । (१६९ । १७०) सूत्रों से दरिद्रा धातु को अनेकाच् मानकर आम् प्रत्यय होता है । दरिद्राञ्चकार । दरिद्राम्बभूव । दरिद्रामास । वेद में आम् प्रत्यय नहीं होता वहां । ददरिद्रौ । ददरिद्रतुः । ददरिद्रुः ॥ ३६५ ॥

३६६-वा०- दरिद्रातेरार्द्धधातुके लोपो वक्तव्यः ॥

आर्द्धधातुक प्रत्ययों की विवक्षा में दरिद्रा धातु के आकार का लोप होवे । प्रयोजन यह है कि इट् और अजादि कित् ङित् आर्द्धधातुक में आकारलोप (२४४)

होता है इस वार्तिक से हलादि कित् ङित् आर्द्धधातुक में भी हो जाता है। ददरिद्रिथ। दारिद्रितासि। दरिद्रिष्यति। दरिद्रिषाति। दरिद्रातु। दरिद्रितात्। दरिद्रिताम्। दरिद्रतु दरिद्रिहि। दरिद्राणि। अदरिद्रात्। अदरिद्रिताम्। अदरिद्रुः। दरिद्रियात्। दरिद्रियाताम्। दरिद्रियुः। दरिद्रयात्। दरिद्रयास्ताम्। यहां हलादि कित् आर्द्धधातुक में लोप (३६६) होता है ॥ ३६६ ॥

३६७—वा०-अद्यतन्यां वेति वक्तव्यम् ॥

लुङ् लकार में दरिद्रा धातु के आकार का लोप विकल्प करके होवे। पूर्व आचार्यों के मत में अद्यतनी संज्ञा लुङ् लकार की है। अदरिद्रीत्। अदरिद्रिष्टाम्। अदरिद्रासीत् (२५२) अदरिद्रिष्यत् ॥३६७॥

३६८—का०—न दरिद्रायके लोपो दरिद्राणे च नेष्यते। दिदरिद्रासतीत्येके दिदरिद्रिषतीति वा ॥

आर्द्धधातुक में सामान्य करके जो लोप (३६५) कहा है सो। दरिद्रायकः। यहां कृदन्त ण्वुल् प्रत्यय में तथा। दरिद्राणम्। यहां ल्युट् प्रत्यय में आकारलोप न होवे और सन् प्रत्यय के परे विकल्प करके होवे। दिदरिद्रिषति। दिदरिद्रासति। [चकासृ] दीप्तौ (प्रकाश) चकास्ति। चकास्तः। चकासति। चकासाञ्चकार। (१७०) आम्। चकासाम्बभूव। चकासामास। चकासितासि। चकासिष्यति। चकासिषाति। चकासिषाति। चकास्तु। चकासतु चकास्—हि। यहां प्रथम हि को धि आदेश (३०७) होकर धकार के परे सलोप (१११) हो जाता है। चकाधि। चकासानि। अचकास्—त्। यहां संयोगान्त तकार का लोप होकर ॥ ३६८ ॥

३६९—तिप्यनस्तेः ॥ अ० ॥ ८। २। ७३ ॥

अस धातु को छोड़के अन्य धातु के पदान्त सकार को दकार आदेश होवे तिप् परे हो तो। अचकात्। अचकाद्। अचकास्ताम्। अचकासुः ॥ ३६९॥

३७०—सिपि धातो रुर्वा ॥ अ० ॥ ८। २। ७४ ॥

पदान्त धातु के सकार को विकल्पकरके रु हो सिप् परे हो तो। पक्ष में पूर्व सूत्र से दकार होता है। अचकाः। अचकात्। चकास्यात्। चकास्यास्ताम्। अचकासीत्। अचकासिष्टाम्। अचकासिष्यत् [शासु] अनुशिष्टौ (शिक्षा देना) शास्ति ॥ ३७० ॥

३७१– शास इदङ्हलोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३४ ॥

शास धातु की उपधा को इकार आदेश होवे अङ् और हलादि कित् ङित् आर्द्धधातुक परे हो तो । शिष्टः (२८४) षत्व । शासति । शास्सि । शिष्ठः । शिष्ठ । शास्मि । शिष्वः । शिष्मः । शशास । शशासतुः । शशासुः । शासितासि । शासिष्यति । शासिषति । शासिषाति । शास्तु । शिष्टात् । शिष्टाम् । शासतु ॥ ३७१ ॥

३७२—शा हौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३५ ॥

शास धातु को शा आदेश होवे हि परे हो तो । शा आदेश अनेकाल् होने से संपूर्ण के स्थान में होता है । शा आदेश को असिद्ध (४२) मानकर हि को धि आदेश (३००) हो जाता है । शाधि । शिष्टात् । शिष्टम् । शिष्ट । शासानि । अशात् । (३६९) अशिष्टाम् । अशासुः । अशात् । अशाः (३७०) शिष्यात् । शिष्याताम् । शिष्यास्ताम् । लुङ् में (२९६) सूत्र से अङ् होकर इकार (३७१) अशिषत् । अशिषाताम् अशिषन् । अशासिष्यत् । इति विदादय उदात्ताः परस्मैपादिनः ॥

ये विद आदि सेट् परस्मैपदी धातु हैं परन्तु स्वप धातु अनिट् है। अब आगे पांच धातु वैदिक विषयक कहते हैं उन के प्रयोग लोक में नहीं आते [दीधीङ्] दीप्तिदेवनयोः (प्रकाश और क्रीड़ा आदि) [वेवीङ्] वेतिना तुल्ये । वी गतिव्याप्ति०। इस लिखित धातु के अर्थों में वेवीङ् धातु भी है। दीधीते । दीध्याते (१५६) यण् । दीध्यते । दीधीषे। दीध्याथे । दीधीध्वे। दीध्ये । दीधीवहे। दीधीमहे । वेवीते । वेव्याते । दिदीध्ये । वेद में निषेध होने के कारण आम् प्रत्यय (१६९) लिट् में नहीं होता । दिदीध्याते। दिदीध्यिरे ॥ ३७२ ॥

३७३—यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५३ ॥

दीधी और वेवी धातु के अन्त्य वर्ण का लोप होवे यकारादि और इवर्ण परे हों तो। दिदीधिषे । विवीव्ये । विवीविषे । दिदीधिवहे । विवीविवहे । दीधितासे (५२) गुणनिषेध । वीवितासे । दीधिष्यते । दीधिषतै । दीधिषातै। दाध्यतै । दीध्यातै । दीधी-ताम् । दीध्यै । अदीधीत । दीधीत । दीधिषीष्ट। अदीधिष्ट । अदीधिष्यत । उदात्तावात्मने-पदिनौ । ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ त्रयः परस्मैपादिनः [षस, सास्ति] स्वप्ने (सोना) सास्ति । सस्तः । ससन्ति । सास्सि । ससास । सेसतुः । सासितासि । सासिष्यति। सासिषति । सासिषाति। सस्तु । असत् (३६९) असस्ताम् । अससन् । असः । असत् (३७०) अससम् । सस्यात् । सस्याताम् ।

सस्युः। सस्यास्ताम्। असासीत्। अससीत्। असासिष्यत्। सस्ति धातु में इदित् होने से नुम्। संस्त-ति। इस अवस्था में संयोगादि सकार का लोप (१९०) होकर हल् से परे तकारलोप (२७२) होता है। सान्ति। सन्तः। संस्तन्ति। सन्त्सि। सन्थः। सन्थ। सन्त्मि। सन्त्व। सन्त्म। ससंस्त। ससंस्तिथ। संस्तितासि। संस्तिष्यति। संस्तिषति। संस्तिषाति। सन्तु। संस्तात्। संस्ताम्। संस्तन्तु। असन्। असन्ताम्। असंस्तन। असन्। संस्त्यात्। संस्त्याताम्। संस्त्यास्ताम्। असंस्तीत्। असंस्तिष्टाम्। असंस्तिष्यत् [वश] कान्तौ (इच्छा वा शोभा) वष्टि (२३३) पत्व। उष्टः (२८६) सम्प्रसारण। उशन्ति। वक्षि। उष्ठः। उष्ठ। वश्मि। उश्वः। उश्मः। उवाश (२८२) ऊशतुः (२८३) ऊशुः। उवशिथ। वशिता। वशिष्यति। वाशिषति। वाशिषाति। वष्टु। उष्टात्। उष्टाम्। उशन्तु। उड्ढि। वशानि। अवट्। औष्टाम्। औशन्। अवशम्। उश्यात्। उश्याताम्। उश्यास्ताम्। अवाशीत्। अवशीत्। अवशिष्यत्। ये षस आदि तीन धातु परस्मैपदी समाप्त हुए ॥

[चर्करीतञ्च] इस निर्देश से यङ्लुगन्त धातुओं से परस्मैपद और शप् का लुक् होता है। सो यङ्लुगन्त प्रक्रिया का विषय है [ह्नुङ्] अपनयने (दूर करना) ह्नुते। ह्नुवाते। ह्नुषे। जुह्नुवे। जुह्नुविषे। जुह्नुविढ्वे। जुह्नुविध्वे। ह्नोतासे। ह्नोष्यते। ह्नोषतै। ह्नोषातै। ह्नुताम्। ह्नवै। अह्नुत। ह्नुवीत। ह्नोषीष्ट। अह्नोष्ट। अह्नोष्यत। अनुदात्त आत्मनेपदी। यह धातु अनिट् आत्मनेपदी है ॥ ३७३॥

इतिलुग्विकरणा अदादयः समाप्ताः ॥

यह लुक् विकरणवाला अदादिगण समाप्त हुआ ॥

अथ जुहोत्यादिगणः॥

[हु] दानादनयोः। आदाने चेत्येके (देना, खाना और ग्रहण करना) यहां दान अर्थ से अग्नि में हवन करना भी लिया जाता है। और इस धातु को भाष्यकार ने तृप्ति अर्थ में भी माना है॥

३७४-जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ॥ अ०॥२।४।७५॥

हु आदि धातुओं से शप् के स्थान में श्लु होवे। श्लु संज्ञा भी प्रत्यय के अदर्शन की ही होती है इस कारण शप् का लोप हो जाता है। हु-तिप्। यहां ॥ ३७४॥

३७५-श्लौ ॥ अ०॥६।१।१०॥

अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव और अजादि धातु के द्वितीय एकाच्

अवयव को द्वित्व हो श्लु परे हो तो। जुहोति । जुहुतः । अभ्यस्त (३६०) होने से प्रत्ययादि झ को अत् (३६१) और यण् (२६१) होकर । जुह्वति । जुहोषि । जुहुथः । जुहुथ । जुहोमि । जुहुवः । जुहुमः ॥ ३७५ ॥

३७६–बहुलं छन्दसि ॥ अ० ॥ २।४।७६ ॥

वेदविषय में शप् के स्थान में श्लु आदेश बहुल करके होवे। प्रयोजन यह है कि हवति । भरति । आदि भी प्रयोग हो जावें ॥ ३७६ ॥

३७७–भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ॥ अ० ॥ ३।१।३९ ॥

भी, ह्री, भृ और हु धातुओं से आम् प्रत्यय विकल्प करके होवे लोक विषय में लिट् लकार परे हो तो और आम् के परे श्लुवत् कार्य्य द्विर्वचन भी होवे। जुहवाञ्चकार । जुहवाञ्चक्रतुः । जुहवाम्बभूव । जुहवामास । होतासि । होष्यति । होषति । हौषाति । जुहवति । जुहवाति । हवति । हवाति । जुहोतु । जुहुतात् । जुह्वतु । जुहुधि (३००) हि को धि । जुहवानि । अजुहोत् । अजुहुताम् । अजुहवुः (१३४) जुस् हो कर गुण (३६३) जुहुयात् । जुहुयाताम् । जुहुयुः । हूयात् (१६०) दीर्घ । अहौषीत् (१५८) वृद्धि । अहौष्टाम् । अहौषुः । अहोष्यत् [ञिभी] भये (डरना) ञि की इत्संज्ञा (१५०) बिभेति ॥ ३७७ ॥

३७८–भियोऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११५ ॥

भी धातु को इकार आदेश विकल्प करके होवे हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो। दीर्घ ईकार को एक पक्ष में ह्रस्व हो जाता है । बिभितः । बिभीतः । बिभ्यति (३६०।३६१) बिभेषि । बिभिथः । बिभीथः । बिभयाञ्चकार । बिभयामास । बिभयाम्बभूव । पक्ष में बिभाय । बिभ्यतुः । बिभ्युः । बिभेथ । बिभयिथ । भेतासि । भेष्यति । भैषति । भैषाति । बिभयति । बिभयाति । भयति । भयाति । बिभेतु । बिभितात् । बिभीतात् । बिभिताम् । बिभीताम् । बिभ्यतु । अबिभेत् । अबिभिताम् । अबिभीताम् । अबिभयुः । बिभियात् । बिभियाताम् । बिभीयाताम् । भीयात् । अभैषीत् । अभेष्यत् । [ह्री] लज्जायाम् (लज्जा) जिह्रेति । जिह्रीतः । जिह्रियति । जिह्रयाञ्चकार । जिह्रयाम्बभूव । जिह्रयामास । जिह्राय । जिह्रियतुः । जिह्रेथ । जिह्रयिथ । ह्रेतासि । ह्रेष्यति । ह्रैषति । ह्रैषाति । जिह्रेतु । जिह्रीतात् । जिह्रियतु । जिह्रीहि । अजिह्रेत् । जिह्रीयात् । ह्रीयात् । अह्रैषीत् ।

अह्रेष्यत् । जुहोत्यादयोऽनुदात्ता परस्मैपदिनः । हु आदि धातु अनिट् परस्मैपदी हैं । [पॄ] पालनपूरणयोः (पालन और समाप्ति) उदात्तः परस्मैभाषः । यह धातु सेट् परस्मैपदी है । श्लु के परे द्वित्व (३७५) होकर ॥ ३७८ ॥

३७९—अर्तिपिपर्त्योश्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७७ ॥

ऋ और पॄ धातु के अभ्यास को इकार आदेश होवे श्लु परे हो तो । पिपर्ति । यहां अभ्यास के ऋकार को उकार आदेश (३८०) प्राप्त है उस का बाधक गुण (२१) होता है ॥ ३७९ ॥

३८०—उदोष्ठ्यपूर्वस्य ॥ अ० ॥ ७ । १ । १०२ ॥

ओष्ठस्थानी वर्ण जिस के पूर्व हो ऐसा जो ॠकार तदन्त अङ्ग को उकार आदेश होवे । ॠ के स्थान में रपर उकार होकर । पिपूर्तः (१९७) दीर्घ । पिपुरति । पिपर्षि । पिपूर्थः । पिपूर्थ । पिपर्मि । पिपूर्वः । पिपूर्मः । पपार । कित् लिट् अतुस् आदि में गुण (२५८) प्राप्त है उस का बाधक ॥ ३८० ॥

३८१—शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १२ ॥

शॄ, दॄ और पॄ धातुओं को विकल्प करके ह्रस्व होवे कित् लिट् परे हो तो । पक्ष में गुण (२५८) होता है ह्रस्व पक्ष में गुण नहीं पप्रतुः । पप्रुः । यण् । पपरतुः । पपरुः । पपारिथ । पप्रथुः । । पप्र । पपर । पपार । पपर । पप्रिव । पपरिव । पप्रिम पपरिम । परीतासि । परितासि (२६४) इट् को दीर्घ विकल्प । परीष्यति । परिष्यति । पारीषति । पारीषाति । पारिषति । पारिषाति । परीषति । परीषाति । परिषाति । परिषाति । पिपरति । पिपराति । पिपर्त्तु । पिपूर्तात् । पिपूर्त्ताम् । पिपुरतु । पिपूर्धि । पिपराणि । पिपराव । पिपराम । अपिपः । अपिपूर्त्ताम् । अपिपरुः । यहां अभ्यस्त संज्ञा होने से जुस् (१३४) होकर गुण (२६३) होता है । अपिपः । अपिपूर्तम् । अपिपूर्त । अपिपरम् । अपिपूर्व । अपिपूर्म । पिपूर्यात् । पिपूर्याताम् । पूर्यात् । पूर्यास्ताम् । यहां भी (३८०) उत्व होकर दीर्घ (१९७) होता है । अपारीत् । अपारिष्टाम् । अपरीष्यत् । अपरिष्यत् । ह्रस्वान्तोऽयमित्येके । किन्हीं लोगों के मत में यह पृ धातु ह्रस्व ऋकारांत है । पिपर्ति । पिपृतः । यहां दीर्घ ॠकार के न होने से उत्व नहीं होता । पिप्रति । पपार । पप्रतुः । पप्रुः । पपरुः । पर्त्ता । ह्रस्वान्त पक्ष में अनिट् है । परिष्यति (२३८) इट् । पिपृयात् । प्रियात् (२३९) प्रियास्ताम् । अपार्षीत् । अपार्ष्टाम् । अपरिष्यत् । [डुभृञ्] धारणपोषणयोः । डु की इत्संज्ञा (१५०) ॥ ३८१ ॥

३८२–भृञामित् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७६ ॥

भृञ्, माङ् और ओहाङ् इन तीनों धातुओं के अभ्यास को इकार आदेश होवे श्लु परे हो तो । बिभर्ति । बिभृतः । बिभ्रति । बिभृते । बिभ्राते । बिभ्रते । बिभृध्वे । बिभराञ्चकार (३७७) आम् प्रत्यय और आम् के परे श्लुवत् होने से द्वित्व होता है । पक्ष में । बभार । बभ्रतुः । बभर्थ (१४८) इट् का निषेध । बभृव । बभृम । भर्तासि । भरिष्यति । भार्षति । भार्षाति । बिभरति । बिभराति । बिभर्तु । बिभृहि । बिभराणि । अबिभः । अबिभृताम् । अबिभरुः । बिभृयात् । बिभृयाताम् । भ्रियात् । भ्रियास्ताम् । भृषीष्ट (२४०) अभार्षीत् । अभृत । अभरिष्यत् । अभरिष्यत [माङ्] माने शब्दे च (तोल और शब्द) ॥ ३८२ ॥

३८३–ई हल्यघोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११३ ॥

घुसंज्ञक धातुओं को छोड़के श्ना और अभ्यस्तसंज्ञक धातुओं के आकार को ईकारादेश होवे हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो । मिमीते । मिमाते । मिमते । यहां अजादि सार्वधातुक में आकारलोप हो जाता है और अभ्यास को इकारादेश (३८२) होता है । मिमीषे । मिमाथे । ममे । ममाते । ममिरे । मातासे । मास्यते । मासते । मासातै । मिमीताम् । मिमाताम् । मिमताम् । मिमै । अमिमीत । मिमीत । मिमीयाताम् । मासीष्ट । अमास्त । अमास्यत [ओहाङ्] गतौ । माङ् के समान इस के भी प्रयोग होते हैं । जिहीते । जिहाते । जिहते । जहे । जहाते । जहिरे । हातासे । हास्यते । हासतै । हासातै । जिहीताम् । अजिहीत । जिहीत । हासीष्ट । अहास्त । अहास्यत । अनुदात्तात्मनेपदिनो ये दोनों धातु अनिट् आत्मनेपदी हैं [ओहाक्] त्यागे । यह परस्मैपदी है (३८२) सूत्र यहां नहीं लगता क्योंकि यहां से पूर्व ही भृञ् आदि तीन धातु पूरे हो गये । जहाति ॥ ३८३ ॥

३८४–जहातेश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११६ ॥

हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो जहाति धातु के आकार को इकार आदेश विकल्प करके होवे । और पक्ष में ईकार (३८३) होता है । यह सूत्र (३८३) सूत्र का अपवाद होने से प्राप्त विभाषा है । जहितः । जहीतः । जहति । जहासि । जहिथः । जहीथः । जहिथ । जहीथ । जहामि । जहिवः । जहीवः । जहिमः । जहीमः । जहौ । जहतुः । जहिथ । जहाथ । हातासि । हास्यति । हासति । हासाति । जहाति । जहातु । जहितात् । जहीतात् । जहिताम् । जहीताम् । जहतु ॥ ३८४ ॥

३८५—आ च हौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११७ ॥

जहाति धातु को आकारादेश हो हि परे हो तो और चकार से इत् और ईत् भी होवें । जहाहि । जहिहि । जहीहि । जहानि । अजहात् । अजहिताम् । अजहीताम् । अजहुः ॥ ३८५ ॥

३८६—लोपो यि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११८ ॥

यकारादि सार्वधातु परे हों तो जहाति धातु के आकार का लोप होवे । जह्यात् । जह्याताम् । जह्युः । हेयात् (२४७) हेयास्ताम् । अहासीत् (२५१) अहासिष्टाम् । अहास्यत [डुदाञ्] दाने (देना) ददाति । दत्तः यहां (३८३) सूत्र में घुसंज्ञक धातुओं को ईकारादेश का निषेध होने से आकारलोप (३६५) होता है । ददाति । ददासि । दत्थः । दत्थ । ददामि । दद्वः। दद्मः । दत्ते । ददाते । ददते । दद्ध्वे। ददे । ददौ । ददतुः । ददे।ददाते । दातासि। दातासे। दास्यति । दास्यते। दासति । दासाति । दासतै । दासातै ॥ ३८६ ॥

३८७—घोर्लोपो लेटि वा ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७० ॥

घुसंज्ञक धातुओं के आकार का लोप विकल्प करके होवे लेट् लकार परे हो तो । ददति । ददाति । ददत् । ददात् । यहां आट् के आगम पक्ष में लोप होने पर भी ददाति होता है जो लोप न कहते तो अट् आट् दोनों पक्ष में । ददाति प्रयोग बनता । और विकल्प कहने से यह प्रयोजन है कि किसी को ऐसी शंका न हो कि ददाति प्रयोग नित्य प्राप्त है-उस का लोप कहने से बाधक होगा । ददातु । दत्तात् । दत्ताम् । ददतु । देहि (३५४) एत्वाभ्यासलोप । ददानि । अदत्ताम् । अददुः । दद्यात् । दद्याताम् । दद्युः । देयात् (२४७) घुसंज्ञा होने से एत्व । देयास्ताम् । अदात् (८९) सिच्लुक् । अदाताम् । अदुः । दत्ताम् । ददाताम् । ददताम् । दत्स्व । ददै । अदत्त। ददीत । दासीष्ट । अदित (२६३) इत्व और कित्व । अदिषाताम् । अदिषत । अदास्यत् । अदास्यत [डुधाञ्] धारणपोषणयोः।इस के प्रयोग डुदाञ् के तुल्य जानो । दधाति ॥ ३८७ ॥

३८८—दधस्तथोश्च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३८ ॥

द्वित्व किये झषन्त धा धातु के बश् को भष् आदेश होवे त, थ, स और ध्व परे हों तो । यहां अनभ्यास के आकार का लोप (३६५) किये पश्चात् अभ्यास के

दकार को धकार हो जाता है। धत्तः। दधति। दधासि। धत्थः। धत्थ। दधामि। दध्वः। दध्मः। धत्ते। दधाते। दधते। धत्से। धद्ध्वे। दधौ। दधतुः। धातासि। धातासे। धास्यति। धास्यते। धासतै। धासातै। धासति धासाति। दधति (३८७) दधाति। दधत्। दधात्। दधातु। धत्तात्। धत्ताम्। दधतु। धेहि (३५४) दधानि। धत्ताम्। दधाताम्। धत्स्व। धद्ध्वम्। अदधात्। अधत्ताम्। अदधुः। अधत्त। अदधाताम्। अदधत। अधत्थाः। अधद्ध्वम्। दध्यात्। दधीत। धेयात् (२४७) अधात्। अधाताम्। अधुः (८९) अधित (२६३) अधिषाताम्। अधिषत। अधास्यत्। अधास्यत। अनुदात्तावुभयतोभाषौ। ये दोनों धातु अनिट् उभयपदी हैं॥

अथ त्रयः स्वरितेतः। अब तीन धातु स्वरितेत् (उभयपदी) कहते हैं [णिजिर्] शौचपोषणयोः (शुद्धि और पुष्टि)॥ ३८८॥

३८९—निजां त्रयाणां गुणः श्लौ॥ अ०॥ ७। ४। ७५॥

निज आदि (निज्, विज्, विष्) तीन धातुओं के अभ्यास को गुण होवे श्लु परे हो तो। नेनेक्ति। यहां तिप् के आश्रय से अनभ्यास को भी गुण होता है। नेनिक्तः। नेनिजति। नेनेक्षि। नेनिक्थः। नेनिक्थ। नेनेज्मि। नेनिज्वः। नेनिज्मः। नेनिक्ते। नेनिजाते। नेनिजते। निनेज। निनिजतुः। निनिजे। निनिजाते। नेक्तासि। नेक्तासे। नेक्ष्यति। नेक्ष्यते। नेक्षति। नेक्षाति नेक्षतै। नेक्षातै।॥ ३८९॥

३९०—नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके॥अ०॥७।३।८७॥

अभ्यस्तसंज्ञक धातुओं को गुण न होवे अजादि पित् सार्वधातुक परे हो तो। यह सूत्र (५१) सूत्र का अपवाद है अर्थात् लघूपध गुण का निषेध है। नेनिजति। नेनिजाति। नेनिजत्। नेनिजात्। नेनिजतै। नेनिजातै। नेनेक्तु। नेनिग्धि। नेनिजानि। नेनिक्ताम्। नेनिजाताम्। नेनिजै। नेनिजावहै। अनेनेक्। अनेनिक्ताम्। अनेनिजुः। अनेनेक्। अनेनिजम् (३९०) अनेनिक्त। अनेनिजाताम्। अनेनिजत। नेनिज्यात्। नेनिजीत। निज्यात्। निज्यास्ताम्। निक्षीष्ट (१६३)। अनिजत् (१३८)। अनैक्षीत्। अनैक्ताम्। अनिक्त। अनिक्षाताम्। अनेक्ष्यत्। अनेक्ष्यत [विजिर्] पृथग्भावे (अलग होना) णिज धातु के समान सिद्धि। वेवेक्ति। वेविक्तः। वेविक्ते। वेविजाते। विवेज। विविजतुः। विवेजिथ। विविजे। वेक्तासि। वेक्तासे। वेविजति। वेविजाति। वेविजतै। वेविजातै। वेवेक्तु। वेविग्धि। वेविजानि। वेविक्ताम्। वेविजै।

अवेवेक् । अवेविक्ताम् । अवेविजुः । अवेविजम् । वेविज्यात् । वेविजीत । विज्यात् । विक्षीष्ट (१६३) अविजत् । अवैक्षीत् । अविक्त । अवेक्ष्यत् । अवेक्ष्यत [विषॢ] व्याप्तौ (व्यापक होना) पूर्ववत् । वेवेष्टि । वेविष्टः । वेविषति । वेवेक्षि । वेविष्टे । वेविषाते । वेविषते । विवेष । विविषे । वेष्टासि । वेष्टासे । वेक्ष्यति । वेक्ष्यते । वेक्षाति । वेक्षाति । वेक्षते । वेक्षातै । वेविषाति । वेविषाति (३९०) गुणनिषेध । वेवेष्टु । वेविष्टात् । वेविष्टाम् । वेविषतु । वेविड्ढि । वेविषानि । वेविष्टाम् । वेविषाताम् । वेविषताम् । वेविड्ढ्वम् । अवेवेट् । अवेविष्टाम् । अवेविषुः । अवेविषम् । अवेविष्ट । अवेविषाताम् । अवेविषत । वेविष्यात् । वेविषीत । विष्यात् । विष्यास्ताम् । विक्षीष्ट (१६३) विक्षीयास्ताम् । अविषत् (२१७) अविक्षत (२०७) अविक्षाताम् (२०८) अविक्षन्त । अवेक्ष्यत् । अवेक्ष्यत । ये णिज् आदि अनिट् उभयपदी तीन धातु समाप्त हुए ॥

अथाऽऽगणान्तात्परस्मैपदिनश्छान्दसाश्चैकादश । अब इस गण के अन्त तक परस्मैपदी वेदविषयक ११ ग्यारह धातु कहते हैं [घृ] क्षरणदीप्त्योः (अच्छे प्रकार चलना और प्रकाश) ॥ ३९० ॥

३९१—बहुलं छन्दसि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७८ ॥

वेदविषय में श्लु परे हो तो अभ्यास को इकारादेश बहुल करके होवे । जिघर्त्ति । जघर्त्ति । जिघृतः । जघृतः । जिघ्रति । जिघर्मि । जघार । जघ्रतुः । घर्त्तासि । घरिष्यति (२३८) यह नियम नहीं है कि केवल वैदिकप्रयोगों में लोक वेद के सामान्य सूत्र लगें किन्तु केवल एक विषय के सामान्य विषय में नहीं लगते । घार्षति । घार्षाति । जिघ्रति । जिघ्राति । । जघ्राति । जघ्राति जिघर्त्तु । जघर्त्तु । अजिघः । अजघः । अजिघरुः । जिघृयात् । घ्रियात् (२३९)अघार्षीत् । अघरिष्यत् [हृ] प्रसह्यकरणे (हठ करना) ॥ ३९१ ॥

३९२—वा०—हृग्रहोश्छन्दसि हस्य भत्वम् ॥

हृ और ग्रह धातु के हकार को भकारादेश होवे वेद विषय में । जिभर्त्ति । जभर्त्ति । जभार । जहार । भर्त्ता । भरिष्यति । भार्षति । भार्षाति । जिभर्त्तु । जभर्त्तु । जभृतु । जभृहि । अजभः । अजभृताम् । अजभरुः । जभृयात् । भ्रियात् । अभार्षीत् । अभरिष्यत् । सर्वत्र वैदिक प्रयोगों में यह बात समझ लेनी चाहिये कि वेद में जिस प्रकार का प्रयोग जिस धातु का आ जाता है उस के अनुकूल सूत्र वार्त्तिकों से सिद्धि समझ ली जाती है कुछ सूत्रों वा वार्त्तिकों के अनुकूल सब वैदिक प्रयोग नहीं लिखने चाहियें

इसलिये यहां इन धातुओं के प्रयोग सूक्ष्म ही लिखते हैं [ऋ, सृ] गतौ। ऋ धातु को द्वित्व होने पश्चात् अभ्यास के ऋकार को अकार (१०६) होकर (३९१) सूत्र से अभ्यास को इकार हो जाता फिर (३७९) सूत्र में अर्त्ति ग्रहण सामर्थ्य से यह धातु लोक में भी समझा जाता है। सो इकारादेश भी नित्य होता है। फिर इ+ऋ+तिप् = इयर्त्ति (१५३) अभ्यास को इयङ् और अनभ्यास को गुण हो जाता है। इयृतः। इयृति। आर। आरतुः। आरिथ (२५९) अर्त्तासि। अरिष्यति। आर्षति। आर्षाति। इयरति। इयराति। इयर्त्तु। इयृतात्। इयृताम्। इयृतु। इयृहि। इयराणि। इयराव। इयराम। ऐयः। ऐयृताम्। ऐयरुः। ऐयः। ऐयृतम्। ऐयृत। ऐयरम्। ऐयृव। ऐयृम। इयृयात्। अर्यात् (२५४) आरत्। आरताम् (२५६। २५७) आरिष्यत्। सर्सर्त्ति। सिसर्त्ति। इत्यादि। घ्रादयश्चत्वारोऽनुदात्ताः। ये घृ आदि चार धातु अनिट् हैं [भस] भर्त्सनदीप्त्योः (धमकाना और प्रकाश) बिभस्ति। बभस्ति ॥ ३९२ ॥

३९३—घसिभसोर्हलि च ॥ अ० ॥ ६। ४। १०० ॥

घस और भस धातु के उपधा अकार का लोप होवे हलादि और अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो वेद विषय में। बभ्+स्+तस् = बब्धः (१४२) बप्सति। बभास। बिभस्तु। बब्धाम्। बभसानि। अबिभः। अबिब्धाम्। अबिभसुः। बप्स्यात् बप्स्याताम्। भस्यात्। भस्यास्ताम्। अभासीत्। अभसीत्। अभासिष्यत्। [कि] ज्ञाने। चिकेति। चिकितः। चिकयति। चिकयाति। चिकेतु। चिकिहि। चिकयानि। अचिकेत्। अचिकयुः। चिकियात्। कीयात्। अकैषीत्। यह धातु अनिट् है [तुर] त्वरणे (शीघ्रता) तुतोर्त्ति। तुतूर्त्तः। तुतुरति। तुतुराति। (३९०) तुतोर्त्तु। तुतुराणि। अतुतोः। अतुतुरुः। तुतूर्यात्। तूर्यात्। अतोरीत्। [धिष] शब्दे। दिधेष्टि। दिधिष्टः। दिधिषति। अदिधेट् [धन] धान्ये। दिधन्ति। दधन्ति। दधनति। दधान। दधनतुः। धनितासि। धनिष्यति। दधनति। दधनाति। धानिषति। धानिषाति। दिधन्तु। दिधनानि। अदिधन्। अदिधनुः। दधन्यात्। धन्यात्। अधानीत्। अधनीत्। अधानिष्यत् [जन] जनने। जजन्ति ॥ ३९३ ॥

३९४—जनसनखनां सञ्झलोः ॥ अ० ॥ ६। ४। ४२ ॥

जन, सन और खन धातुओं के अन्त को आकारादेश होवे झलादि सन् और झलादि कित् ङित् परे हों तो। जजातः। जज्ञति (२१४) पश्चात् न् को ञ् श्चुत्व होता है।

जजंसि । जजाथः जजन्मि । जजान । जज्ञतुः (२१४) जानिषति । जानिषाति । जजनति । जजनाति । जजन्तु । जजातात् । जजाहि ॥ ३९४ ॥

३९५—वा छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८८ ॥

वेदविषय में सिप् के स्थान में हि आदेश विकल्प करके पित् होवे । जिस पक्ष में पित् होता है वहां जजन्हि । आकार नहीं होता । जजनानि । अजजन् । अजजाताम् । अजज्ञुः । अजजनम् । जजायात् । जजन्यात् (१८५) अजानीत् । अजनीत् । ये तुर आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं [गा] स्तुतौ (प्रशंसा) जिगाति । जिगीतः जिगति (३६५) जगौ । गातासि । गास्यति । गासति । गासाति । जिगातु । जिगीहि । जिगाहि । अजिगात् । अजिगीताम् । अजिगुः । जिगीयात् । गायात् । अगासीत् । अगास्यत् । यह धातु अनिट् परस्मैपदी है ॥ ३९५ ॥

इति श्लुविकरणो जुहोत्यादिगणः समाप्तः ॥

अथ दिवादिगणः ॥

[दिवु] क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (खेलना, जीतने की इच्छा, लेना, देना, प्रकाश, प्रशंसा, आनन्द, अहंकार, निद्रा, शोभा और गति अर्थात् ज्ञान गमन प्राप्ति) अब भृूष् धातु पर्य्यन्त सेट् परस्मैपदी धातु कहते हैं ॥

३९६—दिवादिभ्यः श्यन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६९ ॥

दिव आदि धातुओं से शप् (१९) का बाधक श्यन् प्रत्यय होवे कर्त्ता में सार्वधातुक परे हों तो । दीव्यति (१९७) दीर्घ । दीव्यतः । दीव्यन्ति । दिदेव । दिदिवतुः । दिदेविथ । देवितासि । देविष्यति । देविषति । देविषाति । दीव्यति । दीव्याति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् । [षिवु] तन्तुसन्ताने (सीना) सीव्यति । सिसेव । असेवीत् । [स्रिवु] गतिशोषणयोः (गति और शोखना) स्रीव्यति [ष्ठिवु] निरसने (थूकना) ष्ठीव्यति (१५२)सत्व निषेध । तिष्ठेव । टिष्ठेव । टिष्ठिवतुः । [ष्णुसु] अदने । आदान इत्येके । अदर्शन इत्यपरे । स्नुस्यति ! सुष्णोस [ष्णसु] निरसने । स्नस्यति । सस्नास । सस्नसतुः [क्नसु] ह्वरणदीप्त्योः (कुटिलता और प्रकाश) क्नस्यति । चक्नास [व्युष] दाहे (जलना) व्युष्यति । वुव्योष [प्लुष] च । प्लुष्यति । पुप्लोष [नृती] गात्रविक्षेपे (नांचना) नृत्यति । ननर्त्त । ननृततुः । ननृतुः । ननर्त्तिथ । नर्त्तितासि ॥ ३९६ ॥

३९७–सेऽसिचि कृतचतछृदतृदनृतः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५७ ॥

कृत, चृत, छृद, तृद और नृत धातुओं से परे जो सिच्भिन्न सकारादि आर्द्ध-धातुक उस को विकल्प करके इट् का आगम होवे । नर्तिष्यति । नर्त्स्यति । नर्तिषति। नर्तिषाति । नर्त्सति । नर्त्साति ।नृत्यति नृत्याति नृत्यतु । नृत्य । नृत्यानि । अनृत्यत् । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्त्तीत् । अनर्त्तिष्यत् । अनर्त्स्यत् [त्रसी] उद्वेगे (भय होना) (१८८) सूत्र से श्यन् विकल्पपक्ष में शप्।त्रस्यति ।त्रसति । तत्रास। विकल्प से एत्वाभ्यास लोप (२२९) होकर । त्रेसतुः तत्रसतुः । त्रेसुः । तत्रसुः । त्रसितासि । त्रसिस्याति । त्रासिषति । त्रासिषाति । त्रस्यति । त्रस्याति ।त्रसति।त्रसाति।त्रस्यतु। त्रसतु । अत्रस्यत्।अत्रसत्।त्रस्येत्।त्रसेत्।त्रस्यात्।अत्रासीत् । अत्रसीत्। अत्रसिष्यत् [कुथ] पूतीभावे (दुर्गन्ध)कुथ्यति। चुकोथ [पुथ] हिंसायाम् । पुथ्यति । पुपोथ [गुध] परिवेष्टने (लपेटना) गुध्यति । जुगोध ।जुगुधतुः । गोधितासि । गोधिष्यति । गोधिषति।गोधिषाति । गुध्यतु । अगुध्यत् ।गुध्येत्। गुध्यात् । अगोधीत् । अगोधिष्यत् । [क्षिप]प्रेरणे(फेंकना) यह धातु अनिट् है। क्षिप्यति । चिक्षेप । चिक्षेपिथ ।चिक्षेप्थ। क्षेप्तासि। क्षेप्स्यति। क्षेप्सति । क्षेप्साति । क्षिप्यत् । अक्षिप्यत् । क्षिप्येत् । क्षिप्यात् । अक्षैप्सीत् । अक्षैप्ताम् । अक्षेप्सुः । अक्षेप्स्यत् [पुष्प] विकसने (विभागहोना) पुष्प्यति । पुपुष्प [तिम, तीम, ष्टिम, ष्टीम] आर्द्रीभावे (गीला होना) तिम्यति । तीम्यति । स्तिम्यति । स्तीम्यति । तितेम । तितिमतुः । तितीम । तिस्तेम । तिस्तीम [व्रीड] चोदने लज्जायां च (प्रेरणा और लज्जा) व्रीड्यति । विव्रीड [इष] गतौ । इष्यति । इयेष (१५३)इयङ् । ईषतुः । ईषुः । इयेषिथ । एषितासि । एषिष्यति । एषिषति । एषिषाति । इष्यति । इष्याति। इष्यतु । ऐष्यत्। इष्येत्। इष्यात् । ऐषीत् । ऐषिष्यत् [षह षुह] चक्यर्थे (तृप्त होना वा मारना) सह्यति । सुह्यति । ससाह । सेहतुः । सेहुः । सेहिथ सुसोह । सहिता । सोढा (२१२ । २३०) सहिष्यति । साहिषति । साहिषाति । सह्याति । सह्याति । सह्यतु।असह्यत् । सह्येत् । सह्यात् । असहीत् (१६९) वृद्धि का निषेध । असहिष्यत् [जॄष् झॄष्] वयोहानौ (अवस्था की हानि) इन दोनों धातुओं के अन्त्य षकार की इत्संज्ञा होती है (२६५ । १६७) जीर्यति । जजार । जॄ+अतुस् = जेरतुः (२२९) एत्वाभ्यासलोप का विकल्प और जजरतुः (२५८) अप्राप्त गुण । जेरुः । जजरुः । जेरिथ । जजरिथ । जेरथुः । जजरथुः । जरीतासि ।

जरितासि (२६४) जरीष्यति । जरिष्यति । जारीषति । जारीषाति । जारिषाति । जारिषाति । जरीषति। जरीषाति। जरिषति। जरिषाति । जीर्याति । जीर्याति । जीर्यतु । अजीर्यत् । जीर्येत् । जीर्यात् । लुङ् में विकल्प से अङ् (१५४) और ऋवर्णान्त को अङ् के परे गुण (२५७) होकर अजरत् । अजरताम् । अजरन् । अङ् के निषेध पक्ष में अजारीत् । अजारिष्टाम् (२६६) अजरीष्यत् । अजरिष्यत् । झीर्यति । जझरतुः अझरीत् । अझारिष्टाम् । दिवादय उदात्ता उदात्तेतः क्षिपिवर्जं परस्मैपादिनः । ये दिव आदि धातु क्षिप को छोड़के सेट् परस्मैपदी हैं [षूङ्] प्राणिप्रसवे (प्राणियों की उत्पत्ति) सूयते । सूयेते । सूयन्ते । सुषुवे । वलादि लिट् में विकल्प से इट् (१४०) प्राप्त है उस का बाधक निषेध (श्रयुकः किति) है उस का भी अपवाद नियामक (१४८) होनेसे नित्य इट् होता है। सुषुविषे । सुषुविवहे । सुषुविमहे । सोतासे। सवितासे(१४०) सविष्यते । सोष्यते । साविषतै ।साविषातै । सौषतै । सौषातै । सूयतै । सूयातै सूयताम् । असूयत । सूयेत । सविषीष्ट । सोषीष्ट । असविष्ट । असोष्ट । असाविष्यत । असोष्यत [दूङ्] परितापे (दुःख होना) दूयते । दुदुवे । दवितासे । आत्मनेभाषावुदात्तौ । ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं [दीङ्] क्षये (नाश होना वा बसना) दीयते ॥ ३९७ ॥

३९८—दीङो युडचि क्ङिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६३ ॥

दीङ् धातु से परे जो अजादि कित् ङित् आर्द्धधातुक उस को युट् का आगम होवे । दिदीये (४३) वार्तिक से युट् के आगम को सिद्ध मानके यण् (१५६) नहीं होता । दिदीयिषे । दिदीयिढ्वे । दिदीयिध्वे । दिदीयिवहे ॥ ३९८ ॥

३९९—मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५० ॥

एच् का निमित्त अशित् वा ल्यप् परे हो तो मीनाति मिनोति और दीङ् धातुओं को आकारादेश होवे । दातासे । दास्यते । दासतै । दासातै । दीयताम् । अदीयत । दीयेत । दासीष्ट । अदास्त । । अदास्थाः । इस दीङ् धातु की घुसंज्ञा (२४६) नहीं होती क्योंकि यह न दा धा और न उन की प्रकृति है । अदास्यत । [डीङ्] विहायसागतौ (आकाश में उड़ना) डीयते । डीयेते । डिड्ये (१५६) यण् । डयितासे डयिष्यते । डायिषतै । डायिषातै । डीयताम् । अडीयत । डीयेत । डयिषीष्ट । अडयिष्ट । अडयिष्यत [धीङ्] आधारे । धीयते । दिध्ये [मीङ्] हिंसायाम् । मीयते [रीङ्] श्रवणे (सुनना) रीयते । रिर्ये । रेतासे । रेष्यते । रैषतै । रैषातै । रीयतै । रीयातै ।

रीयताम् । अरीयत । रीयेत । रेषीष्ट । अरेष्ट । अरेष्यत [लीङ्] श्लेषणे (मिलना) लीयते ॥ ३९९ ॥

४००—विभाषा लीयतेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५१ ॥

एच् विषय में शित्भिन्न प्रत्यय और ल्यप् परे हो तो लीयति धातु को आकारादेश विकल्प करके होवे । लातासे । लेतासे । लास्यते । लेष्यते । एच्विषय के कहने से लिल्ये । लिल्याते आदि में आकारादेश नहीं होता । लासतै । लासातै । लैषते । लैषातै । लीयताम् । अलीयत । लीयेत । लासीष्ट । लेषीष्ट । अलास्त । अलेष्ट । आलास्यत । अलेष्यत [व्रीङ्] वृणोत्यर्थे (स्वीकार) व्रीयते । विव्रिये यहां संयोगपूर्व के होने से यण् (१५६) से नहीं होता । वृत् स्वादय ओदितः । षूङ् धातु से लेकर यहां तक ओदित् धातु हैं ओदित् होने का फल कृदन्त में आवेगा [पीङ्] पाने (पीना) पीयते । पिप्ये । पेतासे । पेष्यते । पैषतै । पैषातै । पीयताम् । अपीयत । पीयेत । पेषीष्ट । अपेष्ट । अपेष्यत [माङ्] माने (तोलना) मायते । ममे [ईङ्] गतौ । ईयते । अयांचक्रे । अयाम्बभूव । अयामास । एतासे । एष्यते । ऐषतै । ऐषातै । ईयताम् । ऐयत । ईयेत । एषीष्ट । ऐष्ट । ऐष्यत [प्रीङ्] प्रीणने (तृप्ति) प्रीयते । पिप्रिये । दीङादय आत्मनेपादिनो डीङ्वर्जमनुदात्ताः । दीङ् आदि धातु आत्मनेपदी डीङ् को छोड़के अनिट् हैं ॥

अथ परस्मैपदिनश्चत्वारः । अब चार धातु परस्मैपदी कहते हैं [शो] तनूकरणे (महीन करना) ॥ ४०० ॥

४०१—ओतः श्यनि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७१ ॥

श्यन् प्रत्यय परे हो तो धातु के अन्त्य ओकार का लोप होवे । श्यति । श्यतः । श्यन्ति । शशौ । शशतुः । शशिथ । शशाथ । शातासि । शास्यति । शयतु । श्य । अश्यत् । श्येत् । शायात् लुङ्विषय में विकल्प से सिच्लुक् (२४८) अशात् । अशाताम् । अशुः । पक्ष में । अशासीत् (२५१) अशास्यत् [छो] छेदने (छेदना) ओकारलोप (४०१) छ्यति । चछौ । छातासि । अन्य पूर्ववत् [षो] अन्तकर्मणि (कर्मकी समाप्ति) स्यति । ससौ । सातासि । सास्यति । सासति । सासाति । स्यतु । अस्यत् । स्येत् । सेयात् (२४७) असात् (२४८) असासीत् (२५१) असास्यत् । [दो] अवखण्डने (काटना) द्यति (४०१) ददौ । दातासि । दास्यति । दासति । दासाति । द्यतु । अद्यत् । द्येत् । देयात् घुसंज्ञा के होने से (२४७) से एकार । अदात्

(८९) सिज्लुक् । अदाताम् । अदुः । अदास्यत् । श्यतिप्रभृतयोऽनुदात्ताः । शो आदि चार धातु अनिट् हैं ॥

अथात्मनेपदिनः पंचदश । अब पन्द्रह धातु आत्मनेपदी कहते हैं [जनी] प्रादुर्भावे (उत्पत्ति वा अवस्थान्तर से प्रकट होना) ॥ ४०१ ॥

४०२–ज्ञाजनोर्जा ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७९ ॥

शित् प्रत्यय परे हों तो ज्ञा और जन धातु को जा आदेश होवे । अनेकाल् होने से सब के स्थान में होता है । जायते । जन् + एश्=जज्ञे (२१४) उपधा अकार का लोप होकर ज्न् के संयोग में तवर्ग नकार को चवर्ग ञकार हो जाता है । जज्ञाते । जज्ञिरे । जनितासे । जनिष्यते । जानिषतै । जानिषातै । जायतै । जायातै । जायते । जायाते । जायताम् । अजायत । जायेत । जनिषीष्ट । लुङ् में च्लि के स्थान में चिण् (१९४) और चिण् से परे प्रत्यय का लुक् (१९४) होकर जन्–चिण् । यहां वृद्धि प्राप्त है इसलिये ॥ ४०२ ॥

४०३–जनिवध्योश्च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३५ ॥

जन और वध धातु की उपधा को वृद्धि न होवे ञित् णित् कृत् और चिण् परे हों तो । अजनि । और जिस पक्ष में चिण् (१९४) से न हुआ वहां अजनिष्ट । अजनिषाताम् । अजनिषत [दीपी] दीप्तौ । दीप्यते । दिदीपे । दिदीपाते । दीपितासे । दीपिष्यते । दीपिषतै । दीपिषातै । दीप्यताम् । अदीप्यत । दीप्येत । दीपिषीष्ट । अदीपि । (१९४ । १९५) अदीपिष्ट । अदीपिष्यत [पूरी] आप्यायने (बढ़ना) पूर्यते । पुपूरे । अपूरि (१९४ । १९५) अपूरिष्ट [तूरी] गतित्वरणहिंसनयोः (शीघ्रचलना और मारना) तूर्यते । तुतूरे । अतूरिष्ट [धूरी, गूरी] हिंसागत्योः । धूर्यते । दुधूरे । गूर्यते । जुगूरे । [घूरी, जूरी] हिंसावयोहान्योः (हिंसा और अवस्था की हानि) घूर्यते । जुघूरे । जूर्यते । जुजूरे [शूरी] हिंसास्तम्भनयोः (मारना और रोकना) शूर्यते । शुशूरे । [चूरी] दाहे । चूर्यते । चुचूरे । चूरितासे । चूरिष्यते । चूरिषतै । चूरिषातै । चूर्यताम् । अचूर्यत । चूर्येत । चूरिषीष्ट । अचूरिष्ट । अचूरिष्यत । [तप] ऐश्वर्ये (सम्पत् का होना) यह धातु अनिट् है । तप्यते । तेपे । तेपाते । तेपिरे । तेपिषे । तप्तासे । तप्स्यते । ताप्सतै । ताप्सातै । तप्यताम् । अतप्यत । तप्येत । तप्सीष्ट । अतप्त । अतप्साताम् । अतप्सत । अतप्स्यत [वावृतु] वरणे (स्वीकार)

यह धातु अनेकाच् है । वावृत्यते । अनेकाच् होने से लिट् में आम् (१७०) वावर्ताञ्चक्रे । वावर्ताम्बभूव । वावर्तामास । वेद में । ववावृते । ववावृताते । वावर्त्तितासे । वावर्त्तिष्यते । अवावर्त्तिष्ट [क्लिश] उपतापे (दुःख) क्लिश्यते । चिक्लिशे । क्लेशितासे । अक्लेशिष्ट । [काशृ] दीप्तौ । काश्यते । चकाशे । अकाशिष्ट । अकाशिष्यत [वाशृ] शब्दे । वाश्यते । ववाशे । वाशितासे । वाशिष्यते । वाशिषतै । वाशिषातै । वाश्यताम् । अवाश्यत । वाश्येत । वाशिषीष्ट । अवाशिष्ट । अवाशिष्यत । जन्यादयोऽनुदात्तेत आत्मनेपदिनस्तपिवर्जमुदात्ताः । जनी आदि सब धातु आत्मनेपदी और तप को छोड़ के सेट् हैं । अथ पञ्च स्वरितेतः । अब पांच धातु उभयपदी कहते हैं [मृष] तितिक्षायाम् (सहना) मृष्यति । मृष्यते । ममर्ष । ममृषे । मर्षिता । मर्षिष्यति । मर्षिषतै । मर्षिषातै । मृष्यतु । मृष्यताम् । अमृष्यत् । अमृष्यत । मृष्येत् । मृष्येत । मृष्यात् । मर्षिषीष्ट । अमर्षीत् । अमर्षिष्ट । अमर्षिष्यत । अमर्षिष्यत् । [ईशुचिर] पूतीभावे (पवित्रता) इस धातु का ई और इर् भाग इत्संज्ञक होता है । शुच्यति । शुच्यते । शुशोच । शुशुचे । अशुचत् (१३८) इरित् होने से अङ् । अशोचीत् । अशोचिष्ट । ये दोनों धातु सेट् उभयपदी हैं [णह] बन्धने (बांधना) नह्यति । नह्यते । ननाह । नेहतुः । नेहुः । नेहिथ । नह्–थल् । यहां अनिट् पक्ष में नह धातु के ह को (२०२) से ढकार पाता है इसलिये ॥ ४०३ ॥

४०४–नहो धः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३४ ॥

नह धातु के हकार को धकार आदेश होवे झल् परे वा पदान्त में । ननद्ध । नेहथुः । नेह । नेहे । नेहाते । नद्धासि । नद्धासे । नत्स्यति । नात्सति । नात्साति । नह्यताम् । अनह्यत । नह्येत । नत्सीष्ट । नह्यात् । अनात्सीत् (१३५) अनाद्धाम् । अनात्सुः । अनात्सीः । अनाद्धम् । अनाद्ध । अनात्सम् । अनात्स्व । अनात्स्म । अनद्ध । अनत्साताम् । अनत्सत । अनद्धाः । अनत्स्यत । अनत्स्यत् [रञ्ज] रागे (रंगना वा अति प्रीति) उपधा अनुनासिक का लोप (१३९) होकर । रज्यति । रज्यते । ररञ्ज । ररञ्जे । रङ्क्तासि । रङ्क्तासे । रङ्क्ष्यति । रङ्क्ष्यते । रङ्क्षीष्ट । अरङ्क्त । अरङ्क्षाताम् । अरङ्क्षत । अराङ्क्षीत् । अराङ्क्ताम् । अराङ्क्षुः [शप] आक्रोशे (कोशना) शप्यति । शप्यते । शशाप । शेपतुः शेपिथ । शशप्थ । शेपे । शेपाते । शप्तासि । शप्स्यति । शाप्सति । शाप्साति । शाप्सतै । । शाप्सातै । शप्यतु । शप्यताम् । अशप्यत् । अशप्यत । शप्येत् ।

शप्येत । शप्यात् । शप्सीष्ट । अशाप्सीत् । अशाप्ताम् । अशाप्सुः । अशप्त । अशप्साताम् । अशप्स्यत् । अशप्स्यत । णहादयस्त्रयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः । णह आदि तीन धातु अनिट् उभयपदी हैं । अथैकादशानुदात्तेतः । अब ११ ग्यारह धातु आत्मनेपदी कहते हैं [पद] गतौ । पद्यते । प्रतिपद्यते । प्रपद्यते । पेदे । पेदाते । पेदिरे पत्तासे । पत्स्यते । पात्सतै । पात्सातै । पद्यताम् । अपद्यत । पद्येत । पत्सीष्ट ॥ ४०४ ॥

४०५ – चिण् ते पदः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६० ॥

पद धातु से परे जो च्लि उस के स्थान में चिण् होवे त शब्द परे हो तो । अपादि । (१६५) अपत्साताम् । अपत्सत । अपत्स्यत । [खिद] दैन्ये (दीनता) खिद्यते । चिखिदे । खेत्तासे । खित्सीष्ट (१६३) अखित्त [विद] सत्तायाम् (होना) विद्यते । विविदे । वेत्तासे । वेत्स्यते । वेत्सतै । वेत्सातै । विद्यताम् । अविद्यत । विद्येत । वित्सीष्ट (१६३) अवित्त । अवित्साताम् । अवेत्स्यत [बुध] अवगमने (ज्ञान होना) बुध्यते । बुबुधे । बोद्धासे । भोत्स्यते (२०४) भोत्सतै । भोत्सातै । बुध्यताम् । अबुध्यत । बुध्येत । भुत्सीष्ट (१६३) अबोधि (१९४) अबुद्ध । अभोत्स्यत [युध] सम्प्रहारे । (युद्ध करना) युध्यते । युयुधे । योद्धासे । योत्स्यते । युत्सीष्ट । अयुद्ध । अयुत्साताम् । [अनो रुध] कामे (कामना) इस धातु के प्रयोग बहुधा अनुपूर्वक आते हैं इसलिये इस के पूर्व अनु उपसर्ग पढ़ा है । अनुरुध्यते । अनुरुरुधे । अनुरोद्धासे । अन्वरुध्यत । अनुरुत्सीष्ट । अन्वरुद्ध । अन्वरुत्साताम् [अण] प्राणने (श्वास का चलना) यह धातु सेट् है । अण्यते । आणे । आणाते । आणिरे । अणितासे । अणिष्यते । आणिषतै । आणिषातै । अण्यताम् । आण्यत । अण्येत । अणिषीष्ट । आणिष्ट । आणिष्यत [मन] ज्ञाने । मन्यते । मेने । मन्तासे । मंसीष्ट । अमंस्त [युज] समाधौ (चित्त की वृत्तियों को रोकना) युज्यते । युयुजे । योक्तासे । योक्ष्यते । योक्षतै । योक्षातै । युज्यताम् । अयुज्यत । युज्येत । युक्षीष्ट । अयुक्त । अयुक्षाताम् । अयोक्ष्यत [सृज] विसर्गे (रचना वा त्यागना) सृज्यते । ससृजे । स्रष्टासे (२३३) ज को षत्व और अम् आगम (२७८) स्रक्ष्यते । स्राक्षतै । स्राक्षातै । सृज्यताम् । असृज्यत । सृज्येत । सृक्षीष्ट । असृष्ट । असृक्षाताम् । असृक्षत । अस्रक्ष्यत । [लिश] अल्पीभावे (थोड़ा होना) लिश्यते । लिलिशे । लेष्टासे (२३३) षत्व । लेक्ष्यते । लेक्षतै । लेक्षातै । लिश्यताम् । अलिश्यत । लिश्येत । लिक्षीष्ट (१६३) अलिष्ट । अलेक्ष्यत । पदादयोऽनुदात्तेत आत्मनेभाषा अण्यतिवर्जमनुदात्ताः । पद आदि सब धातु आत्मनेपदी और अण् को छोड़ के अनिट् हैं ।

अथागणान्तात्परस्मैपदिनोऽष्टषष्टिः । अब इस दिवादिगण के अन्तपर्यन्त ६८ अड़सठ धातु परस्मैपदी कहते हैं [राधोऽकर्मकाद्वृद्धावेव] अकर्मक राध धातु से वृद्धि अर्थ में ही श्यन् प्रत्यय हो । राध्यति । रराध । रराधतुः । यहां हिंसा अर्थ के न होने से (४२३) सूत्र नहीं लगता । रराधिथ । राद्धासि । रात्स्यति । रात्सति । रात्साति । राध्यतु । अराध्यत् । राध्येत् । राध्यात् । अरात्सीत् । अराद्धाम् । अरात्सुः । अरात्स्यत् [व्यध] ताड़ने (पीड़ा देना) विध्यति (२८६) सम्प्रसारण । विध्यतः । विध्यन्ति । विव्याध (२८२) विविधतुः । विविधुः । विव्यधिथ । विव्यद्ध । व्यद्धासि ।व्यत्स्यति।व्यत्सति । व्यत्साति । विध्यतु । अविध्यत् । विध्येत्। विध्यात् । अव्यात्सीत् । अव्याद्धाम् । अव्यात्सुः । अव्यात्स्यत् । [पुष] पुष्टौ (पुष्ट करना) पुष्यति । पुपोष । पुपोषिथ । पोष्टासि । पोक्ष्यति ।पोक्षति । पोक्षाति । पुष्यतु । अपुष्यत् । पुष्येत् । पुष्यात् । अपुषत् (२१७) अङ् इस सूत्र में पुषादि करके इसी पुष से इस गण के अन्तपर्यन्त धातुओं का ग्रहण होता है । अपुषताम् । अपुषन् । अपोक्ष्यत् [शुष] शोषणे (सोखना) शुष्यति । अशुषत् [तुष] प्रीतौ (प्रसन्नता) तुष्यति । तुष्यतु । अतुषत् [दुष] वैकृत्ये (विकार को प्राप्त होना) दुष्यति । अदुषत् [श्लिष] आलिङ्गने (मिलना) श्लिष्यति । शिश्लेष । श्लेष्टासि । श्लेक्ष्यति । श्लेक्षति । श्लेक्षाति ।श्लिष्यतु । अश्लिष्यत् । श्लिष्येत् । श्लिष्यात् ॥४०५॥

४०६—श्लिष आलिङ्गने ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४६ ॥

श्लिष धातु से परे जो अनिट् च्लि उस के स्थान में क्स आदेश होवे आलिङ्गन ही अर्थ में अन्यत्र नहीं । यह सूत्र (२१७) सूत्र का अपवाद है । और आलिङ्गन अर्थ से यहां स्त्री पुरुष का संयोग समझना चाहिये किन्हीं जड़ पदार्थों वा अन्य सम्बन्धियों का मिलना नहीं । अश्लिक्षत् । और जहां आलिङ्गन अर्थ नहीं है वहां । अश्लिषत् । प्रयोग होगा । अश्लिक्षताम् । अश्लिक्षन् । अश्लेक्ष्यत् [शक] विभाषितो मर्षणे । सहन अर्थ में शक धातु से विकल्प करके श्यन् प्रत्यय होवे पक्ष में शप् होता है। शक्यति । शकति । शशाक। शेकतुः । शेकिथ। शशक्थ । शक्तासि शक्ष्यति । शक्षति। शक्षाति । शक्यतु । अशक्यत् । शक्येत् । शक्यात्। अशकत् (२१७) अशक्ष्यत् [ञिष्विदा] गात्रप्रक्षरणे (पसीना छूटना) स्विद्यति । सिस्वेद । सिस्वेदिथ स्वेत्तासि। स्वेत्स्यति। स्वेत्सति। स्वेत्साति । स्विद्यतु । अस्विद्यत् । स्विद्येत् । स्विद्यात्। अस्विदत्। अस्वेत्स्यत् [क्रुध] क्रोधे । क्रुध्यति । चुक्रोध । क्रोद्धासि । अक्रुधत् [क्षुध] बुभुक्षायाम्

(भोजन की इच्छा) क्षुध्यति । चुक्षोध । अक्षुधत् [शुध] शौचे (शुद्धि) शुध्यति । शुशोध । शोद्धा । अशुधत् [सिधु] संराधौ (सिद्धि होना) सिध्यति । सिसेध । सिषिधतुः । सिषेधिथ । सेद्धासि । सेत्स्यति । सेत्सति । सेत्साति । सिधयति । सिध्याति । सिध्यतु । असिध्यत् । सिध्येत् । सिध्यात् । असिधत् । असेत्स्यत् । राधादयोऽनुदात्ता उदात्तेतः परस्मैपदिनः । राध आदि धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [रध] हिंसासंराध्योः (हिंसा और सिद्धि) रध्यति । ररन्ध (१६५) नुम् । ररन्धतुः । ररन्धिथ ॥ ४०६ ॥

४०७—रधादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४५ ॥

रध आदि (रध, नश, तृप, दृप, द्रुह, मुह, ष्णुह, ष्णिह) धातुओं से परे वलादि आर्द्धधातुक को विकल्प करके इट् का आगम होवे । ररद्ध । ररन्धिव । रेध्व । ररन्धिम । रेध्म ॥ ४०७ ॥

४०८—नेट्यलिटि रधेः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६२ ॥

लिट् लकार से भिन्न इडादि प्रत्यय परे हो तो रध धातु को नुम् का आगम न होवे । इस सूत्र के नियम से इडादि लिट् में तो नुम् होता है । जो कदाचित् ऐसा नियम करते कि इडादि लिट् में ही नुम् होवे तो इस से विपरीत नियम का सम्भव था कि लिट् में जो नुम् हो तो इडादि में ही होवे इस नियम से ररन्धतुः आदि में भी निषेध हो जाता । राधितासि । रद्धासि । राधिष्यति । रत्स्यति । राधिषति । राधिषाति । रधिषति । रधिषाति । रात्सति । रत्साति । रध्यति।रध्याति । रध्यतु । अरध्यत् । रध्येत् । रध्यात् । अराधीत् । अराधत् । यहां अङ् के परे प्रथम नुम् (१६५) होकर नलोप (१३९) होता है । अरधताम् । अराधिष्यत् । अरत्स्यत् [णश] अदर्शने (नेत्र से न दीखना) नश्यति । ननाश । नेशतुः । नेशुः । थल् के परे (१४२ । २१८) नियम से सेट् पक्ष में । नेशिथ । अनिट् पक्ष में ॥ ४०८ ॥

४०९—मस्जिनशोर्झलि ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६० ॥

झलादि प्रत्यय परे हो तो मस्ज और नश धातु को नुम् का आगम होवे । ननंष्ठ (२९२) पक्ष । नेशथुः । नेश । । ननाश । ननश । नेशिव । ननंश्व । नेशिम । ननंश्म । नाशितासि । नंष्टासि (४०७) नशिष्यति । नङ्क्ष्यति । नङ्क्ष्याति । नश्यतु । अनश्यत् । नश्येत् । नश्यात् । अनशत् । अनशिष्यत् । अनङ्क्ष्यत् [तृप] प्रीणने (तृप्ति) यह धातु अनिट् है । तृप्यति । ततर्प । ततृपतुः । थल् में इट् पक्ष में (४०७)

ततर्पिथ । तपत्रप्थ (२७५)ततप्र्थ । इसी प्रकार सर्वत्र वलादि आर्द्धधातुक में जानो । तर्पिता । त्रप्ता । तर्प्ता । तर्पिष्यति । त्रप्स्यति । तर्प्स्यति । तर्पिषति । तर्पिषाति । त्रप्सति । त्रप्साति । तर्प्सति । तर्प्साति । तृप्यति । तृप्याति । तृप्यतु । अतृप्यत्। तृप्येत् तृप्यात् । लुङ् में प्रथम सिच् पक्ष में (२८०) इट् का विकल्प (४०७) होने से अतर्पीत् । अत्राप्सीत् (२७५) अताप्र्सीत् । और जिस पक्ष में च्लि के स्थान में सिच् (२८०) न हुआ वहां अङ् (२१७) अतृपत् । इस प्रकार चार रूप होते हैं । अतर्पिष्यत् । अत्रप्स्यत् । अतर्प्स्यत् [दृप] हर्षणमोहनयोः (आनन्द और गर्व) इस के प्रयोग तृप के समान जानो । दृप्यति । अदर्पीत् । अद्राप्सीत् । अदार्प्सीत् । अदृपत् । तृप और दृप दोनों धातु अनिट् हैं परन्तु रधादि में होने से यहां विकल्प से इट् होता है [द्रुह] जिघांसायाम् (मारने की इच्छा) द्रुह्यति । दुद्रोह । दुद्रोहिथ (४०७) अनिट् पक्ष में ॥ ४०९ ॥

४१०—वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३३ ॥

द्रुह, मुह, स्नुह और स्निह धातुओं के हकार को घकारादेश विकल्प करके होवे झल् परे हो वा पदान्त में । पक्ष में ढकार होजाता है । यह सूत्र भी (२०३) सूत्र का अपवाद है । दुद्रोग्ध । घ को जश्त्व । ढकार पक्ष में । दुद्रोढ । द्रोहिता । द्रोग्धा । द्रोढा । द्रोहिष्यति । ध्रोक्ष्यति । यहां घ और ढ दोनों आदेश का एक ही प्रकार का प्रयोग होता है । घकार पक्ष में उस को चर् ककार और ढकार में भी (२०५) ढ को क हो जाता है । द्रोहिषति । द्रोहिषाति । ध्रोक्षति । ध्रोक्षाति । द्रुह्यतु । अद्रुह्यत् । द्रुह्येत् । द्रुह्यात् । अद्रुहत् । अद्रोहिष्यत् । अध्रोक्ष्यत् । [मुह] वैचित्त्ये (विचारशून्य) मुह्यति । मुमोह । मुमोहिथ । मुमोग्ध । मुमोढ । मोहिता । मोग्धा । मोढा । मोहिष्यति । मोक्ष्यति । अमुहत् [ष्णुह] उद्गिरणे (उगलना) स्नुह्यति । सुस्नोह । सुष्णोहिथ । सुष्णोग्ध । सुष्णोढ । सुष्णुहिव । सुष्णुह्व । स्नोहिता । स्नोग्धा । स्नोढा । स्नोहिष्यति । स्नोक्ष्यति । अस्नुहत् (ष्णिह] प्रीतौ (प्रीति करना) स्निह्यति । सिष्णेह । अस्निहत् । वृत् रधादयाः समाप्ताः । ये रध आदि (४०७) सूत्र में कहे धातु समाप्त हुए । पुषादि तो इस गण की समाप्तिपर्यन्त हैं [शम] उपशमे (शान्ति) ॥ ४१० ॥

४११—शमामष्टानां दीर्घः श्यनि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७४ ॥

शम आदि आठ धातुओं के अच् को दीर्घ होवे श्यन् परे हो तो । शाम्यति । शाम्यतः । शाम्यन्ति । शशाम । शेमतुः । शेमिथ । शमिता । शमिष्यति । शामिषति । शामिषाति । शाम्यतु । अशाम्यत् । शाम्येत् । शम्यात् । अशमत् (२१७) अशमिष्यत् । [तमु] काङ्क्षायाम् (अभिलाषा) ताम्यति (४११) तताम । तेमतुः । तमितासि । अतमत् । [दमु] उपशमे । दाम्यति । अदमत् [श्रमु] तपसि खेदे च (तप करना और क्लेश भोगना) श्राम्यति । अश्रमत् । [भ्रमु] अनवस्थाने (स्थिति न होना) (१८८) भ्राम्यति । भ्रमति । बभ्राम । भ्रेमतुः । भ्रेमुः (२२९) एत्वाभ्यास लोप । विकल्प पक्ष में बभ्रमतुः । लुङ् में अङ् (२१७) अभ्रमत् । अन्य सब प्रयोग भ्वादि के समान जानो [क्षमूष्] सहने । यह धातु ऊदित् और षित् है । क्षाम्यति । चक्षाम । चक्षमतुः । चक्षमिथ (१४०) चक्षन्थ । चक्षमिव । चक्षण्व । चक्षमिम । चक्षण्म । क्षमिता । क्षन्ता । क्षमिष्यति । क्षंस्यति । क्षांसति । क्षांसाति । क्षाम्यतु । अक्षाम्यत् । अक्षमत् । [क्लमु] ग्लानौ (आनन्द का नाश) क्लाम्यति (१०८) क्लामति । (१८६) सूत्र से ही शप् और श्यन् दोनों में दीर्घ हो जाता फिर इसका शमादिकों में यहां पाठ कृदन्त में घिनुण् प्रत्यय होने के लिये है । चक्लाम । चक्लमतुः । क्लमिता । क्लमिष्यति । क्लाम्यतु । क्लामतु । अक्लमत् । [मदी] हर्षे (आनन्द) माद्यति । ममाद । मेदतुः । मेदिथ । मदिता । मदिष्यति । मादिषति । मादिषाति । माद्यतु । अमाद्यत् । माद्येत् । मद्यात् । अमदत् । अमदिष्यत् । इत्यष्टौ शमादयः । ये (४११) सूत्र में कहे शम आदि आठ धातु समाप्त हुए । [असु] क्षेपणे (फेंकना) अस्यति । आस । आसितासि । अस्यतु ॥ ४११ ॥

४१२—अस्यतेस्थुक् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १७ ॥

अङ् परे हो तो अस्यति धातु को थुक् का आगम होवे । आस्थत् । आस्थताम् । इस धातु से लङ् में (२१७) सूत्र से अङ् सिद्ध ही है फिर (३१६) सूत्र में असु धातु का ग्रहण आत्मनेपदविषय के लिये है [यसु] प्रयत्ने (पुरुषार्थ) ॥ ४१२ ॥

४१३—यसोऽनुपसर्गात् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७१ ॥

उपसर्गरहित यस धातु से परे श्यन् प्रत्यय विकल्प करके होवे कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो । पक्ष में शप् होता है । यस्यति । यसति ॥ ४१३ ॥

४१४—संयसश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७२ ॥

संपूर्वक यस धातु से भी श्यन् प्रत्यय विकल्प करके होवे । संयस्यति । संयसति ।

ययास । येसतुः । यसिता । यसिष्यति । यासिषति । यासिषाति। यस्यतु । अयस्यत् । यस्येत् । यस्यात् । अयसत् । अयसिष्यत् । [जसु] मोक्षणे (छूटना) जस्यति । अजसत् । [तसु] उपक्षये (नाश) तस्यति । अतसत् । [दसु] च । पूर्व धातु के अर्थ में । दस्यति । अदसत् [वसु] स्तम्भे (रोकना) वस्यति । ववास । ववसतुः । (१२८) अवसत् । बशादिरित्येके । किन्हीं के मत में यह धातु पवर्गादि है वहां (१२८) सूत्र न लगने से बेसतुः । बेसुः । प्रयोग बनते हैं [व्युष] विभागे । व्युष्यति । अव्युषत् । ओष्ठ्यादिर्दन्त्यान्तोऽयमित्येके । कोई के मत में यह धातु व्युस है । व्युस्यति । अव्युसत् । अयकारं वुस इत्यपरे। कोई के मत में यकाररहित वुस है। वुस्यति । वुवोस अवुसत् [प्लुष] दाहे। प्लुष्यति। अप्लुषत् । [बिस] प्रेरणे (प्रेरणा) बिस्यति । बिबेस । अबिसत् । [कुस] संश्लेषणे । कुस्यति । अकुसत् [बुस] उत्सर्गे (त्याग) बुस्यति । अबुसत् [मुस] खण्डने (काटना) मुस्यति । मुमोस । मुमुसतुः । मोसिता । मोसिष्यति । मोसिषति । मोसिषाति । मुस्यतु । अमुस्यत् । मुस्येत् । मुस्यात् । अमुसत् । अमोसिष्यत् [मसी] परिणामे (विकार) मस्यति । ममास । मेसतुः । अमसत् । [समी] इत्येके । कोई के मत में मसी नहीं समी है । सम्यति । असमत् [लुठ] विलोडने (विलोना) लुठ्यति । अलुठत् [उच] समवाये (नित्य संबन्ध) उच्यति। उवोच । ऊचतुः । ऊचुः । ओचिता । ओचिष्यति । ओचिषति । ओचिषाति । उच्यतु । औच्यत् । उच्येत् । उच्यात् । औचत् । मा भवानुचत् । औचिष्यत् [भृशु, भ्रंशु] अधःपतने (नीचे गिरना) भृश्यति । बभर्श । अभृशत् । भ्रंश्यति । बभ्रंश । अभ्रशत् । (१३९) [वृश] वरणे (स्वीकार) वृश्यति । अवृशत् [कृश] तनूकरणे (सूक्ष्म करना) कृश्यति । अकृशत् [ञितृष] पिपासायाम् (पीने की इच्छा) तृष्यति । अतृषत् । [हृष] तुष्टौ (सन्तोष) हृष्यति । अहृषत् [रुष, रिष] हिंसायाम् (मारना) रुष्यति । रिष्यति । रुरोष । रिरेष । रोषिता (२१२) रोष्टा । रेषिता । रेष्टा । अरुषत् । अरिषत् [डिप] क्षेपे (फेंकना) डिप्यति । अडिपत् [कुप] क्रोधे। कुप्यति । अकुपत् । [गुप] व्याकुलत्वे (व्याकुलता) गुप्यति । अगुपत् [युपु, रुपु, लुपु) विमोहने (मोहित करना) युप्यति । रुप्यति । लुप्यति । अयुपत् । अरुपत् । यहां लुप धातु सेट् ही है और अनिट् धातुओं में जो लुप गिनाया है वह तुदादिगण का साहचर्य्य से समझा जाता है । अलुपत् [लुभ] गार्ध्ये (आकाङ्क्षा) लुभ्यति । लुलोभ । लुलुभतुः । लोभिता (२१२) लोब्धा । अलुभत् [क्षुभ] सञ्चलने

(चलायमान) क्षुभ्यति । अक्षुभत् [णभ, तुभ] हिंसायाम् । नभ्यति । ननाभ । नेभतुः । अनभत् । तुभ्यति । अतुभत् [क्लिदू] आर्द्रीभावे (गीलापन) क्लिद्यति । चिक्लेद । चिक्लेदिथ । ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) चिक्लेत्थ । चिक्लिदिव । चिक्लिद्व । क्लेदिता । क्लेत्ता । अक्लिदत् [ञिमिदा] स्नेहने (प्रीति वा चिकनाई) ॥ ४१४ ॥

४१५—मिदेर्गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८२ ॥

मिद धातु के इक् भाग को गुण होवे शित् प्रत्यय परे हों तो । मेद्यति । मेद्यतः । मेद्यन्ति । यहां श्यन् के ङित् होने से गुण प्राप्त नहीं था । मिमेद । मिमिदतुः । अमिदत् । [ञिक्ष्विदा] स्नेहनमोचनयोः । क्ष्विद्यति । अक्ष्विदत् [ऋधु] वृद्धौ । ऋध्यति । आनर्ध । आनृधतुः (१४७ । ११०) अर्धिता । अर्धिष्यति । अर्धिषति । अर्धिषाति । ऋध्यतु । आर्ध्यत् । ऋध्येत् । ऋध्यात् । आर्धत् । आर्धिष्यत् [गृधु] अभिकाङ्क्षायाम् । (मिलने की इच्छा) गृध्यति । जगर्ध । जगृधतुः । अगृधत् । जो मिद वा णभ आदि धातु भ्वादिगण में पढ़ चुके हैं उन का पाठ श्यन् वा अङ् आदि विशेष कार्यों के लिये किया है इसी प्रकार अन्य सब गणों में जानो । वृत् पुषादयः (२१७) सूत्र में कहे पुषादि धातु पूरे हुए । दिवादिगण भी भ्वादि के समान आकृतिगण है । जिस से क्षीयते । मृग्यति । आदि प्रयोग बनते हैं । इति श्यन्विकरणो दिवादिगणः समाप्तः । यह श्यन् विकरणवाला दिवादि गण समाप्त हुआ ॥ ४१५ ॥

अथ स्वादिगणः ॥

[षुञ्] अभिषवे (यंत्र से रस खींचना वा राज्याधिकार देना) ॥

४१६—स्वादिभ्यः श्नुः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७३ ॥

सु आदि धातुओं से शप् का बाधक श्नु प्रत्यय होवे कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो । विकरणस्थ उकार को गुण होकर । सुनोति । सुनुतः । सुन्वन्ति (२६१) सुनोषि । सुनुथः । सुनुथ । सुनोमि । सुन्वः (२००) सुनुवः । सुन्मः । सुनुमः । सुनुते । सुन्वाते । सुन्वते । सुषाव । सुषुवे । सोता । सोष्यति । सोष्यते । सौषति । सौषाति । सौषतै । सौषातै । सुनोतु । सुनुतात् । सुनु (२०१) सुनवानि । सुनवाव । सुनवाम । सुनुताम् । असुनोत् । सुनुयात् । सुन्वीत् । सूयात् । सोषीष्ट । असावीत् (३३०) असोष्ट । असोष्यत् । असोष्यत [सिञ्] बंधने (बांधना) सिनोति । सिषाय । सिष्ये । सेता । सेष्यति [शिञ्] निशाने (तीक्ष्ण करना) शिनोति । शिनुते [डुमिञ्] प्रक्षेपणे

(फेंकना) मिनोति । मिनुते । ममौ (३६६) आकारादेश होकर आकारान्तों के तुल्य रूप जानो । एच्विषय में आकारादेश के कहने से मिम्यतुः मिम्युः । आदि में नहीं होता । ममिथ । ममाथ । मिम्ये । मिम्याते । मिम्यिरे । माता । मिनोतु । मीयात् (१६०) दीर्घ । मासीष्ट । अमासीत् । अमासिष्टाम् । अमास्त । अमास्यत । [चिञ्] चयने (जोड़ना) चिनोति । चिनुतः । चिनुते ॥ ४१६ ॥

४१७—विभाषा चेः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५८ ॥

सन् और लिट् परे हों तो अभ्यास से परे चिञ् धातु को विकल्प करके कुत्व होवे । चिकाय । चिक्यतुः । चिकयिथ । चिचाय । चिच्यतुः । चिक्ये । चिच्ये । चेता । चेष्यति । चेष्यते । चेषति । चेषाति । चेषते । चेषातै । चिनोतु । चिनुताम् । अचिनोत् । अचिनुत । चिनुयात् । चिन्वीत् । चीयात् । चेषीष्ट । अचैषीत् । अचेष्ट । अचेष्यत् । अचेष्यत [स्तृञ्] आच्छादने । स्तृणोति । स्तृणुते । तस्तार । तस्तरतुः (२५३) तस्तरुः । तस्तरिथ । तस्तर्थ । तस्तरे । तस्तराते । स्तर्त्ता । स्तर्यात् (२५४) स्तर्यास्ताम् ॥४१७॥

४१८—ऋतश्च संयोगादेः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४३ ॥

संयोगादि ऋकारान्त धातुओं से परे आत्मनेपद विषय में जो लिङ् सिच् उन को विकल्प करके इट् का आगम होवे । स्तरिषीष्ट । पक्षमें । स्तृषीष्ट (२४०) अस्तरिष्ट । अस्तृत । अस्तार्षीत् । अस्तार्ष्टाम् [कृञ्] हिंसायाम् । कृणोति । कृणुते । चकार । चकर्थ (१४८) चक्रे । कर्त्ता । करिष्यति । करिष्यते । कार्षति । कार्षाति । कार्षतै । कार्षातै । कृणोतु । कृणुताम् । अकृणोत् । अकृणुत । कृणुयात् । कृण्वीत । क्रियात् (२३९) कृषीष्ट (२४०) अकार्षीत् । अकृत । अकरिष्यत् । अकरिष्यत [वृञ्] वरणे (स्वीकार) वृणोति । वृणुते । ववार । ववृतुः ॥ ४१८ ॥

४१९ – बभूथाततन्थजगृभ्मववर्थेति निगमे ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६४ ॥

बभूथ, आततन्थ, जगृम्भ, ववर्थ इन शब्दों में थल् के परे वेद विषय में इट् का अभाव निपातन किया है । भू धातु का वेद में बभूथ । लोक में । बभूविथ । आङ्पूर्वक तनु धातु का वेद में आततन्थ । लोक में आतेनिथ । ग्रह, प्रसह्यकरणे । जुहोत्यादि धातु का लिट् लकार उत्तम पुरुष के बहुवचन में जगृभ्म वेद में जगृहिम लोक में तथा इसी वृञ् धातु का ववर्थ वेद में, और इसी प्रमाण से लोक में इट् होता है ववरिथ । ववृव । ववृम (१४८) वव्रे । ववृषे । ववृवहे । ववृमहे । वरिता । वरीता (२६४) वरिष्यति । वरीष्यति । वरिष्यते । वरीष्यते । वारीषति । वारीषाति ।

वारिषति। वारिषाति। वृणोतु। वृणुताम्। अवृणोत्। अवृणुत। वृणुयात्। वृणवीत। व्रियात्। व्रियास्ताम् ॥ ४१९ ॥

४२० — लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४२ ॥

वृङ्, वृञ् और ॠकारान्त धातुओं से परे जो आत्मनेपदविषयक लिङ् सिच् उन को विकल्प करके इट् का आगम होवे। वृङ् वृञ् ॠकारान्त सब धातु सेट् हैं इसलिये प्राप्त विभाषा है। अब इट् को दीर्घ (२६४) प्राप्त है उस का निषेध ॥ ४२० ॥

४२१ — न लिङि ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३९ ॥

वृङ् वृञ् और ॠकारान्तों से परे लिङ् के इट् को दीर्घ न होवे। वरिषीष्ट। वरिषीयास्ताम्। अनिट् पक्ष में। वृषीष्ट। अवारीत्। अवारिष्टाम्। अवारिषुः (२६६) अवरिष्ट। अवरीष्ट। अवरीष्यत्। अवरिष्यत् [धुञ्] कम्पने (कांपना) धुनोति। धुनुते। दुधाव। दुधविथ। दुधुवे। धोता। अधौषीत्। अधोष्ट। अधोष्यत्। दीर्घान्तोऽपीत्येके * । यह धुञ् धातु किन्हीं आचार्यों के मत में दीर्घ ऊकारान्त भी है। धूनोति। धूनुते। दुधाव। दुधुवे। दुधविथ। दुधोथ (१४०) इट् विकल्प। किन्तु लिट् में क्रयादि नियम (१४८) से नित्य इट् होता है। दुधुविव। दुधुविम। धविता। धोता। धविष्यति। धोष्यति। धाविषति। धाविषाति। धौषति। धौषाति। धाविषतै। धाविषातै। धौषतै। धौषातै। धूनोतु। धूनुताम्। अधूनोत्। अधूनुत। धूनुयात्। धून्वीत। धूयात्। धविषीष्ट। धोषीष्ट। अधविष्ट। अधोष्ट। अधावीत्। अधाविष्टाम् (३३०) नित्य इट्। अधविष्यत। अधोष्यत्। स्वादय उभयतोभाषा वृञ्वर्जमनुदात्ताः। सु आदि धातु उभयपदी वृञ् को छोड़के सब अनिट् हैं ॥

अथ परस्मैपदिनो नव। अब परस्मैपदी नव ९ धातु कहते हैं [टुदु] उपतापे (क्लेश भोगना) टु की इत्संज्ञा (१५०) दुनोति। दुदाव। दुदविथ। दोतासि। दोष्यति। दौषति। दौषाति। दुनोतु। अदुनोत्। दुनुयात्। दूयात्। अदौषीत्। अदोष्यत्। [हि] गतौ वृद्धौ च। हिनोति ॥ ४२१ ॥

४२२ — हेरचङि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५६ ॥

* लोक वेद में सर्वत्र दीर्घान्त धूञ् धातु के प्रयोग बहुधा आते हैं और पाणिनीय (स्तुसुधूञ्०) आदि सूत्रों में दीर्घान्त ही आता है फिर यह ठीक नहीं बनता कि किन्हीं के मत में दीर्घान्त हो किन्तु दीर्घान्त सार्वत्रिक और अल्प प्रयुक्त किन्हीं के मत में ह्रस्वान्त होना चाहिये ॥

अभ्यास से परे हि धातु के हकार को कुत्व होवे परन्तु चङ् परे न हो तो। हकार का अन्तरतम घकार होकर। जिघाय। जिघ्यतुः। जिघयिथ। जिघेथ। हिनोतु। अहैषीत्। [पृ] प्रीतौ। पृणोति। पर्त्ता। परिष्यति। प्रियात्। अपार्षीत् [स्पृ] प्रीतिसेवनयोः। प्रीतिचलनयोरित्यन्ये। स्पृणोति। पस्पार। पस्परतुः (२५३) पस्परिथ। पस्पर्थ। स्पर्यात्। (३५४) अस्पार्षीत् [स्मृ] इत्येके। स्मृणोति। सस्मार। सस्मरिथ। सस्मर्थ। स्मर्यात् (२५५) [आप्लृ] व्याप्तौ (व्यापक होना) आप्नोति। आप्नुतः। आप्नुवन्ति। यहां संयोगपूर्व के होने से श्नु प्रत्यय के उकार को यण् (२६१) तथा आप्नुवः (२००) लोप नहीं होता। आप्ता। आप्स्यति। आप्सति। आप्साति। आप्नोतु। आप्नुहि (२०१) संयोग पूर्व के होने से हि का लुक् नहीं होता। आप्नोत्। आप्नुयात्। आप्यात्। आपत् (२१७) अङ्। आप्स्यत् [शक्लृ] शक्तौ। शक्नोति। शशाक। शेकतुः। शेकिथ। शशक्थ। शक्ता। शक्ष्यति। शक्षति। शक्षाति। शक्नोतु। अशक्नोत्। शक्नुयात्। शक्यात्। अशकत् (२१७) अशक्ष्यत् [राध, साध] संसिद्धौ। राध्नोति। साध्नोति॥ ४२२॥

४२३–राधो हिंसायाम् ॥ अ० ॥ ६। ४। १२३ ॥

कित् लिट् और सेट् थल् परे हों तो हिंसा अर्थ में वर्तमान राध धातु को एकार आदेश और अभ्यास का लोप होवे। रराध। रेधतुः। अपरेधतुः। अपरेधुः। रेधिथ॥ अपपूर्वक राध धातु का हिंसा अर्थ होता है। राद्धा। साद्धा। रात्स्यति। सात्स्यति रात्सति। रात्साति। साध्नोति। असात्सीत्। असाद्धाम्। असात्स्यत्। दुनोतिप्रभृतयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः। दु आदि धातु अनिट् परस्मैपदी हैं। अथ द्वावनुदात्तेतौ। अब दो धातु आत्मनेपदी कहते हैं [अशूङ्] व्याप्तौ सङ्घाते च (व्याप्ति और इकट्ठा करना) अश्नुते। अश्नुवाते॥ ४२३॥

४२४–अश्नोतेश्च ॥ अ० ॥ ७। ४। ७२ ॥

दीर्घ किये अभ्यास के अवर्ण से परे अश धातु को नुट् का आगम होवे। आनशे। आनशाते। ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) आनशिषे। आनक्षे। आनशिवहे। आनश्वहे। आशितासे। अष्टासे (२३३) षत्व। अशिष्यते। अक्ष्यते। आशिषतै। आशिषातै। आक्षतै। आक्षातै। अश्नुताम्। अश्नवै। आश्नुत। अश्नुवीत। आशिषीष्ट। अक्षीष्ट। आशिष्ट। आष्ट। आक्षाताम्। आशिष्यत। आक्ष्यत [ष्टिघ] आस्कन्दने (शोखना) स्तिघ्नुते। तिष्टिघे। स्तेघितासे। अस्तेघिष्ट।

अथागणान्तात्परस्मैपादिनः । अब इस गण के अन्त पर्यन्त परस्मैपदी धातु कहते हैं [तिक, तिग] नतौ च (चादास्कन्दने) यहां चकार से आस्कन्दन अर्थ की अनुवृत्ति आती है । तिक्नोति । तिग्नोति । तितेक । तेगितासि । तेगिष्यति । तेगिषति । तेगिषाति । तिग्नोतु । अतिग्नोत् । तिग्नुयात् । तिग्यात् । अतेगीत् । अतेगिष्यत् [षघ] हिंसायाम् । सघ्नोति [ञिधृषा] प्रागल्भ्ये (अतिदृढ़ होना) धृष्णोति । दधर्ष । धर्षिता [दम्भु] दम्भने (अहङ्कार) (१३९) दभ्नोति । ददम्भ (२७१) कित्व होकर दम्भ धातु के अनुनासिक का लोप (१३९) होकर न लोप को (४२) असिद्ध मानने से (१२५) एत्वाभ्यास लोप नहीं पाता इसलिये ॥ ४२४ ॥

४२५—वा०—दम्भेरेत्वं वक्तव्यम् ॥

दम्भ धातु को एत्व और अभ्यास का लोप हो कित् लिट् और सेट् थल् परे हो तो । देभतुः । देभुः । देभिथ । दम्भिता । दभ्यात् (१३९) [ऋधु] वृद्धौ । ऋध्नोति । आनर्द्ध । अर्द्धिता । अर्द्धिष्यति । अर्द्धिषति । अर्धिषाति । ऋध्नोतु । आर्ध्नोत् । ऋध्नुयात् । ऋध्यात् । आर्धीत् । आर्धिष्यत् (छन्दसि) यह गणसूत्र अधिकार है यहां से आगे इस गण के अन्तपर्यन्त सब धातु वैदिकविषयक हैं [तृप] प्रीणन इत्येके । कोई के मत में प्रीणनार्थ तृप धातु वैदिक है । तृप्णोति । क्षुभ्नादि गण में पाठ होने से णत्व होता है । अतर्पीत् [अह] व्याप्तौ । अह्नोति । मा भवानहीत् (१६२) [दघ] घातने पालने च (मारना और रक्षा) दघ्नोति । ददाघ । देघतुः । देघिथ । दघिता । दघिष्यति । दाघिषति । दाघिषाति । दघ्नोतु । दघ्नवानि । अदघ्नोत् । दघ्नुयात् । दघ्यात् । अदाघीत् । अदघीत् । अदघिष्यत् [चमु) भक्षणे । चम्नोति [रि, क्षि, चिरि, जिरि, दाश्, दृ] हिंसायाम् । रिणोति । क्षिणोति । अयं भाषायामपीत्येके । कोई के मत में क्षि धातु लौकिक भी है । ऋक्षीत्येक एवाजादिरित्यन्ये । किन्हीं के मत में रि और क्षि दो नहीं किन्तु ऋक्षि अजादि अजन्त एक ही दो अक्षर का धातु है । ऋक्षिणोति । चिरिणोति । जिरिणोति । दाश्नोति । दृणोति । चिचिराय । चिचिरियतुः । इत्यादि वैदिक प्रयोगों में जैसा प्रयोग आ जावे उस के अनुकूल सूत्रों से सिद्धि समझनी चाहिये । तिकादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैपदिनः । ये तिक आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं (वृत्) इति श्नुविकरणः स्वादिगणः समाप्तः । यह श्नु विकरणवाला स्वादिगण समाप्त हुआ ॥ ४२५ ॥

अथ तुदादयः ॥

[तुद] व्यथने (पीड़ा)

४२६—तुदादिभ्यः शः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७७ ॥

तुदादि धातुओं से परे शप् का बाधक श प्रत्यय होवे कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो । अपित् श के ङित् होने से गुणनिषेध सर्वत्र । तुदति । तुदते । तुतोद । तुतोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । तोत्स्यति । तोत्स्यते । तुदतु । तुदताम् । अतुदत् । अतुदत । तुदेत् । तुदेत । तुद्यात् । तुत्सीष्ट (१६३) अतौत्सीत् । अतौत्ताम् (१३५) अतुत्त । अतुत्साताम् । अतोत्स्यत् [णुद] प्रेरणे (आज्ञा करना) नुदति । नुदते । नुनोद । नुनुदे [दिश] अतिसर्जने (देना) दिशति । दिशते । देष्टा । देक्ष्यति । देक्ष्यते । देक्षति । देक्षाति । देक्षतै । देक्षातै । दिक्षीष्ट । अदिक्षत् । अदिक्षत (२०७) [भ्रस्ज] पाके (पकाना) भृज्जति । भृज्जते । (२८६) संप्रसारण सकार को श्चुत्व शकार और शकार को जश्त्व हो जाता है ॥ ४२६ ॥

४२७—भ्रस्जोरोपधयो रमन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४७ ॥

भ्रस्ज धातु के रेफ और उपधा के स्थान में रम् का आगम विकल्प करके होवे आर्द्धधातुक विषय में । रम् मित् होने से अन्त्य अच् से परे होता है। और स्थान षष्ठी का निर्देश होने से रेफ और उपधा की निवृत्ति हो जाती है । बभर्ज । बभर्जतुः । बभर्जिथ । बभर्ष्ठ (२३३) षत्व और जिस पक्ष में रम् का आगम न हुआ वहां बभ्रज्ज । बभ्रज्जतुः । बभ्रज्जिथ । बभ्रष्ठ (२१०) संयोगादि सलोप और षत्व (२३३) बभर्जे । बभर्जाते । बभर्जिषे । बभ्रज्जे । भर्ष्टा । भ्रष्टा । भर्क्ष्यति । भ्रक्ष्यति । भ्रक्षति । भर्क्षाति । भार्क्षतै । भार्क्षातै । भ्रक्षति । भ्रक्षाति । भ्रक्षतै । भ्रक्षातै । भृज्जतु । भृज्जताम् । अभृज्जत् । अभृज्जत । भृज्जेत् । भृज्जेत । भृज्ज्यात् । कित् ङित् विषय में रमागम को (४२१) को बाध के पूर्वविप्रतिषेध मानकर सम्प्रसारण (२८६) होता है । भृज्ज्यास्ताम् । भर्क्षीष्ट । भ्रक्षीष्ट । अभार्क्षीत् । अभ्राक्षीत् । अभर्ष्ट । अभर्क्षाताम् । अभ्रष्ट । अभ्रक्षाताम् । अभर्क्ष्यत् । अभ्रक्ष्यत् । अभर्क्ष्यत । अभ्रक्ष्यत । [क्षिप] प्रेरणे । क्षिपति । क्षिपते । क्षेप्ता । क्षिप्सीष्ट । अक्षैप्सीत् । अक्षिप्त । [कृष] विलेखने (लिखना वा जोतना) कृषति । कृषते । क्रष्टा । कर्ष्टा (२७५) क्रक्ष्यति । कर्क्ष्यति । कृष्यात् । कृक्षीष्ट । सिच् (२८०) पक्ष में अम् (२७५) अक्राक्षीत् ।

अकार्क्षीत् । पक्ष में क्स (२०७) अकृक्षत् । अकृक्षताम् । आत्मनेपद में कित् (१६३) होने से अम् (२७५) नहीं होता । सिच् पक्ष में (२८०) अकृष्ट । अकृक्षाताम् । अकृक्षत । क्स (२०७) पक्ष में । अकृक्षत । अकृक्षाताम् । अकृक्षन्त । अकर्च्यत् । अकर्च्यत । अकर्दर्यत् । अकर्दर्यत । षट् तुदादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः । ये तुद आदि छः धातु अनिट् उभयपदी हैं [ऋषी] गतौ । यह धातु सेट् परस्मैपदी है । ऋषति । आनर्ष । आनृषतुः । आर्षीत् [जुषी] प्रीतिसेवनयोः । जुषते । जुजुषे । जोषितासे । जोषिष्यते । जोषिषते । जोषिषातै । जुषताम् । अजुषत । जुषेत । जोषिषीष्ट । अजोषिष्ट । अजोषिष्यत । [ओविजी] भयचलनयोः । बहुधा इस धातु के प्रयोग उद्उपसर्गपूर्वक ही आते हैं । उद्विजते । उद्विविजे । उद्विविजाते ॥ ४२७ ॥

४२८—विज इट् ॥ अ० ॥ १ । २ । २ ॥

विज धातु से परे जो इडादि प्रत्यय सो ङित्वत् हो । उद्विजिता । उद्विजिष्यते । ङित् होने से लघूपध गुण नहीं होता । उद्विजिषीष्ट । उद्विविजिष्ट [ओलजी, ओलस्जी] व्रीडायाम् (प्रेरणा और लज्जा) लजते । लेजे । लजितासे । लजिष्यते । लाजिषतै । लाजिषातै । लजताम् । अलजत । लजेत । लजिषीष्ट । अलजिष्ट । अलजिष्यत । लज्जते । ललज्जे । भ्रस्ज धातु के समान श्चुत्व और जश्त्व । जुषादय उदात्ताश्चत्वारोऽनुदात्तेत आत्मनेपदिनः । ये जुष आदि चार धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ परस्मैपदिनो दशोत्तरशतम् । अब एक सौ दश ११० धातु परस्मैपदी कहते हैं [ओव्रश्चू] छेदने (काटना) वृश्चति (२८६) सम्प्रसारण । वव्रश्च । वव्रश्चतुः । वव्रश्चुः । वव्रश्चिथ । वव्रष्ठ । यहां अभ्यास के रेफ को ऋ सम्प्रसारण (२८२) होकर ऋ को अकार (१०६) होता है उस ऋकार को स्थानिवत् मानने से सम्प्रसारण के परे पूर्व वकार को सम्प्रसारण नहीं होता । ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) व्रश्चिता । व्रष्टा । व्रश्चिष्यति । व्रक्ष्यति । व्रश्चिषति । व्रश्चिषाति । व्रक्षति । व्रक्षाति । वृश्चतु । अवृश्चत् । वृश्चेत् । वृश्च्यात् । अव्रश्चीत् । अव्राक्षीत् [व्यच] व्याजीकरणे (छल करना) विचति (२८६) विव्याच (२८५) विविचतुः । (२८६) व्यचितासि । व्यचिष्यति । व्याचिषति । व्याचिषाति । विचतु । अविचत् । विचेत् । विच्यात् । अव्याचीत् । अव्यचीत् [उछि] उञ्छे (ऊंछना) उञ्छति । उञ्छाञ्चकार । उञ्छाम्बभूव । उञ्छामास । उञ्छिता [उछी] विवासे (परदेश वास) उच्छति [ऋच्छ] गतीन्द्रियप्रलयमूर्त्तिभावेषु (गति, इन्द्रियों का प्रलय और शरीर का बनना)

ऋच्छति। आनर्च्छ (२५८) गुण। आनर्च्छतुः। आनर्च्छुः। आनर्च्छिथ। ऋच्छिता। [मिच्छ] उत्क्लेशे (पीड़ा) मिच्छति। मिमिच्छ। अमिच्छीत्। [जर्ज, चर्च, झर्झ] परिभाषणभर्त्सनयोः (बहुत बोलना वा धमकाना) जर्जति। चर्चति। झर्झति [त्वच] संवरणे (ढांकना) त्वचति। तत्वाच [ऋच] स्तुतौ (गुणकथन) ऋचति। आनर्च। आनृचतुः [उब्ज] आर्जवे (कोमलता) उब्जति। उब्जाञ्चकार [उज्झ] उत्सर्गे (त्याग) उज्झति। उज्झांचकार [लुभ] विमोहने (व्याकुलता) लुभति। लुलोभ। लोभिता (२१२) लोब्धा। लोभिष्यति। लोभिषति। लोभिषाति। लुभतु। अलुभत्। लुभेत्। लुभ्यात्। अलोभीत्। अलोभिष्यत् [रिफ] कथनयुद्धनिन्दाहिंसादानेषु (अपनी प्रंशसा, युद्ध, निन्दा, हिंसा और ग्रहण करना वा देना) रिफति। रिरेफ। रेफिता। रेफिष्यति। रेफिषति। रेफिषाति रिफतु। अरिफत्। रिफेत्। रिफ्यात्। अरेफीत्। अरेफिष्यत्। (रिह) इत्येके। रिहति। रिरेह। [तृप, तृम्प] तृप्तौ। तृपति। ततर्प। तर्पिता। तृम्पति। तृप्यात्। तृप्यात् (१३९) उपधाऽनुनासिक लोप। अतर्पीत्। यहां (२८०) वार्त्तिक में अङ् का अपवाद होने से विवादि के अन्तर्गत पुषादि के तृप का ग्रहण होता है। इसलिये नित्य सिच् होता है [तृफ, तृम्फ] इत्येके ॥ ४२८ ॥

४२९-वा०-शे तृम्फादीनामुपसंख्यानम् ॥

तृम्फ आदि धातुओं को नुम् हो श प्रत्यय परे हो तो। यह वार्तिक (७।१।५९) सूत्र पर है। तृम्फ आदि धातुओं में जो अनुनासिकसहित हैं उन के भी अनुनासिक का लोप श के परे (१३९) हो जाता है। और नुम्विधानसामर्थ्य से फिर लोप नहीं होता है। तृम्फति। ततृम्फ। तृम्फिता। तृफ्यात् (१३९) [तुप, तुम्प, तुफ, तुम्फ] हिंसायाम्। तुम्पति। तुम्फति। तुप्यात्। तुफ्यात्। [दृप, दृम्फ] उत्क्लेशे (पीड़ा) दृम्पति। दृम्फति। दृप्यात्। दृफ्यात् [ऋफ, ऋम्फ] हिंसायाम्। ऋम्फति। आनर्फ। ऋम्फाञ्चकार। ऋफ्यात् [गुफ, गुम्फ] ग्रन्थे (बन्धन) गुम्फति। जुगुम्फ [उभ, उम्भ] पूरणे (पूर्त्ति) उभति। उम्भति। उवोभ। उम्भाञ्चकार। उभ्यात्। [शुभ, शुम्भ] शोभार्थे। शुम्भति। शुशुम्भ। शुशोभ। शुभ्यात् (४२९) वार्तिक में कहे तृम्फादि धातु पूरे हुए [दृभी] ग्रन्थे। दृभति। ददर्भ। अदर्भीत्। अदर्भिष्यत् [चृती] हिंसाग्रन्थनयोः। चृतति। चचर्त। चचृततुः। चचर्त्तिथ। चर्त्तिता। चर्त्तिष्यति (१९७) चर्त्स्यति। चर्त्तिषति। चर्त्तिषाति। चर्त्सति। चर्त्साति। चृततु। अचृतत्।

वृतेत् । वृत्स्यत् । अवर्तीत् । अवर्तिष्यत् [विध] विधाने । विधाति । विवेध । विविधतुः । वेधिता । वेधिष्यति । वेधिषति । वेधिषाति [जुड] गतौ । जुडति । अजोडीत् । [जुन] इत्येके । जुनति [मृड] सुखने । मृडति । अमर्डीत् [पृड] च । पृडति [पृण] प्रीणने (तृप्ति) पृणति । पपर्ण । [वृण] च । वृणति । अवर्णीत् । अवर्णिष्यत् [मृण] हिंसायाम् । मृणति । मर्णिता [तुण] कौटिल्ये । तुणति । तोणिष्यति । [पुण] कर्मणि शुभे (शुभ कर्म) पुणति । पोणिषति । पोणिषाति [मुण] प्रतिज्ञाने (प्रतिज्ञा) मुणति । मुणतु [कुण] शब्दोपकरणयोः (शब्द और उपकार) कुणति । अकुणत् [शुन] गतौ । शुनति । शुनेत् [द्रुण] हिंसागतिकौटिल्येषु (हिंसा, गति और कुटिलता) द्रुणति । द्रुण्यात् [घुण, घूर्ण] भ्रमणे (डोलना) घुणति । घूर्णति । जुघोण । जुघूर्ण । [षुर] ऐश्वर्यदीप्त्योः (धन और प्रकाश) सुरति । सुषोर । सोरिता । सोरिष्यति । सोरिषति । सोरिषाति । सुरतु । असुरत् । सुरेत् । सूर्यात् (१९७) दीर्घ [कुर] शब्दे । कुरति ॥ ४२९ ॥

४३० – न भकुर्छुराम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७९ ॥

रेफान्त और वकारान्त भसंज्ञक तथा कुर् और छुर् इन की उपधा इक् को दीर्घ न होवे । (१९७) सूत्र से दीर्घ प्राप्त है उस का अपवाद यह सूत्र है । कुर्यात्* [खुर] छेदने (दो भाग करना) खुरति । चुखोर । खूर्यात् [मुर] संवेष्टने । मुरति । मूर्यात् [क्षुर] विलेखने (क्षौर कर्म) क्षुरति । क्षूर्यात् [घुर] भीमार्थशब्दयोः (भयंकर पदार्थ और शब्द) घुरति । घूर्यात् [पुर] अग्रगमने (आगे चलना) पुरति । पूर्यात् [वृहू] उद्यमने (उद्यम) वृहति । ववर्ह । ववृहतुः । उदित् होने से इट् विकल्प । ववर्हिथ । ववर्ढ । ववृहिव । ववृह्व । वर्हिता । वर्ढा । वर्हिष्यति । वर्क्ष्यति । वर्हिषाति । वर्क्षाति । वर्क्षति । वर्क्षाति । वृहतु । अवृहत् । वृहेत् । वृह्यात् । अवर्हीत् । अवृक्षत् । (२०७) क्स । अवर्हिष्यत् । अवर्क्ष्यत् [वृहू] इत्येके । इस में इतना विशेष है कि भर्क्ष्यति (२०४) भर्क्षति । भर्क्षाति । अभृक्षत् । अभर्क्ष्यत् [तृहू, दृहू, तृंहू] हिंसार्थाः ।

* यहां भट्टोजिदीक्षित ने लिखा है कि (४३०) सूत्र यहां नहीं लगता क्योंकि वहां कुर् कहने से कृञ् धातु का ग्रहण होता है इससे कुर्यात् प्रयोग होता है सो संदिग्ध है क्योंकि जो (लक्षणप्रतिपदोक्तयोः०) इस परिभाषा का आश्रय करें तब तो कृञ् का ग्रहण ही न हो क्योंकि कृञ् का कुर् लाक्षणिक और कुर् धातु प्रतिपदोक्त है इसलिये इस परिभाषा का आश्रय न करें तो भी लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त दोनों का ग्रहण होवे फिर ऐसी परिभाषा कौन है कि जिससे लाक्षणिक कृञ् का ग्रहण होआवे और प्रतिपदोक्त कुर् का न हो ॥

तृहति । स्तृहति । तृंहति । ततर्ह । तस्तर्ह । ततृंह । तर्हिता । तर्ढा । स्तर्हिता । स्तर्ढा । तृंहिता । तृंढा । तृह्यात् । अतृक्षत् । अस्तृक्षत् । [इष] इच्छायाम् । इषति । इयेष । एषिता । एषिषति एषिषाति । इषतु । ऐषत् । इषेत् । इष्यात् । ऐषीत् । ऐषिष्यत् [मिष] स्पर्द्धायाम् (ईर्षा) मिषति । मिमेष [किल] श्वैत्यक्रीडनयोः (श्वेताई और क्रीड़ा) किलति । केलिता । [तिल] स्नेहने (चिकनाई) तिलति । तेलिष्यति [चिल] वसने (वस्त्र) चिलति । चेलिषति । चेलिषाति । चिलतु [चल] विलसने (शोभा) चलति । अचलत् । [इल] स्वप्नक्षेपणयोः (सोना और फेंकना) इलति । इयेल । ईलतुः । ऐलत् । इलेत् [विल] संवरणे (आच्छादन) विलति । विल्यात् [बिल] भेदने (खोदना) बिलति । अबेलीत् [णिल] गहने (गाढ़) निलति । अनेलिष्यत् [हिल] भावकरणे (प्रीति करना) हिलति [शिल, षिल] उञ्छे । शिलति । सिलति [मिल] श्लेषणे (मिलना) मिलति [लिख] अक्षरविन्यासे (अक्षर बनाना) लिखति । लिलेख । लेखिता । लेखिष्यति । लेखिषति । लेखिषाति । लिखतु । अलिखत् । लिखेत् । लिख्यात् अलेखीत् । अलेखिष्यत् [कुट] कौटिल्ये (कुटिलताई) कुटति । चुकोट । चुकुटतुः (३४५) ङित्व होकर चुकुटिथ । कुटिता । कुटिष्यति । कोटिषति । कोटिषाति । कुटिषति । कुटिषाति । यहां णित्पक्ष में ङित्व (३४५) न होने से गुण होता है । और ङित् होने से सब कुटादिकों में गुण का निषेध जानो । कुटतु । अकुटत् । कुटेत् । कुट्यात् । अकुटीत् । अकुटिष्यत् (३४५) सूत्र में कहे कुटादि धातु इसी कुट से कूङ् धातु पर्य्यन्त जानो [पुट] संश्लेषणे । पुटति । पुपोट । पुटिता [कुच] सङ्कोचने (इकट्ठा होना) कुचति । चुकुचिथ [गुज] शब्दे । गुजति । गुजिष्यति [गुड] रक्षायाम् । गुडति । गोडिषति । गोडिषाति । गुडिषति । गुडिषाति । [डिप]क्षेपे (फेंकना) डिपति । डिपतु [छुर] छेदने । छुरति । अच्छुरत् । छुर्यात् (४३०) [स्फुट] विकसने (खिलना) स्फुटति । पुस्फुटिथ [मुट] आक्षेपमर्दनयोः (खण्डन और मलना) मुटति । मुटिता । [त्रुट] छेदने (१२८) विकल्प से श्यन् । त्रुट्यति । त्रुटति । त्रुटिष्यति । त्रुट्यतु । त्रुटतु । अत्रुट्यत् । अत्रुटत् । त्रुट्येत् । त्रुटेत् । [तुट] कलहकर्म्मणि (विरोध करना) तुटति । तोटिषति । तोटिषाति । तुटिषति । तुटिषाति । [चुट, छुट] छेदने । चुटति । छुटति । [जुड] बन्धने (जोड़ना) जुडति । जुडतु । [कड] मदे । (अहङ्कार) कडति । [लुट] संश्लेषणे (मिलना) लुटति । अलुटत् [लुठ] इत्येके । लुठति । लुठेत् । [कृड] घनत्वे (सघन) कृडति । अकर्डीत् । [कुड] बाल्ये (बालकपन) कुडति [पुड] उत्सर्गे (त्याग) पुडति [घुट] प्रतिघाते (घोटना) घुटति । जुघुटिथ । घुटिता [तुड]

तोड़ने (तोड़ना) तुडति । तुडिष्यति [थुड, स्थुड] संवरणे । थुडति । स्थुडति । तुस्थुडिथ [स्फुड] इत्येके । स्फुडति [खुड, छुड] इत्यन्ये । खुडति । छुडति [कुड] संघात इत्येके । कुडति [स्फुर] स्फुरणे (चेतनता) स्फुरति । पुस्फोर [स्फर] इत्येके । स्फरति [स्फुल] संचलने (चंचलता) स्फुलति [स्फुड, चुड, व्रुड] संवरणे । स्फुडति। चुडति ।व्रुडति [क्रुड, भ्रुड] निमज्जन इत्येके । क्रुडति।भ्रुडति । भ्रुडिता । व्रश्चादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषा दशोत्तरशतम् । व्रश्च आदि एक सौ दश ११० धातु सेट् परस्मैपदी हैं [गुरी] उद्यमने । उदात्तोऽनुदात्तेदात्मनेपदी। यह धातु सेट् आत्मनेपदी है । गुरते । जुगुरे । गुरिता । गुरिष्यते । गोरिषतै ।गोरिषातै । गुरिषतै । गुरिषातै । गुरताम् । अगुरत । गुरेत गुरिषीष्ट । अगुरिष्ट । अगुरिष्यत । इतश्चत्वारः परस्मैपदिनः । यहां से आगे चार धातु परस्मैपदी हैं [णू] स्तवने (स्तुति) नुवति । नुनाव । अनवीत् [धू] विधूनने (कंपाना) धुवति । दुधाव । दुधुवतुः । धुविता । अधुवीत् । ये दोनों सेट् हैं [गु] पुरीषोत्सर्गे (मल त्यागना) गुवति । जुगाव । जुगुविथ । जुगुथ । गुता । गुष्यति गोषति । गौषाति । गुषति । गुषाति । गुवतु । अगुवत् । गुवेत् । गूयात् (१६०) अगुषीत् । अगुताम् (२४१) सिज्लोप । अगुषुः । [ध्रु] गतिस्थैर्ययोः (चलना और स्थिति) [ध्रुव] इत्येके । ध्रुवति । इत्यादि । गु के समान रूप जानो । और ध्रुव धातु तो सेट् है । दुध्रुविथ । ध्रुविता । ध्रूयात् (१९७) दीर्घ । अध्रुवीत् [कुङ्] शब्दे [कुङ्] शब्द इत्येके यह धातु दीर्घांत पक्ष में सेट् और ह्रस्वान्त पक्ष में अनिट् है । कुवति । चुकुविथ । कुविता । अकुविष्ट । ह्रस्व पक्ष में । चुकुविथ । चुकुथ । कुता । अकुत (वृत्) इति कुटादयः समाप्ताः । ये (२४५) सूत्र में कहे कुटादि धातु समाप्त हुए ॥

[पृङ्] व्यायामे (कसरत) यह धातु बहुधा वि और आङ् उपसर्गपूर्वक ही प्रयुक्त आता है । व्याप्रियते (२३२ । १५९) व्याप्रियेते । व्याप्रियन्ते । व्यापप्रे । व्यापप्राते । व्यापप्रिषे । पर्त्तासे । परिष्यते । पार्षतै । पार्षातै । प्रियताम् । अप्रियत । प्रियेत पृषीष्ट (२४०) अपृत (२४१) अपृषाताम् । अपृषत [मृङ्] प्राणत्यागे (शरीर छूटना) ॥ ४३० ॥

४३१–म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६१ ॥

मृङ् धातु से परे लुङ् लिङ् और शित् विषय में आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हों अन्यत्र नहीं । मृङ् धातु के ङित् होने से सर्वत्र आत्मनेपद सिद्ध ही है फिर विशेष विषय में कहने से यह नियम हुआ कि लुङ् लिङ् और शित् से भिन्न लकारों में

परस्मैपद ही हों । म्रियते । ममार । मम्रतुः । मम्रुः । ममर्थ । मम्रिव । मम्रिम । मर्त्तासि । मरिष्यति । मार्षति । मार्षाति । म्रियताम् । अम्रियत । म्रियेत । मृषीष्ट । अमृत । अमृषाताम् । अमरिष्यत् ॥

अथ परस्मैपदिनः सप्त । अब सात ७ धातु परस्मैपदी कहते हैं [रि, पि] गतौ । रियति । पियति । रिराय । पिपाय । रिरियतुः । पिपयिथ । पिपेथ । पेता । पेष्यति । पेषाति । पेषाति । पियतु । अपियत् । पियेत् । पीयात् । अपैषीत् । अपैष्टाम् । अपेष्यत् । [धि] धारणे । धियति । दिधयिथ । दिधेथ । धेता । [क्षि] निवासगत्योः । क्षियति । क्षीयात् । अक्षैषीत् । र्यादयोऽनुदात्ताः । ये रि आदि अनिट् हैं । [षू] प्रेरणे (आज्ञा) सुवति । सुषाव । सुषविथ । सविता । सविष्यति । साविषति । साविषाति । सुवतु । असुवत् । सुवेत् । सूयात् । असावीत् । असाविष्टाम् । असविष्यत् । [कॄ] विक्षेपे (फैलाना) किरति । किरतः (२६५) चकार । चकरतुः । चकरुः । (२५८) गुण । करीता (२६४) करिता । करीष्यति । करिष्यति । कारीषति । कारीषाति । कारिषति । कारिषाति । किरतु । अकिरत् । किरेत् । कीर्यात् (२६५ । १९७) अकारीत् । अकारिष्टाम् (२६६) अकरीष्यत् । अकरिष्यत् [गॄ] निगरणे (खाना वा उपदेश करना) ॥ ४३१ ॥

४३२—अचि विभाषा ॥ अ० ॥ ८ । २ । २१ ॥

अजादि प्रत्यय परे हो तो गॄ धातु के रेफ को विकल्प करके लकारादेश होवे । गिरति । गिलति । जगाल । जगार । जगलतुः । जगरतुः । गलीता । गलिता । गरीता । गरिता । गीर्यात् । अगालीत् । अगारीत् । अगालिष्टाम् । अगारिष्टाम् । उदात्ताः परस्मैपदिनः । सू आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं [दृङ्] आदरे (सत्कार) यह धातु आङ्पूर्वक बहुधा आता है । आद्रियते (२३९) रिङ् । आद्रियेते । आदद्रे । आदद्रिषे । आदर्त्तासे । आदरिष्यते । आदर्षते । आदर्षातै । आद्रियताम् । आद्रियत । आद्रियेत । आदृषीष्ट (२४०) आदृत । आदृषाताम् । आदरिष्यत । [धृङ्] अवस्थाने (स्थिति) ध्रियते । दध्रे । दध्रिषे । अनुदात्तावात्मनेपदिनौ । ये दोनों धातु अनिट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ परस्मैपदिनः षोडश । अब सोलह धातु परस्मैपदी कहते हैं [प्रच्छ] ज्ञीप्सायाम् (जानने की इच्छा) पृच्छति । पृच्छतः (२८६) संप्रसारण । पप्रच्छ ।

पप्रच्छतुः । पप्रच्छिथ । अनिट् पक्ष में । पप्रष्ठ (२३३) षत्व । प्रष्टा । प्रक्ष्यति । प्राक्षति । प्राक्षाति । पृच्छतु । अपृच्छत् । पृच्छेत् । पृच्छ्यात् । अप्राक्षीत् । अप्राष्टाम् । अप्राक्षुः । अप्रक्ष्यत् (वृत्) किरादयः समाप्ताः । ये किरति आदि पांच धातु पूरे हुए इन से सन्नंत प्रक्रिया में विशेष कार्य्य होते हैं [सृज] विसर्गे (रचना वा त्यागना) सृजति । ससर्ज । ससृजतुः । ससर्जिथ (२७७) सस्रष्ठ (२३३ । २७८) स्रष्टा । स्रक्ष्यति स्राक्षति । स्राक्षाति । सृजतु । असृजत् । सृजेत् । सृज्यात् । अस्राक्षीत् । अस्राष्टाम् । अस्रक्ष्यत् [टुमस्जो॰] शुद्धौ । टु और ओकार की इत्संज्ञा (स्तोः श्चुना श्चुः) सूत्र से स को श और श को ज होकर । मज्जति । ममज्ज । ममज्जिथ । अनिट्पक्ष में (४०९) नुम् प्राप्त है सो मित् होने से अन्त्य अच् से परे होवे तो सकार के मध्यपाती होने से संयोगादि लोप (२१०) नहीं हो सकता इसलिये ॥ ४३२ ॥

४३३- वा०—मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वक्तव्यः ॥

मस्ज धातु के अन्त्य वर्ण जकार से पूर्व नुम् कहना चाहिये । फिर सकार के संयोगादि होने से लोप (२१०) होकर । मम् नुज्+थल्=ममङ्क्थ । मङ्क्ता । मङ्क्ष्यति । मङ्क्षति । मङ्क्षाति । मज्जतु । अमज्जत् । मज्जेत् । मज्ज्यात् । अमाङ्क्षीत् । अमाङ्क्ताम् । अमाङ्क्षुः । अमङ्क्ष्यत् । [रुजो] भङ्गे (टूटना) रुजति । रोक्ता । रोक्ष्यति । अरौक्षीत् । अरौक्ताम् [भुजो] कौटिल्ये (कुटिलता) भुजति । बुभोज । बुभोजिथ । बुभोक्थ । भोक्ता । अभौक्षीत् । अभौक्ताम् [छुप] स्पर्शे । छुपति । छोप्ता । अच्छौप्सीत् । [रुश, रिश] हिंसायाम् । रुशति । रिशति । रोष्टा । रेष्टा । अरुक्षत् । अरिक्षत् (२०७) [लिश] गतौ । लिशति । लेक्ष्यति । लिशतु । अलिक्षत् । [स्पृश] संस्पर्शे (छूना) स्पृशति । पस्पर्श । पस्पर्शिथ । स्प्रष्टा (२७९) स्पर्ष्टा । स्प्रक्ष्यति । स्पर्क्ष्यति । स्प्रक्षति । स्प्रक्षाति । स्पर्क्षति । स्पर्क्षाति । स्पृशतु । अस्पृशत् । । स्पृशेत् । स्पृश्यात् । अस्प्राक्षीत् । अस्पार्क्षीत् । अस्पार्ष्टाम् । अस्पृक्षत् । अस्प्रक्ष्यत् । अस्पर्क्ष्यत् । [विच्छ] गतौ (१६६) आय प्रत्यय (१६७) धातुसंज्ञा । विच्छायति । विच्छायतः । आम् प्रत्यय (१६९) विच्छायाञ्चकार । विच्छायाम्बभूव । विच्छायामास । (१६८) विविच्छ । विविच्छतुः । विच्छायितासि । विच्छितासि । विच्छायिष्यति । विच्छिष्यति । विच्छायिषति । विच्छायिषाति । विच्छिषति । विच्छिषाति । विच्छायतु । अविच्छायत् । विच्छायेत् । विच्छाय्यात् । विच्छ्यात् । अविच्छायीत् । अविच्छीत् । अविच्छायिष्यत् । अविच्छिष्यत् । [विश] प्रवेशने ।

विशति । वेष्टा । अवैक्षीत् । अवैष्टाम् । [मृश] आमर्शने । (विचारना) मृशति । म्रष्टा । मर्ष्टा (२७५) अम्राक्षीत् । अमार्क्षीत् । अमृक्षत् [णुद] प्रेरणे । इस धातु को प्रथम इसी गण में लिख चुके हैं दूसरी वार यहां कर्त्रभिप्राय क्रियाफल में भी नित्य परस्मैपद होने के लिये पढ़ा है [षद्लृ] विशरणगत्यवसादनेषु । इस धातु को इसी प्रकार का भ्वादि में लिख चुके हैं वहीं के तुल्य रूप भी जानो कुछ विशेष नहीं फिर यहां लिखने का यह प्रयोजन है कि कृदन्त शतृ प्रत्यय में शप् विकरणवाले को नित्य नुम् और श विकरणवाले को विकल्प होता है । और शप् और श विकरण का स्वर भी पृथक् २ होता है [शद्लृ] शातने । इस को भी भ्वादि में लिख चुके हैं फिर इस का पाठ केवल स्वर के पृथक् होने के लिये है । प्रच्छादयो विच्छिवर्जमनुदात्ताः परस्मैपदिनः । ये प्रच्छ आदि धातु विच्छ को छोड़के अनिट् और सब परस्मैपदी हैं ॥

अथ षट् स्वरितेतः । अब छः ६ धातु स्वरितेत् (उभयपदी) कहते हैं । [मिल] सङ्गमे (समागम) (मिल, संश्लेषणे) धातु प्रथम लिख चुके हैं उस को फिर दूसरी वार कर्त्रभिप्राय अर्थ में आत्मनेपद होने के लिये पढ़ा है । मिलति । मिलते । मिमेल । मिमिले । मेलिता । मेलिष्यते । मेलिषतै । मेलिषाते । मिलताम् । मिलतु । अमिलत् । मिलेत् । मिल्यात् । अमेलीत् । अमेलिष्यत् । यह धातु सेट् है [मुच्लृ] मोक्षणे (छूटना) ॥ ४३३ ॥

४३४—शे मुचादीनाम् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ५९ ॥

श प्रत्यय के परे मुचादि धातुओं को नुम् का आगम होवे । मुञ्चति । मुञ्चते । मुमोच । मुमुचे । मोक्ता । मोक्ष्यते । मोक्ष्यति । मोक्षतै । मोक्षातै । मोक्षति । मोक्षाति । मुञ्चतु । मुञ्चताम् । अमुञ्चत् । अमुञ्चत । मुञ्चेत् । मुञ्चेत । मुच्यात् । मुक्षीष्ट । अमुचत् । (२१७) अङ् । अमुक्त । अमुक्षाताम् । अमोक्ष्यत् । अमोक्ष्यत । [लुप्लृ] छेदने । लुम्पति । लुम्पते । लुप्यात् । अलुपत् । अलुप्त । [विद्लृ) लाभे (प्राप्ति) विन्दति । विन्दते । विवेद । विविदे । वेत्ता । वेत्स्यति । परिवेत्ता [लिप] उपदेहे (लीपना वा वृद्धि) लिम्पति । लिम्पते । लेप्ता । अलिपत् (२०२) अङ् । अलिपत । अलिप्त । (२९३) [षिच] क्षरणे (सींचना) सिञ्चति । सिञ्चते । सिच्यात् । असिचत् (२०२) असिचत (२९३) असिक्त । मुचादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः । ये मुच आदि धातु अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथ परस्मैपादिनः । [कृती] छेदने । कृन्तति । चकर्त्त । कर्तिता । कर्तिष्यति । (३८७) कर्त्स्यति । कर्तिशति । कर्तिषाति । कर्त्साति । कर्त्साति । कृन्ततु । अकृन्तत् । कृन्तेत् । कृत्यात् । अकर्तीत् । अकर्तिष्यत् । अकर्त्स्यत् । [खिद) परिघाते (पीड़ा) यह धातु दीनता अर्थ में दिवादि और रुधादिकों में पढ़ा है । खिन्दति । चिखेद । खेत्ता । खेत्स्यति । खिद धातु अनिट् है [पिशि] अवयवे । पिशति । पिंशते । पिपेश । पेशिता । पेशिष्यति । पेशिशति । पेशिषाति । पिंशतु । अपिंशत् । पिंशेत् । पिश्यात् । अपेशीत् । अपेशिष्यत् । (वृत्) मुचादयः । ये (४३४) सूत्र में कहे मुच आदि धातु पूरे हुए ॥

इति शविकरणस्तुदादिगणः समाप्तः ॥

अथ रुधादिगणः ॥

अथ नव स्वरितेत इरितश्च । अब नौ धातु उभयपदी कहते हैं [रुधिर्] आवरणे (आच्छादन) इर् भाग की इत्संज्ञा होकर ॥ ४३४ ॥

४३५- रुधादिभ्यः श्नम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७८ ॥

रुध आदि धातुओं से शप् का अपवाद श्नम् प्रत्यय हो कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो । श्नम् मित् प्रत्यय होने से अन्त्य अच् रु से परे धकार से पूर्व होता है । रु+श्नम्+ध्+ तिप्=रुणद्धि । शकार मकार की इत्संज्ञा और णत्व होता है । रुन्धः (३५२) अकारलोप । णत्व को असिद्ध मानकर नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण करने में अकारलोप को स्थानिवत्भाव प्राप्त है उस का अनुस्वार और परसवर्णविधि में निषेध हो जाता है । रुन्धन्ति । रुणत्सि । रुन्धे । रुन्धाते । रुन्धते । रुरोध । रुरुधतुः । रुरोधिथ । रुरुधे । रोद्धा । रोत्स्यति । रोत्स्यते । रोत्सति । रोत्साति । रोत्सतै । रोत्सातै । रुणधति । रुणधाति । रुणधतै । रुणधातै । रुणद्धु । रुन्धात् । रुन्धाम् । रुन्धन्तु । रुन्धि । रुणधानि । रुणधाव । रुन्धाम् । रुन्धाताम् । रुणधै । अरुणत् । अरुन्धाम् । अरुन्धन् । अरुणत् । अरुणः । यहां पदान्त धकार को प्रथम जश्त्व होकर (३५१) सूत्र की दृष्टि में जश्त्व सिद्ध होने से दकार को रु विकल्प से (३५१) होता है । अरुणधम् । रुन्ध्यात् । रुन्ध्याताम् । रुध्यात् । इरित् होने से अङ् विकल्प (१३८) अरुधत् । अरुधताम् । अरौत्सीत् । अरुद्ध । अरुत्साताम् । अरोत्स्यत् ।

[भिदिर्] विदारणे (भेद) भिनत्ति । भिन्ते । बिभेद । बिभिदे । भेत्ता । भेत्स्यति । भेत्सति । भेत्साति । भिनत्तु । अभिनत् । अभिनः । अभिदत् । अभिन्त । भिन्द्यात् । भिद्यात् । अभिदत् । अभैत्सीत् । अभैत्ताम् । अभित्त [छिदिर्] द्वैधीकरणे (दो भाग करना) छिनत्ति । अच्छिनत् । अच्छिनः । अच्छिदत् । अच्छैत्सीत् । अच्छित्त [रिचिर्] विरेचने (वमन करना) रिणक्ति । रिङ्क्ते । रिरेच । रिरिचे । रेक्ता । रेक्ष्यते । रेक्षत । रेक्षाते । रिणक्तु । रिङ्क्ताम् । अरिणक् । अरिचत् । अरिक्त [विचिर्] पृथग्भावे (अलग होना) विनक्ति । विङ्क्ते । अविनक् । अविचत् । अवैक्षीत् । अविक्त [क्षुदिर्] संपेषणे (पीसना) क्षुणत्ति । क्षुन्ते । क्षोत्ता । अक्षुणत् । अक्षुणः । अक्षुदत् । अक्षौत्सीत् । अक्षुत्त [युजिर्] योगे (समाधि) युनक्ति । युङ्क्ते । अयुनक् । अयुजत् । अयौक्षीत् । अयोक्ष्यत् । रुधादयोऽनुदात्ताः स्वरितेतः । रुध आदि धातु अनिट् उभयपदी हैं [उछृदिर्] दीप्तिदेवनयोः (प्रकाश और क्रीड़ा आदि) छृणत्ति । छृन्ते । चच्छर्द । चच्छृदतुः । छर्दिता । छर्दिष्यति । छर्त्स्यति । (३८१) छर्दिषति । छर्दिषाति । छर्त्सति । छर्त्साति । छृणत्तु । अच्छृणत् । अच्छृणः । छृन्द्यात् । छृद्यात् । छृत्सीष्ट । अच्छृदत् । अच्छर्दीत् । अच्छर्दिष्ट । अच्छर्दिष्यत् । अच्छर्त्स्यत् । [उतृदिर्] हिंसाऽनादरयोः (हिंसा और अनादर) तृणत्ति । इत्यादि । छृदि के समान जानो । ये दोनों धातु उभयपदी सेट् हैं [कृती] वेष्टने (लपेटना) कृणत्ति । यह धातु तुदादिगण में आ चुका है आर्द्धधातुक में वैसे ही प्रयोग जानो [ञिइन्धी] दीप्तौ । उदात्तोनुदात्तेदात्मनेपदी । यह धातु सेट् आत्मनेपदी है ञि और इकार की इत्संज्ञा होकर ॥ ४३५ ॥

४३६—श्नान्नलोपः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २३ ॥

श्नम् प्रत्यय से परे नकार का लोप हो । अर्थात् इकार से परे होने के कारण श्नकार से पूर्व जो न उस का लोप होता है । इन्धे (३५२) अकारलोप । इन्धाते । इन्धते । इन्त्से । इन्धाञ्चक्रे । इन्धाम्बभूव । इन्धामास । (१६९) सूत्र से वेद में आम् प्रत्यय का निषेध होने से (४४) सूत्र से लिट् को कित्व होकर । ईधे (१३८) नलोप । ईधाते । ईधिरे । इन्धिता । इन्धिष्यते । इन्धिषते । इन्धिषाते । इन्धाम् । इन्धाताम् । इन्धै । ऐन्ध । ऐन्धाः । इन्धीत । इन्धिषीष्ट । ऐन्धिष्ट । ऐन्धिष्यत [खिद] दैन्ये । (दीनता) खिन्ते । खेत्ता । खिन्ताम् । अखिन्त । खिन्दीत । खित्सीष्ट । अखित्त । [विद] विचारणे (बिचारना) विन्ते । विविदे । वेत्ता । वेत्स्यते । वेत्सते । वेत्साते । विन्ताम् । अविन्त । विन्दीत । वित्सीष्ट । अवित्त । अवेत्स्यत । खिदिविदी अनुदात्तावात्मनेपदिनौ ।

खिद और विद दोनों धातु अनिट् आत्मनेपदी हैं। अथ परस्मैपदिनो द्वादश। अब बारह १२ धातु परस्मैपदी कहते हैं [शिषॢ] विशेषणे (विशेषण) शिनष्टि। शिंष्टः। शिंषन्ति। शिशेष। शिशेषिथ। शेष्टा। शेक्ष्यति। शेक्षति। शेक्षाति। शिनष्टु। शिष्-हि यहां प्रथम हि को धि और षकार को जश्त्व ड होकर (१७१) सूत्र से विकल्प करके डकारलोप होता है। शिण्ढि। शिण्ड्ढि। शिनषाणि। अशिनट्। शिंष्यात्। शिष्यात्। ॡदित् होने से अङ् (२१७) अशिषत्। अशेक्ष्यत् [पिषॢ] सञ्चूर्णने (पीसना) पिनष्टि। पिपेष। पेष्टा। पेक्ष्यति। पेक्षति। पेक्षाति। पिनष्टु। पिण्ढि। अपिनट्। पिंष्यात्। पिष्यात्। अपिषत् [भञ्जो] आमर्दने (बल से मलना) भनक्ति। बभञ्ज। बभञ्जिथ। बभङ्क्थ। भङ्क्ता। भङ्क्ष्यति। अभाङ्क्षीत्। अभाङ्क्ताम्। [भुज] पालनाभ्यवहारयोः (रक्षा और भोजन) भुनक्ति। भोक्ता। भोक्ष्यति। अभुनक्। अभौक्षीत्। अभोक्ष्यत्। अनुदात्ता उदात्तेतश्चत्वारः। ये शिष आदि चार धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [तृह, हिंसि] हिंसायाम्॥ ४३६॥

४३७—तृणह इम्॥ अ०॥ ७। ३। ९२॥

श्नम् प्रत्ययान्त तृह धातु को इम् का आगम होवे हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो। तृणेढि। तृण्ढः। ततर्ह। तर्हिता। तर्हिष्यति। तर्हिषति। तर्हिषाति। तृणेढु। अतृणेट्। तृंह्यात्। तृह्यात्। अतर्हीत्। हिनस्ति। हिंस्तः। हिंसन्ति। जिहिंस। हिंसिता। [उन्दी] क्लेदने (गीलापन) उनत्ति। उन्तः। उन्दन्ति। उन्दाञ्चकार। उन्दाम्बभूव। उन्दामास। उन्दिता। उनत्तु। उन्धि। औनत्। औन्ताम्। औन्दन्। औनः (३५१) औनत्। औनदम्। उन्द्यात्। उद्यात् (१३९) औन्दीत् [अञ्जू] व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु (मनुष्यादि की स्थूलव्यक्ति, भोजन, शोभा और गति) अनक्ति। अङ्क्तः। अञ्जन्ति। आनञ्ज। आनञ्जिथ। आनङ्क्थ। ऊदित् होने से इड्विकल्प (१४०) अञ्जिता। अङ्क्ता। अञ्जिषति। अञ्जिषाति। अङ्क्षति। अङ्क्षाति। अनक्तु। अङ्ग्धि। अनजानि। आनक्। आङ्क्ताम्। आञ्जन्। अञ्ज्यात्। अज्यात्॥ ४३७॥

४३८—अञ्जेः सिचि॥ अ०॥ ७। २। ७१॥

अञ्ज धातु से परे जो सिच् उस को नित्य इट् का आगम होवे। ऊदित् होने से इट् का विकल्प (१४०) प्राप्त है उस का यह अपवाद है। आञ्जीत्। आञ्जिष्टाम् [तञ्चू] संकोचने (दही जमाना) तनक्ति। ततञ्चिथ। ततङ्क्थ। तञ्चिता। तङ्क्ता। तनक्तु। अतनक्। अतञ्चीत्। अताङ्क्षीत्। अताङ्क्ताम्। [ओविजी] भयचलनयोः विनक्ति। विङ्क्तः। विवेज। विविजिथ (४२८) विजिता। विजिष्यति। वेजिषति।

वेजिषाति । विनक्तु ।अविनक् । अविजीत् । [वृजी] वर्जने । वृणक्ति । वर्जिता [पृची] संपर्के (स्पर्श करना) पृणक्ति । पपर्च । पपर्चिथ । पर्चिता । पर्चिष्यति । पर्चिषति । पर्चिषाति । पृणक्तु । अपृणक् । पृञ्च्यात् । पृच्यात् । अपर्चीत् । अपर्चिष्यत् ॥

(वृत्) इति श्नम्विकरणो रुधादिगणः समाप्तः ॥४३८॥

अथ तनादिगणः ॥

अथ सप्त स्वरितेतः । अब सात धातु उभयपदी कहते हैं [तनु] विस्तारे ॥

४३९—तनादिकृञ्भ्य उः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७९ ॥

तनादि और कृञ् धातु से उ प्रत्यय हो कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो। यह भी सूत्र शप् का अपवाद है । कृञ् धातु भी तनादिगण में ही पढ़ा है इस कारण कृञ् से भी उ प्रत्यय हो ही जाता फिर कृञ् का पृथक् ग्रहण इसलिये है कि तनादिगण के अन्य कार्य कृञ् को न हों जैसे तनादिकों से परे सिच् का लुक् (४४०) विकल्प से होता है सो कृञ् से न होवे । तनोति । तनुते । तनुवः तन्वः (२००) ततान । तेने । तनिता । तनिष्यते । तानिषति । तानिषाति । तनोतु । तनु (२०१) तनवानि । तनुताम् । अतनोत् । अतनुत । तनुयात् । तन्वीत । तन्यात् । तनिषीष्ट । अतानीत् । अतनीत् ॥ ४३९ ॥

४४०—तनादिभ्यस्तथासोः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७९ ॥

तनादि धातुओं से परे जो सिच् उस का लुक् होवे त और थास् परे हों तो । त और थास् आत्मनेपद प्रत्यय के साहचर्य से त भी आत्मनेपद का एकवचन लिया जाता है इस से यूयमतनिष्ट । यहां परस्मैपद के मध्यम पुरुषबहुवचन में सिच् लुक् नहीं होता । अतत (३०३) अनुनासिकलोप । अतनिष्ट । अतनिषाताम् । अतनिषत। अतथाः । अतनिष्ठाः ! अतनिषि । अतनिष्यत् । अतनिष्यत [षणु) दाने । सनोति । सनुते । सायात् । (१८५) सन्यात् । असात । (३९४) असनिष्ट । असाथाः । असनिष्ठाः [क्षणु] हिंसायाम् । क्षणोति । क्षणुते । अक्षणीत् (१६२) वृद्धि का निषेध । अक्षत । अक्षणिष्ट । अक्षथाः । अक्षणिष्ठाः [क्षिणु] च । क्षेणोति । यहां उ प्रत्यय के आर्द्धधातुक होने से लघूपधगुण (८१) होता है । क्षेणुते । चिक्षेण । चिक्षिणे । क्षेणितासि । क्षेणितासे । क्षेणिषति । क्षेणिषाति । अक्षेणीत् । अक्षित । अक्षेणिष्ट । अक्षिथाः । अक्षेणिष्ठाः [ऋणु] गतौ । अर्णोति । अर्णुतः । अर्णुवन्ति । आनर्ण । आनृणतुः । आनृणे । अर्णितासि ।

आर्णीत् । आर्त्त । आर्णिष्ट । आर्थाः । आर्णिष्ठाः [तृणु] अदने । तर्णोति । तर्णुते । अतृत । अतर्णिष्ट [घृणु] दीप्तौ । घर्णोति । घर्णुते । जघर्ण । जघृणे । तनादय उदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः । ये तन आदि धातु सेट् उभयपदी हैं [वनु] याचने (मांगना) वनुते । ववने (१२८) वनितासे । वनिष्यते । वानिषतै । वानिषातै । वनुताम् । वनवै । अवनुत । वन्वीत । वनिषीष्ट । अवत । अवनिष्ट । अवथाः । अवनिष्ठाः । अवनिष्यत । [मनु] अवबोधने (निश्चित ज्ञान) मनुते । मेने । अमत । अमनिष्ट । उदात्तावनुदात्तेतावात्मनेपदिनौ । ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं [डुकृञ्] करणे (करना) अनुदात्त उभयतोभाषः । यह धातु अनिट् उभयपदी है । तस् के परे भी उ प्रत्ययनिमित्त कृञ् को अर् गुण होकर ॥ ४४० ॥

४४१—अत उत्सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११० ॥

कृञ् धातु के अकार को उकारादेश होवे कित् ङित् सार्वधातुक परे हों तो । कुरुतः । कुर्वन्ति । यहां भी (१९७) सूत्र से दीर्घ प्राप्त है उस का निषेध (४३०) हो जाता है । करोषि । कुरुथः । कुरुथ । करोमि ॥ ४४१ ॥

४४२— नित्यं करोतेः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०८ ॥

करोति धातु से परे जो प्रत्यय का उकार उस का नित्य ही लोप होवे व म परे हों तो । यह सूत्र (२००) का अपवाद है । कुर्वः । कुर्मः । कुरुते । कुर्वाते । चकार । चक्रतुः । चकर्थ (१४८) चकृव । चक्रे । चकृषे । कर्त्ता । करिष्यति । करिष्यते । (२३८) कार्षति । कार्षाति । कार्षतै । कार्षातै । करोतु । कुरुतात् । कुरु (२०१) करवाणि । करवाव । कुरुताम् । अकरोत् । अकुरुत ॥ ४४२ ॥

४४३—ये च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०९ ॥

कृञ् धातु से परे प्रत्यय के उकार का लोप हो यकारादि प्रत्यय परे हों तो । कुर्यात् । क्रियात् (२३९) कृषीष्ट (२४०) अकार्षीत् । अकार्ष्टाम् । अकृत । अकृथाः । यहां सिच्लुक् नित्य होता है । अकरिष्यत् । अकरिष्यत ॥ ४४३ ॥

४४४—मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ८० ॥

वेदविषय मन्त्रभाग में घस, ह्वर, णश, वृ, दह, आकारांत, वृच, कृ, गमि और जन धातुओं से परे जो लि उस का लुक् होवे । लि करके यहां लुङ् का च्लि प्रत्यय

समझा जाता है (घस्लृ, अदने) अक्षन्नमीमदन्त पितरः । अक्षन् । अघसन् लोक में होता है । ह्वर से (ह्वृ, कौटिल्ये) समझना चाहिये । माह्वाः । अह्वाः । लोक में अह्वार्षीत् । (णश, अदर्शने) प्रणङ् मर्त्यस्य । प्रणक् । यहां अट् का अभाव है । लोक में अनशत् । वृ करके वृङ् और वृञ् दोनों का ग्रहण होता है । सुरुचो वेन आवः । आवः । आवारीत् आङ्पूर्वक लोक में (दह, भस्मीकरणे) अधक् । लोक में अधाक्षीत् (प्रा, पूरणे) आप्रा द्यावापृथिवी अप्राः अप्रासीत् लोक में । (वर्च्) लोक में अवर्चीत् । कृ धातु का अक्रन् । बहुवचन में और अकः एकवचन में । गम का । अग्मन् । लोक में अगमन् । जन का । अज्ञत वा अस्य दन्ताः । लोक में अजनि । अजनिष्ट ॥४४४॥

४४५—अभ्युत्सादयांप्रजनयांचिकयांरमयामकः पावयांक्रियाद्विदामक्रन्निति छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४२ ॥

अभ्युत्सादयां आदि वेदविषय में निपातन किये हैं । सद, जन और रम इन णयन्त धातुओं से लुङ् लकार में आम् प्रत्यय निपातन किया है । और चिञ् धातु से भी लुङ् में आम् प्रत्यय द्विर्वचन और कुत्व निपातन किया है । अकः । यह कृञ् धातु का पूर्व सूत्र (४४४) से सिद्ध प्रयोग का सद आदि चारों धातुओं के अन्त में अनुप्रयोग किया है । जैसे अभ्युत्सादयामकः । और लोक में अभ्युदसीषदत् । प्रजनयामकः । प्राजीजनत् । लो० । चिकयामकः । लो० । अचैषीत् । रमयामकः । लो० । अरीरमत् । पावयांक्रियात् । यहां णयन्त पूङ् धातु से लिङ् में आम् प्रत्यय और कृञ् धातु का अनुप्रयोग निपातन किया है लोक में । पाव्यात् । विदामक्रन् । यहां लुङ् लकार के प्रथम पुरुष बहुवचन में विद धातु से आम् प्रत्यय कृञ् का अनुप्रयोग और च्लि का लुक् (४४४) निपातन किया है । लोक में । अवेदिषुः । होता है ॥

(वृत्) इति तनादिगणः समाप्तः ॥४४५॥

अथ क्र्यादिगणः ॥

[डुक्रीञ्] द्रव्यविनिमये (द्रव्य का लेना देना) ॥

४४६ — क्र्यादिभ्यः श्ना ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८१ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो क्री आदि धातुओं से श्ना प्रत्यय हो । क्रीणाति । क्रीणीतः (३८३) पर नित्य और अन्तरङ्ग होने से ईकारादेश (३८३) का बाधक झि को अन्त और झ को अत् आदेश होकर । क्रीणन्ति (३६५) क्रीणासि । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणते । चिक्राय । चिक्रियतुः । चिक्रयिथ । चिक्रेथ । चिक्रियिव । क्रेता । क्रेष्यति । क्रेष्यते । क्रेषति । क्रेषाति । क्रैषतै । क्रैषातै । क्रीणातु । क्रीणीहि । क्रीणानि क्रीणीताम् । अक्रीणात । क्रीणीयात् । क्रीणीत । क्रीयात् । क्रेषीष्ट । अक्रैषीत् । अक्रेष्ट । अक्रेष्यंत् । अक्रेष्यत । [प्रीञ्] तर्पणे कान्तौ च (तृप्ति और शोभा) प्रीणाति । प्रीणीते [श्रीञ्] पाके (पकाना) श्रीणाति । श्रीणीते [मीञ्] हिंसायाम् । मीनाति । मीमीतः । मीनीते एच् विषय में आकारादेश (३६६) ममौ । मिम्यतुः । ममिथ । ममाथ । मिम्ये । माता । मास्यति । मास्यते । मासति । मासाति । मीयात् । मासीष्ट । अमासीत् । अमासिष्टाम् । अमास्त । अमासाताम् [षिञ्] बंधने । सिनाति । सिनीते । सिषाय । सिष्य । सेता । [स्कुञ्] आप्रवणे (कूदना) ॥४४६ ॥

४४७—स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यःश्नुश्च॥ अ०॥३।१।८२।

स्तम्भु आदि पांच धातुओं से श्नु और चकार से श्ना प्रत्यय हों कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो । स्कुनोति । स्कुनुते । स्कुनाति । स्कुनीते । चुस्काव । चुस्कविथ । चुस्कोथ । स्कोता । अस्कौषीत् । अस्कोष्ट । स्तम्भ आदि चार धातु सौत्र हैं इन का पाठ किसी गण में नहीं है और सब रोकने अर्थ में परस्मैपदी हैं । स्तभ्नोति । स्तभ्नाति (१३६) नलोप । तस्तम्भ । अस्तभत् (१५४) अङ्विकल्प । अस्तम्भीत् स्तुभ्नोति । स्तुभ्नाति । स्कभ्नोति । स्कभ्नाति । स्कुभ्नोति । स्कुभ्नाति । चस्कम्भ । स्कम्भिता । स्कम्भिष्यति ॥ ४४७ ॥

४४८—हलः श्नः शानज्झौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८३ ॥

हलन्त धातु से परे जो श्ना प्रत्यय उस को शानच् आदेश होवे हि परे हो तो । स्तभान । स्तुभान । स्कभान । स्कुभान । श्नुपक्ष में । स्तभ्नुहि । इत्यादि । अस्कभ्नात् । अस्कभ्नोत् । स्कभ्नीयात् । स्कभ्नुयात् । स्कम्यात् । अस्कम्भीत् । अस्काम्भष्यत ॥४४८॥

४४९—छन्दसि शायजपि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८४ ॥

वेदविषय में हि परे हो तो श्ना प्रत्यय के स्थान में शानच् और शायच् दोनों आदेश हों । गृभाय । स्तभाय । स्कभाय । स्तभान । बधान देव सवितः [युञ्] बन्धने । युनाति । युनीते । युयाव । युयुवे । क्र्यादयोऽनुदात्ताः स्वरितेतः सप्त । क्री आदि सात धातु अनिट् उभयपदी हैं [क्नूञ्] शब्दे । क्नूनाति । क्नूनीते । क्नविता । क्नविष्यति । अक्नावीत् । अक्नविष्ट । [द्रूञ्] हिंसायाम् । द्रूणाति । द्रूणीते । दुद्राव । दुद्रुवे [पूञ्] पवने (पवित्रता) ॥ ४४९ ॥

४५०—प्वादीनां ह्रस्वः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८० ॥

शित् प्रत्यय परे हों तो पू आदि धातुओं के अच् को ह्रस्व होवे । पुनाति । पुनीते । पुपाव । पुपुवे । पविता । पविष्यति [मूञ्] बन्धने । मुनाति । मुनीते । माविषति । माविषाति । [लूञ्] छेदने (काटना) लुनाति । लुनीते । लुनातु । लुनीताम् । [स्तॄञ्] आच्छादने । स्तृणाति । स्तृणीते । तस्तार । तस्तरतुः । स्तरीता । स्तरिता । अस्तृणात् । अस्तृणीत । स्तृणीयात् । स्तृणीत । स्तीर्यात् । स्तरिषीष्ट (४२१) स्तीर्षीष्ट । अस्तारीत् । अस्तारिष्टाम् । (४२०) अस्तरिष्ट । अस्तरीष्ट । अस्तीर्ष्ट । (कॄञ्) हिंसायाम् । कृणाति । कृणीते । चकार । चकरतुः । चकरे । (२५८) (वॄञ्) वरणे (स्वीकार) वृणाति । वृणीते । ववार । ववरे । वरिता । वरीता । वूर्यात् । (३८० । १९७) वरिषीष्ट । वूर्षीष्ट । । अवारीत् । अवारिष्टाम् । अवरिष्ट । अवरीष्ट । अवूर्ष्ट (धूञ्) कम्पने । धुनाति । धुनीते । दुधाव । दुधुवतुः । दुधविथ । दुधोथ (१४०) इट्विकल्प । धविता । धोता । धविष्यति । धोष्यति । अधावीत् । (३३०) नित्य इट् । अधविष्ट । अधोष्ट । उदात्ता उभयतोभाषा नव । क्नूञ् आदि नव ९ धातु सेट् उभयपदी हैं । अथ बध्नात्यन्ताः परस्मैपदिनः अब बध धातुपर्यन्त परस्मैपदी कहते हैं (शॄ) हिंसायाम् । शृणाति । शशार । शशरतुः । शश्रुः (३८१) दीर्घपक्ष में । शशरतुः (२५८) गुण । शशरिथ । शश्रिव । शशरिव । शरीता । शरिता । शरिष्यति । शरीष्यति । शारीषति । शारीषाति । शारिषति । शारिषाति । शृणातु । शृणीहि । अशृणात् । शृणीयात् । शीर्यात् । अशारीत् । अशारिष्टाम् । अशरीष्यत् । अशरिष्यत् [पॄ] पालनपूरणयोः । पृणाति । पप्रतुः । पपरतुः । पूर्यात् (३८०) [वॄ] वरणे । भरण इत्येके । वृणाति । वूर्यात् [भॄ] भर्त्सने । भरण इत्यन्ये [मॄ] हिंसायाम् । मृणाति । ममार । (दॄ) विदारणे ।

दणाति । ददतुः । ददरतुः । [जॄ] वयोहानौ [झॄ] इत्येके । जृणाति । जीर्यात् । (धॄ) इत्यन्ये । धृणाति (नॄ) नये (ले चलना) नृणाति । ननृतुः । ननरतुः । [कॄ] हिंसायाम् । कृणाति [ॠ] गतौ । ऋणाति । अराञ्चकार । अराम्बभूव । अरामास । अरिता । अरीता । आर्णात् । आर्णीताम् । ईर्यात् । आरीत् । आरिष्टाम् । [गॄ] शब्दे । गृणाति । जग्रतुः । जगरतुः । गरीता । गरिता । गरिष्यति । गरीष्यति । गारीषति । गारीषाति । गृणातु । गृणीहि । अगृणात् । गृणीयात् । अगारीत् । [ज्या] वयोहानौ (२८६) य को इ सम्प्रसारण और पूर्वरूप एकादेश होता है ॥ ४५० ॥

४५१—हलः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २ ॥

अङ्ग के अवयव हल् से परे जो संप्रसारण उस को दीर्घ होवे । जिनाति । यहां जि को दीर्घ होकर फिर ह्रस्व (४५०) हो जाता है । जिज्यौ (२८२) जिज्यतुः (२८१) ज्याता । ज्यास्यति । ज्यासति । ज्यासाति । जिनातु । अजिनात् । जिनीयात् । जीयात् (२८१) अज्यासीत् । अज्यास्यत् [वी] वरणे । विणाति । विव्राय । विव्रियतुः । व्रेता । व्रीयात् । [री] गतिरेषणयोः (गति और भेड़िया का शब्द) रिणाति । [ली] श्लेषणे । लिनाति (४००) आत्वविकल्प । ललौ । लिलाय । लिल्यतुः । ललिथ । ललाथ । लिलयिथ । लाता । लेता । लास्यति । लेष्यति । लासति । लासाति । लैषति । लैषाति । लिनातु । लिनीहि । अलिनात् । लिनीयात् । लायात् । लेयात् । अलासीत् । अलैषीत् । अलास्यत् । अलेष्यत् । [व्ली] वरणे (स्वीकार) व्लिनाति [प्ली] गतौ (वृत्) ये (४५०) सूत्र में कहे प्वादि धातु पूरे हुए [क्षीष्] हिंसायाम् । क्षीणाति । षित् का प्रयोजन कृदन्त में आवेगा [भ्री] भये (डर) [भर] इत्येके । भ्रणाति । [ज्ञा] अवबोधने । जानाति (४०२) जानीतः । जानन्ति । जानासि । जज्ञौ । जज्ञतुः । जज्ञिथ । जज्ञाथ । ज्ञाता । ज्ञास्यति । ज्ञासति । ज्ञासाति । जानातु । जानीहि । जानानि । अजानात् । जानीयात् । ज्ञेयात् । ज्ञायात् । अज्ञासीत् । अज्ञास्यत [बन्ध] बन्धने (बांधना) बध्नाति । बबन्धिथ । बबन्ध । बन्धा । बन्धारौ । बन्धारः । भन्त्स्यति । भन्त्सति । भन्त्साति बध्नातु । बधान । (४४८ । ४४९) बधाय । अबध्नात् । बध्नीयात् । बध्यात् । अभान्त्सीत् । अबान्धाम् । यहां भष्भाव विधायक सूत्र (२०४) से सिच्लोप (१४२) पूर्व होने से भष्भाव को असिद्ध मानके सिच्लोप (१४२) हो जाता है पीछे प्रत्ययलक्षण सूत्र की अपेक्षा में त्रिपादी का सिच् लोप असिद्ध होने से सादि प्रत्यय के न रहने

से मध्भाव नहीं होता अमीमन्थुः । ज्यादयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः । ये ज्यादि धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [वृङ्] संभक्तौ (अच्छी भक्ति) उदात्त आत्मनेपदी । वृणीते । ववे । ववृषे । ववृढ्वे । वरीता । वरिता । वृणीताम् । अवृणीत । वृणीत । वरिषीष्ट । (४२० । ४२१) वृषीष्ट । अवरीष्ठ । अवरिष्ट । अवृत । अवरीष्यत । अवरिष्यत । इतः परस्मैपदिनः । अब यहां से आगे परस्मैपदी धातु कहते हैं [श्रन्थ] विमोचनप्रतिहर्षयोः (छूटना और आनन्द) श्रथ्नाति (२७१) शश्राथ । श्रेथतुः । श्रेथुः । श्रेथिथ । शश्रथ । शश्राथ । श्रन्थिता । श्रन्थिष्यति ; श्रन्थिषति । श्रन्थिषाति । श्रथ्नातु । श्रथान । श्रथाय । अश्रथ्नात् । श्रथ्नीयात् । श्रथ्यात् (११९) अश्रन्थीत् । अश्रन्थिष्टाम् । अश्रन्थिष्यत् । [मन्थ] विलोडने । मथ्नाति । मथान । मथाय । [श्रन्थ, ग्रन्थ] संदर्भे । ग्रथ्नाति । ग्रथान । श्रथ्यात् । अर्थभिन्न होने से फिर पढ़ा है । [कुन्थ] संश्लेषणे । कुथ्नाति । कुथान [मृदु] क्षोदे (पीसना) मृद्नाति । मृदान [मृड] च । अयं सुखेपि । मृड्नाति । मृडान [गुध] रोषे (रिसाना) गुध्नाति । गुधान [कुष] निष्कर्षे (खींचना) कुष्णाति । चुकोष । चुकुषतुः । कोषिता । कोषिष्यति । कोषिषति । कोषिषाति । कुष्णातु । कुषाण । अकोषीत् ॥ ४५१ ॥

४५२–निरः कुषः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४६ ॥

निर् उपसर्गपूर्वक कुष धातु से परे वलादि आर्द्धधातुक को इट् का आगम विकल्प करके होवे । निष्कोषिता । निष्कोष्टा निरकोषीत् । निरकुक्षत् (२०७) क्स [क्षुभ] संचलने (चलायमान) यहां षकार से परे णत्व प्राप्त है इसलिये ॥ ४५२ ॥

४५३–क्षुभ्नादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३९ ॥

क्षुभ्ना आदि शब्दों में नकार को णकारादेश न होवे । क्षुभ्नाति । क्षुभ्नीतः । क्षोभिता । क्षुभाण । क्षुभाय । [णभ, तुभ] हिंसायाम् । नभ्नाति । तुभ्नाति । नभान । नभाय । ये दोनों धातु भ्वादि और दिवादि गण में भी आ चुके हैं [क्लिशू] विबाधने (दुःखःहोना) क्लिश्नाति । चिक्लेश । क्लेशिता क्लेष्टा (१४०) अक्लेशीत् । आक्लिक्षत् [अशु] भोजने । अश्नाति । आश । आशतुः । अशान [उध्रूस] उञ्छे । उकार की इत्संज्ञा । ध्रूस्नाति । दध्रास । ध्रसिता । ध्रूसान [इष] आभीक्ष्ण्ये (बार २ वा शीघ्र होना) इष्णाति । इयेष । ईषतुः । एषिता । एषिष्यति । इषाण । ऐष्णात् । इष्णीयात् । इष्यात् । ऐषीत् [विष] विप्रयोगे (विरुद्धसंयोग) विष्णाति । वेष्टा । यह धातु अनिट् है [प्रुष, प्लुष] स्नेहनसेवनपूरणेषु । प्रुष्णाति ।

मुष्णाति । (पुष) पुष्टौ । पोषिता । पुषाण [मुष] स्तेये (चोरी) मुष्णाति । मोषिता । मुषाण । [खच] भूतप्रादुर्भावे (हो चुके का फिर होना)खच्नाति । खचान । बान्तोऽयमित्येके । कोई के मत में यह खव धातु है वहां ॥ ४५३ ॥

४५४—च्छ्वोः शूडनुनासिके च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १९ ॥

तुक् आगम के सहित जो छ और व उन को श और ऊठ् आदेश यथासंख्य करके हों अनुनासिक, क्विप् और झलादि किन् ङित् प्रत्यय परे हों तो । पीछे ऊठ् के साथ वृद्धि एकादेश होकर । खौनाति । खौनीतः । चखाव । चखवतुः । खविता । खौनीहि । यहां परत्व से प्रथम ऊठ् होकर हलन्त के न रहने से हि को धि न हुआ [हेठ] च । चकार से पूर्वोक्त अर्थ लिया जाता है । ह्रस्व होकर । हेठ्णाति । हेठान । श्रन्थादयः पंचविंशतिरुदात्ता उदात्तेतः । ये श्रन्थ आदि पच्चीस २५ धातु सेट् परस्मैपदी हैं [ग्रह] उपादाने (लेना) उदात्तः स्वरितेत् । यह धातु सेट् उभयपदी है । गृह्णाति (२८६) सम्प्रसारण । गृह्णीते । जग्राह । जगृहतुः । जगृहुः ॥ ४५४॥

४५५— ग्रहोऽलिटि दीर्घः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३७ ॥

एकाच् ग्रह धातु से विहित जो इट् उस को दीर्घ होवे परन्तु लिट् परे न हो तो । ग्रहीता । लिट् में निषेध होने से। जग्रहिथ । यहां दीर्घ न हुआ । ग्रहीष्यति । ग्रहीष्यते । ग्राहीषति । ग्राहीषाति । गृह्णातु । गृहाण । अगृह्णात् । गृह्णीयात् । गृह्यात् । ग्रहीषीष्ट । अग्रहीत् (१६२) अग्रहीष्टाम् । अग्रहीष्ट । अग्रहीषाताम् । अग्रहीषत । अग्रहीष्यत् । अग्रहीष्यत ॥

(वृत्) इति श्नाविकरणः क्र्यादिगणः समाप्तः ॥ ४५५ ॥

अथ चुरादिगणः॥

[चुर] स्तेये (चोरी करना)

४५६ – सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २५ ॥

सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण और चुरादि धातुओं से णिच् प्रत्यय होवे । सत्याप आदि चूर्णपर्यन्त प्रातिपदिकों का वर्णन नामधातुप्रक्रिया में करेंगे । और चुरादि धातुओं से स्वार्थ में णिच् होकर । चुर्-णिच् की धातु संज्ञा (१६७) णिच् को मानके गुण (५१) तिप्, शप् को मान-

के गुण और अयादेश होकर । चोरयति । चोरयतः । चोरयन्ति ॥ ४५६ ॥

४५७ – णिचश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७४ ॥

क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो णिजन्त धातु से आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों । चोरयते । चोरयाञ्चकार । चोरयाञ्चक्रे । चोरयामास । चोरयाम्बभूव । चोरयिता । चोरयिष्यति । चोरयिष्यते । चोरयिषति । चोरयिषाति । चोरयतु । चोरयताम् । अचोरयत । चोरयेत् । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । लुङ् में (१७६) चङ् (१७९) उपधा को ह्रस्व (१८०) द्वित्व (१८३) अभ्यास को दीर्घ । अचूचुरत् । अचूचुरत [चिति] स्मृत्याम् (स्मरण) चिन्तयति अचिचिन्तत । इस चिति धातु को इदित् पढ़ने से यह ज्ञापक होता है कि चुरादि धातुओं से णिच् प्रत्यय विकल्प से होवे पक्ष में चुरादिकों से शप् भी होवे क्योंकि जो चिन्त धातु पढ़ते तो चिन्त्यात्। आदि प्रयोगों में नकारलोप (१३९) हो जाता [यत्रि] संकोचने । यन्त्रयति । अययन्त्रत । [स्फुडि] परिहासे । (ठट्ठा करना) स्फुण्डयति । अपुस्फुण्डत [स्फुटि] इत्येके । स्फुण्डयति । [लक्ष] दर्शनाङ्कनयोः (देखना और चिन्ह) लक्षयति । अललक्षत् । [कुद्रि] अनृतभाषणे (झूठ बोलना) कुन्द्रयति । अचुकुन्द्रत् [लड] उपसेवायाम् (लाड़) लाडयति (१२६) वृद्धि । अलीलडत् [मिदि] स्नेहने । मिन्दयति । अमिमिन्दत् । मिन्द्यात् । [ओलडि] उत्क्षेपे (ऊपर को फेंकना) लण्डयति । किन्हीं के मत में ओकार की इत्संज्ञा नहीं होती वहां । ओलण्डयति । उकारादिरयमित्यन्ये । कोई इस धातु को उकारादि कहते हैं । उलण्डयति [जल] अपवारणे (जाल) जालयति । अजीजलत् [लज] इत्येके । लाजयति । अलीलजत् । [पीड] अवगाहने (पीड़ा) पीडयति ॥ ४५७ ॥

४५८ – भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३ ॥

भ्राज आदि धातुओं की उपधा को विकल्प करके ह्रस्व हो चङ्परक णि परे हो तो । अपीपिडत् । अपिपीडत् । यहां जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होता वह लघुपरक अभ्यास के न होने से अभ्यास को दीर्घ (१८३) नहीं होता [नट] अवस्यन्दने (नाचना) नाटयति । अनीनटत् [श्रथ] प्रयत्ने । प्रस्थान इत्येके । कोई के मत में श्रथ धातु प्रस्थान अर्थ में है [बध] संयमने (बन्धन) बाधयति । अबीबधत् [पॄ] पूरणे । पारयति । पारयते । पारयाञ्चकार । पारयिता । अपीपरत् । इस धातु को

दीर्घ ऋकारान्त पढ़ा है सो ह्रस्व कहते तो भी णिच् में वृद्धि हो ही जाती फिर यह ज्ञापक होता है कि इस से षुक् भी होवे । परति । परतः । पपार । पपरतुः [ऊर्ज] बलप्राणनयोः (बल और जीवन) ऊर्जयति [पक्ष] परिग्रहे (लेना) पक्षयति । अपपक्षत् [वर्ण, चूर्ण] प्रेरणे । वर्णयति । चूर्णयति [वर्ण] वर्णन इत्येके (व्याख्यान) [प्रथ] प्रख्याने (प्रकट करना) प्राथयति ॥ ४५८ ॥

४५९ – अत् स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९५ ॥

स्मृ आदि धातुओं के अभ्यास को अकारान्त आदेश हो चङ्परक णि परे हो तो । यह सूत्र सन्वद्भाव (१८१) से प्राप्त इत्व (१८२) का अपवाद है । अपप्रथत् । [पृथ] प्रक्षेपे । पर्थयति । पर्थयते । पर्थयाञ्चकार ॥ ४५९ ॥

४६०–उर्ऋत् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७ ॥

धातु के उपधा ऋकार के स्थान में ऋत् आदेश विकल्प से होवे चङ्परक णि परे हो तो । यह सूत्र गुण वृद्धि आदि का बाधक है । अपीपृथत् । अपपर्थत् । अपीपृथत । अपपर्थत [पथ] इत्येके । पाथयति [षम्ब] सम्बन्धने (मेल) सम्बयति । अससम्बत् [शम्ब] च । अशशम्बत् [साम्ब] इत्येके । अससाम्बत् [भक्ष] अदने । भक्षयति [कुट्ट] छेदनभर्त्सनयोः । पूरण इत्येके । कुट्टयति । अचुकुट्टत् [पुट्ट, चुट्ट] अल्पीभावे (थोड़ा होना) पुट्टयति । चुट्टयति [अट्ट, षुट्ट] अनादरे । अट्टयति । इस धातु को दकारोपध मानने से उस दकार को ट के संयोग में टकार ही होकर उसके असिद्ध होने से संयोगादि दकार को द्वित्व नहीं होता । आट्टिटत् । [लुण्ठ] स्तेये । लुण्ठयति [शठ, श्वठ] असंस्कारगत्योः [श्वठि] इत्येके । शाठयति । श्वाठयति । श्वण्ठयति । [तुज, तुजि, पिज, पिजि, लजि, लुजि,] हिंसाबलादाननिकेतनेषु (हिंसा, बल, आदान और स्थान) तोजयति । अतूतुजत् । पेजयति । अपीपिजत् । तुञ्जयति । अतुतुंजत् [पिस] गतौ । पेसयति [षान्त्व] सामप्रयोगे (शान्तिकरना) सान्त्वयति [श्वल्क, वल्क] परिभाषणे । श्वल्कयति । [ष्णिह] स्नेहने (प्रीति) स्नेहयति । असिस्निहत् [स्फिट] इत्येके । स्फेटयति [स्मिट] अनादरे । असिस्मिटत् [ष्मिङ्] अनादर इत्येके । इस में णिच् को छोड़के केवल स्मिङ् धातु से ङित्करण निष्प्रयोजन होने से णिजन्त से आत्मनेपद ही होते हैं [श्लिष] श्लेषणे । श्लेषयति । अशिश्लिषत् [पथि] गतौ । पन्थयति [पिच्छ] कुट्टने (कूटना) पिच्छयति [छदि] सम्बरणे । छन्दयति । [श्रण] दाने । श्राणयति [तड] आघाते

(ताडना) ताडयति । अतीतडत् । [खड, खडि, कडि] भेदने । खाडयति । खण्ड-
यति । कण्डयति [कुडि] रक्षणे [गुडि] वेष्टने । रक्षण इत्येके [कुठि, गुठि]
चेत्यन्ये । कुण्ठयति । गुण्ठयति । अचुकुण्ठत् [खुडि] खण्डने (काटना) खुण्डयति ।
[वटि] विभाजने (बांटना) वण्टयति [वडि] इत्येके [मडि] भूषायाम् (शोभा)
मण्डयति । मण्डयते । मण्डयाञ्चकार । मण्डयिता । मण्डयिष्यति । मण्डयिषति । म-
ण्डयिषाति । मण्डयतु । मण्डयताम् । अमण्डयत् । मण्डयेत् । मण्ड्यात् । अममण्डत् ।
अमण्डयिष्यत [भडि] कल्याणे । भण्डयते [छर्द] वमने । छर्दयांचक्रे [पुस्त, बुस्त]
आदरानादरयोः । पुस्तयितासे [चुद] संचोदने । चोदयिष्यते [नक्क, धक्क] नाशने । न-
क्कयिषते । नक्कयिषाते [चक्क, चुक्क] व्यथने । चक्कयताम् [क्षल] शौचकर्मणि (शु-
द्धि करना) क्षालयति । [तल] प्रतिष्ठायाम् । अतालयत [तुल] उन्माने (तोलना)
तोलयति । अतूतुलत् [दुल] उत्क्षेपे (फेंकना) दोलयति [पुल] महत्त्वे । पो-
लयेत [चुल] समुच्छ्राये । चोलयिषीष्ट । अचूचुलत [मूल] रोहणे । मूलयति [बुल]
निमज्जने (डूबना) अबूबुलत् [कल, विल] क्षेपे (निन्दा) कालयति । वेलयति ।
[शुल्क] अतिस्पर्शने । शुल्कयति [चपि] गत्याम् । चम्पयति । अचचम्पत् ।
[क्षपि] क्षान्त्याम् (सहना) क्षम्पयति । अचक्षम्पत् [क्षजि] कृच्छ्रजीवने ।
(कठिनता से जीना) [श्वर्त] गत्याम् । श्वर्तयति [श्वभ्र] च । श्वभ्रयति [ज्ञप]
मिच्च । ज्ञप धातु से णिच् प्रत्यय और उस की मित् संज्ञा हो ॥ ४६० ॥

४६१—मितां ह्रस्वः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९२ ॥

मित्संज्ञक धातुओं की उपधा को ह्रस्व हो णिच् परे हो तो । ज्ञपयति । [यम]
च परिवेषणे । परोसने अर्थ में यम धातु से णिच् प्रत्यय और उस की मित्संज्ञा
होती है । यमयति (४६०) ह्रस्व [चह] परिकल्कने (मूर्खता) चहयति । अची-
चहत् [चप] इत्येके । चपयति । अचीचपत् [रह] त्यागे । रहयति । अरीरहत् ।
[बल] प्राणने (जीवन) बलयति [चिञ्] चयने (इकट्ठा) ॥ ४६१ ॥

४६२—चिस्फुरोर्णौ ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५४ ॥

चि और स्फुर धातु के एच् को आकारादेश विकल्प से हो णिच् परे हो तो ।
आकारादेश होने के पश्चात् ॥ ४६२ ॥

४६३—अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग् णौ ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३६ ॥

ऋ, ह्री, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी और आकारान्त धातुओं को पुक् का आगम हो णि परे

हो तो । चपयति । अचीचपत् । जिस पक्ष में आकार न हुआ वहां चययति । इस धातु में ञित् करने से णिच् प्रत्यय का विकल्प होता है क्योंकि ञित् करने का प्रयोजन आत्मनेपद होना णिजन्त से भी उसी अर्थ में हो जाता फिर णिच् से अलग भी आत्मनेपद होने के लिये ञित् पढ़ा है । चयते । चयति (नान्ये मितोऽहेतौ) स्वार्थ णिच् में ज्ञप आदि धातुओं से अन्य धातु मित्संज्ञक न हों । इस नियम के करने से प्रयोजन यह है कि जिन शम आदि अमन्त धातुओं की भ्वादि गण में मित्-संज्ञा कर चुके हैं उन में से जिस किसी धातु से इस चुरादि गण में स्वार्थ में णिच् करें तो भी मित्संज्ञा न हो केवल ज्ञप आदि धातुओं की ही हो [घट्ट]चलने [मुस्त] संघाते [खट्ट] संवरणे [षट्ट, स्फिट्ट, चुबि] हिंसायाम् । चुम्बयति [पूल] संघाते । पूर्ण इत्येके [पुण] इत्यन्ये । पूलयति । [पुंस] अभिवर्द्धने (बढ़ना) पुंसयति । अ-पुपुंसत् [टकि] बन्धने । टंकयति [धूस] कान्तिकरणे (इच्छा करना) धूसयति । अदुधूसत् [धूष] इत्येके [धूश] इत्यपरे [कीट] वरणे । कीटयति । अचिकीटत् [चूर्ण] संकोचने । चूर्णयति [पूज] पूजायाम् । अपुपूजत् [अर्क] स्तवने (स्तुति) तपन इत्येके । अर्कयति । आर्चिकत् । [शुठ] आलस्ये । अशुशुठत् [शुठि] शोषणे । शुण्ठयति [जुड] प्रेरणे [गज, मार्ज] शब्दार्थे । गाजयति । मार्जयति । अममार्जत् [मर्च] च । मर्चयति [घृ] प्रस्रवणे । घारयति । अजीघरत् [पचि] विस्तारवचने (विस्तार से कहना) पंचयति [तिज] निशाने (तीक्ष्णता) तेजयति [कृत] संश-ब्दने (कीर्ति) ॥ ४६२ ॥

--४६३--उपधायाश्च ॥ अ० ॥ ७ । १ । १०१ ॥

धातु की उपधा का जो ऋकार उस को इकारादेश हो । रपर इर् होकर (१३०) सूत्र से दीर्घ होता है । कीर्त्तयति । कीर्तयांचकार । अचीकृतत् । अचिकीर्तत् (४६०) [वर्द्ध] छेदनपूरणयोः । वर्द्धयति । [कुबि] आच्छादने । कुम्बयति [कुभि] इत्येके । कुम्भयति [लुबि, तुबि] अदर्शने । अर्दने इत्येके [ह्लप] व्यक्तायां वाचि । ह्लापयति [क्लप] इत्येके । क्लापयति [चुटि] छेदने । चुण्टयति । अचुचुण्टत् । [इल] प्रेरणे । एलयति । ऐलिलत् ॥ ४६३ ॥

४६४--नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५१ ॥

ऊन, ध्वन, इल और अर्द इन णिजन्त धातुओं से परे च्लि के स्थान में चङ् आ-देश न हो वेदविषय में । यहां (१७६) से चङ् प्राप्त था उस का निषेध है । ऐलयीत् ।

[म्रच्छ] म्लेच्छने (अशुद्ध बोलना) म्रच्छयति । अमम्रच्छत् । [म्लेच्छ] अव्यक्तायां वाचि [ब्रूष, बर्ह] हिंसायाम् । ब्रूसयति । बर्हयति [गर्ज, गर्द] शब्दे। गर्जयति। गर्दयति [गर्ध] अभिकाङ्क्षायाम् । गर्धयति [गुर्द, पुर्व,] निकेतने (स्थान) गूर्दयति । पूर्वयति । अजुगूर्दत् । अपुपूर्वत् [जसि] रक्षणे । मोक्षण इत्येके । जंसयति । अजंजसत् [ईड] स्तुतौ । ईडयति । ऐडिडत् [जसु] हिंसायाम् । जासयति । अजीजसत् [पिडि] संघाते । पिण्डयति । अपिपिण्डत् [रुष] रोषे [रुट] इत्येके [डिप] क्षेपे । अडीडिपत् [ष्टुप] समुच्छ्राये । स्तोपयति । अतुष्टुपत् । सेटः परस्मैपदिन एकशतमष्टपञ्चाशच्च । ये चुर आदि १५८ धातु परस्मैपदी हैं । यद्यपि कर्तृगामी क्रियाफल में इन से आत्मनेपद होते हैं तो भी अगले धातुओं की अपेक्षा में (जो नित्य आत्मनेपदी हैं) परस्मैपदी हैं (आकुस्मादात्मनेपदिनः) अब यहां से कुस्म धातु पर्यन्त आत्मनेपदी कहते हैं अर्थात् कर्तृगामी क्रियाफल से अन्यत्र भी आत्मनेपद ही हों [चित्] संचेतने । चेतयते। अचीचितत [दृशि] दंशनदर्शनयोः (काटना और देखना) [दस, दासि] इत्येके । दासयते । दंसयते । अदीदसत । अददंसत ।[डप, डिप] संघाते । डापयते । डेपयते । अडीडपत [तंत्रि] कुटुम्बधारणे । तंत्रयते । अततन्त्रत [मंत्रि] गुप्तभाषणे । मन्त्रयते । अममन्त्रत [स्पश] ग्रहणसंश्लेषणयोः । स्पाशयते । अपस्पशत [तर्ज, भर्त्स] तर्जने (डरना) तर्जयते । अततर्जत । भर्त्सयते । अबभर्त्सत [बस्त, गन्ध] अर्दने (मांगना) बस्तयते । गन्धयते । [विष्क] हिंसायाम् [हिष्क] इत्येके [निष्क] परिमाणे (तोल) निष्कयते [लल] ईप्सायाम् (लेने की इच्छा) लालयते । लालयाञ्चक्रे । लालयांबभूव । लालयामास [कूण] संकोचने । कूणयते । अचुकूणत [तूण) पूरणे (भ्रूण) आशाविशङ्कयोः (इच्छा और संदेह) भ्रूणयते [शठ] श्लाघायाम् (अपनी प्रशंसा) शाठयते । शाठयाञ्चक्रे । शाठयांबभूव । शाठयामास । [यक्ष] पूजायाम् । यक्षयते [स्यम] वितर्के। स्यामयते [गुर] उद्यमने । गोरयते । अजूगुरत [शम, लक्ष] आलोचने (देखना) शामयते । लक्षयते [कुत्स] अवक्षेपणे । कुत्सयते । अचुकुत्सत [त्रुट] छेदने । त्रोटयते । अतुत्रुटत [कुट] इत्येके [गल] स्रवणे (झरना) गालयते। अजीगलत । अगालयिष्यत [भल] भण्डने (बहुत बोलना) भालयते [कूट] आप्रदाने । अवसादन इत्येके । कूटयते । अचुकूटत [कुट्ट] प्रतापने (तपाना) कुट्टयते । अकुचुट्टत [वञ्चु] प्रलम्भने (ठगना) वञ्चयते । अववञ्चत [वृष] शक्तिबन्धने

(सन्तानोत्पत्ति का सामर्थ्य) वर्षयते। अवीवृषत । अववर्षत (४६०) [मद] तृप्तियोगे। मादयते। अमीमदत [दिवु] परिकूजने (शब्द) देवयते। अदीदिवत (गॄ) विज्ञाने। गारयते।। अजीगरत (विद) चेतनाख्याननिवासेषु। वेदयते। अवीविदत [मान] स्तम्भे (रोकना) मानयते। अमीमनत [यु] जुगुप्सायाम् (निन्दा) यावयते। अयीयवत [कुस्म] नाम्नो वा। यह कुस्म प्रातिपदिक अथवा धातु है और इस का अर्थ बुरा हंसना है। कुस्मयते। अचुकुस्मत। चेतादयो द्विचत्वारिंशत्। ये चित आदि ४२ धातु पूरे हुए [चर्च] अध्ययने (पढ़ना) चर्चयति। अचचर्चत् [बुक्क] भषणे। बुक्कयते [शब्द] उपसर्गादाविष्कारे च। चाद्भाषणे। उपसर्ग पूर्वक शब्द धातु से परे प्रकट करने और बोलने अर्थ में णिच् होता है। परिशब्दयति [कण] निमीलने (मींचना) काणयति। काणयते ॥ ४६४ ॥

४६५-वा० – काण्यादीनां वा ॥

चङ्परक णिच् परे हो तो काणि आदि धातुओं की उपधा को ह्रस्व विकल्प करके हो। अचीकणत्। अचकाणत [जभि] नाशने। जम्भयति। अजजम्भत् [षूद] क्षरणे [झरना] सूदयति [जसु] ताड़ने। जासयति [पश] बन्धने। पाशयति [अम] रोगे। आमयति। आमिमत् आमिमत [चट, स्फुट] भेदने। चाटयते। स्फोटयते अचीचटत्। अचीचटत। अपुस्फुटत्। अपुस्फुटत [घट] संघाते (समूह) घाटयति। घाटयते। अजीघटत् (हन्त्यर्थाश्च) चुरादि से पहिले नव गणों में जो हिंसार्थक धातु कहे हैं उन सब से स्वार्थ में णिच् होता है। हिंसयति। त्रिंहयति। इत्यादि [दिवु] मर्दने। देवयति। अदीदिवत् [अर्ज] प्रतियत्ने (सञ्चय) अर्जयति [घुषिर] विशब्दने। घोषयति। अजूघुषत्। इस धातु में इरित् करने का यह प्रयोजन है कि णिच् प्रत्यय विकल्प से होवे जब णिच् नहीं होता वहां अङ् (१३८) से हो जाता है। अघुषत्। अघोषीत्। [आङः क्रन्द] सातत्ये। आङ् पूर्वक क्रन्द धातु से निरन्तर अर्थ में णिच् होता है। आक्रन्दयाति। आचक्रन्दत् आचक्रन्दत। [लश] शिल्पयोगे (कारीगरी में युक्त) लाशयति। लाशयते। अलीलशत्। अलीलशत। अलाशयिष्यत्। अलाशयिष्यत। [तसि, भूष] अलंकारे। तंसयति। भूषयाति [अर्ह] पूजायाम्। अर्हयति [ज्ञा] नियोगे (नियुक्त करना) आज्ञापयति। आज्ञापयते (४६२) [भज] विश्रावणे (बहुत सुनाना) भाजयति [शृधु] प्रसहने। शर्धयति। अशीशृधत्। अशशर्धत्। [यत] निकारोपस्कारयोः (स्थान और जोड़ना)

यातयति [कल, गल] आस्वादने । कालयति [रघ] इत्येके [रग] इत्यन्ये [अञ्चु] विशेषणे । अञ्चयति [लिगि] चित्रीकरणे (चिन्ह करना) लिंगयति । अलिलिङ्गत्। अलिलिङ्गत [मुद] संसर्गे (मिलाना) मोदयति । मोदयते । अमूमुदत् । अमूमुदत । अमोदयिष्यत् । अमोदयिष्यत [त्रस] धारणग्रहणवारणेषु । त्रासयति । अतत्रसत् [उधूस] उञ्छे । धूासयति । उधूासयति । इस धातु में किन्हीं के मत में उकार की इत्संज्ञा हो जाती है [मुच] प्रमोचनमोदनयोः । मोचयति । मोचयते [वस] स्नेहच्छेदापहरणेषु (प्रीति,काटना और छीन लेना) वासयति । वासयते [चर] संशये । चारयति । अचीचरत् । अचीचरत [च्यु] हसने । सहन इत्येके । च्यावयति । च्यावयते [च्युस] इत्येके । च्योसयति। च्योसयते [भुवो] अवकल्कने (मिलाना वा विचारना)भावयति [कृपेश्च] कृपू धातु से भी सामर्थ्य अर्थ में णिच् प्रत्यय हो । कल्पयति [आस्वदः] सकर्म्मकात् । यहां से लेकर स्वद धातु पर्यन्त सकर्म्मक धातुओं से ही णिच् प्रत्यय कहेंगे [ग्रस] ग्रहणे । ग्रासयति । ग्रासयते [पुष] धारणे । पोषयति । अपूपुषत् [दल] विदारणे । (खण्ड करना) [पट, पुट, लुट, तुजि, मिजि, पिजि, भजि, लघि, त्रसि, पिसि, कुसि, दसि, कुशि, घट, घटि, बृहि, बर्ह, बल्ह, गुप, धूप, विच्छ, चीव, पुथ, लोकृ, लोचृ, णद, कुप, तर्क, वृतु, वृधु] भाषार्थाः (बोलना) पाटयति । पोटयति । लोटयति । तुञ्जयति । लोकयति । लोचयति ॥ ४६५ ॥

४६६--नाग्लोपिशास्वृदिताम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २ ॥

णिच् प्रत्यय के परे जिन के अक् का लोप हुआ हो उन शासु और ऋकार जिन का इत् गया हो उन धातुओं की उपधा को ह्रस्व न हो चङ्परक णिच् परे हो तो । अलुलोकत् । अलुलोचत् [रुट, लजि, अजि, दसि, भृशि, रुशि, रुसि, शीक, नट, पुटि, जिवि, रघि, लघि, अंहि, रहि, नहि] च [लडि, तड, नल]च । रोटयति । रञ्जयति । लञ्जयति ताटयति । जिन्वयति। [पूरी] आप्यायने (बढ़ना) पूरयति [रुज] हिंसायाम् । रोजयति । अरूरुजत् । [ष्वद] आस्वादने । स्वादयति । असिष्वदत् [स्वाद] इत्येके । इस में विशेष यह है कि सोपदेश के न होने से अभ्यास से परे षत्व नहीं होता असिस्वदत् । इत्यास्वदीयाः । स्वदपर्यन्त जो सकर्म्मक धातु कह चुके हैं सो पूरे हुए । [आधृषाद्वा] अब यहां से आगे धृष धातुपर्यन्त सब धातुओं से णिच् प्रत्यय विकल्प करके होगा पक्ष में सब धातुओं से भ्वादिगण के प्रयोग होंगे [युज, पृच] संयमने । योजयति । योजति । अयूयुजत् । अयौक्षीत् । पर्चयति । अपीपृचत् । अपर्चीत् । पर्चति ।

पार्चिता । पर्चिष्यति । अपर्चीत् [अर्च] पूजायाम् । अर्चयति । अर्चति । आर्चिचत् । आर्चीत् । [षह] मर्षणे (सहना) साहयति । असीसहत् । सहति । असहीत् । (१६२) [ईर] क्षेपे । ईरयति । ऐरिरत् । [ली] द्रवीकरणे (गीला करना) लाययति।लयति । [वृजी] वर्जने । वर्जयति । वर्जति । अवीवृजत् । अववर्जत् । अवर्जीत् । [वृञ्] आवरणे । (ढांकना) वारयति । वरति । वरते [जॄ] वयोहानौ । जारयति । जरति । जरिता । जरीता ।[ज्रि] च । ज्राययति । ज्रयति । ज्रेता [रिच] वियोजनसम्पर्चनयोः (पृथक् होना और सम्बन्ध) रेचयति । रेचति । रेक्ता । अरीरिचत् । [शिष] असर्वोपयोगे (बाकी होना) शेषयति । शेषति । शेष्टा । अशीशिषत् । [तप] दाहे । तापयति । तपति । तप्ता । अतीतपत् । अताप्सीत् । [तृप] तृप्तौ । तर्पयति । तर्प्ता । त्रप्ता । [छृदी] सन्दीपने । (प्रकाश होना) छर्दयति । छर्दति । अचीछृदत् । अचच्छर्दत् । छर्दिष्यति । यहां इट् का विकल्प (३८७) रुधादि के साहचर्य्य से नहीं होता [चृप, छृप, दृप,] सन्दीपन इत्येके । चर्पयति । छर्पयति । दर्पयति । दर्पति । अदीदृपत् । अददर्पत् । [दृभी] भये। दर्भयति । दर्भति । दर्भिता । [दृभ] सन्दर्भे (गांठना) [छद] संवरणे । छादयति । छदति [श्रथ] विमोचने। हिंसायामित्येके । श्राथयति । [मी] गतौ । माययति । मयति मेता [श्रन्थ] बन्धने। श्रन्थयति । श्रन्थति [कथ] हिंसायाम् । स्वरितेदित्येके । यह धातु भ्वादिगण में स्वरित् है । क्राथयति । क्रथति । क्रथते [शीक] आमर्षणे (सहना) [चीक] चाचीकयति चीकति । अचिचीकत्[अर्द] हिंसायाम् । स्वरितेत् । अर्दयति । आर्दिदत् । अर्दति । अर्दते। [हिसि] हिंसायाम् । हिंसयति । हिंसति [अर्ह] पूजायाम् [आङः षद] पद्यर्थे (गति) आसादयति । आसीदति (२३१) सीद आदेश । आसत्ता । असात्सीत्[शुन्ध] शौचकर्मणि । शुन्धयति । [छद] अपवारणे स्वरितेत् (बुरे प्रकार हटाना) [जुष] परितर्कणे(इकट्ठा होना वा मारना) परितर्पण इत्यन्ये । जोषयति । जोषति [धूञ्] कम्पने ॥ ४११ ॥

४६७ – वा०--धूञ्प्रीञोर्नुग्वक्तव्यः ॥

णिच् परे हो तो धूञ् और प्रीञ् धातु को नुक् का आगम हो । धूनयति । धवति । धवते । इस वार्तिक को कोई आचार्य्य (धूञ्प्रीणोः) ऐसा पढ़के क्र्यादिस्थ प्रीञ् धातु के साहचर्य्य से क्र्यादि का जो धूञ् धातु है उसी को हेतुमान् णिच् के परे नुक् कहते हैं। धावयति । [प्रीञ्] तर्पणे । प्रीणयति । प्रयति । प्रयते [श्रन्थ, ग्रन्थ]

सन्दर्भे (गांठना) [आप्लृ] लम्भने (प्राप्ति करना) आपयति । आपति । आपत् (२१७) आप्ता । स्वरितेदयमित्येके । आपते [तनु] श्रद्धोपकरणयोः (श्रद्धा और उपकार करना) उपसर्गाच्च दैर्घ्ये । विस्तार अर्थ में उपसर्ग से परे णिच् होता है । तानयति । वितानयति । तनति । वितनाति । [चन] श्रद्धोपहननयोरित्येके । चानयति । चनति [वद] संदेशवचने । स्वरितेत् (संदेश कहना) वादयति । वदति । वदते । [वच] परिभाषणे (अधिक बोलना) वाचयति । वचति । वक्ता । अवीवचत् । अवाक्षीत् [मान] पूजायाम् । मानयति । मानति । मानिता [भू] प्राप्तावात्मनेपदी । भावयते । भवति । इस धातु से णिच् के संयोग में ही आत्मनेपद होता है अन्यत्र नहीं [गर्ह] विनिन्दने (निन्दा) गर्हयति [मार्ग] अन्वेषणे (खोजना) मार्गयति [कठि] शोके। कण्ठयति [मृजू] शौचालंकारयोः । मार्जयति । मार्जति । मार्जिता । मार्ष्टा [मृष] तितिक्षायाम् । स्वरितेत् । मर्षयति । मर्षति । मर्षते [धृष] प्रसहने । धर्षयति ।धर्षति। इत्याधृषीयाः । धृषपर्यन्त धातुओं से णिच् का विकल्प कह चुके हैं सो पूरे हुए ॥

अथादन्ताः । अब अदन्त धातु कहते हैं अर्थात् उन के अकार का लोप (१७२) से णिच् के परे होगा इसी से ये अग्लोपी कहाते हैं [कथ] वाक्यप्रबन्धने (प्रबन्ध से कहना) कथयति । अचकथत् । यहां अग्लोप के होने से वृद्धि नहीं होती [वर] ईप्सायाम् (मिलने की इच्छा) वरयति । अववरत् [गण] संख्याने (गणना) गणयति ॥ ४६७ ॥

४६८ – ई च गणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९७ ॥

गण धातु के अभ्यास को ईकारादेश और चकार से अकारादेश भी हो चङ्परक णिच् परे हो तो । अजीगणत् । अजगणत् [शठ, श्वठ] सम्यगवभाषणे (अच्छे प्रकार कहना) शाठयति । श्वठयति । अशशठत् । अशश्वठत् [पट, वट] ग्रन्थे । पटयति । वटयति [रह] त्यागे । अररहत् [स्तन, गदी] देवशब्दे । स्तनयति । गदयति । [पत] गतौ वा । यह धातु विकल्प करके णिजन्त है । वाऽदन्त इत्येके । कोई लोग विकल्प करके अदन्त कहते हैं । पतयति । पतति । पतयांचकार । अपतीत् । पातयति । अपीपतत् [पष] अनुपसर्गात् । यहां पूर्व से गति अर्थ की अनुवृत्ति आती है । पषयति [स्वर] आक्षेपे (निन्दा) स्वरयति [रच] प्रतियत्ने । रचयति । [कल] गतौ संख्याने च । कलयति [चह] परिकल्कने (अभिमान और मूर्खता) चहयति । अचचहत् [मह] पूजायाम् । महयति [सार, कृप, श्रथ] दौर्बल्ये (निर्बलता)

सारयति । कृपयति । अचकृपत् [स्पृह] ईप्सायाम् । स्पृहयति [भाम] क्रोधे । अबभामत् । अग्लोपी होने से उपधा ह्रस्व का निषेध (४११) [सूच] पैशुन्ये (चुगुली करना) सूचयति । असुसूचत् [खेट] भक्षणे । खेटयति । अचिखेटत् । तृतीयान्त इत्येके । कोई के मत में डकारान्त खेड धातु है । खेडयति । अचिखेडत् [खोट] इत्यन्ये [क्षोट] क्षेपे (निन्दा) अचुक्षोटत् [गोम] उपलेपने (लीपना) गोमयति । अजुगोमत् [कुमार] क्रीडायाम् । कुमारयति । अचुकुमारत् [शील] उपधारणे । अच्छे गुणों का अभ्यास करना) शीलयति । अशिशीलत् [साम] सान्त्वनयोगे । अससामत् [वेल] कालोपदेशे (नियत समय का उपदेश) वेलयति [काल] इति पृथक् धातुरित्येके । कालयति । अचकालत् [पल्पूल] लवनपवनयोः (खेत काटना और पवित्र करना) पल्पूलयति । अपपल्पूलत् [वात] सुखसेवनयोः । गतिसुखसेवनेष्वित्येके । वातयति । अववातत् [गवेष] मार्गणे (खोजना) गवेषयति । अजगवेषत् [वास] उपसेवायाम् । वासयति [निवास] आच्छादने । निवासयति । अनिनिवासत् । [भाज] पृथक्कर्म्मणि (अलग करना) भाजयति । अबभाजत् [सभाज] प्रीतिदर्शनयोः । प्रीतिसेवनयोरित्येके । सभाजयति । अससभाजत् । [ऊन] परिहाणे । ऊनयति । औननत् । वेद में । औनयीत् (४६४) चङ् नहीं होता [ध्वन] शब्दे । अदध्वनत् । अध्वनयीत् । [कूट] परितापे । कूटयति । अचुकूटत् । परिदाह इत्यन्ये [सङ्केत, ग्राम, कुण, गुण] चामंत्रणे । चकार से कूट धातु की अनुवृत्ति है । सङ्केतयति । ग्रामयति । कुणयति । गुणयति [कूण] संकोचने । अचुकूणत् [स्तेन] चौर्ये (चोरी) अतिस्तेनत् । आगर्वादात्मनेपदिनः । यहां से आगे गर्व धातुपर्यंत आत्मनेपदी हैं [पद] गतौ । पदयते । अपपदत [गृह] ग्रहणे । अजगृहत [मृग] अन्वेषणे । मृगयते [कुह] विस्मापने (सन्देह कराना) कुहयते [शूर, वीर] विक्रान्तौ (पराक्रम दिखाना) शूरयते । अशुशूरत । वीरयते [स्थूल] परिबृंहणे (मोटापन) स्थूलयते [अर्थ] उपयाच्ञायाम् । (चाहना) अर्थयते । आर्तथत [सत्र] सन्तानक्रियायाम् (विस्तार) सत्रयते । अससत्रत [गर्व] माने । गर्वयते । अजगर्वत । इत्यागर्वीयाः [सूत्र] वेष्टने (लपेटना) विमोचन इत्यन्ये (छोड़ना) सूत्रयति । [मूत्र] प्रस्रवणे । मूत्रयति । अमुमूत्रत् [रूक्ष] पारुष्ये (कठोरपन) रूक्षयति । अरुरूक्षत् [पार, तीर] कर्मसमाप्तौ । पारयति । तीरयति । अपपारत् । अतितीरत् [पुट] संसर्गे (मिलाना) पुटयति [धेक] दर्शन इत्येके अदिधेकत् । [कत्र] शैथिल्ये । कत्रयति । अचकत्रत् [कर्त्त] इत्यप्येके । कर्त्तयति । प्रातिपदि-

काद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च । प्रातिपदिक से सामान्य धातु के अर्थ में णिच् प्रत्यय हो और जैसे इष्ठन् तद्धित प्रत्यय के परे कार्य होते हैं वे णिच् प्रत्यय के परे हों जैसे पटुमाचष्टे पटयति । यहां इष्ठन् प्रत्यय के समान टिलोप होता है । अपपटत् । तत्करोति तदाचष्टे । जिस प्रातिपदिक से णिच् होता है वह करने वा कहने का कर्म्म समझना चाहिये । मृदुं करोत्याचष्टे वा म्रदयति । यह दूसरा सूत्र पूर्व सूत्र में कहे धात्वर्थ से संबन्ध रखता है । तेनाऽतिक्रामति । तृतीयान्त प्रातिपदिक से (अतिक्रमण) उल्लंघन अर्थ में णिच् प्रत्यय हो । अश्वेनातिक्रामति, अश्वयति । हस्तिना अतिक्रामति, हस्तयति, इत्यादि । धातुरूपं च । जिस प्रातिपदिक से णिच् प्रत्यय करें वह जिस धातु से बना हो उसी का रूप णिच् प्रत्यय में हो जावे और चकार से अन्य कार्य भी णिच् प्रत्यय के अनुकूल हो जावें । कंसवधमाचष्टे, कंसं घातयति । यहां वध शब्द हन धातु से बना है वह णिच् प्रत्यय के परे धातुरूप होकर हन धातु का प्रयोग होता है इस विषय की विशेष व्याख्या आगे नामधातु प्रक्रिया में लिखेंगे । कर्त्तृकरणाद्धात्वर्थे । कर्त्ता के व्यापार के लिये जो साधन हैं उस से धातु के अर्थ में णिच् प्रत्यय हो । असिना हन्ति, असयति । परशुना छिनत्ति, परशयति [वल्क] दर्शने । वल्कयति [चित्र] चित्रीकरणे । चित्रयति । अचिचित्रत् । कदाचिद्दर्शने । किसी समय देखने अर्थ में भी चित्र धातु से णिच् होता है [अंस] समाघाते । अंसयति [वट] विभाजने [लज] प्रकाशने । लजयति [वटि, लजि] इत्येके । वंटयति । लंजयति [मिश्र] संपर्के (संयोग करना) मिश्रयति [संग्राम] युद्धे । अनुदात्तेत् । संग्रामयते । अससंग्रामत [स्तोम] श्लाघायाम् । स्तोमयति [छिद्र] कर्णभेदने (कान का छेदना) छिद्रयति । करणभेदन इत्यन्ये (साधनों का भेद) [कर्ण] इतिधात्वन्तरमित्यन्ये । कर्णयति । [अन्ध] दृष्ट्युपघाते । (नेत्र फूटना) अन्धयति । उपसंहार इत्यन्ये (समाप्ति) [दण्ड] दण्डनिपातने (दण्ड देना) दण्डयति । अददण्डत् [अंक] पदे लक्षणे च (पग और चिन्ह) अङ्कयति । आञ्चकत् [अङ्ग] च । आञ्जगत् । [सुख, दुःख] तत्क्रियायाम् । (सुख और दुःख करना) सुखयति । दुःखयति [रस] आस्वादस्नेहनयोः । रसयति [व्यय] वित्तसमुत्सर्गे (खर्च करना) व्यययति । अवव्ययत् । [रूप] रूपक्रियायाम् (रूप को देखना वा करना) रूपयति । अरुरूपत् । [छेद] द्वैधीकरणे (दो भाग करना) अचिच्छेदत् [छद] अपवारण इत्येके । छदयति । [लाभ] प्रेरणे (आज्ञा करना) लाभयति । अललाभत् ।

[व्रण] गात्रविचूर्णने (घाव) व्रणयति । अववृणत् [वर्ण] वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु (रंगना, फैलाव, स्तुति करना) वर्णयति । अववर्णत् । बहुलमेतन्निदर्शनम् । कथ आदि अदन्त धातुओं का पाठ बहुल से जानो अर्थात् बहुल कहने से अन्य धातुओं से भी यहां णिच् होता है जैसे [पर्ण] हरितभावे (हरा होना) पर्णयति । अपपर्णत् [विष्क] दर्शने (देखना) विष्कयति । अविविष्कत् [क्षप] प्रेरणे । क्षपयति [वस] निवासे । वसयति [तुत्थ] आवरणे । तुत्थयति । तथा । गण्डयति आन्दोलयति । प्रेङ्खोलयति । विडम्बयति । अवधीरयति, इत्यादि प्रयोग भी बहुल ग्रहण से होते हैं तथा कोई ऐसा कहते हैं कि दशों गण के धातुओं के लिये बहुल ग्रहण है इस से सौत्र लौकिक और वैदिक धातु अपठित (जो दश गणों में नहीं पढ़े) उन से भी उन २ गणों के प्रयोग होते हैं । और कोई के मत में नव गणों में पढ़े धातुओं के लिये बहुल है इस से चुरादिगण में अपठित धातुओं से भी स्वार्थ में णिच् हो जाता है । जैसे अचीकरत् । और कोई के मत में चुरादि धातुओं से ही णिच् प्रत्यय बहुल करके होता है ॥ णिङङ्गान्निरसने । अङ्गवाची प्रातिपदिक से फेंकने अर्थ में णिङ् प्रत्यय हो । ङित् करने से आत्मनेपद होता है । हस्तौ निरस्यति, हस्तयते । पादौ निरस्यति, पादयते, इत्यादि । श्वेताऽश्वाश्वतरगालोडिताह्वरकाणामश्वतरेतकलोपश्च । श्वेताश्व, अश्वतर, गालोडित, आह्वरक, इन प्रातिपदिकों से अतिक्रमण अर्थ में णिङ् प्रत्यय और इन के अश्व, तर, इत और ककार का लोप हो जावे । श्वेताश्वमाचष्टे, अतिक्रामति वा, श्वेतयते । अश्वतरमाचष्टे, अश्वयते । गालोडितं वाग्विमर्शमाचष्टे तत्करोत्यतिक्रामति वा, गालोडयते । आह्वरकं करोत्त्यतिक्रामति वा, आह्वरयते । पुच्छादिषु धात्वर्थ इत्येव सिद्धम् । पुच्छ आदि प्रातिपदिकों से (पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ्) इस सूत्र में णिङ् प्रत्यय कहा है वहां भी धात्वर्थ में प्रातिपदिकमात्र से कहने से णिच् होकर बहुलवचन सामर्थ्य से आत्मनेपद भी हो जावेगा फिर पुच्छ आदि से णिङ् कहने का कुछ प्रयोजन नहीं और यहां सिद्ध शब्द के मंगलार्थ होने से इस चुरादिगण की समाप्ति जानो । इन दश गणों में भ्वादिगण सब का उत्सर्ग है और नौ गण सब शप् के ही बाधक हैं । जब नव गणों में पढ़े भ्वादि के धातु को अवकाश मिलता है तब शप् ही होता है । जितने धातु इन दश गणों में लिखे हैं वे ही औपदेशिक हैं और इन्हीं से सब प्रकार के शब्द बनते हैं और आगे १ २ प्रक्रियां लिखेंगे उन प्रत्येक में इन सब धातुओं का काम पड़ा करेगा ॥

इति चुरादिगणः समाप्तः ॥

अथ णिजन्तप्रक्रिया ॥

४६९–तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥ अ० ॥ १ । ४ । ५५ ॥

स्वतंत्र कर्त्ता को प्रेरणा करनेहारे की हेतु और कर्त्ता दोनों संज्ञा हों ॥४६९॥

४७०–हेतुमति च ॥ अ० ॥ ३ । १ । २६ ॥

प्रयोजक कर्त्ता के भेजने आदि व्यवहार अर्थ में धातु से णिच् प्रत्यय हो । सो दश गणों में जितने धातु लिख चुके हैं उन सब से णिच् आदि प्रक्रिया के प्रत्यय होंगे उन सब धातुओं के प्रयोग सर्वत्र नहीं लिखेंगे किन्तु जिन में कुछ विशेष कार्य सूत्रों से होते हैं वे लिखे जावेंगे । भवतीति भवन्,भवन्तं प्रेरयति, भावयति । भावयते । यहां क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होने में आत्मनेपद (४५७) होता है और शप् आदि की उत्पत्ति होती है। भावयाञ्चकार । भावयाम्बभूव । भावयामास । भावयिष्यति । भावयिता । भावयिषति । भावयिताति । भावयतु । अभावयत् । भावयेत् भाव्यात् (१७७) णिलोप॥४७०॥

४७१– ओः पुयण्ज्यपरे ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८० ॥

अवर्णपरक पवर्ग, यण् और जकार परे हों तो सन् प्रत्यय के परे जो अङ्ग उस के अवयव अभ्यास के उवर्ण को इकारादेश हो । अबीभवत् । अपीपवत् । अमीमवत् । अयीयवत् । अरीरवत् । अलीलवत् । अजीजवत् । यहां सर्वत्र यद्यपि सन् प्रत्यय परे नहीं है तो भी (१८१) से सन्वद्भाव मानकर कार्य होता है ॥ ४७१ ॥

४७२–स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८१ ॥

स्रवति आदि धातुओं के अभ्यासस्थ उकार को विकल्प करके इकारादेश हो सन् प्रत्यय के परे अवर्णपरक धातु का अक्षर परे हो तो । असिस्रवत् । असुस्रवत् । अशिश्रवत् । अशुश्रवत् । अदिद्रवत् । अदुद्रवत् । अपिप्रवत् । अपुप्रवत् । अपिप्लवत् । अपुप्लवत् । अचिच्यवत् । अचुच्यवत् । अडुढौकत् । अचीचकासत् । यहां (४६६) सर्वत्र उपधा को ह्रस्व नहीं होता और चुरादिगण में स्वार्थ णिच् से भी हेतुमान् णिच् प्रत्यय होता है । चोरयन्तं प्रेरयति, चोरयति । अचूचुरत् ॥ ४७२ ॥

४७३–णौ च संश्चङोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३१ ॥

सन् और चङ् जिस से परे हों ऐसा णि परे हो तो श्वि धातु को सम्प्रसारण विकल्प करके हो सम्प्रसारण और उस के आश्रय जो कार्य हैं उन के बलवान् होने से

सम्प्रसारण और पूर्वरूप होकर अशूशुवत्। पक्ष में। अशिश्वयत्। आटिटत्। यहां उपधा को ह्रस्व बहिरङ्ग भी है परन्तु ओणृ धातु में ऋदित् करणसामर्थ्य मान द्वित्व से पहिले ही ह्रस्व हो जाता है। औन्दिदत्। आड्डिडत्। आर्चिचत्। यहां संयोग के आदि न द और र को द्वित्व (३२१) से नहीं होता। [उब्ज] आर्जिजे। धातु उपदेश में दकारोपध है और (भुजन्युब्जौ) सूत्र में निपातन करने से दकार को बकार हो जाता है वह अन्तरङ्ग भी है परन्तु द्विर्वचनविषय में औपदेशिक का ग्रहण होने से दकारस्थानी बकार को द्वित्व नहीं होता। औब्जिजत्॥ ४७३॥

४७४—रभेरशब्लिटोः ॥ अ० ॥ ७। १। ६३॥

रभ धातु को नुम् का आगम हो शप् और लिट्भिन्न अजादि प्रत्यय परे हों तो। रम्भयति। अररम्भत्॥ ४७४॥

४७५—लभेश्च ॥ अ० ॥ ७। १। ६४॥

पूर्वसूत्रोक्त कार्य लभ धातु को भी हों। लम्भयति। अललम्भत्। अजीहयत्। यहां (४२२) से चङ् के परे अभ्यास को कुत्व का निषेध हो जाता है। स्मारयति। असस्मरत्। दारयति। अददरत्। अतत्वरत्। असप्रदत्। अतस्तरत्। यहां सर्वत्र स्मृ आदि धातुओं के अभ्यास को अकारादेश (४५९) से हो जाता है॥ ४७५॥

४७६-विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः ॥ अ० ॥ ७। ४। ९६॥

चङ्परक णिच् परे हो तो वेष्ट और चेष्ट धातु के अभ्यास को अकारादेश विकल्प करके होवे। अववेष्टत्। अविवेष्टत्। अचचेष्टत्। अचिचेष्टत्। भ्राज आदि धातुओं की उपधा को विकल्प करके ह्रस्व (७५८) सूत्र से होकर। अबिभ्रजत्। अबभ्राजत्। अबभसत्। अबभासत्। अबिभषत्। अबभाषत्। अदीदिपत्। अदिदीपत्। अजीजिवत्। अजिजीवत्।। अपीपिडत्। अपिपीडत्। कण आदि णिजन्त धातुओं की उपधा को चङ्परक णिच् में विकल्प करके ह्रस्व (४६५) से हो जाता है (कण, रण, भण, श्रण, लुप, हेठ) ये छः धातु महाभाष्य में काण्यादि गिनाये गये हैं। अचीकणत्। अचकाणत्। इत्यादि॥ ४७६॥

४७७—स्वापेश्चङि ॥ अ० ॥ ६। १। १८॥

णिजन्त स्वापि धातु को संप्रसारण हो चङ् परे हो तो। स्वापयति। असूषुपत्॥ ४७७॥

४७८—शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् ॥ अ० ॥ ७। ३। ३७॥

शा आदि धातुओं को युक् का आगम हो णिच् परे हो तो। (४६९) सूत्र से पुक्

प्राप्त है उस का यह अपवाद है। शाययति। छाययति। साययति। ह्वाययति। संव्याययति। वाययति। पाययति। अशीशयत्। ह्वा धातु में विशेष है ॥ ४७८ ॥

४७९—ह्वः सम्प्रसारणम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३२ ॥

सन् और चङ् जिससे परे हों ऐसा णिच् परे हो तो ह्वा धातु को संप्रसारण हो। अजूहवत्। अजुहावत्। यहां (४६५) वार्तिक से उपधाह्रस्व विकल्प होता है। पा धातु में यह विशेष है ॥ ४७९ ॥

४८०—लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४ ॥

चङ्परक णिच् परे हो तो पिबति अङ्ग की उपधा का लोप और अभ्यास को ईकारादेश हो। अपीप्यत्। अर्पयति। ह्रेपयति। ब्लेपयति। रेपयति। क्नोपयति। क्ष्मापयति। स्थापयति। दापयति। धापयति। घ्रापयति। यहां सर्वत्र (४६२) सूत्र से णिच् के परे पुक् होता है। स्था धातु में यह विशेष है ॥ ४८० ॥

४८१—तिष्ठतेरित् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५ ॥

चङ्परक णिच् परे हो तो स्था अङ्ग की उपधा को इकारादेश हो। अतिष्ठिपत्। अतिष्ठिपताम्। घ्रा धातु में यह विशेष है ॥ ४८१ ॥

४८२—जिघ्रतेर्वा ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६ ॥

चङ्परक णिच् परे हो तो घ्रा धातु की उपधा को इकारादेश विकल्प करके हो। अजिघ्रिपत्। अजिघ्रपत्। कर्त्तयति। इत्यादि। ऋवर्णोपध धातुओं में (४६०) सूत्र से विकल्प करके ऋत् हो जाता है। अचीकृतत्। अचकर्तत्। कीर्त्तयति। अचीकृतत्। अचिकीर्तत्। वर्त्तयति। अवीवृतत्। अववर्त्तत्। अमीमृजत्। अममार्जत्। पाति धातु में यह विशेष है ॥ ४८२ ॥

४८३—वा०—पातेर्लुग्वचनम् ॥

णिच् परे हो तो पाति धातु को लुक् आगम हो। पालयति ॥ ४८३ ॥

४८४—वो विधूनने जुक् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३८ ॥

णिच् परे हो तो कम्पाने अर्थ में वा धातु को जुक् आगम हो। वाजयति। और जहां कम्पाना अर्थ नहीं है वहां केशान् वापयति ॥ ४८४ ॥

४८५—लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३९ ॥

णिच् परे हो तो चिकनाई गिराने अर्थ में ली और ला धातु को नुक् और लुक्

का आगम यथासंख्य और विकल्प करके हो । घृतं विलीनयति । घृतं विलालयति । जहां स्नेहविपातन नहीं है वहां विलाययति । विलापयति । इस सूत्र में ईकारान्त ली धातु * का ग्रहण इसलिये है कि जिस पक्ष में (४००) सूत्र से आकारादेश होता है वहां नुक् का आगम न हो ॥ ४८५ ॥

४८६—लियः सम्माननशालिनीकरणयोश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७० ॥

सत्कार तिरस्कार और ठगने अर्थ में णिजन्त ली धातु से आत्मनेपद हो । जटाभिरालापयते । अर्थात् जटाओं से सत्कार को प्राप्त होता है । श्येनो वर्तिकामुल्लापयते । बाज पखेरू बतक का तिरस्कार करता है । कस्त्वामुल्लापयते । कौन तुझ को ठगता है ॥ ४८६ ॥

४८७—बिभेतेर्हेतुभये ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५६ ॥

णिच् प्रत्यय परे हो तो हेतु से भय अर्थ में भी धातु के एच् को विकल्प से आकार आदेश हो ॥ ४८७ ॥

४८८—भीस्म्योर्हेतुभये ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६८ ॥

हेतुभय अर्थ में णिजन्त भी और स्मि धातु से आत्मनेपद हो । आकारादेश पक्ष में । मुण्डो भापयते । और जहां आकारादेश न हुआ वहां यह विशेष है ॥ ४८८ ॥

४८९ — भियो हेतुभये षुक् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ४० ॥

णिच् परे हो तो हेतुभय अर्थ में भी धातु को षुक् का आगम हो । जटिलो भीषयते । जटाधारी डरपाता है । यहां भी धातु में महाभाष्यकार ने ईकार का प्रश्लेष माना है इस से आकारान्त भी धातु को षुक् नहीं होता है । स्मि धातु में यह विशेष है ॥ ४८९ ॥

४९०—नित्यं स्मयतेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५७ ॥

णिच् परे हो तो हेतुभय अर्थ में स्मि धातु को नित्य ही आकारादेश हो । जटिलो विस्मापयते । और जहां हेतुभय अर्थ नहीं है वहां कुञ्चिकयैनं विस्मापयति । यहां कूंची से भय है किन्तु हेतु प्रयोजक कर्त्ता से नहीं है ॥ ४९० ॥

४९१—स्फायो वः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ४१ ॥

णिच् परे हो तो स्फायि अङ्ग को वकारादेश हो । स्फावयति ॥४९१ ॥

४९२—शदेरगतौ तः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ४२ ॥

णिच् परे हो तो गतिभिन्न अर्थ में वर्तमान शद अङ्ग को तकारादेश हो । पुष्पाणि शातयति । और गति अर्थ में तो । गोपालो गाः शादयति । यहां चलाना अर्थ है ॥ ४९२ ॥

* ईकारान्त कहने से प्रयोजन यह है कि (ली—ई) ऐसा भाष्यकारने प्रश्लेष करके व्याख्यान दिखाया है ॥

४९३-रुहः पोऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ७ । ३।४३ ॥

णिच् परे हो तो रुह् अङ्ग को पकारादेश विकल्प करके होवे । रोपयति । रोहयति ॥ ४९३ ॥

४९४-क्रीङ्जीनां णौ ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४८ ॥

णिच् प्रत्यय परे हो तो क्री, इङ् और जि धातुओं के एच् को आकारादेश हो। आकारादेश होकर पुक् (४९२) क्रापयति । अध्यापयति । जापयति । इङ् धातु में कुछ विशेष है ॥ ४९४ ॥

४९५-णौ च संश्चङोः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५१ ॥

सन् और चङ् जिस से परे हों ऐसा णिच् परे हो तो इङ् धातु को गाङ् आदेश विकल्प करके होवे । अध्यजीगपत् । अध्यापिपत् ॥ ४९५ ॥

४९६-सिध्यतेरपारलौकिके ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४९ ॥

णिच् परे हो तो सांसारिक पदार्थों की सिद्धि करने अर्थ में वर्त्तमान जो सिध्यति धातु है उस के एच् को आकारादेश हो । अन्नं साधयति । अलौकिकग्रहण इसलिये है कि तपस्तापसं सेधयति । चापयति । स्फारयति । यहां (४९३) सूत्र से अकारादेश होता है ॥ ४९६ ॥

४९७-प्रजने वीयतेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५५ ॥

णिच् परे हो तो गर्भधारण कराने अर्थ में वर्त्तमान वी धातु के एच् को आकारादेश विकल्प करके हो । पुरोवातो गाः प्रवापयति । प्रवापयति वा । गूहयति (२३५) सूत्र से उपधा को ऊकार होता है ॥ ४९७ ॥

४९८-दोषो णौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९० ॥

णिच् परे हो तो दुष् धातु के उपधा ओकार को ऊकारादेश हो । दूषयति ॥४९८॥

४९९-वा चित्तविरागे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९१ ॥

णिच् परे हो तो चित्त बिगाड़ने अर्थ में दुष् धातु के ओकार को विकल्प करके ऊकारादेश हो । चित्तं दूषयति । दोषयति वा कामः । जितने मित्संज्ञक धातु भ्वादि और चुरादि गण में लिख चुके हैं उन सब की उपधा को ह्रस्व (४११) से होता है जैसे घटमानं प्रयोजयति, घटयति । जनयति । जरयति । रञ्ज धातु में यह विशेष है ॥ ४९९ ॥

५००—वा रञ्जेर्णौ मृगरमणे ॥

णिच् परे हो तो मृगरमण अर्थ में रञ्ज धातु के उपधा नकार का लोप हो । मृगान् रजयति । अन्यत्र । रंजयति वस्त्राणि । गच्छन्तं प्रयोजयति गमयति । अजीगमत् । ज्वलयति । ज्वालयति ॥ ५०० ॥

५०१—णौ गमिरबोधने ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४६ ॥

णिच् परे हो तो अबोधन-अर्थ में इण् धातु को गमि आदेश हो । यन्तं प्रयोजयति गमयति । बोधन अर्थ में तो । प्रत्याययति । इक् धातु को भी इण्वत् कार्य (३४७) वार्त्तिक से होता है । अधिगमयति ॥ ५०१ ॥

५०२—हनस्तोऽचिण्णलोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३२ ॥

चिण् और णल्भिन्न ञित् णित् प्रत्यय परे हों तो हन् धातु को तकारादेश हो । घातयति । यहां (३०४) से कुत्व हो जाता है । इर्ष्ययति ॥ ५०२ ॥

५०३—वा०—ईर्ष्यतेस्तृतीयस्य द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

ईर्ष्य धातु के द्वित्वप्रसंग में तृतीय व्यंजन वा तृतीय एकाच् अवयव को द्वित्व आदेश हो । ऐर्ष्यियत् । यहां तृतीय के कहने से षकार को द्वित्व नहीं होता है । नाथयति । अननाथत् ॥ ५०३ ॥

इति णिजन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ सन्नन्तप्रक्रिया ॥

५०४—धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ॥अ०॥३।१।७॥

जिस का इच्छा कर्म्म और इच्छा के साथ कर्त्ता हो उस धातु से इच्छा अर्थ में विकल्प करके सन् प्रत्यय हो । पठितुमिच्छति, पिपठिषति । कर्म्मग्रहण इसलिये है कि गमनेनेच्छति । यहां करण से न हो । समानकर्त्ता इसलिये कहा है कि देवदत्तस्य भोजनमिच्छति यज्ञदत्तः । विकल्पग्रहण से एक पक्ष में वाक्य भी होता है । पिपठिषांचकार । पिपठिषिता । पिपठिषिष्यति । पिपठिषिषति । पिपठिषिषाति । पिपठिषाति । पिपठिषाति । पिपठिषतु । अपिपठिषत् । पिपठिषेत् । पिपठिष्यात् । अपिपठिषीत् । अपिपठिषिष्यत् । अद् धातु को घस्लृ आदेश (३०२) से होता है । अत्तुमिच्छति । जिघत्सति । ईर्ष्य धात के तृतीय अच को द्वित्व होता है । ईर्ष्यिषिषति ॥ ५०४ ॥

५०५-रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च ॥ अ० ॥ १ । २ । ८ ॥

रुदादि धातुओं से परे जो सन् और क्त्वा सो कित्वत् हों । रुरुदिषति । विविदिषति । मुमुषिषति । इन में कित् मानकर गुणादेश नहीं होता ॥ ५०५ ॥

५०६-सनि ग्रहगुहोश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । १२ ॥

ग्रह, गुह और उगन्त धातुओं से परे जो सन् उस को इट् का आगम न हो । जिघृक्षति । यहां (२८९) से संप्रसारण होता है । सुषुप्सति (२८३) से संप्र० ॥ ५०६ ॥

५०७- किरश्च पञ्चभ्यः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७५ ॥

कॄ गॄ दृङ् धृङ् और प्रच्छ इन पांच धातुओं से परे वलादि सन् आर्द्धधातुक को इट् का आगम हो । पिपृच्छिषति । चिकरिषति । जिगरिषति । जिगलिषति । दिदरिषते । दिधरिषते ॥ ५०७ ॥

५०८- इको झल् ॥ अ० ॥ १ । २ । ९ ॥

इगन्त से परे जो झलादि सन् वह कित् हो । भवितुमिच्छति । बुभूषति । पुपूषति पुपूषते । लुलूषति । लुलूषते ॥ ५०८ ॥

५०९ - हलन्ताच्च ॥ अ० ॥ १ । २ । १० ॥

इक्समीपवर्त्ती हल् से परे झलादि सन् कित् हो । तितिप्सते । जुघुक्षति । बिभित्सति । इग्ग्रहण इसलिये है कि यियक्षते । यहां कित् के न होने से संप्रसारण न हुआ । झल् इसलिये है कि विवर्द्धिषते । हल्ग्रहण यहां जातिपरक है इस से तितृक्षति । तितृंहिषति ॥ ५०९ ॥

५१० - अज्झनगमां सनि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १६ ॥

अजन्त, हन् और अजादेश गम धातु को दीर्घ हो झलादि सन् परे हो तो । जेतुमिच्छति जिगीषति । चिकीषति । चिचीषति । यहां (४१७) से कुत्वाविकल्प हन्तुमिच्छति, जिघांसति ॥ ५१० ॥

५११ - सनि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४७ ॥

सन् परे हो तो इण् धातु को गमि आदेश अबोधन अर्थ में हो । जिगमिषति । बोधन अर्थ में प्रतीषिषति । अधिजिगमिषति (३४७) वार्तिक से इक् को इण्वद्भाव ॥ ५११ ॥

५१२—इङश्च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४८ ॥

सन् परे हो तो इङ् धातु को गमि आदेश हो । अधिजिगांसते । यहां (५०८) से दीर्घ होगया । अजादेश ग्रहण से गम् धातु को दीर्घ नहीं होता है इस से संजिगंसते । यहां उपधादीर्घ न हुआ ॥ ५१२ ॥

५१३—रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च ॥ अ० ॥ १ । २ । २६ ॥

इकार और उकार जिस की उपधा और हल् आदि तथा रल् अन्त में हो उस से परे सेट् क्त्वा और सन् कित्संज्ञक हों । दिद्युतिषते । दिद्योतिषते । रुरुचिषते । रुरोचिषते । लिलिखिषति लिलेखिषति । रल्ग्रहण इसलिये है कि दिदेविषति । इ,उ, उपधा में इसलिये कहा कि विवर्तिषते । हलादि इसलिये है कि । एषिषिषति । यहां नित्य द्वित्व को भी बाधकर पूर्व गुणादेश होता है ॥ ५१३ ॥

५१४—सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४९ ॥

इवन्त, ऋधु, भ्रस्ज, दम्भु श्रि, स्वृ, यु, ऊर्णु, भर, ज्ञपि और सन् इन अङ्गों से परे वलादि सन् आर्द्धधातुक को विकल्प करके इट् का आगम हो । दिदेविषति दुद्यूषति । सिषेविषति । सुस्यूषति । अर्दिधिषति । अनिट् पक्ष में ॥ ५१४ ॥

५१५—आप्ज्ञप्यृधामीत् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५५ ॥

सकारादि सन् प्रत्यय परे हो तो आप्, ज्ञपि और ऋध अङ्गों के अच् को ईकारादेश होवे ॥ ५१५ ॥

५१६—अत्र लोपोऽभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५८ ॥

इस (अ० ७ । ४ । ५४) से लेकर (अ० ७ । ४ । ५८) इस सूत्र पर्य्यन्त जिन धातुओं से सन् होता है उन के अभ्यास का लोप होवे । आप्तुमिच्छति, ईप्सति । अर्धितुमिच्छति, ईर्त्सति । यहां धकार को चर्त्व और ईकार को रपरभाव होता है । बिभ्रज्जिषति । बिभर्जिषति (४२७) रेफ और उपधा को रम् आगम का विकल्प। अनिट् पक्ष में । बिभ्रक्षति । बिभर्क्षति ॥ ५१६ ॥

५१७—दम्भ इच्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५६ ॥

सकारादि सन् परे हो तो दम्भ धातु के अच् को इकार और ईकार होवे । पूर्व सूत्र से अभ्यासलोप और (५०९) सूत्र में हल् करके हल्जाति का ग्रहण होने से सन् को

कित्व होकर नकारलोप (१३९) होता है। धिप्सति। धीप्सति। सेट्पक्ष में। दिदम्भिषति। शिश्रीषति। शिश्रयिषति। सुस्वूर्षति (३८०) ऋ को उर् आदेश। सिस्वरिषति। यियविषति (४७१) अभ्यास को इत्। युयूषति। कित्व (५०८) होकर दीर्घ (५१०) हो जाता है। ऊर्णुनाविषति (३२७) ङित्व का विकल्प। उर्णुनुविषति। ऊर्णुनूषति (५१४) सूत्र में भर कहने से भ्वादिगण के भृञ् धातु का ग्रहण है। बिभरिषति। बुभूर्षति (३८०) जिज्ञपयिषति। ज्ञीप्सति (५१५) से ईकार और अभ्यास का लोप (५१६) सिसनिषति। सिषासति (३९४) अकारादेश॥ ५१७॥

५१८ — वा०—तनिपतिदरिद्राणामुपसंख्यानम् ॥

तन, पत और दरिद्रा धातुओं से परे जो वलादि सन् आर्द्धधातुक उस को विकल्प से इट् का आगम होवे ॥ ५१८ ॥

५१९—तनोतेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १७ ॥

सन् परे हो तो तन अङ्ग की उपधा को विकल्प करके दीर्घ होवे। तितनिषति। तितांसति। तितंसति ॥ ५१९ ॥

५२०—वा०—आशङ्कायामुपसंख्यानम् ॥

संदेह करने अर्थ में धातु से सन् प्रत्यय हो। पतितुमिच्छति कूलम्, पिपतिषति। श्वा मुमूर्षति ॥ ५२० ॥

५२१—सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्॥ अ०॥७।४।५४ ॥

सकारादि सन् परे हो तो मी, मा, घु, रभ, लभ, शक, पत और पद इन धातुओं के अच् को इस् आदेश होवे। पिस्त्+सन्+तिप्=पित्सति (२१०) से सलोप और (५१६) अभ्यास का लोप हो जाता है। दिदरिद्रिषति। दिदरिद्रासति (मी) से डुमिञ् और मीङ् दोनों का ग्रहण है। मित्सति (२१६) इस् के स को तकार (मा, माने) मित्सति। माङ् मेङ्। मित्सते। दो दाण्। दित्सति। देङ्, दित्सते। दाञ्, दित्सति। दित्सते। धेट्, धित्सति। धाञ्, धित्सति। धित्सते। रभ, रिप्सते। लभ, लिप्सते। शक्लृ, शिक्षति। शक्, शिक्षति। शिक्षते। पद, पित्सते ॥ ५२१ ॥

५२२-वा०—इस्त्वं सनि राधो हिंसायाम् ॥

सन् परे हो तो हिंसा अर्थ में वर्त्तमान राध धातु के अच् को इस् आदेश और अभ्यास का लोप होवे। प्रतिरित्सति। हिंसा अर्थ से अन्यत्र। आरिरात्सति ॥ ५२२ ॥

५२३—मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५७ ॥

सकारादि सन् परे हो तो अकर्मक मुच धातु को विकल्प से गुण और अभ्यास का लोप होवे । प्रयोजन यह है कि जो (५०९) सूत्र से कित्व नित्य प्राप्त है उस का विकल्प हो जावे । मोक्षते । मुमुक्षते वा वत्सः स्वयमेव । अकर्मकग्रहण इसलिये है कि । मुमुक्षति वत्सं देवदत्तः । यहां गुण न होवे । वृतु आदि चार धातुओं से परे सादि आर्द्धधातुक को इट् का निषेध (२२९) विवृत्सति (२२१) परस्मैपदविधि । निनर्त्तिषति । निनृत्सति (३९७) से इट् का विकल्प । चिकर्त्तिषति । चिकृत्सति । चिचर्त्तिषति । चिचृत्सति । चिछर्दिषति । चिछृत्सति ॥ ५२३ ॥

५२४—इट् सनि वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४१ ॥

वृङ्, वृञ् और ऋकारान्त धातुओं से सन् को इडागम विकल्प करके हो । तितरिषति । तितरीषति (२४६) इट् को दीर्घ विकल्प । अनिट् पक्ष में । तितीर्षति । विवारिषति । विवरीषति । वुवूर्षति । विवरिषते । विवरीषते । वुवूर्षते । वृङ्, विवरिषते । विवरीषते । वुवूर्षते । इत्यादि ॥ ५२४ ॥

५२५—स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७४ ॥

सन् परे हो तो स्मिङ्, पूङ्, ऋ, अञ्जू, अशू इन धातुओं को इट् का आगम होवे । स्मेतुमिच्छति, सिस्मयिषते । पिपविषते । ओः पुयण्ज्यपरे । सूत्र से अभ्यास को इकारादेश होता है । पिपावयिषति । अरिरिषति । अञ्जिजिषति । अशिशिषते । पूञ्, पुपूषति । उच्छ, उचिच्छिषति । चुरादिगण तथा अन्य सब धातु हेतुमान् णिजन्तों से भी इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है । जैसे । पाठयितुमिच्छति, पिपाठयिषति । अध्यापयितुमिच्छति, अधिजिगापयिषति (४९५) इङ् को गाङ् आदेश वि० । अध्यापिपयिषति । शिश्वापयिषति । शुशावयिषति (४७२) श्व को सम्प्रसारण । जुहावयिषति । सम्प्रसारण । पुस्फारयिषति । चुक्षावयिषति । यियावयिषति । बिभावयिषति । रिरावयिषति । लिलावयिषति । जिजावयिषति । पु, यण्, जिग्रहण इसलिये है कि नुनावयिषति । अकारपरे इसलिये कहा है कि बुभूषति (४७२) सूत्र से स्रव आदि के अभ्यास को इत्व का विकल्प होकर । सिस्रावयिषति । सुस्रावयिषति । इत्यादि । तुष्टूषति । सुष्वापयिषति । सिषाधयिषति । तिष्ठासति । सुषुप्सति । प्रतीषिषति । अधीषिषति । एधितुमिच्छति, एदिधिषति । इस प्रक्रिया में भी सामान्य और विशेष सूत्रों में सब धातुओं का सम्बन्ध करके प्रयोग व्यवस्था जानो ॥ ५२५ ॥

इति सन्नन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ यङन्तप्रक्रिया ॥

५२६–धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २२ ॥

क्रिया के वार वार शीघ्र वा निरन्तर अर्थ में हलादि एकाच् धातुओं से यङ् प्रत्यय होवे। (१६६) से धातुसंज्ञा और (२६८) से द्वित्व होकर ॥ ५२६ ॥

५२७–गुणो यङ्लुकोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८२ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो इगन्त अङ्ग के अभ्यास को गुणादेश हो । पुनः पुनरतिशयेन भृशं वा भवतीति बोभूयते । बोभूयांचक्रे । बोभूयांबभूव । बोभूयामास । बोभूयिता । बोभूयिष्यते । बोभूयिषतै । बोभूयिषातै । बोभूयताम् । अबोभूयत । बोभूयेत। बोभूयिषीष्ट । अबोभूयिष्ट । अबोभूयिष्यत । धातुग्रहण आर्द्धधातुक संज्ञा होने के लिये है । एकाच्ग्रहण इसलिये है कि पुनः पुनर्जागर्ति । यहां यङ् न हो । हलादिग्रहण इसलिये है कि भृशमीक्षते। जिस धातु * के यङन्त प्रयोग से शीघ्र आदि अर्थ विदित नहीं होते हैं उससे यङ् प्रत्यय नहीं होता जैसे। भृशं शोभते। भृशं रोचते ॥ ५२७॥

५२८–वा० सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यर्त्यशूर्णोतीनां ग्रहणं यङ्विधावनेकाज्हलाद्यर्थम् ॥

यङ्विधान में अनेकाच् और हलादि धातुओं के अर्थ सूचि, सूत्रि, मूत्रि, अटि, अर्ति, अशू, ऊर्णु इन धातुओं का ग्रहण कर्त्तव्य है। अर्थात् (५२६) सूत्र में एकाच् और हलादिग्रहण से सूचि आदि धातुओं से यङ् नहीं प्राप्त है वह हो। सोसूच्यते। सोसूत्र्यते। मोमूत्र्यते॥ ५२८ ॥

५२९—यस्य हलः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४९ ॥

आर्द्धधातुकविषय में हल् से परे यकार का लोप हो। सोसूच्य+ अम्+ कृ+ एश्=सोसूचाञ्चक्रे । सोसूचिता । सोसूत्रिता । मोमूत्रिता ॥ ५२९ ॥

---

* तच्चावश्यमनभिधानमाश्रयितव्यं क्रियमाणेपि ह्येकाज्झलादिग्रहणे यत्रैवैकाचो हलादेश्चोत्पद्यमानेन यङार्थस्याभिधानं न भवति । न भवति तत्रोत्पत्तिः । तद्यथा । भृशं शोभते । भृशं रोचते । महाभाष्य० । अ० ३ । पा० १ । आ० २॥

५३०—दीर्घोऽकितः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८३ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो अङ्ग के अकित् अभ्यास को दीर्घ हो। अट् आदि अजादि धातुओं में यङन्त द्वितीय एकाच् अवयव टच मात्र को द्वित्व होता है। अटाट्यते। अटाटाञ्चक्रे। अटाटिष्यते ॥ ५३० ॥

५३१—यङि च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३० ॥

यङ् परे हो तो ऋ और संयोगादि ऋकारान्त धातु को गुणादेश होवे। अरार्यते। अशाश्यते। अराराञ्चक्रे। अरारिता। अशाशिता। ऊर्णोनूयते। बेभिद्यते। बेभिदिता। यहां अकारलोप को स्थानिवत् मानने से उपधा को गुण नहीं होता ॥ ५३१ ॥

५३२—नित्यं कौटिल्ये गतौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । २३ ॥

कुटिलता अर्थ में गत्यर्थक धातुओं से नित्य ही यङ् प्रत्यय हो। अर्थात् क्रियासमभिहार अर्थ में जो यङ् (५२६) कहा है वहां उसी अर्थ में लकारार्थ प्रक्रिया में पाक्षिक लोट् भी होगा परन्तु गत्यर्थ धातुओं से कुटिलगति में ही यङ् ही होगा लोट् नहीं। कुटिलं व्रजति, वाव्रज्यते। वाव्रज्यते ॥ ५३२ ॥

५३३—लुपसदचरजपजभदहदशगॄभ्यो भावगर्हायाम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २४ ॥

धात्वर्थ की निन्दा में लुप् आदि धातुओं से यङ् प्रत्यय हो। लुप् आदि से क्रियासमभिहार में यङ् नहीं होता किन्तु निन्दा में ही होता है। गर्हितं लुम्पति, लोलुप्यते। निन्दितं सीदति, सासद्यते ॥ ५३३ ॥

५३४—चरफलोश्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८७ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हों तो चर और फल धातु के अभ्यास को नुक् आगम होवे ॥ ५३४ ॥

५३५—वा०—अनुस्वारागमः पदान्तवच्च ॥

नुक् के स्थान में अनुस्वार आगम कहो और उस को पदान्त के समान कार्य हों ॥ ५३५ ॥

५३६—उत्परस्यातः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८८ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो चर और फल धातु के अभ्यास से परे अकार

को उकारादेश हो। चञ्चूर्यते। चंचूर्यते (१९७) दीर्घ । पम्फुल्यते । पंफुल्यते ॥ ५३६ ॥

५३७-जपजभदहदशभञ्जपशां च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८६ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो जप, जभ, दह, दश, भञ्ज और पश धातुओं के अभ्यास को नुक् आगम होवे । कुत्सितं जपति, जञ्जप्यते । जंजप्यते । जंजभ्यते । दंदह्यते । दंदश्यते । पश धातु सौत्र है किसी गण का नहीं पंपश्यते ॥ ५३७ ॥

५३८-ग्रो यङि ॥ अ० ॥ ८ । २ । २० ॥

यङ् परे हो तो गॄ धातु के रेफ को लकारादेश हो । गर्हितं गिरति, जेगिल्यते । अतिशयेन पुनः पुनर्वा ददाति, देदीयते । देधीयते । मेमीयते । तेष्ठीयते । जेगीयते । पेपीयते । जेहीयते । अवसेषीयते । यहां सर्वत्र (३४६) से द्वित्व से पूर्व ईकारादेश होता है । शोशूयते । शेश्वीयते । यहां (२९४) से संप्रसारण विकल्प० । अतिशयेन प्यायते, पेपीयते । यहां (१९३) सूत्र से प्यायी धातु को पी आदेश० । सास्मर्यते । सास्वर्यते (२५४) से ऋकार को गुण होता है ॥ ५३८ ॥

५३९-रीङ् ऋतः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २७ ॥

कृत् और सार्वधातुकभिन्न यकारादि और च्वि प्रत्यय परे हो तो ऋकारान्त अङ्ग को रीङ् आदेश हो । चेक्रीयते । जेह्रीयते । देध्रीयते । वेव्रीयते ॥ ५३९ ॥

५४०-न कवतेर्यङि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६३ ॥

यङ् परे हो तो कुङ् धातु के अभ्यास को चुत्व न हो । अतिशयेन कवते, कोकूयते । अतिशयेन कौति, कुवति वा चोकूयते ॥ ५४० ॥

५४१-कृषेश्छन्दसि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६४ ॥

यङ् परे हो तो वेदविषय में कृष् धातु के अभ्यास को चुत्व न हो । करीकृष्यते यज्ञकुणपः । अन्यत्र लोक में । चरीकृष्यते कृषीवलः ॥ ५४१ ॥

५४२-नीगवञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम्॥अ०॥७।४।८४

यङ् और यङ्लुक् परे हों तो वञ्चु, स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु, कस, पत, पद और स्कंद के अभ्यास को नीक् आगम हो। वनीवच्यते (५३०) इस सूत्र में अकित् कहने से दीर्घ नहीं होता । सनीस्रस्यते । दनीध्वस्यते । बनीभ्रस्यते । यहां (१३९) से नलोप०।

चनीकस्यते । पनीपत्यते । पनीपद्यते । चनीस्कद्यते ॥ ५४२ ॥

५४३–नुगतोनुनासिकान्तस्य ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८५ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो अनुनासिकान्त अङ्ग के अकारान्त अभ्यास को नुक् आगम हो । तंतन्यते । जंगम्यते । यंयम्यते । यँय्यम्यते । तपरग्रहण से पूर्व दीर्घ अभ्यास को नुक् नहीं होता । यथा बाभाम्यते । जाजायते । जञ्जन्यते । यहां (१८५) सूत्र से आकारादेश विकल्प० ॥ ५४३ ॥

५४४–हन्तेर्हिंसायां यङि घ्नीभावो वक्तव्यः ॥

यङ् प्रत्यय परे हो तो हिंसा अर्थ में हन् धातु को घ्नी आदेश हो । अतिशयेन हन्ति, जेघ्नीयते । हिंसा से अन्यत्र । जंघन्यते ॥ ५४४ ॥

५४५–रीगृदुपधस्य च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९० ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हों तो ऋदुपध धातु के अभ्यास को रीक् का आगम हो। अतिशयेन वर्त्तते, वरीवृत्यते । वरीवृध्यते, नरीनृत्यते । यहां (४५३) इस सूत्र से णत्व का निषेध होता है । चलीक्लृप्यते । यहां (२२३) से लत्व० ॥ ५४५ ॥

५४६ – रीगृत्वत इति वक्तव्यम् ॥

(रीगृदु०) यहां ऋकारवान् धातु के अभ्यास को रीक् कहना चाहिये । पुनः पुनर्वृश्चति, वरीवृश्च्यते । परीपृच्छ्यते ॥ ५४६ ॥

५४७ – स्वपिस्यमिव्येञां यङि ॥ अ० ॥ ६ । १ । १९ ॥

यङ् परे हो तो स्वपि, स्यमि और व्येञ् धातु को संप्रसारण हो । सोषुप्यते । सेसिम्यते । वेवीयते ॥ ५४७ ॥

५४८ – न वशः ॥ अ० ॥ ६ । १ । २० ॥

यङ् परे हो तो वश धातु को संप्रसारण न हो । वावश्यते ॥ ५४८ ॥

५४९–चायः की ॥ अ० ॥ ६ । १ । २१ ॥

यङ् परे हो तो चाय् धातु को की आदेश हो । अतिशयेन चायते, चेकीयते ॥ ५४९॥

५५० –ई घ्राध्मोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३१॥

यङ् परे हो तो घ्रा, ध्मा धातुओं को ईकारादेश हो । अतिशयेन पुनः पुनर्वा जिघ्रति, जेघ्रीयते । देध्मीयते ॥ ५५० ॥

५५१ — अयङ् यि क्ङिति ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २२ ॥

यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों तो शीङ् धातु को अयङ् आदेश हो । भृशं शेते, शाशय्यते । डोढौक्यते । तोत्रौक्यते । यहां अभ्यास को ह्रस्व होकर गुण हो जाता है । अतिशयेन प्रीणाति, पेप्रीयते ॥ ५५१ ॥

इति यङन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ यङ्लुगन्तप्रक्रिया ॥

५५२ — यङोऽचि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७४ ॥

अच् प्रत्यय परे हो तो यङ् का लुक् हो, तथा वेद में बहुल करके लुक् हो ॥ ५५२ ॥

५५३—न धातुलोप आर्द्धधातुके ॥ अ० ॥ १ । १ । ४ ॥

आर्द्धधातुक निमित्त मानकर जहां धात्ववयव लोप हुआ हो वहां इक् के स्थान में गुण वृद्धि न हों । अतिशयेन यो लोलूयते, स लोलुवः । पोपुवः । सनीस्रंसः । दनीध्वंसः । (दाधर्त्ति०) इस अगले सूत्र में (तेतिक्ते) इस प्रयोग में यद्यपि प्रत्ययलक्षण मान कर आत्मनेपद सिद्ध है तथापि आत्मनेपद निपातन से यह ज्ञापन है कि अन्यत्र यङ्लुगन्त धातुओं से परस्मैपद होता है ॥ ५५३ ॥

५५४—यङो वा ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ९४ ॥

यङ् से परे हलादि पित् सार्वधातुक को ईट् का आगम विकल्प करके हो । शाकुनिको लालपीति । दुंदुभिर्वावदीति । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति । यहां अन्तरङ्गत्व मानकर द्वित्व से पूर्व यङ्लुक् होता है । प्रत्ययलक्षण से द्वित्व, लट् आदि लकारों की उत्पत्ति, परस्मैपद और विकरणों का उत्सर्ग शप् विकरण होता है ॥ ५५४ ॥

५५५—दाधर्त्तिदर्धर्त्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणत्संसनिष्यदत्करिक्रत्कनिक्रदद्भरिभ्रद्दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतःसरीसृपतंवरीवृजन्मर्मृज्यागनीगन्तीति च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६५ ॥

दाधर्त्ति, दर्धर्त्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तेतिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतं, वरीवृजत्, मर्मृज्य और आगनीगन्ति ये अष्टादश वेद में निपातन हैं । दाधर्त्ति, यहां धारि वा धृञ्

धातु से श्लु वा यङ्लुक् में अभ्यास को दीर्घ और णिच्लोप निपातन है । दर्धर्षि, में श्लु प्रत्यय के परे अभ्यास को रुक् आगम । तथा दर्धर्षि, में भी । बोभूतु, में यङ्-लुगन्त भू धातु से लोट प्रथमैकवचन में गुण का निषेध नि० । यद्यपि (९१) सूत्र से गुण का निषेध हो जाता फिर यहां गुण के अभाव निपातन से बोभवीति, आदि में (९१) सूत्र से गुण का निषेध नहीं होता । तेतिक्ते, में यङ्लुगन्त तिज धातु से आत्मनेपद निपातन किया है । अलर्षि, यहां जुहोत्यादि ऋ धातु से लट् मध्यमैक-वचन में अभ्यास के हलादिःशेष रेफ को लत्व नि० । यहां सिप् निर्देश उपलक्षण-मात्र है इस से अलर्त्तिः दक्षः । इत्यादि में उक्त कार्य्य होता है । आपनीफणत्, में आङ्पूर्वक यङ्लुगन्त फण धातु के अभ्यास को नीक् आगम शतृ प्रत्यय में निपा-तन है । संसनिष्यदत्, में समपूर्वक यङ्लुगन्त स्यन्दू धातु को शतृ परे हो तो अभ्यास को निक् आगम निपातन है । यहां सम्पूर्व होना अतंत्र है इस से आसनिष्यदत्, यहां भी उक्त कार्य्य होता है । करिक्रत् । यहां यङ्लुगन्त कृञ् धातु के अभ्यास को चुत्व न होना तथा उस के ककार को रिक् आगम नि० । कनिक्रदत्, में लुङ् में क्रन्द से परे च्लि को अङ् आदेश, धातुद्विर्वचन, अभ्यास को चुत्व न होना और निक् आ-गम नि० । भरिभ्रत्, में यङ्लुगन्त भृञ् धातु के अभ्यास को जश्त्व और इत्व का होना और रिक् आगम नि० । दविध्वतः, में यङ्लुगन्त ध्वृ धातु के अभ्यास को विक् आ-गम और ऋलोप शतृपूर्वक जस् विभक्ति के परे निपात० । दविध्वतोरश्मयः सूर्य्यस्य। दविद्युतत्, में यङ्लुगन्त द्युत् धातु के अभ्यास को संप्रसारण निषेध अकारादेश और विक् आगम निपातन है । तरित्रतः, में तॄ धातु को श्लु विकरण से शतृ प्रत्यय के परे षष्ठी के एकवचन में अभ्यास को रिक् आगम नि० । सरीसृपतम्, में सृप धातु को श्लु विकरण में शतृ प्रत्यय के परे द्वितीया के एकवचन में अभ्यास को रीक् आगम नि० । वरीवृजत्, में वृजी धातु को श्लु विकरण से शतृप्रत्यय के परे अभ्यास को रीक् आगम नि० । मर्मृज्य, में मृज धातु से लिट् णल् परे हो तो अभ्यास को रुक्, धातु को युक् नि० । यहां मृज को लघूपध के अभाव से वृद्धि नहीं होती । आगनीगन्ति, में आङ्पूर्व गम धातु को श्लु विकरण से लट् में अभ्यास को चुत्व निषेध और नीक् आगम निपातन किया है । वक्ष्यन्ती वेदागनीगन्ति करणम् (८।४०) इस सूत्र में इति शब्द पढ़ने से इस प्रकार के अन्य प्रयोगों का भी संग्रह होता है (२६१) इस सूत्र में हु, श्नु ग्रहण का मुख्य प्रयोजन यही है कि यङ्लुगन्त में अजादि सार्वधातुक के परे इन को यणादेश न हो इस से हु, श्नु ग्रहण ज्ञापक है कि लोक में भी सब

लकारों के विषय में यङ्लुक् होता है । यथा अतिशयेन पुनः पुनर्वा भिनत्ति, बेभिदीति यहां (३९०) से गुणनि० । बेभेत्ति । बेभित्तः । बेभिदति । बेभिदीषि । बेभेत्सि । बेभित्थः । बेभित्थ । बेभिदीमि । बेभेद्मि । बेभिद्वः । बेभिद्मः । बेभेदाञ्चकार । बेभेदामास । बेभेदांबभूव । बेभेदिता । बेभेदिष्यति । बेभेदिषति । बेभेदिषाति । बेभिदति । बेभिदाति । बेभिदीतु । बेभेत्तु । अबेभिदीत् । अबेभेत् । अबेभेः । यहां (३५१) से रुत्वविकल्प होता है । अबेभिदीः । बेभिद्यात् । बेभिद्यास्ताम् । अबेभेदीत् । अबेभेदिष्टाम् । अबेभेदिष्यत् । चेच्छिद्रदीति । चेछेत्ति । इत्यादि । बोभवीति । बोभोति । बोभूतः । बोभुवति । बोभवांचकार । बोभविता । अबोभवीत् । अबोभूताम् । अबोभवुः । यहां (३६३) से गुणादेश० । बोभूयात् । बोभूयाताम् । बोभूयास्ताम् । अबोभूवीत् (८९) से सिचलुक् तथा (३३) से नित्यत्व मानकर वुक् । अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभवुः । अबोभाविष्यत् । अतिशयेन स्पर्द्धते, पास्पर्द्धीति । पास्पर्द्धि । पास्पर्द्धः । पास्पर्द्धति । पास्पर्त्सि । पास्पर्द्धि । यहां (३००) से हि को धि हुआ है अपास्पर्त् । अपास्पाः । यहां सिप् के परे (३५१) से रुत्वविकल्प हुआ । अपास्पर्त् । अपास्पर्द् । अतिशयेन गाधते, जागाद्धि । जागाधीति । जाघात्सि । अजाघात् । अजाघाः । यहां (२०४) से भष० । पुनः पुनर्नाथते, नानात्ति । नानाथीति । नानात्तः । चोस्कुन्दीति । चोस्कुन्ति । अचोस्कुन् । अचोस्कुन्ताम् । अचोस्कुन्दुः । अतिशयेन मोदते, मोमुदीति । मोमोदांचकार । मोमोदिता । अमोमुदीत् । अमोमोत् । अमोमुत्ताम् । अमोमुदुः । अमोमुदीः । अमोमोः । अमोमोत् । अमोमोदीत् । पुनः २ कूर्दते, चोकूर्दीति । चोकूर्त्ति । चोकूर्त्तः । चोकूर्दति । अचोकूर्त् । अचोकूर्दीत् । अचोकूः । अचोखूः । अजोगूः । अतिशयेन वञ्चति, वनीवङ्क्ति । वनीवञ्चीति । वनीवक्तः । वनीवचति । अवनीवञ्चीत् । अवनीवन् । अतिशयेन गच्छति, जंगमीति । जंगन्ति । जंगतः । यहां (३०३) से अनुनासिकलोप० । जंगमति । जंगन्मि । जंगन्वः । यहां (१७२) से म को न आ० । जंगमिता । यहां एकाच् से निषेध होने से इट्निषेध नहीं होता । जंगहि । यहां (मो नो धातोः) इस सूत्र से मकार को नकार होता है । अजंगमीत् । अजंगमिष्टाम् । यहां लृदित् कार्य (च्लि) को अङ् आदेश नहीं होता । भृशं हन्ति, जंघनीति । जंघन्ति । जंघतः । जंघ्नति । जंघनिता । जंघहि । अजंघनीत् । अजंघन् । बध्यात् यहां द्वित्व आदेश होकर बध आदेश होता है फिर आदेश स्थानिवत् मानकर अनभ्यास निषेध से बधादेश को द्वित्व नहीं होता है । आङ् पूर्व से (आङो यमहन :) से आत्मनेपद होगा । आजंघते । इत्यादि । अतिशयेन घरति,

चञ्चुरीति । चञ्चूर्ति । चञ्चूर्तः । चञ्चुरति । अचञ्चुरीत् । अचञ्चूः । चङ्खनीति । चङ्खन्ति । चङ्खातः । यहां (३९४) सूत्र से आकारादेश । चङ्खाहि । अचङ्खनीत् । अचङ्खन् । अचङ्खाताम् । अचंखनु चंखन्यात् । चङ्खायात् । यहां (१८५) से आकारादेश विकल्प । अचंखनीत् । अतिशयेन यौति, योयोति । योयवीति । यहां उतो वृद्धि० । इस सूत्र में (नाभ्यस्ता०) इस सूत्र की अनुवृत्ति होने से वृद्धि न हुई । अयोयवीत् । अयोयोत् । योयुयात् । आशीर्लिङ् में (१६०) दीर्घ योयूयात् । अयोयावीत् । नोनवीति । नोनोति । अतिशयेन जहाति, जाहेति । जाहाति । जाहीतः यहां (३८३) से ईकारादेश ० । जाहति । जाहेषि । जाहासि । जाहीथः । यहां जहातेश्च, आ च हौ, लोपो यि, घुमास्था०, एर्लिङि, ये पांच सूत्र शुद्धगण के निर्देश से प्रवृत्त नहीं होते हैं जाहीहि । अजाहेत् । अजाहात् । अजाहीताम् । अजाहुः । जाहीयात् । जाहायात् अजाहासीत् । अजाहासिष्टाम् । अजाहिष्यत् । अतिशयेन स्वपिति, सास्वपीति । सास्वप्ति । यहां यङ् का लुक् होने से (न लुमतांगस्य) इस निषेध से (स्वपिस्यमि०) संप्रसारण और शुद्धगण के उच्चारण से (रुदादिभ्यः०) यह इट् नहीं होता । सास्वप्तः । सास्वपति । असास्वपीत् । असास्वप् । सास्वप्यात् । आशीर्लिङ् में सासुप्यात् । यहां (वचिस्वपि०) इससे सम्प्रसारण होता है । असास्वापीत् । असास्वपीत् ॥ ५५५ ॥

५५६—रुग्रिकौ च लुकि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९१ ॥

यङ्लुक् परे हो तो ऋकारोपध धातु के अभ्यास को रुक् रिक् और रीक् आगम हों । अतिशयेन वर्त्तते, वर्वृतीति । वरिवृतीति । वरीवृतीति । वर्वर्त्ति । वरिवर्त्ति । वरीवर्त्ति । वर्वृत्तः । वर्वृताति । वर्वृत्तामास । वर्वृत्तिता । वर्वृत्तिष्यति । वर्वृतति । वरिवृतति । वरीवृतति । वर्वृताति । वरिवृताति । वरीवृताति । वर्वर्त्तिषाति । वरिवर्त्तिषाति । वरीवर्त्तिषाति । वर्वार्त्तिषाति वरिवार्तिषाति । वरीवार्तिषाति । अवर्वृतीत् । अवर्वर्त्त । अवर्वाः । अवर्वर्तीत् । अतिशयेन गर्हते, जर्गृहीति । जर्गर्ढि । जर्गृढः । जर्गृहति । अजर्घट् । अजर्घड् । अतिशयेन गृह्णाति, जागृहीति । जाग्राढि । तस् आदि में ङित् मानकर संप्रसारण होता है वह बहिरङ्ग है इस से यहां अभ्यास को रुक् आदि नहीं होते । जागृढः । जागृहति । जागृहीषि । जाग्राढि । जाग्रहिता । यहां (ग्रहोलिटि दीर्घः) यह नहीं होता क्योंकि वहां एकाच् की अनुवृत्ति है । जर्गृधीति । जर्गर्द्धि । जर्गृद्धः । जर्गृधति । जर्गृधीषि । जर्घर्त्सि । अजर्गृधीत् । । यहां इट् के अभावपक्ष में गुण, हल्ङ्याादिलोप, भष्भा०, जश्त्व और चर्त्व

होता है । अजर्गृद्धाम् । अजर्घाः । अजर्गर्धीत् । अजर्गर्धिष्टाम् । अजर्गार्धिषुः ॥५५६॥

५५७—ऋतश्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ९२ ॥

यङ्लुक् परे हो तो ऋकारान्त धातु के अभ्यास को रुक् रिक् और रीक् का आगम हो । अतिशयेन करोति, चर्कर्ति । चरिकर्त्ति । चरीकर्त्ति । चर्करीति । चरिकरीति । चरीकरीति । चर्कृतः । चर्क्रति । चर्कराञ्चकार । चर्करिता । चर्करिषति । चर्करति । अचर्करीत् । अचर्कः । चर्कृयात् । चर्क्रियात् । यहां (२३९) से ऋ को रिङ् हो गया । अचर्कारीत् । ऋ धातु को यङ्लुक् में द्वित्व हुए पीछे (उरत्) इससे अभ्यास को अत्व, रपरत्व, हलादिशेष, रुक् और रिक् तथा रीक् के स्थान में (१५१) इयङ् होता है अतिशयेन ऋच्छति, अररीति । अरियरीति । अरियरीति अरर्त्ति । अरियर्ति । अर्ऋतः । अरियृतः । झि में यण और रुक् के रेफ का "रो रि,, करके लोप होता है "रो रि,, लोप करने में अजादेश स्थानिवत् नहीं होता । क्योंकि इस का पूर्वत्रासिद्धीय * कार्य्य में निषेध है । आरति । अरियृति । अरराञ्चकार । आरिता । आरियात् । अरिरियात् । अरीरियात् (ऋतश्च) यहां तपरकरण से कॄ, तॄ आदि दीर्घ ॠकारान्तों में रुक् रिक् रीक् नहीं होते । अतिशयेन किरति, चाकर्त्ति । चाकरीति । पुनः पुनस्तरति, तातरीति । तातर्ति । तातीर्तः । तातिरति । तातरिता । तातरीता । तातीर्हि । अतातरीत् । अतातः । अतातीर्ताम् । अतातरुः । अतातारीत् । अतातारिष्टाम् । इत्यादि । पुनःपुनः पृच्छति, पाप्रच्छीति । पाप्राष्टि । पाप्रष्टः । पाप्रच्छति । पाप्रश्मि । पप्रश्मः (यहां छ्वोः शूडनुनासिके च) इस सूत्र से छ को श हो गया है । अतिशयेन ह्वयते, जाहयीति । जाहति । जाहतः । (लोपोव्योः०) इस से लोप० । जाहयति । जाहयीषि । जाहसि । जाहामि । यहां (२८) से दीर्घ । पुनः पुनर्हर्यति, जाहर्यीति । जाहार्ति । जाहर्तः । जाहर्यति । जाहार्हि । अजाहः । अजाहर्युः ॥ ५५७ ॥

५५८—ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च ॥ अ० ॥६।४।२० ॥

क्विप् झलादि और अनुनासिकादि प्रत्यय परे हों तो ज्वरादि धातुओं की उपधा और वकार को ऊठ् आदेश हो । अतिशयेन ज्वरति, जाज्वरीति । जाजूर्ति । जाजूर्तः । तात्वरीति । तातूर्त्ति । अतिशयेन स्रीव्यति, सेस्रिवीति । सेस्रूति । सेस्रूतः । आवीति ।

* वा०—पूर्वत्रासिद्धे च । संधि० १७ इस वार्त्तिक से स्थानिवत् का निषेध है ।

श्रौति । श्रौतः । मामवीति । मामोति । मामूतः । मामवति । मामोषि । मामोमि । मामावः । मामूमः । मामोतु । मामूनात् । मामूहि । मामवानि । अमामोत् । अमामोः । अमामवम् । अमामाव । अमामूम । अतिशयेन तूर्वति, तोतूर्वीति ॥ ५५८ ॥

५५९—राल्लोपः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २१ ॥

रेफ से परे शकार और छकार का लोप हो क्विप्, झलादि और अनुनासिकादि प्रत्यय परे हों तो । तोतोर्ति । तोतूर्त्तः । तोतूर्वति । तोथोर्त्ति । दोदोर्त्ति । दोधोर्त्ति । अतिशयेन मूर्च्छति, मोमोर्त्ति । मोमूर्त्तः । अतिशयेन वेत्ति, वेविदीति । वेवित्तः । वेविदति । अवेविदीत् । अवेवेत् । अवेवेः ॥ ५५९ ॥

इति यङ्लुगन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ नामधातुप्रक्रिया ॥

५६०—सुप आत्मनः क्यच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८ ॥

इच्छा करनेवाले के संबन्धी इच्छा के कर्मरूप सुबन्त से इच्छा अर्थ में विकल्प करके क्यच् प्रत्यय हो ॥ ५६० ॥

५६१—क्यचि च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३३ ॥

क्यच् परे हो तो अवर्णान्त अङ्ग को ईकारादेश हो । यह सूत्र (१६०) सूत्र का अपवाद है । आत्मनः पुत्रमिच्छति, पुत्रीयति । यहां (सुपो धातुप्रातिपदिकयोः) सूत्र से पुत्र शब्द की द्वितीया विभक्ति का लुक् हो जाता है । आत्मनो गामिच्छति, गव्यति (सन्धि० १५७) सूत्र से वान्तादेश । आत्मनो नावमिच्छति, नाव्यति । यहां पदान्त (५६२) के न होने से अवर्णपूर्वक यकार का लोप (सन्धि० १७०) सूत्र से नहीं होता । गव्याञ्चकार । गव्यिता । नाव्याञ्चकार । नाव्यिता । यहां सन्निपातपरिभाषा के आश्रय से क्यच् के यकार का लोप नहीं होता ॥ ५६१ ॥

५६२—नः क्ये ॥ अ० ॥ १ । ४ । १५ ॥

क्यच् क्यङ् और क्यष् परे हों तो नकारान्त की ही पदसंज्ञा हो अन्य की नहीं । आत्मनो राजानमिच्छति, राजीयति । यहां पदसंज्ञा होने से राजन् शब्द के नकार का लोप होता है । राजीयाञ्चकार । राजीयिता । राजीयिष्यति । राजीयिषति । राजीयिषाति । राजीयतु । अराजीयत । राजीयेत् । राजीय्यात् । अराजीयीत् । अराजीयिष्यत् ॥ ५६२ ॥

५६३—प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ९८ ॥

प्रत्यय और उत्तरपद परे हों तो एकवचन में वर्त्तमान मपर्यन्त युष्मद् अस्मद् शब्दों को त्व, म आदेश हों । आत्मनस्त्वामिच्छति, त्वद्यति । मद्यति । एकवचन के कहने से युष्मद्यति । अस्मद्यति । यहां त्व, म आदेश नहीं होते । आत्मनो गिरमिच्छति, गीर्यति । (१८७) दीर्घादेश० पूर्यति । दिवमिच्छति, दिव्यति । धातु को दीर्घ कहा दिव् शब्द के इकार को नहीं होता । अध इच्छति, अधस्यति । आत्मनः कर्त्तारमिच्छति, कर्त्रीयति (९८) ऋ को रीङ् आदेश० ॥ ५६३ ॥

५६४—क्यच्व्योश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १५२ ॥

क्य और च्वि प्रत्यय परे हो तो हल् से परे अपत्यसम्बन्धी यकार का लोप हो। आत्मनो गार्ग्यमिच्छति, गार्गीयति । वात्सीयति । आत्मनो वाचमिच्छति, वाच्यति । आत्मनः कविमिच्छति, कवीयति (१६०) दीर्घ । समिधमिच्छति, समिध्यति ॥ ५६४ ॥

५६५—क्यस्य विभाषा ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५० ॥

हल् से परे जो क्य प्रत्यय का यकार उस का विकल्प करके लोप हो आर्द्धधातुक विषय में । समिधाञ्चकार । यहां प्रथम अकारलोप (१७२) से होकर उस को स्थानिवत् मानके लघूपध गुण नहीं होता । समिध्याञ्चकार । समिधिता । समिध्यिता । इत्यादि (५६०) सूत्र में सुप्ग्रहण इसलिये है कि वाक्य में क्यच् न हो जैसे । महान्तं पुत्रमिच्छति । और आत्माग्रहण इसलिये है कि राज्ञः पुत्रमिच्छति । यहां क्यच् न हो ॥ ५६५ ॥

५६६—वा०—क्यचि मान्ताऽव्ययप्रतिषेधः ॥

मकारान्त और अव्यय शब्दों से क्यच् प्रत्यय न हो । इदमिच्छति । किमिच्छति । उच्चैरिच्छति । नीचैरिच्छति । स्वरिच्छति । इत्यादि ॥ ५६६ ॥

५६७— अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्द्धेषु ॥
अ० ॥ ७ । ४ । ३४ ॥

बुभुक्षा, पिपासा अभिलाषा इन अर्थों में अशनाय, उदन्य और धनाय ये यथासंख्य करके तीनों निपातन हैं । अशनाय, यहां अशन शब्द को आत्व क्यच् प्रत्यय के परे निपातन है । आत्मनोऽशनमिच्छति, अशनायति । बुभुक्षा से अन्यत्र ।

आत्मनोऽशनं संघातमिच्छति, अशनीयति । उदन्य, यहां उदक शब्द को उदन् आदेश निपातन है । उदकमिच्छति, उदन्यति । पीने की इच्छा से अन्यत्र । उदकीयति । धनाय, यहां धन शब्द को आकारादेश निपातन है । धनायति । अभिलाषा से अन्यत्र । धनीयति ॥ ५६७ ॥

५६८ – न छन्दस्यपुत्रस्य ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३५ ॥

वेदविषय में क्यच् परे हो तो पुत्रभिन्न अवर्णान्त अङ्ग को ईत्व न हो । मित्रयति । पुत्र शब्द के ग्रहण से यहां न हुआ । पुत्रीयन्तः सुदानवः । अत्यल्पमिदमुच्यते (अपुत्रस्येति, अपुत्रादीनामिति वक्तव्यम्) इहापि यथा स्यात् जनीयन्तोऽन्वग्रवः ॥ ५६८ ॥

५६९ – क्याच्छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७० ॥

वेद में क्य प्रत्ययान्त धातुओं से तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारि इन अर्थों में उ प्रत्यय हो । मित्रयुः । संस्वेदयुः । देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥ ५६९ ॥

५७० – दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यतिरिषण्यति ॥ अ० ॥ ७।४।३६॥

वेद में क्यच् प्रत्ययान्त दुरस्यु, द्रविणस्यु, वृषण्यति, रिषण्यति, ये शब्द निपातन किये हैं । दुरस्यु, यहां दुष्ट शब्द को दुरस् आदेश नि० । अवियोना दुरस्युः । दुष्टीयति । यह लोक में होता है । द्रविण शब्द को द्रविणस्भाव निपातन है । द्रविणस्युर्विपन्यया । द्रविणीयति । यह लोक में होता है । वृष शब्द को वृषण् निपात० । वृषण्यति । लोक में । वृषीयति । रिष्ट शब्द को रिषण्भाव निपात० । रिषण्यति । लोक में । रिष्टीयति ॥ ५७० ॥

५७१ – अश्वाघस्यात् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३७ ॥

वेदविषय में क्यच् परे हो तो अश्व और अघ अङ्ग को आकारादेश हो । अश्वायन्तो मघवन् । मा त्वा वृका अघायवो विदन् । लोक में अश्वीयति । अघीयति । यह अश्व और अघ अङ्ग का आत्वविधान ज्ञापक है कि इस प्रकरण में (१६०) इस से दीर्घ नहीं होता ॥ ५७१ ॥

५७२ – देवसुम्नयोर्यजुषि काठके ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३८ ॥

यजुर्वेद की काठक शाखा में देव और सुम्न अङ्ग को आकारादेश हो क्यच् परे हो तो । देवायन्तो यजमानाय । सुम्नायन्तो हवामहे । यजुर्ग्रहण से । देवाञ्जिगाय सुम्नयुः । यहां नहीं होता । काठकग्रहण से । सुम्नयुरिदमासीत् ॥ ५७२ ॥

५७३—कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३९ ॥

वेदविषय में क्यच् परे हो तो कवि अध्वर और पृतना अङ्ग का लोप हो। कव्यन्तः सुमनसः। अध्वर्यन्तः। पृतन्यन्तस्तिष्ठन्ति ॥ ५७३ ॥

५७४—अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि ॥ अ० ॥ ७ । १ । ५१ ॥

क्यच् परे हो तो अश्व, क्षीर, वृष, लवण इन अङ्गों को आत्मप्रीति अर्थ में असुक् आगम हो। अश्वस्यति बड़वा। क्षीरस्यति माणवकः। आत्मनो वृषमिच्छति, वृषस्यति गौः। लवणमिच्छति, लवणस्यत्युष्ट्रः। आत्मप्रीति अर्थ से अन्यत्र। अश्वीयति।। क्षीरीयति। वृषीयति। लवणीयति। इत्यादि में नहीं होता ॥ ५७४ ॥

५७५—वा०—अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम् ॥

अश्वक्षीर० सूत्र में जो असुक् कहा है वह अश्व और वृष शब्दों से मैथुन की इच्छा में हो। उदाहरण पूर्वोक्त जानो ॥ ५७५ ॥

५७६—वा०—क्षीरलवणयोर्लालसायाम् ॥

क्षीर और लवण शब्द से लालसा (अत्यन्त भोजन की इच्छा) में असुक् होता है। यहां भी उदाहरण पूर्वोक्त जानो ॥ ५७६ ॥

५७७—वा०—अपर आह – सर्वप्रातिपदिकेभ्यो लालसायामिति वक्तव्यम् ॥

किन्हीं लोगों के मत में क्यच् परे हो तो सब प्रातिपदिकों को असुक् हो। आत्मनो दधीच्छति, दध्यस्यति। मध्वस्यति। इत्यादि ॥५७७ ॥

५७८—वा०—अपर आह—सुग्वक्तव्यः ॥

कोई आचार्य कहते हैं कि क्यच् के परे सब प्रातिपदिकों को सुक् का आगम हो। दधिस्यति। मधुस्यति ॥ ५७८ ॥

५७९—काम्यच्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९ ॥

सुबन्त कर्म से आत्मा की इच्छा में काम्यच् प्रत्यय होवे। आत्मनः पुत्रमिच्छति, पुत्रकाम्यति। वस्त्रकाम्यति। यह सूत्र (५६०) सूत्र से पृथक् इसलिये किया है कि

इस से अगले सूत्रों में क्यच् की अनुवृत्ति जावे काम्यच् की नहीं। दशरकाम्यति। सर्पिष्काम्यति। और काम्यच् प्रत्यय मान्त तथा अव्ययों से भी होता है। इदङ्काम्यति। किङ्काम्यति। स्वःकाम्यति। उच्चैःकाम्यति ॥ ५७९ ॥

५८०—उपमानादाचारे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १० ॥

आचार अर्थ में उपमानवाची सुबन्त कर्म से विकल्प करके क्यच् प्रत्यय हो। आचाररूप क्रिया प्रत्यय का अर्थ होने से उसी की अपेक्षा से उपमान को कर्मत्व बनता है। पुत्रमिवाचरति, पुत्रीयति शिष्यम् मित्रमिवाचरति, मित्रीयति शत्रुम्। इत्यादि ॥५८०॥

५८१—वा०—अधिकरणाच्च ॥

अधिकरणवाची प्रातिपदिक से भी आचार अर्थ में क्यच् प्रत्यय होवे। कुट्यामिवाचरति, कुटीयति प्रासादे। प्रासादीयति कुट्याम्। पर्यङ्कीयति मञ्चके॥ ५८१ ॥

५८२—कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११ ॥

आचार अर्थ में उपमानवाची कर्त्ता सुबन्त से विकल्प करके क्यङ् प्रत्यय और सकार का लोप हो। जो सकारान्त शब्द हैं उन के लिये सकार का लोप कहा है ॥ ५८२ ॥

५८३—वा०—सलोपो वा ॥

सकारान्त शब्दों के सकार का लोप विकल्प करके होवे ॥ ५८३ ॥

५८४—वा०—ओजोऽप्सरसोर्नित्यम् ॥

ओजस् और अप्सरस् शब्द के सकार का लोप नित्य हो। श्येन इवाचरति, श्येनायते काकः। यहां सर्वत्र क्यङ् के ङित्व से आत्मनेपद होता है। पण्डित इवाचरति, पण्डितायते मूढः। राजेवाचरति, राजायते। पय इवाचरति, पयायते। पयस्यते। तकम् (५८३) सलोप। यशायते। यशस्यते। विद्वायते। विद्वस्यते। त्वद्यते। मद्यते। ओज इवाचरति, ओजायते। अप्सरायते। हंसायते। सारसायते। इत्यादि में अन्त्य सकार के न होने से सलोप नहीं होता ॥ ५८४ ॥

५८५—वा०—आचारेऽवगल्भक्लीवहोडेभ्यः क्विब् वा ॥

अवगल्भ, क्लीब और होड शब्दों से आचार अर्थ में विकल्प करके क्विप् प्रत्यय होवे। पक्ष में क्यङ् होता है। क्विप् का सबलोप होकर। अवगल्भते। अव-

गल्भायते । विक्लीवते । विक्लीवायते । विहोडते । विहोडायते । अवगल्भाञ्चक्रे । अवगल्भिष्यते । इत्यादि । इन शब्दों में क्विबन्तों से आत्मनेपद प्राप्त नहीं इसलिये अवगल्भादि शब्दों को भाष्यकार ने अनुदात्तेत् माना है ॥ ५८५ ॥

५८६–वा०–अपर आह-सर्वप्रातिपदिकेभ्य आचारे क्विब्वा वक्तव्यः॥

किन्हीं के मत में सब प्रातिपदिकों से आचार अर्थ में क्विप् होता है । अश्व इवाचरति, अश्वति । गर्दभति । अश्वायते । गर्दभायते । अ इवाचरति, अति । अतः। अन्ति । लिट् में । औ । अतुः । उः । मालेवाचरति, मालाति । मालाञ्चकार । अमालात् । अमालासीत् । कविरिवाचरति, कवयति । कवीयात् । अकवयीत् । विरिवाचरति, वयति । विवाय । विव्यतुः । अवयीत् । श्रीरिव, श्रयति । शिश्राय । शिश्रियतुः । शिश्रियुः । श्रीयात् । पितेवाचरति, पितरति । पित्रियात् (२३९) से रिङ् आदेश भूरिवाचरति, भवति । बुभाव । अभावीत् । द्रुरिवाचरति, द्रवति । अद्रावीत् ॥ ५८६ ॥

५८७–अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ॥ अ० ॥६।४।१५॥

क्वि और झलादि कित् ङित् परे हों तो अनुनासिकान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ हो । इदमिवाचरति, इदामति । राजेवाचरति, राजानति । पन्था इवाचरति, पथीनति । ऋभुक्षीणति । द्योरिवाचरति, द्यवति । यहां वकार को ऊठ्, यणादेश और शबाश्रय गुण होता है ॥ ५८७ ॥

५८८–क्यङ्मानिनोश्च ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ३६ ॥

क्यङ् प्रत्यय और मानिन् शब्द परे हो तो ऊङ्रहित भाषितपुंस्क स्त्रीलिङ्ग शब्द को पुंवद्भाव होवे । एनी–इवाचरति, एतायते । श्येनी–इवाचरति, श्येतायते । यहां स्त्री प्रत्यय के निमित्त से हुए तकार को नकार आदि कार्य भी निवृत्त हो जाते हैं । कुमारीवाचरति, कुमारायते । हरिणीवाचरति, हरिणायते । गुर्वीवाचरति, गुरूयते । पट्वीमृद्व्याविवाचरति, पटूमृदूयते ॥ ५८८ ॥

५८९–न कोपधायाः ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ३७ ॥

ककारोपध स्त्री को पुंवद्भाव न हो क्यङ् और मानिन् शब्द परे हों तो । पाचिका इवाचरति, पाचिकायते । मद्रिकायते । इत्यादि ॥ ५८९ ॥

५९०–भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः ॥ अ० ॥३।१।१२॥

भू धातु के अर्थ में अभूततद्भावविषयक भृशादि शब्दों से क्यङ् प्रत्यय होवे

और भृशादिकों में जो हलन्त हैं उन के अन्त्य हल् का लोप हो । अभृशो भृशो भवति, भृशायते । इस सूत्र में च्विप्रत्ययान्त के निषेध से अभूततद्भाव समझा जाता है । अभूततद्भाव ग्रहण से । क दिवा भृशा भवन्ति । यहां क्यङ् नहीं होता । सुमनस्, सुमनायते । सकारलोप । सुमनायांचक्रे । सुमनायिता । सुमनायिष्यते । सुमनायिषते । सुमनायिषातै । सुमनायताम् । स्वमनायत । यहां मनस् शब्दमात्र से क्यङ् प्रत्यय है इस से मनस् के पूर्व अट् होता है । क्योंकि चुरादिगणपठित (संग्रामयुद्धे *) यह नियमार्थ है कि सोपसर्ग प्रातिपदिकसे जो क्यजादि प्रत्यय हों तो संग्राम ही से हों औरों से न हों ॥ ५९० ॥

५९१—लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३ ॥

भू धातु के अर्थ में अभूततद्भावविषयक लोहितादि और डाच्प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से क्यष् प्रत्यय हो ॥ ५९१ ॥

५९२—वा क्यषः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ९० ॥

क्यष् प्रत्ययान्त धातु से परस्मैपद विकल्प करके हो । अलोहितो लोहितो भवति, लोहितायते । लोहितायति । अपटपटा पटपटा भवति, पटपटायति । पटपटायते॥ ५९२ ॥

५९३—वा०—लोहितडाज्भ्यः क्यष्वचनं भृशादिष्वितराणि ॥

(५९१) सूत्र से जो क्यष् प्रत्यय कहा है वह लोहित और डाच् प्रत्ययान्तों से ही कहना चाहिये किन्तु लोहितादि गण के नील आदि शब्द भृशादिकों में पढ़ने चाहियें । अनीलो नीलो भवति, नीलायते पटः । यहां क्यषन्त से जो उभयपद होता है वह न हुआ । अलोहिनी लोहिनी भवति, लोहिनीयति । लोहिनीयते । यहां "प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्„ इस परिभाषा से लोहिनी शब्द का भी ग्रहण होता है ॥ ५९३ ॥

५९४—कष्टाय क्रमणे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४ ॥

चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से क्रमण अर्थात् उत्साह अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो । कष्टाय क्रमते, कष्टायते ॥ ५९४ ॥

* अवश्यं संग्रामयतेः सोपसर्गादुत्पत्तिर्वक्तव्या । असंग्रामयत शूर इत्येवमर्थम् । तन्नियमार्थं भविष्यति संग्रामयतेरेव सोपसर्गान्नान्यस्मात् सोपसर्गादिति ॥ महाभाष्य ३ । १ । २२ ॥

५९५-वा०-सत्रकक्षकष्टकृच्छ्रगहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायाम् ॥

कण्वचिकीर्षा अर्थात् पाप करने की इच्छा में सत्र, कक्ष, कष्ट, कृच्छ्र और गहन शब्दों से क्यङ् प्रत्यय हो। कण्वं चिकीर्षति। सत्रायते। कक्षायते। कष्टायते। कृच्छ्रायते। इन में स्वपदविग्रह नहीं होता है। कण्वचिकीर्षा से अन्यत्र। कष्टं क्रामति ॥ ५९५ ॥

५९६-कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्त्तिचरोः॥ अ० ॥ ३ । १ । १५ ॥

वर्त्ति और चर धातु के यथाक्रम से जो रोमन्थ और तपःकर्म्म उन से क्यङ् प्रत्यय हो। रोंथाना रोमन्थ कहाता है ॥ ५९६ ॥

५९७-वा०-हनुचलन इति वक्तव्यम् ॥

ठोड़ी चलाने अर्थ में क्यङ् प्रत्यय कहना चाहिये। रोमन्थं वर्त्तयति, रोमन्थायते ॥ ५९७ ॥

५९८—वा०-तपसः परस्मैपदं च ॥

क्यङन्त तपःशब्द से परस्मैपद भी हो जावे। तपश्चरति, तपस्यति ॥ ५९८ ॥

५९९-वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ॥ अ० ॥ ३ । १ । १६ ॥

उगलने अर्थ में वाष्प और ऊष्म कर्मवाची शब्दों से क्यङ् प्रत्यय हो। वाष्पमुद्वमति, वाष्पायते। ऊष्मायते ॥ ५९९ ॥

६००-वा०-फेनाच्च ॥

फेन शब्द से भी उगलने अर्थ में क्यङ् हो। फेनमुद्वमति, फेनायते ॥ ६०० ॥

६०१-शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १७ ॥

करने अर्थ में शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ प्रातिपदिक से क्यङ् प्रत्यय हो। शब्दं करोति, शब्दायते। वैरायते। कलहायते। अभ्रायते। कण्वायते। मेघायते ॥ ६०१ ॥

६०२-वा०-सुदिनदुर्दिनाभ्यां च ॥

सुदिन और दुर्दिन शब्द से करने अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो। सुदिनं करोति, सुदिनायते। दुर्दिनं करोति, दुर्दिनायते ॥ ६०२ ॥

६०३-वा०-नीहाराच्च ॥

नीहारं करोति, नीहारायते ॥ ६०३ ॥

६०४-वा०-अटाट्टाशीकाकोटापोटासोटाप्रुष्टाप्लुष्टाग्रहणम् ॥

करने अर्थ में अटा, अट्टा, शीका, कोटा, पोटा, सोटा, प्रुष्टा और प्लुष्टा शब्दों से क्यङ् प्रत्यय हो। अटां करोति, अटायते। अट्टायते। शीकायते। कोटायते। पोटायते। सोटायते। प्रुष्टायते। प्लुष्टायते ॥ ६०४ ॥

६०५-सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् ॥ अ० ॥ ३।१।१८॥

वेदना अर्थ में ज्ञाता के संबन्धी सुख आदि कर्मवाची प्रातिपदिकों से क्यङ् प्रत्यय हो। सुखं वेदयते, सुखायते। दुःखायते। करुणायते। कृपणायते। इत्यादि। इस सूत्र में कर्तृग्रहण इसलिये है कि सुखं वेदयति प्रसाधको देवदत्तस्य। यहां सुख शब्द से क्यङ् न हो ॥ ६०५ ॥

६०६-नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ॥ अ० ॥ ३।१।१९ ॥

नमस्, वरिवस् और चित्रङ् प्रातिपदिकों से सत्कार करने आदि अर्थों में क्यच् प्रत्यय हो। (नमसः पूजायाम्, वरिवसः परिचर्यायाम्, चित्रङ आश्चर्ये) नमः करोति नमस्यति गुरुम्। वरिवः करोति वरिवस्यति पितरम्। चित्रं करोति चित्रीयते। चित्रङ् शब्द में ङित् अनुबन्ध आत्मनेपद होने के लिये है ॥ ६०६ ॥

६०७-पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् ॥ अ० ॥ ३।१।२० ॥

करणविशेष में पुच्छ, भाण्ड और चीवर प्रातिपदिक से णिङ् प्रत्यय हो। पुच्छा-दुदसने व्यसने पर्य्यसने च। पुच्छमुदस्यति, उत्क्षिपति। उत्पुच्छयते। पुच्छं व्यस्य-ति, विविधं विरुद्धं वा क्षिपति, विपुच्छयते। पुच्छं पर्य्यस्यति, परितः क्षिपति परिपुच्छ-यते। भाण्डात् समाचयने। भाण्डानि समाचिनोति, संभाण्डयते राशीकरोतीत्यर्थः। चीवरादर्जने परिधाने च। चीवराण्यर्जयति परिधत्ते वा संचीवरयते भिक्षुः ॥ ६०७ ॥

६०८-मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच् ॥ अ० ॥ ३।१।२१ ॥

करण अर्थ में मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत और तूस्त से णिच् प्रत्यय हो। मुण्डं करोति, मुण्डयति। मिश्रं करोति, मिश्रयति। श्ल-क्ष्णयति। लवणयति। व्रतयति। वस्त्रयति। हलिकल्योरत्वनिपातनं सन्वद्भावप्रति-षेधार्थम्। हलिं करोति, हलयति। कलयति। अजहलत्। अचकलत्। कृतयति।

वितूस्तयति *केशान् विशदीकरोति ॥

सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्ण०

यह सूत्र पीछे (४५६) संख्या में लिख चुके हैं इस का शेष विवरण लिखने के लिये यहां लिखा है ॥ ६०८ ॥

६०९-वा०- णिविधावर्थवेदसत्यानामापुक् च ॥

णिच् विधि में अर्थ, वेद और सत्य शब्द को आपुक् आगम हो। अर्थमाचष्टे, अर्थापयति। वेदापयति। सत्यं करोति, आचष्टे वा सत्यापयति। पाशं विमुञ्चति। विपाशयति। रूपं पश्यति, रूपयति। वीणयोपगायति, उपवीणयति। तूलेनानुकुष्णाति, अनुतूलयति। श्लोकैरुपस्तौति, उपश्लोकयति। सेनया अभियाति, अभिषेणयति। (उपसर्गात्सुनोति० +) इस सूत्र से षत्व०। अभ्यषेणयत् (प्राक्सिता०) इस सूत्र से षत्व०। अभिषेणयितुमिच्छति, अभिषेणयिषति (स्थादिष्वभ्या०) इस सूत्र से षत्व०। लोमान्यनुमार्ष्टि, अनुलोमयति। त्वचं गृह्णाति, त्वचयति। वर्म्मणा संनह्यति, संवर्म्मयति। वर्णं गृह्णाति। वर्णयति। चूर्णैरवध्वंसयति, अनुचूर्णयति॥ ६०९ ॥

६१०-प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च ॥

प्रातिपदिक से धात्वर्थ में णिच् प्रत्यय और वह बहुल करके इष्ठन् प्रत्यय के तुल्य हो। पृथुमाचष्टे प्रथयति (स्त्रैण० ८९९) से ऋ को र आदेश। म्रदयति। भ्रशयति। क्रशयति। ऊढिमाख्यत्, औजिढत्। यहां ढत्वादिकों के असिद्ध होने से हति शब्द को द्वित्व होकर अभ्यास के हकार को चुत्व होता है। अथवा (पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने) इस वचन से ढत्वादि को असिद्ध मानकर ढि शब्द को द्वित्व होता है। औडिढत्। ऊढमाख्यत, औजढत्। औडढत् (ओः पुयण्०) यह यहां नहीं प्रवृत्त होता है क्योंकि इस सूत्र में पवर्ग और प्रत्याहार के वर्णों का ग्रहण है स्वमाचष्टे, स्वापयति। यहां (स्त्रैण० ८९९) प्रकृतिभाव (६०) वृद्धि और (४६२) पुक् हो जाता है। त्वामाऽऽचष्टे, त्वापयति। मामाचष्टे, मापयति। यहां

*तूस्ताः जोटीभूताः केशाः तूस्तं पापं वा।

+ उपसर्गात् सुनोति० प्राक्सितादड्व्यवायेऽ स्थादिष्वभ्यासे० इन सूत्रों को षत्वप्रकरण में लिखेंगे ॥

पररूप से पूर्व ही नित्यत्व मानके (स्त्रैण० ८८९) टिलोप हो० । युवामावां वा-चष्टे, युष्मयति अस्मयति । उदञ्चमाचष्टे, उदीचयति । उदैचिचत् । प्रत्यञ्चमाचष्टे, प्रतीचयति । प्रत्यचिचत् (इकोऽसवर्णे शा०) इस से प्रकृतिभावपक्ष में । प्रतिअचिचत् । सम्यञ्चमाचष्टे, समीचयति । सम्यचिचत् । समिअचिचत् । भुवमाचष्टे, भावयति । अबीभवत् । भ्रुवमाचष्टे, भ्रावयति । अबुभ्रवत् । श्रियमाचष्टे, श्राययति । अशिश्रियत् । गामाख्यत्, अजूगवत् । रायमाख्यत् । अरीरयत् । स्वआचष्टे, स्वयति । असस्वत् असिस्वत् । बहून् भावयति, बहयति । श्रीमतीं श्रीमन्तं वा स्तौति, श्रययति । अशिश्रयत् । पयस्विनीमाचष्टे, पयसयति । यहां टिलोप नहीं होता क्योंकि टिलोपापवाद (विन्मतोर्लुक् स्त्रैण० ७८८) इस से विन् प्रत्यय का लुक् हो जाता है । स्थूलमाचष्टे, स्थवयति । दूरं गच्छति, दवयति । इत्यादि प्रयोगों में जो २ कार्य्य (स्त्रैण० ८९१) सूत्र में जिन २ शब्दों को कहे हैं वें उन शब्दों को होते हैं । युवानं, युवयति । कनयति वा (स्त्रैण ० ७८७) से कन् आदेश वि० । अन्तिकं प्राप्नोति, नेदयति । बाढं साधयति । प्रशस्यं, प्रशस्ययति । यहां (श्र, ज्य) ये आदेश न होंगे क्योंकि नामधातुओं में उपसर्ग पृथक् माने हैं और पृथक् होने से (शस्य) शब्द प्रकृति रह जायगा (शस्य) को आदेश विधान नहीं है । वृद्धं सेवयते, ज्यापयति । प्रियमाचष्टे, प्रापयति । स्थिर, स्थापयति । स्फिर, स्फापयति । उर, वरयति । बहुलं, बंहयति । गुरुं, गरयति । तृप्रं, त्रपयति । दीर्घं, द्राघयति । वृन्दारकं, वृन्दयति ॥ ६१० ॥

६११—वा०—तत्करोतीत्युपसंख्यानं सूत्रयत्याद्यर्थम् ॥

सूत्रयति, इत्यादि प्रयोगों के लिये द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से करने अर्थ में णिच् प्रत्यय कहना चाहिये । सूत्रं करोति, सूत्रयति । व्याकरणस्य सूत्रं करोति व्याकरणं सूत्रयति । यहां वाक्य में जो षष्ठी है उस के स्थान में प्रत्ययोत्पत्ति में द्वितीया हो जाती है क्योंकि जो वह सूत्र और व्याकरण शब्द का सम्बन्ध है उस की प्रत्ययोत्पत्ति में निवृत्ति हो जाती है ॥ ६११ ॥

६१२—वा०—आख्यानात् कृतस्तदाचष्टे कृल्लुक् प्रकृतिप्रत्ययापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकम् ॥

द्वितीयासमर्थ आख्यान कृदन्त से कहने अर्थ में णिच् प्रत्यय हो कृत् का लुक् प्रकृति का पूर्वरूप और प्रकृति के तुल्य कारक हो । कंसवधमाचष्टे कंसं घातयति ।

यहां अप् जो कृत् प्रत्यय है उस का लुक् [बध] का पूर्वरूप और कंस कारक प्रकृति के तुल्य होता है । बलिबन्धमाचष्टे, बलिं बन्धयति । राजागमनमाचष्टे, राजानमागमयति ॥ ६१२ ॥

६१३—वा०—दृश्यर्थायां च प्रवृत्तौ ॥

जिस में देखना प्रयोजन है ऐसी जहां प्रवृत्ति हो वहां आख्यान कृदन्त से णिच् और पूर्वोक्त समस्त कार्य्य हो । मृगरमणमाचष्टे, मृगान् रमयति । दृश्यर्थप्रवृत्ति क्यों कही कि । ग्रामे मृगरमणमाचष्टे । यहां न हो ॥ ६१३ ॥

६१४—वा०—आङ्लोपश्च कालात्यन्तसंयोगे मर्य्यादायाम् ॥

समय के अत्यन्तसंयोग अर्थ में मर्य्यादा प्राप्त हो तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से णिच् पूर्वोक्त कार्य्य और आङ् का लोप हो । आरात्रिविवासमाचष्टे, रात्रिं विवासयति । जबतक रात्रि व्यतीत होती है तबतक किसी प्रसंग को कहता है ॥ ६१४ ॥

६१५—वा०—चित्रीकरणे प्रापि ॥

आश्चर्य्य करने अर्थ में प्राप्ति अर्थ हो तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से णिच् और पूर्वोक्त कार्य्य हों । उज्जयिन्याः प्रस्थितो माहिष्मत्यां सूर्योद्गमनं संभावयते, सूर्यमुद्गमयति । कोई पुरुष उज्जयिनी नगरी से चला हुआ और माहिष्मती नगरी में सूर्य के उदय को प्राप्त होता है । यहां अतिदूर देश पहुंचने से आश्चर्य का निश्चय होता है ॥ ६१५ ॥

६१६—नक्षत्रयोगे ज्ञि ॥

नक्षत्र के योग में जानना अर्थ हो तो द्वितीयान्त प्रातिपदिक से णिच् प्रत्यय तथा पूर्वोक्त कार्य अर्थात् कृत्प्रत्यय का लुक् प्रकृति का पूर्वरूप और प्रकृति के तुल्य कारक हो । पुष्ययोगं जानाति, पुष्येण योजयति । मघाभिर्योजयति ॥ ६१६ ॥

इति नामधातुप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ कण्ड्वादिप्रक्रिया ॥

६१७—कण्ड्वादिभ्यो यक् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २७ ॥

कण्ड्वादि धातुओं से यक् प्रत्यय नित्य हो ॥ ६१७ ॥

६१८—का०—धातुप्रकरणाद्धातुः कस्य चासंजनादपि ।
आह चायमिमं दीर्घं मन्ये धातुर्विभाषितः ॥

धातु के अधिकार होने और यक् प्रत्यय में ककार अनुबंध करने से मैं इन

कण्ड्वादिकों को धातु मानता हूं तथा ये आचार्य्य इस कण्डू शब्द को दीर्घ पढ़ते अर्थात् दीर्घ पढ़ने का मुख्य प्रयोजन यही है कि एक पक्ष में यह कण्डू शब्द धातु और दूसरे पक्ष में प्रातिपदिक हो इस से इन को विकल्प करके धातु मानता हूं। प्रयोजन यह है कि कण्डूञ् आदि धातु और प्रातिपदिक दोनों हैं जिस पक्ष में धातु माने जाते हैं वहां (६१७) सूत्र से यक् होता है अन्यत्र नहीं [कण्डूञ्]गात्रविघर्षणे (शरीर खुजाना) ञकार अनुबन्ध से उभयपद होते हैं। कण्डूयति। कण्डूयते। कण्डूयांचक्रे। कण्डूयांबभूव। कण्डूयामास। कण्डूयिता। कण्डूयिष्यति। कण्डूयिषति। कण्डूयिषाति। कण्डूयतु। अकण्डूयत्। कण्डूयेत्। कण्डूय्यात्। अकण्डूयीत्। अकण्डूयिष्यत्। [मन्तु] अपराधे। रोषे इत्येके। मन्तूयति [वल्गु]पूजामाधुर्य्ययोः (सत्कार और मीठापन) वल्गूयति [असु] उपतापे (दुःख होना) असूयति [असू, असूञ्] इत्येके। अस्यति। असूयति। असूयते [लेट्,लोट्] धौर्त्ये, पूर्वभावे, स्वप्ने च। दीप्तावित्येके (धूर्त्तपन, पिछलापन और सोना तथा प्रकाश) लेट्यति। लोट्यति। लेटिता। लोटिता। [लेला]दीप्तौ। लेलायति। [इरस्, इरज्, इरञ्] ईर्ष्यायाम्। इरस्यति। इरज्यति। ईर्यति। ईर्यते (६१७) से दीर्घ [उषस्] प्रभातीभावे। (प्रातः काल का होना) उषस्यति [वेद] धौर्त्ये स्वप्ने च। वेद्यति [मेधा] आशुग्रहणे (तुरन्त लेना) मेधायति [कुसुभ] क्षेपे (निन्दा) कुसुभ्यति। [मगध] परिवेष्टने, नीचदास्ये इत्यन्ये (लपेटना तथा नीच की सेवा करना) मगध्यति [तंतस्, पंपस्,] दुःखे। तंतस्यति। पंपस्यति [सुख, दुःख] तत्क्रियायाम्। सुख्यति। दुःख्यति। सुखं दुःखं चानुभवति [सपर] पूजायाम्। सपर्यति [अरर] आराकर्म्मणि (चाम काटना आदि) अरर्यति [भिषज्] चिकित्सायाम्। भिषज्यति [भिषण्ज्] उपसेवायाम्। भिषण्ज्यति [इषुध] शरधारणे (बाण धारण) इषुध्यति [चरण, वरण] गतौ। चरण्यति। वरण्यति [चुरण] चौर्ये चुरण्यति [तुरण] त्वरायाम् (शीघ्रता) तुरण्यति [भुरण] धारणपोषणयोः। भुरण्यति [गद्गद] वाक्स्खलने (गिड़गिड़ाकर बोलना) गद्गद्यति [एला, केला, खेला] विलासे। एलायति। केलायति। खेलायति [इला] इत्यन्ये। इलायति। [खेला] स्खलने च। अदन्तोऽप्ययमित्यन्ये। खेलयति [लिट्] अल्पकुत्सनयोः। लिट्यति [लाट्] जीवने। लाट्यति [हृणीङ्] रोषणे लज्जायां च। हृणीयते [महीङ्] पूजायाम्। महीयते [रेखा] श्लाघासादनयोः (आत्मप्रशंसा, स्थिति) रेखायति [दुवस्] परितापपरिचरणयोः (कष्ट और सेवा) दुवस्यति [तिरस्] अन्तर्द्धौ। तिरस्यति [अगद] नीरोगत्वे। अगद्यति [उरस] बलार्थे। उरस्यति [तरण] गतौ।

तरणयति [पयस्] प्रसृतौ । पयस्यति [संभूयस्] प्रभूतभावे । (समर्थ होना) संभूयस्यति [अंवर, संवर] संभरणे । अंवर्यति । संवर्यति । आकृतिगणोयम् । यह कण्ड्वादि आकृतिगण अर्थात् इस गण में अर्थानुसार अन्य शब्द भी धातु माने जाते हैं ॥ ६१८ ॥

इति कण्ड्वादिप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ प्रत्ययमालाप्रक्रिया ॥

---*---

६१९-का०-शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थिकः । सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ॥

शेषाधिकार के प्रत्यय से समानरूपवाला शेषाधिकारी प्रत्यय और मतुप् प्रत्यय के अर्थवाले से समान रूपवाला मतुबर्थ प्रत्यय इष्ट नहीं । तथा इच्छा अर्थवाला सन् प्रत्यय जिस के अन्त में हो उस से फिर इच्छार्थ सन् प्रत्यय नहीं इष्ट है । शैषिकात्, शालायां भवः शालीयो घटः शालीये घटे भवमुदकम् । यहां (छ) प्रत्यय फिर न हुआ । और विरूप हो जाता है जैसे । अहिच्छत्रे भव आहिच्छत्र । आहिच्छत्रे भव- आहिच्छत्रीयो माणवकः । मतुबर्थीयात्, दण्डोऽस्यास्तीति, दण्डिकः दण्डिकोऽस्यास्तीति, यहां फिर मतुबर्थ ठन् प्रत्यय नहीं होता और विरूप तो होता है । जैसे दण्डिमती सेना । सन्नन्तात्, चिकीर्षितुमिच्छति । जिहीर्षितुमिच्छति । यहां फिर सन् नहीं होता । स्वार्थ सन्नन्त से तो इच्छार्थ सन् होता है । जैसे । जुगुप्सितुमिच्छति, जुगुप्सिषते । मीमांसिषते ॥ ६१९ ॥

६२०-वा०-कण्ड्वादीनां च ॥

कण्ड्वादि शब्दों के तृतीय एकाच् अवयव को द्वित्व हो । कण्डूयितुमिच्छति, कण्डूयियिषति । असूयियिषति ॥ ६२० ॥

६२१-वा०-वा नामधातूनां तृतीयस्य द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

नामधातुओं के तृतीय एकाच् अवयव को विकल्प करके द्वित्व हो । क्यजन्तात् सन् । आत्मनोऽश्वमिच्छति, अश्वीयति, अश्वीयितुमिच्छति । अश्वीयियिषति । अशिश्वीयिषति ॥ ६२१ ॥

६२२-अपर आह-यथेष्टं वा नामधातूनाम् ॥

पुत्रीयितुमिच्छति, पुपुत्रीयिषति। पुतित्रीयिषति। पुत्रीयियिषति। अजादि के आदि को छोड़कर औरों को यथेष्ट द्वित्व होता है। अध्यापनीयितुमिच्छति, अदिध्यापनीयिषति। अध्यापिपनीयिषति। अध्यापनिनीयिषति। अध्यापनीयियिषति। न, द, र, ये संयुक्त हों तो इन में जो अच् से परे हो उस को द्वित्व का निषेध है। आत्मन इन्द्रमिच्छति, इन्द्रीयति, इन्द्रीयितुमिच्छति, इन्दिद्रीयिषति। इन्द्रीयियिषति। प्रियमाचष्टे, प्रापयति। प्रापयितुमिच्छति, पिप्रापयिषति। प्रापिपयिषति। प्रापयियिषति। उरुमाचष्टे, वारयति, वारयितुमिच्छति, वारिरयिषति। वारयियिषति। बाढमाचष्टे, साधयति। साधयितुमिच्छति, सिसाधयिषति। सादिधयिषति। साधयियिषति। अतिशयेन पुनः पुनर्वा भवति, बोभूयते। बोभूयितुमिच्छति, बोभूयिषते, बोभूयिषमाचष्टे, बोभूयिषयति, बोभूयिषयितुमिच्छति, बोभूयषयिषति। अन्तिकमाचष्टे, नेदयति, आत्मनो नेदयितुमिच्छति, नेदयीयति। नेदयीयितुमिच्छति, निनेदयीयिषति। निनेदयीयिषमाचष्टे, निनेदयीयिषयति। गोमन्तमाचष्टे, गवयति। आत्मनो गवयमिच्छति, गवयीयति। गवयीयितुमिच्छति, गविवयीयिषति। पाचकीयितुमिच्छति, पिपाचकीयिषति। आख्यातमाचष्टे, आख्यातयति। आख्यातयितुमिच्छति, आचिख्यातयिषति। इत्यादि असंख्य प्रयोग प्रत्ययमाला में बन सकते हैं। सो व्याकरण में पूर्ण प्रवेश होने के आधीन हैं॥ ६२२॥

इति प्रत्ययमालाप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथात्मनेपदप्रक्रिया ॥

अनुदात्त और ङित् धातुओं से आत्मनेपद (९५ सूत्र में कह चुके हैं। आस्ते। शेते। प्रवते। प्लवते। इत्यादि ॥

६२३-भावकर्मणोः ॥ अ० ॥ १। ३। १३ ॥

भाव और कर्म में विहित जो लकार उस के स्थान में आत्मनेपद हो। भाव में। आस्यते भवता। शय्यते भवता। कर्म में। क्रियते कटः। ह्रियते भारः ॥ ६२३॥

६२४-कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे ॥ अ० ॥ १। ३। १४ ॥

परस्पर एक दूसरे का काम करे इस अर्थ में वर्त्तमान धातु से कर्त्ता में आत्मने-

पद हो। व्यतिलुनते। व्यतिपुनते। व्यतिस्ते। व्यतिषाते। व्यतिषते। (२१६) इस से सलोप। व्यतिध्वे। यहां (१११) सूत्र से सलोप। व्यतिहे (११२) सूत्र से अस् के स को ह। कर्म्मव्यतिहार कहने से यहां न हुआ। स्वं २ क्षेत्रं लुनन्ति। कर्त्ता का ग्रहण अगले सूत्रों के लिये है ॥ ६२४ ॥

६२५—न गतिहिंसार्थेभ्यः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १५ ॥

गत्यर्थक और हिंसार्थक धातुओं से कर्मव्यतिहार अर्थ में आत्मनेपद न हो। गत्यर्थ, व्यतिगच्छन्ति। व्यतिसर्पन्ति। हिंसार्थ, व्यतिहिंसन्ति। व्यतिघ्नंति ॥ ६२५ ॥

६२६—वा०—प्रतिषेधे हसादीनामुपसंख्यानम् ॥

यहां आत्मनेपद के प्रतिषेध में हसादिकों का भी ग्रहण करना चाहिये। हस के सदृश शब्दक्रियावाले धातु हसादि कहाते हैं। व्यतिहसन्ति। व्यतिजल्पन्ति। व्यतिपठन्ति ॥ ६२६ ॥

६२७—वा०—हरिवहयोरप्रतिषेधः ॥

हृ और वह धातु से कर्म्मव्यतिहार अर्थ में आत्मनेपद होने का प्रतिषेध न हो। संप्रहरन्ते राजान। संविवहन्ते गर्गैः ॥ ६२७ ॥

६२८—इतरेतरान्योन्योपपदाच्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । १६ ॥

इतरेतर और अन्योन्य उपपद हों तो कर्मव्यतिहार अर्थ में धातु से आत्मनेपद न हो। इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति। अन्योन्यस्य व्यतिलुनन्ति ॥ ६२८ ॥

६२९—वा०— परस्परोपपदाच्च ॥

परस्पर उपपद हो तो कर्मव्यतिहार में धातु से आत्मनेपद न हो। परस्परस्य व्यतिलुनन्ति। परस्परस्य व्यतिपुनान्ति ॥ ६२९ ॥

६३० — नेर्विशः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १७ ॥

निपूर्वक विश धातु से आत्मनेपद हो। निविशते। नि ग्रहण से यहां न हुआ। प्रविशति "अर्थवत आगमस्तद्गुणीभूतोऽर्थवद्ग्रहणेन गृह्यते,, इस से अट् के व्यवधान में भी होता है। न्यविशत "अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य,, इस से यहां न हुआ। मधुनि विशन्ति भ्रमराः ॥ ६३० ॥

६३१ — परिव्यवेभ्यः क्रियः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १८ ॥

परि, वि और अव उपसर्गों से परे डुक्रीञ् धातु से आत्मनेपद हो। परिक्रीणीते।

विक्रीणीते । अवक्रीणीते । यहां न हुआ । बहुवि क्रीणाति वनम् ॥ ६३१ ॥

६३२—विपराभ्यांजेः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १९ ॥

वि और परा उपसर्ग से परे जि धातु से आत्मनेपद हो । विजयते । पराजयते । उपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । बहुवि जयति वनम् । परा जयति सेना ॥ ६३२ ॥

६३३—आङो दोऽनास्यविहरणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । २०

मुख के फैलाने अर्थ से अन्यत्र आङ्पूर्वक डुदाञ् धातु से आत्मनेपद हो । विद्यामादत्ते । अनास्यविहरण कहने से यहां न हुआ । आस्यं व्याददाति । आस्यविहरण के समान जो और क्रिया हैं उन में भी प्रतिषेध होता है जैसे । विपादिकां व्याददाति । कूलं व्याददाति ॥ ६३३ ॥

६३४—वा०—स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम् ॥

"अनास्यविहरण,, यहां स्वाङ्गकर्मवाले दा धातु से आत्मनेपद प्रतिषेध कहना चाहिये । इस से यहां प्रतिषेध न हुआ । व्याददते पिपीलिका पतङ्गस्य मुखम् ॥ ६३४ ॥

६३५—क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । २१ ॥

अनु, सम्, परि और आङ् उपसर्गों से परे जो क्रीड धातु उस से आत्मनेपद हो । अनुक्रीडते । संक्रीडते ॥ परिक्रीडते । आक्रीडते । उपसर्गनियम से यहां नहीं होता । अनुक्रीडति माणवकम् माणवकेन सह क्रीडतीत्यर्थः । यहां "तृतीयार्थे,, इस से अनु की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा है किंतु उपसर्गसंज्ञा नहीं "समोऽकूजने,, सम् से परे क्रीड से अकूजन अर्थ में आत्मनेपद होना चाहिये । अर्थात् यहां न हो । संक्रीडन्ति शकटानि ॥ ६३५ ॥

६३६—वा०—आगमेः क्षमायाम् ॥

सहन अर्थ में आङ्पूर्वक णिजन्त गम धातु से आत्मनेपद हो । माणवक आगमयस्व तावत् । सहनं कुरु ॥ ६३६ ॥

६३७—वा०—शिक्षेर्जिज्ञासायाम् ॥

जानने की इच्छा में शिक्ष धातु से आत्मनेपद हो । विद्यासु शिक्षते । धनुषि शिक्षते । विद्या वा धनुर्विषय के ज्ञान में समर्थ होने की इच्छा करता है ॥ ६३७ ॥

६३८—वा०—किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेषु ॥

हर्ष (आनन्द) जीविका कुलायकरण (गड्ढा करना) इन अर्थों में । किरति

धातु से आत्मनेपद हो। अपस्किरते वृषो हृष्टः। अपस्किरते कुक्कुटो भक्ष्यार्थी। अपस्किरते श्वा आश्रयार्थी ॥ ६३८ ॥

६३९—वा०-हरतेर्गतताच्छील्ये ॥

किसी प्रकार के स्वभाव होने अर्थ में हृधातु से आत्मनेपद हो । पैतृकमश्वा अनुहरन्ते । मातृकं गावोऽनुहरन्ते । घोड़ा पिता से पाये हुए प्रकार का अनुहार करते हैं। तथा गौ मातृस्वभाव का अनुहार करती हैं ॥ ६३९ ॥

६४०—वा—० आशिषि नाथः ॥

आशीः(आशा) अर्थ में ही नाथ् से आत्मनेपद हो। सर्पिषो नाथते मधुनोवा॥६४०॥

६४१—वा०—आङि नुप्रच्छ्योः ॥

आङ् पूर्वक नु और पृच्छ धातु से आत्मने पद हो । आनुते शृगालः। उत्कण्ठापूर्वकं शब्दं करोतीत्यर्थः । आपृच्छते गुरुम् ॥ ६४१ ॥

६४२—वा०—शपउपलम्भने ॥

उलहना देने में शपधातु से आत्मने० । गुरवे शपते ॥ ६४२ ॥

६४३—समवप्रविभ्यः स्थः ॥ अ० ॥ १ । ३ । २२ ॥

सम्, अव, प्र, और वि उपसर्गों से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो । संतिष्ठते । अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्टते ॥ ६४३ ॥

६४४—वा०—आङः स्थः प्रतिज्ञाने ॥

प्रतिज्ञा अर्थ में आङ् से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो। अस्ति सकारमातिष्ठते । आगमो गुणवृद्धी आतिष्ठते । विकारो गुणवृद्धी आतिष्ठते॥६४४ ॥

६४५—प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । २३ ॥

अपने अभिप्राय के प्रकाश और विवाद के निर्णय करने वाले की आख्या में स्थाधातु से आत्मनेपद हो । भार्या तिष्ठते पत्ये । विदुषे तिष्ठते जिज्ञासुः। संशय्य करणादिषु तिष्ठते यः ॥ ६४५ ॥

६४६—उदोऽनूर्ध्वकर्मणि ॥ अ० ॥ १ । ३ । २४ ॥

अनूर्ध्व कर्म में वर्त्तमान उद् उपसर्ग से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो "उदईहायाम्" यहां उद् उपसर्ग से चेष्टा अर्थ में कहना चाहिये । गेहेउत्तिष्ठते । घर की

उन्नतिके लिये यत्न करता है। अनूर्ध्वकर्म्म कहने से यहां न हुआ। आसनादुत्तिष्ठति। ईहाग्रहण से यहां न हुआ। उत्तिष्ठति सेना। उत्पद्यते जायतइत्यर्थः॥ ६४६॥

६४७-उपान्मन्त्रकरणे॥ अ०॥ १। ३। २५॥

मंत्र करने में उप से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो। ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते। आग्नेय्याऽऽग्नीध्रमुपतिष्ठते। मंत्रकरण अर्थ के ग्रहण से यहां न हुआ। पतिमुपतिष्ठति यौवनेन॥ ६४७॥

६४८—वा०-उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वक्तव्यम्॥

देवपूजा, संगतिकरण, मित्रकरण, और मार्ग अर्थ में उप से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो। देवपूजायाम्। आदित्यमुपतिष्ठते। चन्द्रमसमुपतिष्ठते। संगतकरणे। रथिकानुपतिष्ठते। अश्वारोहानुपतिष्ठते। संगतकरण समीप जा कर मित्रपन से वर्त्तमान और मित्रकरण तो समीप वा असमीप में केवल मित्रपन समझना चाहिये पथिषु, अयं पन्थाः स्रुघ्नमुपातिष्ठते। अयं पन्थाः साकेतमुपतिष्ठते॥ ६४८॥

६४९—वा०-वा लिप्सायाम्॥

लाभ की इच्छा अर्थ में स्था धातु से आत्मनेपद हो। भिक्षुको ब्राह्मणकुलमुपातिष्ठते॥ ६४९॥

६५०-अकर्म्मकाच्च॥ अ०॥ १। ३। २६॥

उप पूर्वक अकर्म्मक अर्थात् अकर्म्मकक्रियावचन स्था धातु से आत्मनेपद हो। यावद्भुक्तमुपतिष्ठते। यावदोदनमुपतिष्ठते। भोजन २ में सन्निहित होता है। अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ। राजानमुपतिष्ठति॥ ६५०॥

६५१-उद्विभ्यां तपः॥ अ०॥ १। ३। २७॥

उद् और वि उपसर्ग से परे अकर्मकक्रियावचन तप धातु से आत्मनेपद हो। उत्तपते। वितपते। प्रकाशित होता है। अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः। वितपति पृष्ठं सविता॥ ६५१॥

६५२-वा०-स्वाङ्गकर्मकाच्च॥

उद् और वि से परे स्वाङ्गकर्मक तप धातु से आत्मनेपद हो। उत्तपते पाणिम्।

वितपते पाणिम् । उत्तपते पृष्ठम् । वितपते पृष्ठम् । स्वाङ्ग यहां अपने ही अङ्ग का ग्रहण है अर्थात् (स्वमङ्गं स्वाङ्गं) किन्तु "अद्रवंमूर्त्तिमत्०,, इस परिभाषा से जो उक्त है वह नहीं लिया जाता है । इस से यहां न हुआ । देवदत्तो यज्ञदत्तस्य पाणिमुत्तपति । उद्, वि ग्रहण से यहां न हुआ । निष्टपति ॥ ६५२ ॥

६५३–आङो यमहनः ॥ अ० ॥ १ । ३ । २८॥

आङ् से परे अकर्मकक्रियावचन यम, हन् धातु से आत्मनेपद हो । आयच्छते । आयच्छेते । आयच्छन्ते । आहते (३०३) अनुनासिक लोप० । आघ्नाते । आघ्नते । अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ । आयच्छति रज्जुं कूपात् । आहन्ति वृषलं पादेन ॥ ६५३ ॥

६५४–वा०–स्वाङ्गकर्मकाच्च ॥

आङ् से परे स्वाङ्गकर्मक यम और हन धातु से आत्मनेपद हो । आयच्छते पाणी । आहते उदरम् ॥ ६५४ ॥

६५५आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४४ ॥

आत्मनेपद प्रत्यय परे हों तो लुङ्लकार में हन् धातु को वध आदेश विकल्प करके हो । आवधिष्ट । आवधिषाताम् । आवधिषत । जिस पक्ष में वध आदेश न हुआ वहां ॥ ६५५ ॥

६५६–हनः सिच् ॥ अ० ॥ १ । २ । १४ ॥

हन् धातु से परे आत्मनेपद में झलादि सिच् कित्वत हो । आहत् । आहसाताम् । आहसत ॥ ३५६ ॥

६५७–यमो गन्धने ॥ अ० ॥ १ । २ । १५ ॥

दूसरे के दोष को प्रकाश करने में यम धातु से परे जो झलादिसिच् सो कितवत् हो । आत्मनेपद में । शत्रुमुदायत । उदायसाताम् । उदायसत । गन्धनग्रहण से यहां न हुआ । उदायंस्त पादम् । यहां (समुदाङ्भ्यः०) इस आगामी सूत्र से आत्मनेपद हुआ ॥ ६५७ ॥

६५८–समो गम्यृच्छिभ्याम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । २९ ॥

सम् उपसर्ग से परे अकर्मक क्रियावचन गम और ऋच्छ धातु से आत्मनेपद हो । संगच्छते शास्त्रम् । समृच्छते वस्त्रम् । अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ । संगच्छति ग्रामम् ॥ ६५८ ॥

६५९–वा गमः ॥ अ० ॥ १ । २ । १३ ॥

गम धातु से परे आत्मनेपद विषयक झलादि लिङ् सिच् कित्वत् हों । संगसीष्ट संगंसीष्ट । समगत । समगंस्त ॥ ६५९ ॥

६६०–वा०–समोगमादिषु विदिपृच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम् ॥

सम् से परे गमादि कों में विद्, प्रच्छ, स्वृ इन धातुओं से आत्मनेपद कहना चाहिये । संवित्ते । संविदाते । संपृच्छते । संस्वरते । यहां अकर्मक की अनुवृत्ति (६५०) सूत्र से नहीं आती है ॥ ६६० ॥

६६१–वेत्तेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ७ । १ । ७ ॥

(विद, ज्ञाने) धातु से परे प्रत्ययादि झकार के स्थान में अत् और उस को रुट् आगम विकल्प करके हो आत्मनेपद विषय में । इस सूत्र में वेत्ति को रुडागम कहा हैं इसी कारण पूर्व वार्त्तिक में विद् करके वेत्ति का ही ग्रहण है अन्य विद् का नहीं । सम् विद्+रुट्+अत्+अ=संविद्रते संविदते ॥ ६६१ ॥

६६२–वा०–अर्त्तिश्रुदृशिभ्यश्च ॥

सम् से परे ऋ, श्रु, और दृश धातु से आत्ममेपद हो । मासमृत । मासमृषाताम् । मासमृषत* । संशृणुते । संपश्यते ॥ ६६२ ॥

६६३–वा०–उपसर्गादस्यत्यूह्योर्वा वचनम् ॥

उपसर्ग से परे जो अस् और ऊह धातु उन से विकल्प कर के आत्मनेपद हो । निरस्यति । निरस्यते । समूहति । समूहते ॥ ६६३ ॥

६६४–उपसर्गाद्धस्व ऊहतेः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २३ ॥

उपसर्ग से परे ऊह धातु को ह्रस्व हो । यकारादि कित् ङित् परे हों तो । समुह्यादग्निम् ॥ ६६४ ॥

यहां कौमुदीकार वा काशिकाकार आदिने ऋ धातु से आत्मनेपद विषयक लुङ् लकार में च्लि के स्थान में अङ् "सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च,, सूत्र से करके । मासमरत । मासमरेताम् । मासमरन्त । इत्यादि प्रयोग बनाये हैं । सो महाभाष्य से विरुद्ध हैं क्यों कि महाभाष्यकार १ के ,,शासइदङ् हलोः" इस सूत्र के व्याख्यान से निश्चित होता है कि "सर्त्तिशास्ति"० सूत्र में परस्मैपद को अनुवृत्ति है ॥

६६५-निसमुपविभ्यो ह्वः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३० ॥

नि, सम् उप और वि इन से परे जो ह्व धातु उस से आत्मनेपद हो । निह्वयते । संह्वयते । उपह्वयते विह्वते ॥ ६६५ ॥

६६६-स्पर्द्धायामाङः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३१ ॥

स्पर्द्धा अर्थात् दूसरे के तिरस्कार करने की इच्छा में वर्त्तमान आङ् उपसर्ग से परे जो ह्वा धातु उस से आत्मनेपद हो । मल्लोमाह्वयते । छात्रश्छात्रमाह्वयते । स्पर्द्धा से अन्यत्र । गामाह्वयति गोपालः ॥ ६६६ ॥

६६७-गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः ॥ अ० । १ । ३ । ३२ ॥

गन्धन (चुगली) अवक्षेपण (धमकाना) सेवन (सेवा) साहसिक्य (हठ) प्रतियत्न (गुणाधान) प्रकथन उपयोग (धर्मार्थ नियम) इन अर्थों में वर्त्तमान कृञ् धातु से आत्मनेपद हो । गन्धन शत्रुमुत्कुरुते । अवक्षेपण श्येनो वर्त्तिकामुदाकुरुते । सेवन, आचार्यमुपकुरुते शिष्यः । परदारान् प्रकुरुते । प्रतियत्न, एधोदकस्योपस्कुरुते । गुडस्योपस्कुरुते । प्रकथन, जनापवादान् प्रकुरुते । उपयोग, शतंप्रकुरुते । सहस्रं प्रकुरुते । धर्मार्थं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः । इन अर्थों से अन्यत्र । कटं करोति ॥ ६६७ ॥

६६८-अधेः प्रसहने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३३ ॥

सहन वा तिरस्कार करने अर्थ में अधि से परे कृञ् धातु से आत्मनेपद हो । सहन, शीतमधि कुरुते । तिरस्कार, शत्रुमधिकुरुते । अन्यत्र अर्थमधिकरोति ॥ ६६८ ॥

६६९-वेः शब्दकर्म्मणः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३४ ॥

वि उपसर्ग से परे शब्दकर्म्मवाले कृञ् धातु से आत्मनेपद हो । यहां कर्म्म कारक का ग्रहण है । क्रोष्टा विकुरुते स्वरान् । ध्वाङ्क्षो विकुरुते स्वरान् । अन्यत्र । विकरोति पयः ॥ ६६९ ॥

६७०-अकर्म्मकाच्च ॥ अ० । १ । ३ । ३५ ॥

वि उपसर्ग से अकर्म्मक कृञ् धातु से आत्मनेपद हो । विकुर्वते सैन्धवाः । शोभनं वल्गन्तीत्यर्थः ॥ ६७० ॥

६७१-सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३६ ॥

सम्मानन (अच्छे प्रकार मान) उत्सञ्जन (उछालना) आचार्य करण (आचार्य क्रिया) ज्ञान, भृति (वेतन) विगणन (ऋणादि का चुकाना) व्यय (धर्म्मादि कामों में खरच करना) इन अर्थों में वर्त्तमान नी धातु से आत्मनेपद हो । सम्मानन, मातरं सन्नयते । उत्सञ्जन, दण्डमुन्नयते । आचार्यकरण माणवकमुपनयते । ज्ञान, तत्वंनयते । भृति, कर्मकरानुपनयते । भृतिदानेन समीपं नयते इत्यर्थः । विगणन, मद्राः करं विनयन्ते । राजा को उगाही आदि धन देते हैं । व्यय, शतं विनयते । धर्मार्थ शत मुद्रा खर्च करता है ॥ ६७१ ॥

६७२-कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३७॥

कर्त्ता में स्थित शरीर भिन्न कर्म उपपद हो तो नी धातु से आत्मने पद होवे । शरीर का एकदेश भी शरीर कहाता है । क्रोधं विनयते । मन्युं विनयते । कर्तृस्थ ग्रहण इस लिये है कि । देवदत्तो यज्ञदत्तस्य क्रोधं विनयति । अशरीर ग्रहण इस लिये है कि । हस्तं विनयति । कर्मग्रहण इस लिये है कि बुद्ध्या विनयति ॥ ६७२ ॥

६७३-वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३८ ॥

वृत्ति (अनिरोध) सर्ग (उत्साह) तायन (विस्तार) इन अर्थों में वर्त्तमान क्रम धातु से आत्मनेपद हो । वृत्ति, मंत्रेष्वस्य क्रमते बुद्धिः । सर्ग व्याकरणाध्ययनाय क्रमते । तायन, क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि । वृत्तिआदि से अन्यत्र । अपक्रामति बालः ॥ ६७३ ॥

६७४-उपपराभ्याम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३९ ॥

वृत्ति, सर्ग, तायन अर्थों में उप और परा उपसर्गों से परे ही क्रम धातु से आत्मनेपद हो अन्य उपसर्गों से नहीं । उपक्रमते । पराक्रमते । उप, परा के नियम से संक्रामति । यहां आत्मनेपद नहीं होता । वृत्ति आदि अर्थों से अन्यत्र । उपक्रामति पराक्रामति ॥ ६७४ ॥

६७५-आङ उद्गमने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४० ॥

वा०-ज्योतिषामुद्गमने ॥ आङ् से परे सूर्य आदि के ऊपर को उठने अर्थ में

वर्त्तमान क्रम धातु से परे आत्मनेपद हो । आक्रमते सूर्यः । आक्रमते चन्द्रमाः । उद्गमन से अन्यत्र । आक्रमति माणवकः कुतुपम् । ज्योतियों के ग्रहण से । आक्रमति धूमो हर्म्यतलात् । यहां आत्मनेपद न हो ॥ १७५ ॥

६७६—वेः पादविहरणे ॥ अ० । १ । ३ । ४१ ॥

पाद विहरण अर्थ में वर्त्तमान वि उपसर्ग से परे क्रम धातु से आत्मनेपद हो । साधु विक्रमते वाजी । पादविहरण से अन्यत्र । विक्रामति सन्धिः ॥ १७६ ॥

६७७—प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४२ ॥

तुल्यार्थ प्र और उप से परे जो क्रम धातु है उस से आत्मनेपद हो । प्रक्रमते भोक्तुम् । उपक्रमते भोक्तुम् । प्र । और उप दोनों शब्द आरम्भ अर्थ में तुल्य हैं । समर्थ ग्रहण इस लिये है कि । पूर्वेद्युः प्रकामति । अपरेद्युरुपक्रामति । यहां आत्मनेपद न हो ॥ १७७ ॥

६७८—अनुपसर्गाद्वा ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४३ ॥

उपसर्ग रहित क्रम धातु से आत्मनेपद विकल्प करके हो । क्रमते क्रामति । अनुपसर्ग कहने से संक्रामति । में न हुआ ॥ ६७८ ॥

६७९—अपह्नवे ज्ञः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४४ ॥

मिथ्या अर्थ में वर्त्तमान ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो । शतमपजानीते । अपह्नव अर्थ से अन्तत्र । न त्वं किंचिदपि जानासि ॥ ६७९ ॥

६८०—अकर्मकाच्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४५ ॥

अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मने पद हो । सार्पिषो जानीते । यहां करण में षष्ठी है अकर्मक से अन्यत्र । स्वरेण पुत्रं जानाति । यहां आत्मनेपद नहीं होता ॥ १८० ॥

६८१—संप्रतिभ्यामनाध्याने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४६ ॥

उत्कण्ठापूर्वक स्मरण से अन्य अर्थ में सम् और प्रति उपसर्गों से धातु से आत्मनेपद हो । शतं संजानीते । शतं प्रतिजानीते । स्मरण का निषेध इस लिये है कि । मातुः सजानाति बालः ॥ १८१ ॥

६८२—भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमंत्रणेषु वदः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४७ ॥

भासन (दीप्ति) उपसंभाषा (समीप से समझना) ज्ञान सम्यग्बोध यत्न (उत्साह) विमति (नाना प्रकार की बुद्धि) उपमंत्रण (एकान्त में कहना) इन अर्थों में वद् धातु से आत्मने पद हो । भासन—शास्त्रे वदते । शास्त्र में विद्या प्रकाश को प्राप्त हुआ कह रहा है । उपसंभाषा—कर्मकरामुपवदते । ज्ञान—व्याकरणे वदते । यत्न—क्षेत्रे वदते । गेहे वदते । विमति—सदसि विवदन्ते विद्वांसः । उपमंत्रण—राजानमुपवदते मंत्री । भासन आदि अर्थों से अन्यत्र । यत् किंचिद्वदति ॥ ६८२ ॥

६८३—व्यक्तवाचां समुच्चारणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४८ ॥

स्पष्ट वर्ण बोलने वालों के एक साथ उच्चारण करने अर्थ में वर्त्तमान वद् धातु से आत्मनेपद हो । संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः । व्यक्त वाणी वालों का ग्रहण इस लिये है कि । संप्रवदन्ति कुक्कुटाः । साथउच्चारण कहने से अन्यत्र । ब्राह्मणो वदति । यहां आत्मनेपद न हो ॥ ६८३ ॥

६८४—अनोरकर्मकात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४९ ॥

स्पष्ट वर्ण बोलने वालों के एक साथ उच्चारण करने अर्थ में वर्त्तमान अनुपसर्ग से परे वद धातु से आत्मनेपद हो । अनुवदते कठः कलापस्य । जैसे कलाप पढ़ता हुआ कहता है वैसे कठ भी । अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ । उक्तमनुवदति । व्यक्तवाग् ग्रहण से यहां न हुआ। अनुवदति वीणा । यहां सदृश अर्थ मात्र है ॥ ६८४ ॥

६८५—विभाषा विप्रलापे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५० ॥

विरुद्ध कथन में व्यक्तवर्ण बोलने वालों के एकसाथ उच्चारण अर्थ में वद धातु से परे आत्मनेपद विकल्प करके हो । विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वा वैयाकरणाः । एक दूसरे के पक्ष का खण्डन करने से विरुद्ध बोलते हैं । विप्रलाप से अन्यत्र । संप्रवदन्ते ब्राह्मणः व्यक्तवाणी से अन्यत्र । विप्रवदन्ति शकुनयः । समुच्चारण से अन्यत्र । क्रमेण तार्किकस्तार्किकेण सह विप्रवदति ॥ ६८५ ॥

६८६—अवाद्ग्रः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५१ ॥

अव उपसर्ग से परे जो गृ धातु उस से आत्मनेपद हो । अवगिरते । अवगिरेते । अव से अन्यत्र । गिरति ॥ ६८६ ॥

६८७—समः प्रतिज्ञाने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५२ ॥

प्रतिज्ञा अर्थ में वर्त्तमान सम्पूर्वक गृ धातु से आत्मनेपद हो । शतं संगिरते ।

नित्यं शब्दं संगिरते । प्रतिज्ञा अर्थ से अन्यत्र । संगिरति ग्रासम् । यहां आत्मनेपद नहीं होता ॥ ६८७ ॥

६८८—उदश्चरः सकर्मकात् ॥ अ० १ । ३ । ५३ ॥

उद्पूर्वक सकर्मक चर धातु से आत्मनेपद हो । धर्ममुच्चरते । गुरुवचनमुच्चरते । धर्म और गुरु के वचन का उलंघन करता है । सकर्मक से अन्यत्र । बाष्पमुच्चरति कूपात् ॥ ६८८ ॥

६८९–समस्तृतीयायुक्तात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५४ ॥

तृतीया विभक्ति से युक्त सम्पूर्वक चर धातु से आत्मनेपद हो । रथेन संचरते । अश्वेन संचरते । तृतीया से अन्यत्र । उभौ लोकौ संचरति । यहां न हो ॥ ६८९ ॥

६९०–दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५५ ॥

अशिष्टव्यवहार अर्थ में तृतीया विभक्ति से युक्त सम्पूर्वक दाण धातु से आत्मनेपद हो परन्तु वह तृतीया विभक्ति चतुर्थी के अर्थ में होतो । दास्या संप्रयच्छते । वृषल्या संप्रयच्छते । कामी पुरुष दासी और वेश्या को कुछ देता है । चतुर्थ्यर्थ से अन्यत्र । पाणिना संप्रयच्छति ॥ ६९० ॥

६९१–उपाद्यमः स्वकरणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५६ ॥

हाथ पकड़ के जो स्वीकार करना है उस अर्थ में वर्त्तमान यम धातु से आत्मनेपद हो । भार्य्यामुपयच्छते । स्वकरण ग्रहण करने से यहां न हुआ । पटमुपयच्छति । देवदत्तो यज्ञदत्तस्य भार्य्यामुपयच्छति ॥ ६९१ ॥

६९२—ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ॥ अ० ॥ १३ । ५७ ॥

ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् इन धातुओं से सन् प्रत्यय से परे आत्मनेपद हो । धर्मं जिज्ञासते । गुरुं शुश्रूषते । विस्मृतं सुस्मूर्षते । नृपं दिदृक्षते । सन् ग्रहण से यहां न हुआ । जानाति । शृणोति । स्मरति । पश्यति ॥ ६९२ ॥

६९३–नानोर्ज्ञः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५८ ॥

अनु उपसर्ग से परे ज्ञा धातु के सन् से आत्मने पद न हो । पुत्रमनुजिज्ञासति । अनुग्रहण से यहां न हुआ । धर्मं जिज्ञासते ॥ ६९३ ॥

६९४–प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५९ ॥

प्रति और आङ् उपसर्ग से परे सन्नन्त श्रु धातु से आत्मनेपद न हो । प्रति शु-

श्रूषति। आशुश्रूषति। उपसर्ग मानने से यहां न हुआ। देवदत्तं प्रति शुश्रूषते ॥ ६९४॥

६९५–पूर्ववत्सनः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६२ ॥

सन्नन्त से पूर्ववत् आत्मनेपद हो। अर्थात् जिस निमित्त से प्रथम आत्मनेपद होता हो उसी निमित्त से सन्नन्त में भी आत्मनेपद हो। जैसे। अनुदात्त ङित् से आत्मनेपद होता है। आस्ते। शेते वैसे। हीं उन्हीं निमित्तों से सन्नन्त में भी आत्मनेपद हो। आसिसिषते। शिशयिषते। निविशते। निविविक्षते। आक्रमते। आचिक्रंसते। सन्नन्त शद और मृङ् धातु से आत्मनेपद न होगा। क्यों कि उन से आत्मनेपद विधान में सन्नन्त से निषेध है * ॥ ६९५ ॥

६९६–प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६४ ॥

अयज्ञपात्र प्रयोग में प्र और उप से परे युज धातु से आत्मनेपद हो। प्रयुङ्क्ते। उपयुङ्क्ते। अयज्ञपात्र ग्रहण से यहां न हुआ। द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति ॥ ६९६ ॥

६९७––वा०–स्वराद्यन्तोपसृष्टादिति वक्तव्यम् ॥

स्वर जिस के आदि तथा अन्त में हो। उन उपसर्गों से युक्त युज धातु से परे आत्मनेपद हो। अर्थात् सम्, निस्, दुर् इन तीन उपसर्गों को छोड़ के अन्य सब उपसर्गों से परे युज से आत्मनेपद हो। उद्युङ्क्ते। अनुयुङ्क्ते। नियुङ्क्ते। यहां नहीं होता। संयुनक्ति ॥ ६९७ ॥

६९८–समः क्ष्णुवः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६५ ॥

सम्पूर्वक क्ष्णुधातु से आतमनेपद हो। संक्ष्णुते शस्त्रम्। क्ष्णुधातु को (६५८) सूत्र में पढ़ देते तो यह पृथक् सूत्र बनाना न पड़ता। फिर यह सकर्मक की क्ष्णु का ग्रहण होने के लिये पृथक् पढ़ा है और वहां (६५८) सूत्र में अकर्मक की अनुवृत्ति है ॥ ६९८ ॥

६९९–भुजोऽनवने ॥ अ० । १ । ३ । ६६ ॥

अपालन अर्थ में वर्त्तमान भुज धातु से आत्मनेपद हो। भुङ्क्ते। भुञ्जाते। भुञ्जते। पालन के निषेध से अन्यत्र। पृथिवीं भुनक्ति राजा। यहां रक्षार्थ के निषेध

* (२३२ । ४३१) सूत्रों में आत्मनेपद विधान का नियम है सो सन्नन्त में आत्मनेपद नहीं होता क्यों कि (२३२ । ४३१) सूत्रों में (६९२ । ६९३) सूत्रों से सन्नन्त से निषेध की अनुवृत्ति आती है। शिशत्सति। मुमूर्षति ॥

से जाना जाता है कि इस सूत्र में रुधादि के भुज का ग्रहण किया तुदादि का नहीं ॥ ६९९ ॥

७००–णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्सकर्त्ताऽनाध्याने अ० ॥ १ । ३ । ६७ ॥

अण्यन्त अवस्था में जो कर्म वही ण्यन्त अवस्था में कर्म तथा कर्त्ता भी हो तो अनाध्यान अर्थात् अत्यन्त उत्साह से जो स्मरण करना है उस अर्थ में णिजन्त धातु से आत्मनेपद हो। आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः, आरोहयते हस्ती स्वयमेव। उपसिञ्चन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः, । उपसेचयते हस्तीस्वयमेव । पश्यन्ति भृत्या राजानं, दर्शयते राजा स्वयमेव । णिग्रहण से यहां न हुआ । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपका आरोह्यमाणो हस्ती साध्वारोहति । अणि ग्रहण से यहां न हुआ । गणयति गणं गोपालकः । गणयति गणः स्वयमेव । कर्मग्रहण से यहां नहो । लुनाति दात्रेण लावयति दात्रं स्वयमेव । णौ चेत् ग्रहण समान क्रिया के लिये है । आरोहयमाणो-हस्ती भीतान् सेचयति मूत्रेण । यत्स ग्रहण अनन्यकर्म के लिये है । आरोहयमाणो हस्ती स्थलमारोहयति मनुष्यान् । कर्त्ता ग्रहण इस लिये है कि । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकास्तानारोहयति महामात्रः । अनाध्यान ग्रहण से यहां न हुआ । स्मरयत्येनं वनगुल्मःस्वयमेव । आगे कर्मकर्त्तृप्रक्रिया लिखेंगे उसी के सदृश उदाहरण इस सूत्र में दिये हैं सो कर्म्मकर्त्ता से आत्मनेपद हो जाता फिर विशेष यह है कि उस प्रक्रिया में जो आत्मनेपद होता है सो कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय धातुओं से होता है और यह सूत्र कर्तृस्थभावक और कर्तृस्थक्रिय धातुओं के लिये है । वैसे ही कर्त्तृ-स्थक्रिय रुह और कर्त्तृस्थभावक दृश धातुओं के उदाहरण दिये हैं ॥ ७०० ॥

७०१--गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६९ ॥

प्रलम्भन अर्थात् झूठसांच बकने अर्थ में वर्त्तमान णिजन्त गृधु और वञ्चु धातुओं से आत्मनेपद हो । माणवकं गर्धयते । माणवकं वञ्चयते । प्रलम्भन ग्रहण से यहां न हुआ । श्वानं गर्धयति । रोटी आदि से कुत्ते की इच्छा को उत्पादन करता है । अहिं वञ्चयति । सर्प को हर लेता है ॥ ७०१ ॥

७०२–मिथ्योपपदात्कृञोऽभ्यासे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७१॥

बार २ काम करने में मिथ्या शब्द जिस के उपपद हो उस णिजन्त कृञ् धातु

से परे आत्मनेपद हो । पदं मिथ्या कारयते । पद का वार २ मिथ्या उच्चारण कराता है । मिथ्या शब्द के ग्रहण से यहां न हुआ । पदं सुष्ठु कारयति । कृञ् ग्रहण से यहां न हुआ । पदं मिथ्यावाचयति । अभ्यास ग्रह० । पदं मिथ्या कारयति । एक वार उच्चारण कराता है ॥ ७०२ ॥

७०३—अपाद्वदः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७३ ॥

क्रिया का फल जहां कर्ता के लिये हो वहां अप उपसर्ग से परे वद धातु से आत्मनेपद हो। धनकामो न्यायमपवदते । धन का लोभी न्याय को छोड़े हुए कहता है । जहां कर्तृगामी क्रिया फल नहीं है वहां । अपवदति । होगा ॥ ७०३ ॥

७०४—समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७५ ॥

अग्रन्थ अर्थ में सम् उद् और आङ् से परे यम धातु से आत्मनेपद हो जो क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होतो । व्रीहीन् संयच्छते । भारमुद्यच्छते । वस्त्रमायच्छते । अग्रन्थ ग्रहण से यहां न हुआ । वेदमुद्यच्छति । वेद आने के लिये उद्यम करता है । उद्यच्छति चिकित्सायां वैद्यः । कर्तृगामी ग्रहण से यहां न० । संयच्छति शिष्यम् ॥ ७०४ ॥

७०५—अनुपसर्गाज्ज्ञः ॥ अ० ॥ २ । ३ । ७६ ॥

क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होतो उपसर्ग रहित ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो। गांजानीते । अश्वंजानीते । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न० । स्वर्गं लोकं न प्रजानाति मूढः । कर्तृगामी फ० । देवदत्तस्य गांजानाति ॥ ७०५ ॥

७०६--विभाषोपपदेन प्रतीयमाने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७७ ॥

समीपवर्त्ती पद के उच्चारण से कर्तृगामी क्रियाफल प्रतीत हो तो (स्वरितञित अपाद्वदः, णिच०, समुदाङ्भ्योय०, अनुपस०,) इन सूत्रों से जो आत्मनेपद कहा है वह बिकल्प करके हो । स्वं यज्ञं यजति । स्वं यज्ञं यजते । स्वं पुत्रमपवदते । स्वं पुत्रमपवदति । स्वं यज्ञं कारयति कारयते वा । स्वान् व्रीहीन् संयच्छति । संयच्छते वा । स्वां गां जानाति । जानीते वा ॥ ७० ॥

इत्यात्मनेपदप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ परस्मैपदप्रक्रियारम्भः ॥

७०७--अनुपराभ्यां कृञः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७९ ॥

अनु और परा उपसर्गों से परे कृञ् धातु से परस्मैपद हो । अनुकरोति । पराकरोति । कर्तृगामी क्रियाफल और गन्धनादि अर्थों में भी अनु और परा पूर्वक कृञ् से आत्मनेपद ही होता है ॥ ७०७

७०८–अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८० ॥

अभि. प्रति और अति उपसर्गों से परे क्षिप धातु से परस्मैपद हो । अभिक्षिपति । प्रतिक्षिपति । अतिक्षिपति । इन से अन्यत्र । आक्षिपते ॥ ७०८ ॥

७०९–प्राद्वहः ॥ अ० ॥ १ । २ ८१ ॥

परि पूर्वक मृष धातु से परस्मैपद हो । परिमृष्यति । अन्यत्र आमृष्यते ॥

७१०–परेर्मृषः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८२ ॥

परि पूर्वक मृष धातु से परस्मैपद हो । परिमृष्यति । अन्यत्र आमृष्यते ॥७१०

७११–व्याङ्परिभ्यो रमः ॥ अ० ॥ १ । ३ ॥ ८३ ॥

वि, आङ् और परि उपसर्ग से परे रम धातु से परस्मैपद हो ।विरमति। आरमति परिरमति । अन्यत्र । अभिरमते ॥ ७११ ॥

७१२–उपाच्च ॥ अ० ॥ १ ॥ ३ ८४ ॥

उप पूर्वक रम धातु से परे परस्मैपद हो । उपरमति । यह सूत्र अलग जो किया है इस से जानना चाहिये कि अगले सूत्र में उप उपसर्ग से ही अकर्मक रम धातु से परस्मैपद होगा ॥ ७१२ ॥

७१३–विभाषाऽकर्मकात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८५ ॥

उपपूर्वक अकर्मक रम धातु से परे विकल्प करके परस्मैपद हो । उपरमति । उप रमते । निवृत्ति को प्राप्त होता है ॥ ७१३ ॥

७१४–बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८६॥

बुध, युध, नश जन, इङ्, प्रु, द्रु और स्रु इन णिजन्त धातुओं से परे लकार के स्थान में परस्मैपद हो । बोधयति । योधयति । नाशयति । जनयति । अध्यापयति । प्रावयति । द्रावयति स्रावयति । बुध आदि धातुओं में जो अकर्म्मक हैं उन

का ग्रहण अचित्तवत् कर्त्तृकों के लिये है क्योंकि चित्तवत् कर्त्तृकों से "अणावकम० इस सूत्र से परस्मैपद सिद्ध है और चलनार्थक धातुओं में "निगरणचलनार्थेभ्यश्च,, इस सूत्र से परस्मैपद सिद्ध है फिर चलनार्थ से अन्यत्र भी परस्मैपद होने के लिये है ॥ ७१४ ॥

७१५-निगरणचलनार्थेभ्यश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८७ ॥

भोजन और कम्पन अर्थ वाले णिजन्त धातुओं से परे परस्मैपद हो । निगारयति निगालयति वा । भोजन कराता है । चलयति । चोपयति । कम्पयति । यह भी सूत्र सकर्म्मक और अचित्तवत् कर्त्तृकों के लिये है । अत्ति ब्रह्मदत्तः । आदयते देवदत्तेन । यहां इस से परस्मैपद प्राप्त है उस का निषेध (कारकीय वा०-३३) इस से है ॥ ७१५ ॥

७१६--अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्॥ अ० ॥ १ । ३ । ८८ ॥

अण्यन्त अवस्था में जो अकर्म्मक और चित्तवान् कर्त्ता वाला धातु हो उस ण्यन्त से परस्मैपद हो । आस्ते बालः । आसीनं बालं माता प्रयोजयति इति माता बालमासयति । स्वापयति । शाययति । अण्यन्त अवस्थाग्रहण से यहां न हुआ । आरोहयमाणं प्रयोजयति, आरोहयते । अकर्मकग्रहण से यहां न हुआ । कटंकुर्वाणं प्रयोजयति कारयते। चित्तवत्कर्त्ता से अन्यत्र। शुष्यन्ति व्रीहयः, शोषयति व्रीहीन् तपः॥७१६॥

७१७--न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८९ ॥

पा, दमि, आङ्यम, आङ्यस, परिमुह, रुचि, नृति, वद और वस इन ण्यन्त धातुओं से परस्मैपद न हो (अणाव०, निगरण०) पूर्वोक्त इन दो सूत्रों से जो परस्मैपद प्राप्त है उस का निषेध किया है । पाययते । दमयते । आयामयते । आयासयते। परिमोहयते । रोचयते । नर्त्तयते । वादयते । वासयते । यहां ऐसा जानना चाहिये कि पा आदि धातुओं से कर्त्तृगामी क्रियाफल में यह निषेध है और परगामी क्रियाफल में तो (शेषात्कर्त्तरि०) इस से परस्मैपद होता ही है । वत्सान् पयः पाययति ॥ ७१७ ॥

७१८--वा०--पादिषु धेट उपसंख्यानम् ॥

इन पा आदिधातुओं में धेट् धातु को भी पढ़ना चाहिये ।

धापयेते शिशुमेकं समीची ॥ ७१८ ॥

इति परस्मैपदप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ भावकर्मप्रक्रिया ॥

भाव, भावना क्रिया को कहते हैं। यह सब धातुओं से अपने २ धात्वर्थ को ले कर कहा जाता है। उस का अनुवाद भाववाची लकार से होता है। युष्मद् और अस्मद् से समानाधिकरण का अभाव है इस से यहां प्रथम पुरुष होता है। तथा तिङ् प्रत्यय वाच्य भाव अद्रव्य है इस से भाव में द्विवचन और बहुवचन की प्रतीति नहीं होती इस लिये भाव में द्विवचन और बहुवचन नहीं होते हैं किन्तु एकवचन होता है। क्योंकि वह द्विवचनादिकों का उत्सर्गमात्र है ॥ अब प्रथम पुरुष के परस्मैपद वा आत्मनेपद में कौन होना चाहिये इस विषय में (६२३) सूत्र से आत्मनेपद विधान करचुके हैं सो यहां भाव में प्रथम पुरुष का आत्मनेपद एकवचन होगा जैसे। भू+त। इस अवस्था में ॥

७१९--सार्वधातुके यक् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६७ ॥

भावकर्मवाची सार्वधातुक परे होतो धातु से यक् प्रत्यय हो। भू+यक्+ते। भूयते देवदत्तेन। बभूवे ॥ ७१९ ॥

७२०–स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन ग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६२ ॥

भाव कर्म विषय में स्य, सिच्, सीयुट् और तासि परे होंतो उपदेश में अजन्त, हन, ग्रह और दृश अङ्गों को विकल्प करके चिण्वत् कार्य्य और इट् का आगम हो। यहां चिण्वद्भाव का विकल्प होने से जिस पक्ष में चिण्वत्कार्य्य होता है। वहीं इट् भी जानो। चिण् णित् है इस से जो २ कार्य णित् प्रत्ययों में होते हैं वेही स्य-आदि के परे भी हो जावें। भाविता। यहां चिण्वत् कार्य वृद्धि होती है। भविता। भाविष्यते। भविष्यते। भाविषैते। भाविषातै। भविषातै। भूयतास्। अभूयत। भूयेत। भाविषीष्ट। भविषीष्ट ॥ ७२० ॥

७२१–चिण् भावकर्मणोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६६ ॥

भावकर्मवाची त शब्द परे होतो चि के स्थान में चिण् आदेश हो। अभावि। अभाविष्यत। अभविष्यत। अनुपूर्वक भूधातु सकर्मक हो जाता है। अनुभूयते। चैत्रेण त्वया मया वा आनन्दः। यहां आनन्द अनुपूर्वकभूधातु का कर्म है। उस आनन्द कर्म

में लकारादि प्रत्यय के होने से उस से द्वितीया विभक्ति नहीं होती क्योंकि वह अनभिहित नहीं रहा। अनुभूयेते। अनुभूयन्ते। त्वमनुभूयसे। अहमनुभूये। अनुबभूवे। त्वमनुभावितासे। अनुभवितासे। इत्यादि। अन्वभावि। अन्वभाविषाताम्। अन्वभविषाताम्। णिजन्त से भाव कर्ममें यक्। भाव्यते। भावयाञ्चक्रे। भावयाम्बभूवे। भावयामासे। भाविता। यहां चिण्वद्भाव में इट् को (४२) सूत्र से असिद्ध मान के (१७७) सूत्र से णिलोप हो जाता है और जहां चिण्वद्भाव नहीं है वहां। भावयिता। भाविष्यते। भावयिष्यते। भाव्यताम्। अभाव्यत। भाव्यत। भाविषीष्ट। भावयिषीष्ट। अभाविषाताम्। अभावयिषाताम्। सन्नन्त से भाव कर्म्म। बुभूष्यते। बुभूषाञ्चक्रे। बुभूषिता। बुभूषिष्यते। यङन्त से भाव कर्म्म। बोभूय्यते। यङ्लुगन्त से भाव कर्म्म। बोभूयते। बोभवाञ्चक्रे। बोभाविता। बोभविता। स्तूयते परमात्मा। तुष्टुवे। स्ताविता। स्तोता। स्ताविष्यते। स्तोष्यते। अस्तावि। अस्ताविषाताम्। अस्तोषाताम्। अर्य्यते। (२५४) से गुण०। स्मर्यते। सस्मरे। आरिता। यहां परत्व और नित्यत्व मान कर प्रथम गुण तथा गुण को रपर करने से ऋ धातु अजन्त न भी है तथापि (स्यसिच् ०) इस सूत्र में जो उपदेशग्रहण है इस से उस को चिण्वद्भाव और तत्संनियोग इट् होता है। अर्ता। स्मारिता। स्मर्त्ता। संस्क्रियते। यहां (२५४) इस सूत्र से संयोगादित्व मान कर ऋकार को गुणादेश नहीं होता है। क्योंकि। यह संयोग सुट् से हुआ है सुट् बहिरङ्ग वाक्य का अभक्त होने से असिद्ध है। स्रस्यते यहां (१३९) इस से नकार का लोप हुआ। नन्द्यते। यहां इदित् मान कर नकार का लोप न हुआ। इज्यते। यहां (२८३) इस से संप्रसारण हुआ। शय्यते। यहां (५५१) से अयङ् आदेश हुआ॥ ७२१॥

७२२—तनोतेर्यकि॥ अ०॥ ६।४।४४

यक् प्रत्यय परे हो तो तनोति धातु को आकारादेश विकल्प करके होवे। तायते। तन्यते। जन धातु को आकारादेश विकल्प (१८५) से होता है। जायते जन्यते॥ ७२२॥

७२३—तपोऽनुतापे च॥ अ०॥ ३।१।६५॥

कर्म्म कर्त्ता और अनुताप अर्थ में तप धातु से परे च्लि के स्थान में चिण् आदेश न हो। अनुताप पछताने को कहते हैं। सो भावकर्म्मप्रक्रिया में ही चिण् निषेध होने के लिये अनुताप ग्रहण है। अन्वतप्त पापेन पापः कर्त्ता। यह भावकर्म्म का उदाहरण है। कर्म्मकर्त्ता का उदाहरण कर्म्मकर्त्तृप्रक्रिया में लिखेंगे। दीयते। धीयते (३४६) इस सूत्र से ईकारादेश०॥ ७२३॥

७२९-आतो युक्चिण्कृतोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३३ ॥

ञित् णित् कृत् और चिण् परे हो तो आदन्त अङ्ग को युक् आगम हो। दायिता। दाता। धायिता। धाता। दायिषीष्ट। दाषीष्ट। अदायि। अदायिषाताम्। अदिषाताम्। अधायिषाताम्। अधिषाताम्। ग्लायते। म्लायते। जग्ले। मम्ले। यहां (२४२) सूत्र के अशित् शब्द में जो कर्मधारय समास मान कर इत्संज्ञक शकारादि प्रत्यय के परे निषेध किया है उस से एश् आदि प्रत्ययों में आदि शित् न होने से आत्व निषेध नहीं होता है। ग्लायिता। ग्लाता। अग्लायि। अग्लायिषाताम्। अग्लासाताम्। हन्यते। घानिता। यहां (५०२) से तकारादेश नहीं होता। क्योंकि वहां चिण् विषय में निषेध है। हन्ता। घानिष्यते। हनिष्यते। हन्यते। हन्यतै। हन्यैते। हन्यैतै। घानिषते। घानिषतै। घानिषैते। घानिषैतै। हनिषते हनिषतै। हनिषाते। हनिषातै। घानिषीष्ट। यहां (३०८) से बधआदेश न हुआ। क्योंकि सीयुट् के परे विशेष विधान से चिण्वद्भाव बध आदेश का अपवाद है। बधिषीष्ट। अघानि। अघानिषाताम्। अहसाताम्। दूसरे पक्ष में। अबधि। अबधिषाताम्। अघानिष्यत। अहनिष्यत। गृह्यते। ग्राहिता। यहां (४५५) इस से इट् को दीर्घादेश न हुआ क्योंकि उस प्रकरण में जो वलादिलक्षण इट् होता है उसी दीर्घ विधि में इट् का ग्रहण है। ग्रहीता ग्राहिष्यते। ग्रहिष्यते। ग्राहिषीष्ट। ग्रहीषीष्ट। अग्राहि। अग्राहिषाताम्। दृश्यते। अदर्शि। अदर्शिषाताम्। अदृक्षाताम्। यहां सिच् के कित्त्व होने से (२७८) अम् न हुआ। गीर्यते। जगरे। जगले। गारिता। गालिता। गरीता। गलीता। गरिता। गलिता। गारिष्यते। गारिषतै। गारिषातै। गालिषतै। गालिषातै। गरीषतै। गरीषातै। गलीषतै। गलीषातै। गरिषतै। गरिषातै। गलिषतै। गालिषातै। गारिषते। गारिषाते। गालिषते। गालिषाते। गरीषते। गरीषाते। गलीषते। गलीषाते। गरिषते। गरिषाते। गलिषते। गालिषाते। गीर्यते। गीर्याते। गीर्यतै। गीर्यातै। गीर्यताम्। अगीर्यत। गीर्येत। गारिषीष्ट। गालिषीष्ट। गरिषीष्ट। यहां (४२१) इस से दीर्घ न हुआ। गीर्षीष्ट। यहां (४२०) से इट् विकल्प० अगारि। अगारिषाताम्। अगरिषाताम्। अगीर्षाताम्। अगारिध्वम्। अगरीध्वम्। अगरिध्वम्। अगालिध्वम्। अगालीध्वम्। अगलिध्वम्। (४३२) से लत्व विकल्प०। अगारीढ्वम्। अगरीढ्वम्। अगरिढ्वम्। अगालिढ्वम्। अगलीढ्वम्। अगालिढ्वम्। (१२१) मूर्द्धन्यादेशवि०। इट् के अभाव पक्ष में अगीर्ढ्वम् यहां (२४०) से

सिच् कित् (१०९) से नित्य इत्व० । हेतुमत् णिजन्त से कर्म में लकार० । शम्यते मोहो गुरुणा ॥ ७२४ ॥

७२५–चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् ॥अ०॥६। ४ । ९३ ॥

चिण् और णमुल् परे होतो मित् अङ्गों की उपधा को विकल्प करके दीर्घ हो। शामिता । शमिता । शमयिता । शामिष्यते । शमिष्यते । शमयिष्यते जहां णिजन्त न है वहां भाव में लकार होंगे । शम्यते मुनिना ॥ ७२५ ॥

७२६–नोदात्तोपदेशस्यमान्तस्याऽनाचमेः ॥ अ० ॥७।३।३४॥

चिण् और ञित् णित् कृत् परे हो तो आङ्पूर्वक चम् वर्जित मकारान्त अङ्ग की उपधा को वृद्धि न हो । अशमि । अदमि । उदात्तोपदेशग्रहण से यहां न हुआ । अगामि । मान्त ग्रहण से यहां न हुआ । अवादि । अनाचम् ग्रहण से यहां न हुआ । आचामि । ॥ ७२६ ॥

७२७–वा०–अनाचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम् ॥

(अनाचमि) यहां आचम्, कम्, वम् इन अङ्गों को निषेध कहना चाहिये अर्थात् चिण् और ञित् णित् कृत् परे हों तो उक्त सब अङ्गों की उपधा को वृद्धि न हो । अकामि । अवामि । अजागारि । यहां (३६२) से गुण न हुआ क्योंकि चिण् के परे निषेध है ॥ ७२७ ॥

७२८–भञ्जेश्च चिणि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३३ ॥

चिण् परे होतो भञ्ज धातु के नकार का लोप विकल्प करके हो । अभाजि । अभञ्जि ॥ ७२८ ॥

७२९–विभाषा चिण्णमुलोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६९ ॥

चिण् और णमुल् परे हों तो लभ धातु को नुमागम विकल्प करके हो।अलम्भि । द्विकर्मक । गौर्दुह्यते पयः । इत्यादिकों में अप्रधान कर्म में लकार होते हैं । तथा अजा नीयते ग्रामम् । इत्यादिकों में प्रधान कर्म में लकार होते हैं । यह निर्णय "कारकीय,, ग्रन्थ के (२०) सूत्र के व्याख्यान में कर चुके हैं ॥ ७२९ ॥

॥ इति भावकर्मप्रक्रियासमाप्ता ॥

अथ कर्मकर्तृप्रक्रियारम्भः ॥

जब काम के अत्यन्त अच्छे प्रकार होने रूप अर्थ को प्रकट करने के लिये क

र्त्ता का क्रिया करना न कहा जाय तब अन्य कारक भी कर्त्तृ संज्ञा को प्राप्त होते हैं क्योंकि वे अपने २ विषय में स्वतन्त्र हैं। और स्वाधीन व्यापार वाले की कर्त्ता संज्ञा भी होती है। इस कारण प्रथम करण आदि संज्ञा होती भी हैं तथापि उन कारकों के स्वतन्त्र होने से कर्तृसंज्ञा हो कर उस कर्त्ता में भी लकार होते हैं। करण, देवदत्तोऽसिना छिनत्ति, छिन्दतो देवदत्तस्यासिः स्वयमेव छिनत्ति। देवदत्त तलवार से काटता है काटते हुए देवदत्त की तलवार आप ही काटती है। देवदत्तः काष्ठैः पचति पचतो देवदत्तस्य काष्ठानि साधु पचन्ति। देवदत्तःस्थाल्यांपचति। पचतो देवदत्तस्य स्थाली स्वयमेव पचति। और जब कर्म को कर्त्तृत्व विवक्षा होती है तब प्रथम से सकर्मक भी धातु प्रायः अकर्मक हो जाते हैं। और उनसे भाव वा कर्त्ता में लकार होते हैं। जैसे भाव में। देवदत्त ओदनं पचति, पचतो देवदत्तस्य ओदनेन स्वयमेव पच्यते। भिद्यते काष्ठेन॥ । और कर्त्ता में तो

७३०-कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८७ ॥

जिस की कर्मस्थ क्रिया के तुल्य क्रिया है वह कर्त्ता कर्मवत् हो। यहां कार्य्यातिदेश अर्थात् कर्म विषयक काम कर्त्ता में भी हों। इस का प्रयोजन यह है कि यक्, आत्मनेपद, चिण्, और चिण्वद्भाव भी होवे। देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति, भिन्दतो देवदत्तस्य काष्ठं स्वयमेवभिद्यते। देवदत्त ओदनं पचति, पचतो देवदत्तस्यौदनः स्वयमेव पच्यते। अभेदि काष्ठं स्वयमेव। अपाच्योदनः स्वयमेव। पाचिष्यते ओदनः स्वयमेव वत् ग्रहण कर ने से स्वाधीन कार्य्य भी होते हैं *। भिद्यते कुसूलेन। यहां स्वाश्रय कार्य भाव में लकार हुआ है। कर्मणा, ग्रहण इस लिये है कि करण और अधिकरण के तुल्य क्रिया कर्त्ता को कर्मवद् भाव न हो। जैसे साध्वसिश्छिनत्ति। साधु स्थाली पचति। इस प्रकरण में धातु का अधिकार है इस से एक ही धातु में कर्मवद् भाव होता है किन्तु। पचत्योदनं देवदत्तः, राधत्योदनः स्वयमेवं। यहां न हुआ। इस सूत्र से कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय धातुओं का कर्त्ता कर्मवत् होता है। किन्तु कर्त्तृस्थ भावक तथा कर्त्तृस्थक्रिय धातुओं का कर्त्ता कर्मवत् नहीं होता जैसे कर्त्तृस्थभावों में

---

*"कर्म्मवत्०„ सूत्र में "वत्„ को छोड़ के "कर्म कर्मणा„ कहने से तुल्य क्रिया कर्त्ता की कर्म संज्ञा होकर उस को कर्माश्रय कार्य्य ही होते किन्तु जो कर्म को कर्त्तृत्व विवक्षा करने से सकर्मक धातु अकर्मक होकर उन से भाव में लकार होते हैं वे न होते। वत्करण करने से तो कर्मकी तुल्यता हो कर स्वाश्रय कार्य्य भी होते हैं॥

। देवदत्तः शास्त्रं चिन्तयति । शास्त्रं चिन्तयतो देवदत्तस्य शास्त्रं स्वयमेव चिन्तयति । अमात्यो राजानं मन्त्रयते । मन्त्रयमानस्यामात्यस्य राजा स्वयमेव मन्त्रयते । कर्तृस्थक्रियों में । गच्छति ग्रामं देवदत्तः । ग्रामंगच्छतो देवदत्तस्य ग्रामः स्वयमेव गच्छति । आरोहति हस्ती स्वयमेव । कर्मस्थभावकों में । शेते बालःशयानं बालं जनकः प्रयोजयति , जनको बालं शाययति । शाययतो जनकस्यबालः स्वयमेवशाय्यते । यहां सोना रूप भाव कर्मस्थ है । जहां कर्म में क्रिया कृत् विशेष देख पड़े वह कर्मस्थक्रिय होता है जैसे फटी हुई लकड़ियों में काटना रूप क्रिया प्रत्यक्ष देख पड़ती है । इस से भिद्धातु कर्मस्थ क्रिय है ॥ ७३० ॥

७३१-तपस्तपः कर्मकस्यैव ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८८ ॥

सकर्मकों में तपः कर्म वाले ही तप का कर्त्ता कर्मवत् हो यह सूत्र नियमार्थ है कि सकर्मक धातुओं को कर्मवद् भाव हो तो तपधातु ही का हो । सो भी तपः कर्म वाले ही तप धातु का हो । किन्तु और कर्म वाले का न हो । वेदव्रतादीनि तपांसि तापसं तपान्त स तापसस्स्वगस्थिभूतः स्वगाय तपस्तप्ये । । वेदव्रत आदि तप तापस अर्थात् तपस्या करने वाले को संताप देते हैं वह तापस अत्यन्त सुख के लिये तप को यत्न से सिद्ध करता है । पिछले सूत्र से कर्मवद्भाव न प्राप्त था इस से विधान किया । अन्वतप्त तपस्तापसः । यहां (७२४) इस से चिण् निषेध हो कर सिच् हो जाता है । तपःकर्मक ग्रहण करने से यहां न हुआ । उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः । कारुकःकटं करोति कुर्वतस्तस्यकटः स्वयमेव क्रियते ॥ ७३१ ॥

७३२-अचः कर्मकर्त्तरि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६२ ॥

कर्मकर्त्ता में तशब्द परे हो तो अजन्त धातु से परे च्लि को चिण् आदेश हो । अकारि कटः स्वयमेव । अकृत कटः स्वयमेव । कृषिवलः केदारं लुनीते लुनतस्तस्यकेदारःस्वयमेव लूयते । अलविष्ट केदारःस्वयमेव (अचः) इस ग्रहण से यहां न हुआ । अभेदि काष्ठं स्वयमेव । कर्मकर्तृ ग्रहण से यहां न हुआ । अकारि कटो देवदत्तेन । गोपालो गां व्रजमन्ववरुणद्धि, रुन्धतस्तस्य गौः स्वयमेवान्ववरुध्यते ॥ ७३२ ॥

७३३-न रुधः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६४ ॥

रुधि धातु से परे कर्मकर्त्ता में च्लि के स्थान में चिण् आदेश न हो । 'अन्ववारुणद्धि गौः स्वयमेव । कर्मकर्त्ता ग्रहण से यहां न हुआ । अन्ववारोधि गौर्गोपालेन॥७३३

७३४—वा०—दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोः ॥

सकर्मक दुह और पच धातु का कर्त्ता बहुल करके कर्मवत् हो ॥ ७३४ ॥

७३५—न दुहस्नुनमां यक्चिणौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८९ ॥

दुह, स्नु, और नम् इन धातुओं के कर्मवद्भाव में यक् और चिण् न हों । इससे दुह धातु से यक् का प्रतिषेध है । और चिण् तो विकल्प से कहेंगे । गोपालो गां पयो दोग्धि दुहतस्तस्य गौः पयः स्वयमेव दुग्धे ॥ ७३५ ॥

७३६—दुहश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६३ ॥

दुह धातु से परे कर्मकर्त्ता में विकल्प करके च्लि को चिण् आदेश हो । अदुग्ध गौः पयः स्वयमेव । कर्मकर्त्ता ग्रहण से । अदोहि गौर्गोपालेन । ऋतुरुदुंबरं सलोहितं फलं पचति पचतस्तस्योदुम्बरः सलोहितं फलं पच्यते । प्रस्नुते गौः स्वयमेव । प्रास्नोष्ट गौः स्वयमेव । नमतेदण्डः स्वयमेव । अनंस्त दण्डः स्वयमेव ॥ ७३६ ॥

७३७—वा०—सृजियुज्योःश्यँश्च ॥

सकर्मक सृज् और युज् धातु का कर्त्ता बहुल करके कर्मवत् और श्यन् हो । यह श्यन् यक् प्रत्यय का अपवाद है ॥ ७३७ ॥

७३८-वा०—सृजेःश्रद्धोपपन्ने कर्त्तरिकर्मवद्भावो वाच्य श्चिणात्मनेपदार्थः ॥

श्रद्धायुक्त कर्त्ता में सृज धातु को कर्मवद्भाव कहना चाहिये । चिण् और आत्मनेपद होने के लिये । सृज्यते मालाम् । श्रद्धा से माला बनाता है । असर्जि मालाम् । श्रद्धा से माला बनालिई । युज्यते ब्रह्मचारी योगम् ॥ ७३८ ॥

७३९—वा०—भूषाकर्मकिरादिसनां चान्यत्रात्मनेपदात् ॥

भूषण अर्थवाले, किरादि और सन्नन्त धातुओं को आत्मनेपद से अन्यत्र प्रतिषेध कहना चाहिये । अर्थात उन को यक्, चिण् और चिणवद्भाव न हों । और आत्मनेपद हो । भूषार्थ में माता कन्यां भूषयति, कन्यां भूषयन्त्या मातुः कन्या स्वयमेव भूषयते । अनुबुभूषत कन्या स्वयमेव* । मण्डयते कन्या स्वयमेव । अममण्डत कन्या स्व-

---

* यहां स्वार्थणिच् मानकर भूषार्थकों के प्रतिषेध में 'भूषयते' इत्यादि उदाहरण महाभाष्यकारने दिये हैं क्योंकि "यक्चिणोः प्रतिषेधे,, इस वार्त्तिक से केवल हेतुमत् णिच् से प्रतिषेध है । और भारद्वाजीय जो णिमात्र से प्रतिषेध पढते हैं वह उन्हीं का

यमेव । अलंकुरुते कन्या स्वयमेव । अलमकृत कन्या स्वयमेव । किरादि । अवकिरते हस्ती स्वयमेव । अवाकीर्ष्ट हस्ती स्वयमेव गीर्यते ग्रासः स्वयमेव । अवगीर्ष्ट ग्रासः स्वयमेव । चिकीर्षते कटः स्वयमेव । अचिकीर्षिष्ट कटः स्वयमेव । यहां इच्छा कर्तृस्थ भी है तथापि करोति क्रिया की अपेक्षा लेकर कर्म्मस्थ क्रिया जाननी चाहिये क्योंकि करोति प्रधान है और इच्छा तो करोति के आधीन है किन्तु स्वतंत्र नहीं है ॥ ७३९ ॥

७४०-वा०-यक्चिणोः प्रतिषेधे हेतुमण्णिश्रिब्रूञा-मुपसंख्यानम् ॥

यक् और चिण् के प्रतिषेध में हेतुमान् णि, श्रि, और ब्रूञ् इन का उपसंख्यान करना चाहिये । णि । कारयते कटः स्वयमेव । श्रि । उच्छ्रयते दण्डः स्वयमेव । उदशिश्रियत दण्डः स्वयमेव । ब्रूञ् । ब्रूते कथाः स्वयमेव । अवोचत कथाः स्वयमेव ॥७४०॥

७४१-वा०-भारद्वाजीयाः पठन्ति-यक्चिणोः प्रतिषेधे णिश्रन्थिग्रन्थिब्रूञात्मनेपदाकर्मकाणामुपसंख्यानम् ॥

पुच्छमुदस्यति. उत्पुच्छयते गौः । अन्तर्भावितण्यर्थ मान कर गामुत्पुच्छयते । यह व्यवस्था होगी । फिर कर्तृत्व अपेक्षा में । उत्पुच्छयते गौः होगा । उदपुपुच्छत । यहां यक् और चिण् के प्रतिषेध से शप् और चङ् होते हैं । श्रन्थि और ग्रन्थ के आकृषीयत्व होने से णिच् के अभाव पक्ष के लिये इन का ग्रहण है । ग्रन्थते ग्रन्थमाचार्य्यः श्रन्थते मेखलांदेवदत्तः । ग्रन्थते ग्रन्थः स्वयमेव । श्रन्थते मेखला स्वयमेव । अग्रन्थिष्ट । अश्रन्थिष्ट । विकुर्वते * सैन्धवाः । फिर अन्तर्भावितण्यर्थ के प्रयोजनांश त्याग किये से । विकुर्वते सैन्धवाः स्वयमेव होगा । व्यकारिष्ट । व्यकारिषाताम् । व्यकारिषत । यहां से चिण्वद्भाव० । व्यकृत । व्यकृषाताम् । व्यकृषत ॥ ७४१ ॥

७४२-कुषिरञ्जोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च॥ अ० ॥ ७ । १ । ९० ॥

प्राचीन आचार्य्यों के मत से कुष और रञ्ज धातु को कर्मवद्भाव में श्यन् प्रत्यय

मत है । इसलिये सर्व संमत से णयन्त अणयन्त दोनों पक्ष में "भूषाक०,, इस वार्त्तिक में भूषार्थकों का गृहण किया है अन्यथा महाभाष्यकार का भूषयते कन्या स्वयमेव । इत्यादि उदाहरण देना व्यर्थ हो इस से यहां कैयटने जो भूषार्थकोंका गृहण अणयन्तों ही के लिये माना है यह उन का व्याख्यान असंगत है ॥

* यहां "वेः शब्दकर्म्मणोऽकर्म्मकाच्च,, इस से तङ् है ॥

और परस्मैपद हो । किन्तु यक् आत्ममेपद न हो । कुष्यति, कुष्यते वा । पादः स्वयमेव । रज्यति रज्यते वस्त्र. स्वयमेव । यह प्राचां ग्रहण विकल्प के लिये है । और वह व्यवस्था से माना जाता है इस से लिङ्, लुट् लिट् और स्यादि विषय में यह सूत्र नहीं प्रवृत्त होता । चुकुषे पादः स्वयमेव । ररंजे वस्त्र । कोषिषीष्ट पादः स्वयमेव । रङ्क्षीष्ट वस्त्रं स्वयमेव । कोषिष्यते पादः स्वयमेव । रङ्क्ष्यते वस्त्रं स्वयमेव । अकोषि पादः स्वयमेव । अरञ्जि वस्त्रं स्वयमेव ॥ ७४२ ॥

इति कर्म्म कर्त्तृ प्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ लकारार्थप्रक्रियाप्रारम्भः ॥

७४३—अभिज्ञावचने लृट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११२ ॥

अभिज्ञावचन अर्थात् स्मृतिबोधक उपपद होतो धातु से लृट् प्रत्यय हो । यह लङ् का अपवाद है । अभिजानासि वत्स कश्मीरेषु वत्स्यामः । स्मरसि बुध्यसे चेतयसे वा मित्र काश्यां पठिष्यामः ॥ १४३ ॥

७४४—न यदि ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११३ ॥

यत् शब्द सहित अभिज्ञावचन उपपद हो तो लृट् प्रत्यय न हो । अभिजानासि देवदत्त ! यत्कश्मीरेष्ववसाम । यहां निवास मात्र का स्मरण है । इस से यह अगले सूत्र का विषय नहीं है ॥ ७४४ ॥

७४५—विभाषासाकाङ्क्षे ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११४ ॥

अभिज्ञावचन उपपद हो और यत् शब्द उपपद हो वा न हो तो धातु से विकल्प करके लृट् हो साकाङ्क्ष अर्थ में । अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामः । तत्र सक्तून् पास्यामः । अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेष्ववसाम तत्र सक्तूनपिवाम । यद् अभिजानासि देवदत्त यत्कश्मीरान् गमिष्यामः; यत्कश्मीरानगच्छाम । यत्तत्रौदनं भोक्ष्यामहे यत्तत्रौदनमभुञ्जमहि । अयद् । अभिजानासि देवदत्त कश्मीरान्गमिष्यामः । कश्मीरानगच्छाम तत्रौदनं भोक्ष्यामहे तत्रौदनमभुञ्जमहि । लक्ष्य और लक्षण के संबन्ध से वक्ता की आकाङ्क्षा होती है । उक्त उदाहरणों में निवास और गमन लक्षण है और पान भोजन लक्ष्य हैं (२९) से लिट् विधान करचुके हैं यहां उत्तम पुरुष के विषय में विशेष कहते हैं । सुप्तमत्तयोरुत्तमः । महाभा० ३ । २ । ११५ । सुप्त और मत्त के

विषय में पारोक्ष्य भाव से उत्तम पुरुष होता है। सुप्तोऽहं किल विललाप। सुप्तोन्वहं किल विललाप। मत्तोन्वहं किल विललाप ॥ ७४५ ॥

७४६-वा०—परोक्षेलिडत्यन्तापह्नवे च ॥

परोक्षेलिट् यहां अत्यन्त अपह्नव अर्थात् मिथ्यापन में भी लिट् कहना चाहिये॥ नो खण्डिकाञ् जगाम। नो कलिङ्गाञ् जगाम ॥ ७४६ ॥

७४७-हशश्वतोर्लङ् च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११६ ॥

भूत अनद्यतन परोक्ष अर्थ में ह और शश्वत् शब्द उपपद हों तो धातु से लङ् और लिट् हो। इति ह अकरोत्। इतिह चकार। शश्वदकरोत् शश्वच्चकार ॥ ७४७ ॥

७४८--प्रश्ने चासन्नकाले ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११७ ॥

समीप काल के पूंछने में जो भूतअनद्यतन परोक्ष है उस अर्थ में धातु से लङ् और लिट् हो अगच्छत् किं देवदत्तः? । जगाम किं देवदत्तः? । कोई किसी से पूंछता है कि क्या देवदत्त गया ? । प्रश्नग्रहण से । जगाम देवदत्तः । यहां न हुआ आसन्न काल से अन्यत्र । भवन्तं पृच्छामि । जघान कंसं किल वासुदेवः ॥ ७४८ ॥

७४९-लट् स्मे ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११८ ॥

भूत अनद्यतन परोक्ष काल में स्म उपपद हो तो धातु से लट् प्रत्यय हो। यजति स्म युधिष्ठिरः। स्म से अन्यत्र। इयाज युधिष्ठिरः ॥ ७४९ ॥

७५०—अपरोक्षे च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११९ ॥

भूत अनद्यतन अपरोक्ष काल में भी स्म उपपद हो तो धातु से लट् हो। एवं पिता ब्रवीति स्म ॥ ७५० ॥

७५१-ननौ पृष्टप्रतिवचने ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२० ॥

ननुशब्द उपपद होतो प्रश्न के उत्तर देने अर्थ में भूतकाल में वर्त्तमान धातु से लट् प्रत्यय हो। अकार्षीः किं ननु करोमि भोः । अवोचस्तत्र किं देवदत्त, ननु ब्रवीमि भोः । पृष्टप्रतिवचन से अन्यत्र । नन्वकार्षीन्माणवकः ॥ ७५१ ॥

७५२-नन्वोर्विभाषा ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२१ ॥

न और नु उपपद हों तो प्रश्न के उत्तर देने में भूत काल में वर्त्तमान धातु से विकल्पकरके लट् हो। अकार्षीः किं ?। न करोमि । नाकार्षं वा। नु करोमि। न्वकार्षं वा ॥ ७५२ ॥

७५३—पुरि लुङ् चास्मे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२२ ॥

स्म रहित पुरा शब्द उपपद हो तो भूत अनद्यतन काल में धातु से विकल्प करके लुङ् और लट् हों । वसन्तीह पुरा छात्राः । अवात्सुरिह पुरा छात्राः । पक्ष में यथाप्राप्त हों । अवसन्निह पुरा छात्राः । ऊषुरिह पुरा छात्राः । अस्मग्रहण से यहां लुङ् न हुआ । धर्मेण स्म पुरा कुरवो युध्यन्ते ॥ ७५३ ॥

७५४—यावत्पुरानिपातयोर्लट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४ ॥

निपात संज्ञक यावत् और पुरा शब्द उपपद हों तो भविष्यत्काल में धातु से लट् प्रत्यय हो । यावद्भुङ्क्ते । पुराभुङ्क्ते । निपातग्रहण से यहां न हुआ । यावद्दास्यति तावद्भोक्ष्यते । पुरायास्यति । यहां पुरा तृतीया का एकवचन है ॥ ७५४ ॥

७५५—विभाषा कदाकर्ह्योः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५ ॥

कदा और कर्हि शब्द उपपद हों तो भविष्यत् काल में धातु से विकल्प करके लट् प्रत्यय हो । कदा भुङ्क्ते । कर्हि भुङ्क्ते । कदाभोक्ष्यते । भोक्ता । कर्हि भोक्ष्यते । भोक्ता ॥ ७५५ ॥

७५६—किंवृत्ते लिप्सायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६ ॥

किं शब्द का प्रयोग उपपद हो तो भविष्यत् कालिक धातु से लाभ की इच्छा अर्थ में विकल्प करके लट् प्रत्यय हो कं कतरं कतमं वा ददासि ; दास्यसि ; दातासि ? वा । कोई लाभ की इच्छा वाला पूछता है कि तुम किस को दोगे । लिप्सा अर्थ से अन्यत्र । कः पाटलिपुत्रं गमिष्यति ? ॥ ७५६ ॥

७५७—लिप्स्यमानसिद्धौ च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७ ॥

अभीष्टपदार्थ से सिद्धि गम्यमान हो तो भविष्यत्काल में धातु से विकल्प करके लट् प्रत्यय हो । यो धनं ददाति स स्वर्गं गच्छति । यो धनं दास्यति स स्वर्गं गमिष्यति । यो धनं दाता स स्वर्गं गन्ता । धन देने से स्वर्ग प्राप्त होता है इस प्रकार धन चाहता हुआ देने वाले को उत्साह कराता है ॥ ७५७ ॥

७५८—लोडर्थलक्षणे च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८ ॥

विध्यादिक जो लोट् के अर्थ हैं वे जिस से जाने जावें उस अर्थ में वर्तमान धातु से भविष्यत् काल में विकल्प करके लट् प्रत्यय हो । उपाध्यायश्चेदागच्छति, आग-

मिष्यति, आगन्ता वा । अथ त्वं व्याकरणमधीष्व । यहां उपाध्याय का आगमन पढ़ाने की प्रेरणा को विदित कराता है ॥ ७५८ ॥

७५९–लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९ ॥

लोडर्थलक्षण में वर्त्तमान धातु से दो घड़ी से ऊपर जो भविष्यत्काल उस में विकल्प करके लिङ् और लट् हों । उपाध्यायश्चेदागच्छति, आगमिष्यति, आगन्ता वा अथ त्वं छन्दोऽधीष्व ॥ ७५९ ॥

७६०—वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३१

वर्त्तमान के समीप का जो भूत वा भविष्यत् काल उस में वर्त्तमान धातु से वर्त्तमानवत् प्रत्यय विकल्प करके हो । अर्थात् "वर्तमाने लट्,,इस सूत्र से लेकर "उणादयो बहुलम्) इस सूत्र पर्य्यन्त वर्तमानाधिकार में जिस.२ निमित्त से जो २ प्रत्यय कहे है वे उन्हीं निमित्तों से वर्तमान समीप भूत वा भविष्यत् काल में विकल्प करके हों । कदा देवदत्तागतोसि, अयमागच्छामि । आगच्छन्तमेव मां विद्धि । अयमागमम् । एषोस्म्यागतः । कदा देवदत गमिष्यसि, एषगच्छामि । गच्छन्तमेव मां विद्धि । एष गमिष्यामि । गन्तास्मि । सामीप्यग्रहण से अतिकाल की विवक्षा में नहो । परुदगच्छत् पाटलिपुत्रं वर्षेण गमिष्यति ॥

७६१–आशंसायां भूतवच्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३२ ॥

आशंसा गम्यमान होतो भविष्यत् काल में धातु से विकल्प करके भूतवत् और वर्तमानवत् प्रत्यय हों । अप्राप्तप्रियवस्तु के पाने की इच्छा करने को आशंसा कहते हैं । उपाध्यायश्चेदागमत् । आगतः । आगच्छति । आगमिष्यति वा । एते वयं व्याकरणमध्यगीष्महि । एते वयं व्याकरणमधीतवन्तः । अधीमहे अध्येष्यामहे । यहां "सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः,, इस परिभाषाबल से लङ् और लिट् नहीं होते हैं । आशंसाग्रहण से यहां न हुआ । आगमिष्यति ॥ ७६१ ॥

७६२—क्षिप्रवचने लृट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३३ ॥

क्षिप्रवाची उपपद हो और आशंसा गम्यमान होती भविष्यत्काल में धातु से लृट् प्रत्यय.हो । यह पिछले सूत्र का अपवाद है । उपाध्यायश्चेत् क्षिप्रमागमिष्यति । क्षिप्रं व्याकरणमध्येष्यामहे । शीघ्रमाशुत्वरितमध्येष्यामहे वा ॥ ७६२ ॥

७६३–आशंसावचने लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३४ ॥

आशंसा कहने वाला पद उपपद होतो धातु से लिङ् प्रत्यय हो। यह (७६१)

सूत्र का अपवाद है। उपाध्यायश्चेदागच्छेत् आशंसेऽधीयीय। आशंसेऽवकल्पयेयुक्तोऽधीयीय। आशंसे क्षिप्रमधीयीय ॥ ७६३ ॥

७६४–नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः॥ अ०॥ ३।३।१३५॥

क्रिया के प्रबन्ध और सामीप्य में अनद्यतनवत् प्रत्यय न हो। अर्थात् भूत अनद्यतन में लङ् और भविष्यत् अनद्यतन में लुट् विहित हैं वे नहीं। क्रियाप्रबन्ध (क्रिया का निरन्तर होना) सामीप्य (तुल्य जातीय से अव्यवधान) क्रियाप्रबन्ध, यावज्जीवं भृशमन्नमदात्। भृशमन्नंदास्यति। यावज्जीवं पुत्रोऽध्यापिपत्। यावज्जीवमध्यापयिष्यति। सामीप्य, येयंपौर्णमास्यतिक्रांता, एतस्यामुपाध्यायोग्नीनाधित। सोमेनायष्ट। गामदित। येऽममावास्याऽऽगामिनी, एतस्यामुपाध्यायोग्नीनाध्यास्यते। सोमेन यक्ष्यते। स गां दास्यते ॥ ७६४ ॥

७६५–भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् ॥ अ० ॥ ३।३।१३६॥

उरले भाग को लेकर मर्यादा हो तो भविष्यत् काल में अनद्यतनवत् प्रत्यय न हो। आपाटलिपुत्राद् योयमध्वा गन्तव्यस्तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र स्थास्यामि। भविष्यत् के ग्रहण से यहां न हुआ। आपाटलिपुत्राद्योयमध्वागतस्तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र युक्ता अध्यैमहि। मर्यादावचन से अन्यत्र। योयमध्वानिरवधिको गन्तव्यस्तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र मोक्तास्महे। अवरस्मिन् ग्रहण से यहां न०। आपाटलिपुत्राद् योयमध्वा गन्तव्यस्तस्य यत् परं कौशाम्ब्यास्तत्र मोक्तास्महे ॥ ७६५ ॥

७६६–कालविभागे चानहोरात्राणाम् ॥ अ० ॥ ३।३।१३७॥

समय की मर्यादा के विभाग में उरले विभाग की अपेक्षा हो तो भविष्यत् काल में अनद्यतनवत् प्रत्यय न हो। जो वह मर्यादाविभाग अहोरात्र संबन्धी न हो। योयं संवत्सर आगामी तत्र यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे। भविष्यत्ग्रहण से यहां न हुआ। योयं वत्सरोतीतस्तस्य यदवरमाग्राहायण्यास्तत्र युक्ता अध्यैमहि। मर्यादा से अन्यत्र। योयं निरवधिकः काल आगामी तस्ययदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। अवरभाग की अपेक्षा में यह होगा। और परभाग में अगले सूत्र से विधान करेंगे। अनहोरात्र ग्रहण से यहां न हुआ। योयं मास आगामी तस्य योवरः पञ्चदशरात्रस्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। योयं त्रिंशद्रात्र आगामी तस्य योवरोर्द्धमासस्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। तत्र सक्तून् पातास्मः। सब प्रकार से अहोरात्र के स्पर्श में प्रतिषेध है ॥ ७६६ ॥

७६७-परस्मिन् विभाषा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३८ ॥

समय की मर्यादा के विभाग में परभाग की अपेक्षा हो तो विकल्प करके अनद्यतनवत् प्रत्यय न हो। जो वह मर्यादावचन अहोरात्र संबन्धी विभाग में न हो। योयं संवत्सर आगामी तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्रयुक्ता अध्येष्यामहे । अध्येतास्महे। अनहोरात्र से अन्यत्र । योयंत्रिंशद्रात्र आगामी तस्य यः परः पञ्चदशरात्रस्तत्रयुक्ता अध्येतास्महे । भविष्यत्काल से अन्यत्र योयमध्वागन्तव्य आपाटलिपुत्रात् तस्य यत्परं कौशाम्ब्यास्तत्र अध्येतास्महे (६३) सूत्र से लृङ् विधान कर चुके हैं उस का विशेष व्याख्यान करते हैं । दक्षिणेनचेदायास्यन्नशकटं पर्य्याभविष्यत् । यदि कमलकमाह्वास्यन्न शकटं पर्याभविष्यत्। अभोक्ष्यत भवान् घृतेन यदि मत्समीपमागमिष्यत् । यहां सर्वत्र भविष्यतकाल संबन्धी कार्य का न होना हेतुमान् और दक्षिणमार्गगमन आदि हेतु हैं तथा भविष्यत्काल विषयक हेतु और हेतुमान् की अतिपत्ति वाक्य से प्रतीत होती है ॥ ७६७ ॥

७६८-भूते च ॥ ३ । ३ । १४० ॥

लिङ् निमित्त म क्रियातिपत्ति हो तो भूतकाल में भी लृङ् प्रत्यय हो । दृष्टोमया भवत्पुत्रोऽन्नार्थी चङ्क्रम्यमाणः । अपरश्च द्विजो ब्राह्मणार्थी यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत् तदाऽभोक्ष्यत नतु भुक्तवान् । अन्येन पथा स गतः ॥ ७६८ ॥

७६९-वोताप्योः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४१ ॥

यहां से लेकर "उताप्योः समर्थयोर्लिङ्" इस सूत्र पर्यन्त जो विधान करेंगे वहां लिङ् के निमित्त में क्रियातिपत्ति हो तो लृङ् विकल्प करके होता है यह अधिकार समझना चाहिये "विभाषाकथमि०" यह कहेंगे इस के विषय में कथं नाम तत्र भवा वृषलमयाजयिष्यत् । याजयेद् वा ॥ ७६९ ॥

७७०-गर्हायां लडपिजात्वोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४२ ॥

कुत्सा अर्थ में अपि और जातु उपपद हों तो धातु से लट् प्रत्यय हो सामान्य काल में । कालविशेष विहित जो प्रत्यय हैं उन को यह परत्व से बाध लेता है । अपितत्र भवान वृषलं याजयति।जातु तत्र भवान् वृषलं याजयति । गर्हामहे । अहो अन्याय्यमेतत् । लिङ्निमित्त के अभावसे यहां क्रियातिपत्ति में लृङ् नहीं होताहै ॥७७०।

७७१-विभाषा कथमिलिङ् च ॥ अ० ॥ ३। ३। १४३ ॥

कथम् शब्द उपपद हो और निन्दा पाई जाय तो धातु से लिङ् और लट्

प्रत्यय विकल्प करके हो । कथं नाम तत्र भवान् वृषलं याजयेत् । कथं तत्रभवान् वृषलं याजयति । विकल्प पक्ष में । कथं नाम तत्र भवान् वृषलं याजयिष्यति । कथं नाम तत्रभवान् वृषलं याजयिता । इत्यादि यहां लिङ् निमित्त है इस से भूतकाल की क्रियातिपत्ति विवक्षा में विकल्प करके और भविष्यत् काल की में नित्य लृङ् होता है ॥ ७७१ ॥

७७२–किंवृत्ते लिङ्लृटौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४४ ॥

किम् शब्द का प्रयोग उपपद हो और गर्हा पाई जाय तो धातु से लिङ् और लृङ् प्रत्यय हों । यहां लिङ् ग्रहण लट् की निवृत्ति के लिये है । को नाम वृषलो यं तत्रभवान् याजयेत् । यं तत्रभवान् वृषलं याजयिष्यति । कतरो नाम तत्रभवान् वृषलं याजयेत् । याजयिष्यति । भूतकाल की क्रियातिपत्ति में विकल्प करके लृङ् और भविष्यत् सबन्धी में नित्य ही लृङ् होगा । को नाम वृषलो यं तत्रभवान् याजायिष्यत्॥७७२

७७३–अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि ॥अ०॥३ । ३ । १४५॥

असंभावना और असहन अर्थ में किम् शब्द का प्रयोग उपपद हो वा न हो तो धातु से लिङ् और लृट् प्रत्यय हो । यहां अधिक अक्षरवाले "अनवक्लृप्ति, शब्द का पूर्वनिपात किंवृत्त और अकिंवृत्त से अर्थों के यथासंख्य न होने का प्रकाशक है । भवान् गुरुं निन्दिष्यति । कः कतरः कतमो वा गुरुं निन्देत् । निन्दिष्यति वा । अमर्षे न मर्षयामि । तत्रभवान् गुरुं निन्देत् । निन्दिष्यति वा । को नाम गुरुं निन्देत् । निन्दिष्यति वा । लृङ् पूर्वनियम के तुल्य० । जैसे । नावकल्पयामि तत्र भवान् वृषलमयाजयिष्यत् ॥ ७७३ ॥

७७४–किंकिलास्त्यर्थेषु लृट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४६ ॥

किंकिल और अस्त्यर्थक धातु उपपद हों तो अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थ में धातु से लृट् प्रत्यय हो । किंकिल शब्द क्रोधका प्रकाशक है । अस्त्यर्थक । अस्ति, भवति, विद्यति । यह लट् लिङ् का अपवाद । किंकिल नाम तत्रभवान वृषलं याजयिष्यति । अस्तिनाम तत्र भवान् वृषलं याजयिष्यति । नश्रद्दधे । नमर्षयामि। इत्यादि । यहा लृङ् नहीं प्राप्त है ॥ ७७४ ॥

७७५–जातुयदोर्लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४७ ॥

जातु और यद् उपपद होंतो धातु से लिङ् हो । यह लृट् का अपवाद है । जातु

तत्रभवान् गुरुं निन्देत् । यन्नाम तत्र भवान् गुरुं निन्देत् नावकल्पयामि । नमर्षयामि । लृङ् पूर्ववत् ॥ ७७५ ॥

७७६--वा०--जातुयदोर्लिङ्विधानेयदायद्योरुपसंख्यानम् ॥

यदा भवद्विधः क्षत्रियं याजयेत् । यदि भवद्विधः क्षत्रियं याजयेत् । नावकल्पयामि न मर्षयामि । भूत, भविष्यत् क्रियातिपत्ति विवक्षा में पूर्ववत् लृङ् होगा ॥ ७७६ ॥

७७७-यच्चयत्रयोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४८ ॥

यच्च वा यत्र उपपद हो और अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष गम्यमान होतो धातु से लिङ् प्रत्यय हो यह लृट् का अपवाद है । यच्च तत्रभवान् गुरुं निन्देत् । यत्र तत्र भवान् गुरुं निन्देत् । नावकल्पयामि । नमर्षयामि । क्रियातिपत्ति में पूर्ववत् लृङ् होता है॥७७७॥

७७८--गर्हायां च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४९ ॥

गर्हागम्यमान हो और यच्च, यत्र उपपद हों तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो । यह सब लकारों का अपवाद है । यच्च यत्र वा तत्रभवान् वृषलं याजयेत् । गर्हामहे अन्याय्यमेतत् । क्रियातिपत्ति में पूर्ववत् लृङ् होता है ॥ ७७८ ॥

७७९--चित्रीकरणे च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५० ॥

यच्च यत्र उपपद हों और चित्रीकरण गम्यमान हो तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो । चित्रीकरण आश्चर्य्य अद्भुत विस्मय करने योग्य को कहते हैं । यच्च यत्र वा भवान् वृषलं याजयेत् । आश्चर्य्य मेतत् । क्रियातिपत्ति में यथाप्राप्त लृङ् होता है॥७७९

७८०--शेषे लृडयदौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५१ ॥

यदि शब्द भिन्न यच्च यत्र से अन्य उपपद हो और चित्रीकरण गम्यमान हो तो धातु से लृट् प्रत्यय हो । सबलकारों का अपवाद है । आश्चर्य चित्रमद्भुतम् अन्धो नाम पर्वतमारोक्ष्यति । बधिरोनाम व्याकरणमध्येष्यते । अयदिग्रहण से यहां न हुआ आश्चर्य यदि सोऽधीयीत । इस विषय में लिङ् निमित्त के अभाव से लृङ् नहीं होता ॥ ७८० ॥

७८१--उताप्योः समर्थयोर्लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५२ ॥

समानार्थक उत और अपि उपपद हों तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो । अङ्गीकार अर्थ में उत, अपि, समानार्थक हैं । उत कुर्य्यात् । अपि कुर्य्यात् उताधीयीत । अ-

प्यधीयीत । हां यह करेगा वा पढ़ेगा । समर्थग्रहण से यहां न हुआ । उत दण्डः पतिष्यति । अपिद्वारं धास्यति । दण्ड गिरेगा द्वार को ढांप लेगा । यहां प्रश्नप्रच्छादन गम्यमान है "वोताप्योः यह निमित्त पूरा हो गया अब यहां से लेकर भूतकाल में भी क्रियातिपत्ति में नित्य लृङ् होगा ॥ ७८१ ॥

७८२–कामप्रवेदनेऽकच्चित् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५३ ॥

कच्चित् शब्द न उपपद हो तो अपने अभिप्राय के प्रकाश करने में धातु से लिङ् प्रत्यय हो । यह सब लकारों का अपवाद है । कामो मे गच्छेद् भवान् । अभिलाषा इच्छा वा मम भुञ्जीत भवान् । अकाच्चित् कहने से यहां न हुआ । कच्चिज्जीवति ते माता ॥ ७८२ ॥

७८३–संभावनेलमितिचेत्सिद्धाप्रयोगे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५४ ॥

जो सिद्ध अलम् शब्द का प्रयोग न किया जाय तो अलमर्थ सम्भावन में वर्त्तमान धातु से लिङ् प्रत्यय हो । जहां वाक्य में अलम् शब्द का अर्थ परिपूर्णता अर्थात् प्रौढपन गम्यमान हो और उस का प्रयोग न हो वहां सिद्ध अलम् का अप्रयोग तथा क्रियाओं में योग्यता का निश्चय करना सम्भावन समझना चाहियें । यह सब लकारों का अपवाद है । अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात् । अपि द्रोणपाकं भुञ्जीत । अलम् ग्रहण से यहां न हुआ । विदेशस्थो देवदत्तः प्रायेण ग्रामं गमिष्यति । सिद्धाप्रयोग ग्रहण से यहां न हुआ । अलं कृष्णोहस्तिनं हनिष्यति । भूत वा भविष्यत्काल की क्रियातिपत्ति में नित्य लृङ् होता है ॥ ७८३ ॥

७८४–विभाषाधातौ सम्भावनवचनेऽयदि ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५५ ॥

यद्शब्द वर्जित अलमर्थ संभावन अर्थ का कहने वाला धातु उपपद होतो धातु से विकल्प करके लिङ् प्रत्यय हो जो सिद्ध अलम् का अप्रयोग हो । पूर्वसूत्र से नित्य लिङ् प्राप्तथा विकल्प के लिये यह सूत्र है । संभावयामि भुञ्जीत भवान् । संभावयामि भोक्ष्यते भवान् । अयद् ग्रहण से यहां न हुआ । संभावयामि यद्भुञ्जीत भवान् ॥ ७८४ ॥

७८५–हेतुहेतुमतोर्लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५६ ॥

हेतु कारण और हेतुमत जिस में कारण रहे अर्थात् फल उन में वर्त्तमान जो धातु हो उस से लिङ् प्रत्यय विकल्प करके हो । दक्षिणेन चेद् यायात् न शकटं पर्याभवेत । यहां दक्षिणमार्ग से यानाहेतु और अपरिपूर्ति होना फल है । लिङ् वर्त्त-

मान था पुनर्लिङ् ग्रहण विशेष काल के संग्रह करने के लिये है । इस से यह लकार भविष्यत काल में होता है । द्वितीय पक्ष में लृट् । दक्षिणेन चेद्यास्यति न शकटं पर्या भविष्यति । भविष्यत् के नियम से यहां न हुआ । हन्तीति पलायते । वर्षतीति धावति । क्रियातिपत्ति में लृङ् होता है ॥ ७८५ ॥

७८६–इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५७ ॥

इच्छा अर्थ वाले धातु उपपद हों तो धातु से लिङ् और लोट् प्रत्यय हों । यह सब लकारों का अपवाद है । इच्छामि भुञ्जीत भवान् । इच्छामि भुक्तां भवान् कामये । प्रार्थये । पठतु भवान् । कामप्रवेदने चेत । महाभाष्य० । ३ । ३ । १५७ , जो अत्यन्त इच्छा विदित करना गम्यमान हो तो उक्त लिङ् प्रत्यय हो यह कहना चाहिये अर्थात् यहां न हो । इच्छन् कटं करोति ॥ ७८६ ॥

७८७–लिङ् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५९ ॥

समानकर्त्ता वाले इच्छार्थक धातु उपपद हों तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो । भुञ्जीयेतीच्छति । अधीयीयेतीच्छति । क्रियातिपत्ति में लृङ् होता है ॥ ७८७ ॥

७८८–इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्त्तमाने॥अ० ३।३। १६०॥

इच्छार्थक धातुओं से वर्तमान काल में विकल्प करके लिङ् प्रत्यय होता है । इच्छति । इच्छेत् । कामयते । कामयेत । वष्टि । उश्यात् । प्रथम (७७ । ६४) से लिङ् और लोट् का विधान किया है । अब उस विषय के क्रम से उदाहरण देते हैं जैसे । विधि, भवान् पठेत् । ग्रामं भवानागच्छेत् । निमंत्रण, इह भवान् भुञ्जीत । आमन्त्रण, इहभवानासीत । अधीष्ट, भवान् पुत्रमध्यापयेत् । संप्रश्न, किं भो वेदमधीयीय । प्रार्थन, भवतिमे प्रार्थना व्याकरणमधीयीय । इसीप्रकार लोट् भी होगा । भवान् पठतु इत्यादि ॥ ७८८ ॥

७८९–प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६३॥

प्रैष (प्रेरणा करना) अतिसर्ग (इच्छा पूर्वक आज्ञा देना) प्राप्तकाल (कार्य के समय का अवसर पाना) इन अर्थों में धातु से कृत्य संज्ञक और लोट्*प्रत्यय

* प्रैषातिसर्ग० सूत्र की व्याख्या में जो कौमुदीकार ने लोट् का अनुकर्षण कर केवल उस को प्राप्तकाल अर्थ ही के लिये माना है यह उन का मानना असङ्गत है क्योंकि उक्त सूत्र की व्याख्या जो महाभाष्यकारने की है उस को स्पष्ट विदित होता है कि प्रैषादि तीनों अर्थों में लोट् प्रत्यय होता है यथा 'अयं प्रैषादिष्वर्थेषु लोट् विधीयते स विशेषविहितः सामान्य विहितान् कृत्यान् इत्यादि महाभाष्य०३।३।१६३॥

हो । कृत्य, भवता कटः करणीयः । कर्त्तव्यः कटः कृत्यः कार्यः इत्यादि । लोट् करोतु कटं भवानिह प्रेषितः भवानतिसृष्टः । भवतः प्राप्तकालः कटकरणे ॥ ७८९ ॥

७९०—लिङ्चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥ अ० ३ । ३ । १६४ ॥

प्रेषादि अर्थ गम्यमान हों तो दो घड़ी से ऊपर जो भविष्यत् काल है उस में वर्त्तमान धातु से लिङ् और यथाप्राप्त कृत्य लोट् भी हों । मुहूर्त्तादुपरि भवता खलु कटः कर्त्तव्यः करणीयः कार्य्यः । भवान् खलु कटं कुर्य्यात् भवान् खलु कटं करोतु । भवानिहप्रेषितः । अतिसृष्टः प्राप्त कालोवा ॥ ७९० ॥

७९१—स्मे लोट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६५ ॥

प्रैषादि अर्थ गम्यमान हो स्म शब्द उपपद हो तो ऊर्ध्व मौहूर्त्तिक अर्थ में वर्त्तमान धातु से लोट् प्रत्यय हो । यह लिङ् और कृत्य प्रत्ययों का अपवाद है । मुहूर्त्तादूर्ध्वं भवान् कटं करोतु स्म । माणवकमध्यापयतु स्म ॥ ७९१ ॥

७९२—अधीष्टे च ॥ अ ॥ ३ । ३ । १६६ ॥

सत्कारपूर्विका चेष्टा गम्यमान और स्म उपपद हो तो धातु से लोट् प्रत्यय हो । यह लिङ् का अपवाद है । अङ्ग स्म राजन् माणवकमध्यापय ॥ ७९२ ॥

७९३—लिङ् यदि ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६८ ॥

काल, समय और वेला तथा यद् शब्द उपपद होतो धातु, से लिङ् प्रत्यय हो । यह तुमुन् प्रत्यय का अपवाद है । कालो यद्भुञ्जीत भवान् । समयो यद्भुञ्जीत भवान् वेला यद्भुञ्जीत भवान् ॥ ७९३ ॥

७९४—अर्हे कृत्यतृचश्च ॥ अ०॥ ३ । ३ । १६९ ।

अर्ह कर्त्ता वाच्य वा गम्यमान होतो धातु से कृत्य, तृच् और लिङ् प्रत्यय हो । भवता खलु कन्या वोढव्या । वाह्या । वहनीया वा भवान् खलु कन्याया वोढा । भवान् खलु कन्यां वहेत् ॥ ७९४ ॥

७९५—शकि लिङ् च ॥ अ ॥ ३ । ३ । १७२ ॥

शक्तिअर्थ में धातु से लिङ् और कृत्य प्रत्यय हो । भवता खलु भारो वोढव्यः । वहनीयः । भवान् खलु भारं वहेत् । भवानिह शक्तः ॥ ७९५ ॥

७९६—माङि लुङ् ॥ अ० ॥ ३ ।३ ॥ १७५ ॥

माङ् उपपद होतो धातु से लुङ् प्रत्यय हो यह सब लकारों का अपवाद है मा कार्षीत् ॥ ७९६ ॥

७९७--स्मोत्तरे लङ् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७६ ॥

स्म जिस से परे हो वह माङ् शब्द उपपद हो तो धातु से लङ् और लुङ् प्रत्यय हो । मास्म करोत् । मास्म कार्षीत् । मास्म हरत् । मास्म हार्षीत् ॥ ७९७ ॥

७९८--धातुसंबन्धे प्रत्ययाः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १ ॥

धात्वर्थ संबन्ध काल में प्रत्यय हों । अर्थात् जिस २ काल में प्रत्यय कहे हैं उन से अन्यत्र भी हों । अग्निष्टोमयाजी तव पुत्रो जनिता । कृतः कटः श्वो भविता । भावि कृत्यमासीत् । अग्निष्टोमयाजी, यह भूतकाल और जनिता यह भविष्यत् काल में है यहां भूतकाल जनिता के भविष्यत् काल का सम्बन्ध पाकर साधु होता है अष्टाध्यायी के क्रम से प्रत्ययाधिकार वर्त्तमान था तथापि यहां प्रत्ययग्रहण का यह प्रयोजन है कि धात्वधिकार से अन्य भी प्रत्यय धातु संबन्ध काल में हो जावें । गोमानासीत् गोमान् भविता यहां गावो विद्यन्ते ऽस्य, इस विग्रह से वर्त्तमान काल में भी किया हुआ मतुप् आसीत्, भविता इन क्रियापदों के संबंध से भूत और भविष्यत् काल का कहने वाला होता है ॥ ७९८ ॥

७९९-क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ॥ अ० । ३ । ४ ।२ ॥

क्रियासमभिहार (वार २ होना निरन्तर होना) अर्थ में धातु से लोट् और उस लोट् के स्थान में परस्मैपद हि, और आत्मनेपद स्व आदेश हों । तथा त और ध्वम् भावी लोट् के स्थान में हि और स्व विकल्प करके हों । यह सब लकारों का अपवाद है । क्यों कि सब लकारों के विषय में होता है ॥ ७९९ ॥

८००—समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४ ॥

अनेकक्रियाओं के अध्याहार में धातु से विकल्प करके लोट् और उस लोट् के स्थान में यथोक्त हि, और स्व आदेश हों ॥ ८०० ॥

८०१—यथा विध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४ ॥

पूर्वोक्तलोट् विधान में यथाविधि अनुप्रयोग हो । अर्थात् जिस धातु से लोट् विहित हो । उसी धातु का संख्या, काल और पुरुष के नियम से पीछे प्रयोग हो ॥ ८० ॥

८०२—समुच्चये सामान्यवचनस्य ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५ ॥

समुच्चय अर्थ में लोट् विधान हो तो सामान्य अर्थ कहनेवाले धातु का अनुप्रयोग हो ॥ ८०२ ॥

८०३-वा०- क्रियासमभिहारे द्वे भवत इतिवक्तव्यम् ॥

क्रियासमभिहारार्थविहित लोट् के विषय में द्विर्वचन हो। क्रियासमभिहार में परस्मैपद लट् लकार, स भवान् लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति। इमौ लुनीत इमे लुनान्ति। लुनीहीत्येवायं लुनासि। युवां लुनीथः यूयं लुनीथ। लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनामि। आवां लुनीवः वयं लुनीमः। इत्यादि। आत्मनेपद। अधीष्वाधीष्वेत्येवायमधीते। इमावधीयाते। इमेऽधीयते। इत्यादि। इस प्रकार सब लकारों में उदाहरण जानना चाहिये। क्रियासमभिहार में। दुग्धं पिब चणकाञ्चर्व। इत्यभ्यवहरति। अन्नं भुङ्क्ष्व। दाधिकमास्वादस्वेत्यभ्यवहरते। त, ध्वम् के विषय में दुग्धं पिब चणकाञ्चर्वेत्यभ्यवहरथ। अन्नं भुङ्क्ष्व। दाधिकमास्वादस्वेत्यभ्यवहरध्वे। दुग्धं पिबत चणकाञ्चर्वतेत्यभ्यवहरथ अन्नं भुङ्ग्ध्वं, दाधिकमास्वादध्वम्। इत्यवहरध्वे इसी प्रकार क्रियासमभिहार और समुच्चय अर्थ में सब लकारों के विषय में लोट् होता है॥ ८०३

८०४—छन्दसि लुङ्लङ्लिटः॥ अ०॥ ३। ४। ६॥

छन्दोविषयक धातुसंबन्ध सामान्यकाल में धातु से विकल्प करके लुङ् लङ् और लिट् प्रत्यय हों। लुङ्, शकलाङ्गुष्टकोकरत्। अहं तेभ्योकरन्नमः। लङ् अग्निमद्य होतारमवृणीयं यजमानः। लिट्, अद्यामार। अद्याम्रियते॥ ८०४॥

इति लकारार्थप्रक्रिया समाप्ता॥

अथ षत्वप्रक्रियाऽऽरम्भः॥

८०५—अपदान्तस्य मूर्द्धन्यः॥ अ०॥ ८। ३। ५५॥

अपदान्त सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो। यह अधिकार करते हैं अष्टाध्यायी में यह तृतीय पाद का प्रकरण है इस पाद की समाप्ति पर्यन्त। सिषेव। सुष्वाप। अग्निषु। वायुषु। इत्यादि यहां सर्वत्र (५६) सूत्र से षत्व हुआ है। अपदान्त ग्रहण इस लिये है कि अग्निस्तत्र यहां मूर्द्धन्य न हो। सकार को षकार कहते तो थकार को ढकार भी कहना पड़ता इस लिये मूर्द्धन्य शब्द पढ़ा है॥ ८०५॥

८०६—सहेः साडः सः॥ अ०॥ ८। ३। ५६॥

साड् रूप सह धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो। जलषाट्। तुराषाट्। पृतनाषाट्। साड्ग्रहण से। तुरासाहम्। यहां नहीं होता। स को इस लिये कहा कि आकार को न हो जावे॥ ८०६॥

८०७–इण्कोः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ५७ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है । अपदान्त सकार को मूर्द्धन्यादेश कहें सो इण् कवर्ग से ही परे हो जैसे । कर्तृषु । हर्तृषु । वाक्+सु= वाक्षु । इण् कवर्ग से परे नियम इस लिये है कि । दास्यति, असौ यहां न हो ॥ ८०७ ॥

८०८–नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ॥ अ० ॥ ८ ।३।५८ ॥

नुम्, विसर्जनीय और शर्प्रत्याहार इन के व्यवधान में भी इण् कवर्ग से परे अपदान्त सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । जैसे नुम् के व्यवधान में । । सर्पि+नुम्+स+जस् –सर्पींषि । हवींषि । । यजूंषि । इत्यादि । विसर्जनीय के व्यवधान में । सर्पिःषु । धनुःषु । यजुःषु । इत्यादि । शर्व्यवधान में सर्पिष्षु । यजुष्षु । हविष्षु । इत्यादि । इस सूत्र में नुम् आदि के व्यवधान का पृथक् २ प्रत्येक का ग्रहण है । इस लिये निंस्से । निंस्स्व । यहां नुम् और शर् दो के व्यवधान में षत्व नहीं होता ॥ ८०८॥

८०९–स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात् ॥ अ० ॥८।३।६१ ॥

षण्रूप सन् परे हो तो स्तु और णिजन्त धातुओं के इणन्त अभ्यास से परे जो आदेश का सकार उस को मूर्द्धन्य आदेश हो । स्तोतुमिच्छति, तुष्टूषति । णिजन्त से । सेवयितुमिच्छति, सिषेवयिषति । सुष्वापयिषति । सिषञ्जयिषति इन धातुओं में इण् कवर्ग से परे अन्यसूत्रों से षत्व हो जाता फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि सन के परे स्तु और णिजन्त के ही अभ्यास से परे षत्व हो । इस नियम से । सिसिक्षति सुसूषति । यहां षत्व नहीं होता । स्तौति और णिजन्त के साथ एव शब्द पढ़ने से यह नियम नहीं होना कि । स्तौति और णिजन्त को सन हो के षत्व हो इस से । तुष्टाव । आदि में षत्व हो जाता है और । सिसिक्षति में षत्व नहीं होता ॥ ८०९ ॥

८१०–सः स्विदिस्वदिसहीनां च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६२ ॥

षण् रूप सन् परे हो तो स्विदि, स्वदि और सहि इन णिजन्त धातुओं के इणन्त अभ्यास से परे अपदान्त सकारको सकारादेश ही हो । स्वेदयितुमिच्छति, सिस्वेदयिषति । सिस्वादयिषति । सिसाहयिषति । यहां सकार को सकार कहने से मूर्द्धन्य नहीं होता ॥ ८१० ॥

८११–प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि ॥ अ० ॥ ८ । ३ ।६३॥

(परिनिविभ्यः सेवसित०) इस आगामी सूत्र के सित शब्द से पहिले २ अट् के व्यवधान में भी मूर्द्धन्य आदेश होता है। अपि शब्द के पढ़ने से अड्व्यवाय से अन्यत्र निषेध नहीं होता॥ ८११॥

८१२–स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य॥ अ० ॥८।३।६४॥

(उपसर्गात् सुनो०) इस अगले सूत्र में (परि०सेवसि०) आगामी सूत्र से पहिले २ इण् कवर्ग से परे अभ्यास के व्यवधान में और अभ्यास के सकार को मूर्द्धन्यादेश होता है॥ ८१२॥

८१३–उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्॥अ०॥ ८। ३। ६५॥

उपसर्गस्थ निमित्त इण से परे सुनोति, सुवति, स्यति, स्तोभति, स्था, सेनय, सेध, सिच, सञ्ज और स्वञ्ज इन के सकार को मूर्द्धन्यआदेश हो। सुनोति, अभिषुणोति। परिषुणोति। अभ्यषुणोत्। पर्यषुणोत्। सुवति, अभिषुवति। परिषुवति। अभ्यषुवत्। पर्यषुवत्। स्यति, अभिष्यति। परिष्यति। अभ्यष्यत्। पर्यष्यत्। स्तौति, अभिष्टौति। परिष्टौति। अभ्यष्टौत्। स्तोभति, अभिष्टोभते। अभ्यष्टोभत। पर्यष्टोभत। स्था, अभिष्ठास्यति। परिष्ठास्यति। अभ्यष्ठात्। पर्यष्ठात्। स्थादिकों में अभ्यास के व्यवधान में और अभ्यास के सकार को भी मूर्द्धन्य कहचुके हैं। अभितष्ठौ। अभितष्ठतुः। परितष्ठौ। यहां अभ्यास में सकार नहीं। सेना, सेनाया अभियाति। अभिषेणयति। अभ्यषेणयत्। पर्यषेणयत्। अभिषेणयितुमिच्छति, अभिषिषेणयिषति। परिषिषेणयिषति। यहां अभ्यास के व्यवधान में और अभ्यास के सकार को भी मूर्द्धन्य होता है। सेध, अभिषेधति। परिषेधति। अभ्यषेधत्। अभिषिषेध। सिच्, अभिषिञ्चति। परिषिञ्चति। पर्यषिञ्चत्। अभिषिषिक्षति। सञ्ज, अभिषजति। अभ्यषजत्। अभिषिषङ्क्षति। । स्वञ्ज, अभिष्वजते। अभ्यष्वजत्। पर्यष्वजत। परिषिष्वङ्क्षते। सिध धातु का गुण किया निर्देश है इस से दिवादि के सिध धातु को षत्व नहीं होता परिसिध्यति। पर्यसिध्यत्। उपसर्ग ग्रहण इस लिये है कि। दधिसिञ्चति। यहां षत्व न हो निर्गतः सेचका अस्माद्ग्रामात्, निःसेचको ग्रामः। यहां निर् उपसर्ग का सम्बन्ध गमन क्रिया के साथ है सेचक शब्द के साथ नहीं॥ ॥ ८१३॥

८१४–सदिरप्रतेः॥ अ०॥ ८। ३। ६६॥

प्रति भिन्न उपसर्गस्थ निमित्त से परे सद् धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो। निषीदति। विषीदति। न्यषीदत्। व्यषीदत्। निषसाद। विषसाद। प्रति का निषेध होने से। प्रतिसीदति। यहां षत्व न हुआ॥ ८१४॥

८१५—स्तन्भेः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६७ ॥

उपसर्गस्थ इण् से परे स्तन्भ धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश होवे। अभिष्टम्नाति। परिष्टभ्नाति। अभ्यष्टभ्नात्। अभितष्टम्भ। परितष्टम्भ। यहां प्रति के निषेध की अनुवृत्ति आती है। प्रतिष्टभ्नाति। प्रत्यष्टभ्नात्। प्रतितष्टम्भ। यहां स्तम्भ धातु को ही सूत्रकार ने नकारोपध पढ़ा है॥ ८१५॥

८१६—अवाच्चालम्बनाविदूर्य्ययोः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६८ ॥

आश्रय और कुछ समीप होने अर्थ में अव उपसर्ग से परे स्तम्भ धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो आलम्बन, अवष्टभ्यास्ते। अवष्टभ्य तिष्ठति। अवष्टब्धा सेना। अवष्टब्धा शरत्। आलम्बन और आविदूर्य अर्थ से अन्यत्र। अवष्टब्धो वृषलः शीतेन। यहां षत्व नहीं होता। अव उपसर्ग इणन्त नहीं है इस लिये यह सूत्र पढ़ा है नहीं तो पूर्व सूत्र से षत्व हो ही जाता॥८१६॥

८१७-वेश्च स्वनो भोजने ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६९ ।

वि और अव उपसर्ग से परे भोजन अर्थ में स्वन धातु के सकार को मूर्द्धन्य हो। विष्वणयति। व्यष्वणत्। विषष्वाण। अवष्वणति। अवाष्वणत्। अवषष्वाण। भोजन अर्थ से अन्यत्र। विस्वनति मृदङ्गः। अवस्वनति वीणा। यहां शब्द अर्थ में ष-नहीं होता॥ ८१७॥

८१८—परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७० ॥

परि, नि, वि उपसर्गों से परे सेव, सित, सय, सिवु, सह, सुट, स्तु और स्वञ्ज के सकार को मूर्द्धन्यादेश होवे। परिषेवते। निषेवते। विषेवते। पर्यषेवत। व्यषेवत। न्यषेवत। परिषिषेविषते। विषिषेविषते। सित, परिषितः। विषितः। निषितः। सय, परिषयः। निषयः। सिवु, परिषीव्यति। विषीव्यति। निषीव्यति। पर्यषीव्यत्। न्यषीव्यत्। व्यसीव्यत्। यहां सिव आदि में अट् के व्यवधान में अगले सूत्र से षत्व विकल्प है। सह, परिषहते। निसहते विषहते। पर्यषहत न्यषहत। व्यषहत। पर्यसह-

त । न्यसहत । व्यसहत । सुट्, परिष्करोति । पर्यस्करोत् । स्तु, परिष्टौति । निष्टौति । विष्टौति । पर्यष्टौत् । पर्यस्तौत् । स्वञ्ज, परिष्वजते । विष्वजते । पर्यष्वजत् । पर्यस्वजत् । स्तु और स्वञ्ज धातु पूर्व "उपसर्गात्सुनोति,, सूत्र में भी पढ़े हैं उस से षत्व हो जाता । फिर यहां पढ़ने का यही प्रयोजन है कि अगले सूत्र से अट् के व्यवधान में विकल्प से षत्व होवे ॥ ८१८ ॥

८१९-सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७१ ॥

अट् के व्यवधान में भी परि, नि, वि इन उपसर्गों से परे पूर्व सूत्रोक्त सिवादिकों के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । इस सूत्र के उदाहरण पिछले सूत्र में दे चुके हैं । पर्यषहत । पर्यसहत । इत्यादि ॥ ८१९ ॥

८२०-अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु ॥ अ० ॥ ८।३ ।७२

अप्राणी अभिधेय हो तो अनु, वि, परि, अभि, नि इन उपसर्गों से परे स्यन्द धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । अनुष्यन्दते । विष्यन्दते । परिष्यन्दते । अभिष्यन्दते । निष्यन्दते । तैलम् । अनुष्यन्दते विस्यन्दते । परिस्यन्दते । अभिस्यन्दते । निस्यन्दते । अप्राणिग्रहण से यहां न हुआ । अनुस्यन्दते मत्स्य उदके । अनुस्यन्दते । हस्ती । अप्राणिषु यह पर्य्युदास प्रतिषेध है इस से जहां प्राणि अप्राणि दोनों का विषय है वहां भी मूर्द्धन्यादेश हो जाता है यहां ऐसा भाष्यकार का इङ्गित मालूम होता है अनुष्यन्दते मत्स्योदके ॥ ८२० ॥

८२१-वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७३ ॥

निष्ठा प्रत्यय न परे हो तो वि उपसर्ग से परे स्कन्द धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश विकल्प कर के हो । विष्कन्ता । विस्कन्ता । विष्कन्तुम् । विस्कन्तुम् । विष्कन्तव्यम् । विष्कन्तव्यम् । अनिष्ठाग्रहण से यहां न हुआ । विस्कन्नः ॥ ८२१ ॥

८२२-परेश्च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७४ ॥

परि उपसर्ग से परे स्कन्द धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश विकल्प करके हो । परिष्कन्ता । परिष्कन्तुम् । परिष्कन्तव्यम् । परिस्कन्ता । परिस्कन्तुम् । परिस्कन्तव्यम् । यह सूत्र जो पिछले सूत्र से अलग किया है इस से जानना चाहिये कि पिछले सूत्र से यहां 'अनिष्ठायाम्, इस पद की अनुवृत्ति नहीं आती है ॥ ८२२ ॥

८२३-परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७५ ॥

प्राच्यभरत अभिधेय हों तो (परिस्कन्द) यहां मूर्द्धन्यादेश का अभाव निपातन है । परिस्कन्दः । प्राच्यभरतों से अन्यत्र । परिष्कन्दः । यह होता है ॥ ८२३ ॥

८२४–स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ॥ अ० ८ । ३ । ७६ ॥

निस्, नि, वि इन के उत्तर स्फुरति और स्फुलति के सकार को मूर्द्धन्यादेश विकल्प करके हो । स्फुरति, निष्ष्फुरति । निस्स्फुरति । निस्फुरति । निष्फुरति । विस्फुरति । विष्फुरति । स्फुलति । निष्ष्फुलति । निस्स्फुलति । निस्फुलति । निष्फुलति । विष्फुलति । विस्फुलति ॥ ८२४ ।

८२५–वेः स्कभ्नातेर्नित्यम् ॥ अ० ८ । ३ । ७७ ॥

वि से परे स्कभ्नाति के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । विष्कभ्नाति । विष्कम्भिता । विष्कम्भितुम् । विष्कम्भितव्यम् ॥ ८२५ ॥

८२६–समासेऽङ्गुलेः सङ्गः ॥ अ० ८ । ३ । ८० ॥

समास में अङ्गुलि शब्द से परे सङ्ग शब्द के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । अङ्गुलेः सङ्गः, अङ्गुलिषङ्गः । समास ग्रहण से यहां न हुआ । अङ्गुलेः सङ्गंपश्य ॥ ८२६ ॥

८२७–भीरोः स्थानम् ॥ अ० ८ । ३ । ८१ ॥

समास में भीरु शब्द से उत्तर स्थान शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । भीरुष्ठानम् । समासग्रहण से यहां न हुआ । भीरोः स्थानं पश्य ॥ ८२७ ॥

८२८–अग्नेःस्तुत्स्तोमसोमाः ॥ अ० ८ । ३ । ८२ ॥

अग्नि शब्द से परे स्तुत्, स्तोम, सोम इनके सकारको मूर्द्धन्य आदेश हो समास में । अग्निष्टुत् । अग्निष्टोमः । अग्नीषोमौ । दीर्घअग्नि शब्द से परे मूर्द्धन्यादेश इष्ट है इस से यहां न हुआ । अग्निसोमौ माणवकौ ॥ समासग्रहण से यहां न हुआ । अग्निं सोमं पश्य ॥ ८२८ ॥

८२९–ज्योतिरायुषः स्तोमः ॥ अ० ८ । ३ । ८३ ॥

समास में ज्योतिस् और आयुस् शब्द से परे स्तोम शब्द के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । ज्योतिष्टोमः । आयुष्टोमः । समासग्रहण से यहां न हुआ । ज्योतिः स्तोमं दर्शयति ॥ ८२९ ॥

८३०–मातृपितृभ्यां स्वसा ॥ अ० ८ । ३ । ८४ ॥

समास में मातृ और पितृ से परे स्वसृ शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो ।

मातृष्वसा । पितृष्वसा ॥ ८३० ॥

८३१—मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम् ॥ अ० ८ । ३ । ८५ ॥

समास में मातुर् और पितुर् से परे स्वसृ शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश विकल्प करके हो । मातुःष्वसा । मातुःस्वसा । पितुःष्वसा । पितुःस्वसा । समासग्रहण से वाक्य में न हुआ । मातुः स्वसा ॥ ८३१ ॥

८३२—अभिनिसः स्तनःशब्दसंज्ञायाम् ॥ अ० ८ । ३ । ८६ ॥

शब्दसंज्ञा गम्यमान हो तो अभि निस् से परे स्तन धातु के सकार को विकल्प करके मूर्द्धन्यादेश हो । अभिनिष्टानो वर्णः । अभिनिष्टानो विसर्जनीयः । अभिनिस्तानो वर्णः । अभिनिस्तानो विसर्जनीय । शब्दसंज्ञा से अन्यत्र । अभिनिस्तनति मृदङ्गः ॥ ८३२

८३३—उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ॥ अ० ८ । ३ । ८७ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त और प्रादुस् शब्द से परे यकार और अच् जिससे परे हो उस अस् धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । अभिषन्ति । निषन्ति । विषन्ति । प्रादुःषन्ति अभिष्यात । निष्यात् विष्यात् । प्रादुःष्यात् । उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । दधि स्यात् । मधुस्यात् । अस्तिग्रहण से यहां न हुआ । अनुसृतम् । यच्परग्रहण से यहां न हुआ । निस्तः । विस्तः । प्रादुःस्तः ॥ ८३३ ॥

८३४—सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः ॥ अ० ८ । ३ । ८८ ॥

सु, वि, निर् और दुर् से परे सुपि, सूति और सम के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो (सुपि) यह संप्रसारण किये हुए स्वप् धातुका ग्रहण है । सुषुप्तिः । सुषुप्तः । विषुप्तः । निःषुप्तः । दुःषुप्तः । सूति, सुषूतिः । विषूतिः । निःषूतिः । दुःषूतिः । सम, सुषमम् । विषमम् । निःषमम् । दुःषमम् ॥ ८३४ ॥

८३५—निनदीभ्यां स्नातेः कौशले ॥ अ० ८ । ३ । ८९ ॥

कुशलता गम्यमान हो तो नि और नदी से परे स्नाति के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । निष्णातः शिल्पशास्त्रे । नद्यां स्नातीति नदीष्णः * । कौशलग्रहण से यहां न हुआ । निस्नातः । नद्यां स्नातो नदीस्नातः ॥ ८३५ ॥

---

* (सुपिस्थः) इस सूत्र में योगविभाग किया है उस से 'नदीष्णः' यहां क प्रत्यय होता है ॥

८३६–सूत्रं प्रतिष्णातम् ॥ अ० ८ । ३ । ९० ॥

सूत्र वाच्य हो तो प्रतिष्णात यह निपातन है । प्रतिष्णातं सूत्रम् । सूत्र शुद्ध है। यहां प्रति से स्ना धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश हुआ । सूत्र से अन्यत्र प्रतिस्नातम् होगा ॥ ८३६ ॥

८३७–कपिष्ठलो गोत्रे ॥ अ० ८ । ३ । ९१ ॥

गोत्रविषयक कपिष्ठल शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन है। कपिष्ठल जिस का नाम है वह कापिष्ठलि पुत्र है। अन्यत्र। कपेः स्थलम् कपिस्थलम् ॥८३७॥

८३८–प्रष्ठोऽग्रगामिनि ॥ अ० ८ । ३ । ९२ ॥

अग्रगामी अभिधेय हो तो 'प्रष्ठ, यह निपातन है। प्रतिष्ठत इति प्रष्ठः । आग चलता है। यहां प्र से परे स्था धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन किया है। अग्रगामिग्रहण से यहां न हुआ । व्रीहीनां प्रस्थः ॥ ८३८ ॥

८३९–वृक्षासनयोर्विष्टरः ॥ अ० ८ । ३ । ९३ ॥

वृक्ष और आसन वाच्य हों तो वि उपसर्ग से परे स्तृणाति धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन है । विष्टरो वृक्षः । विष्टरम् आसनम्। वृक्षासनग्रहण से यहां न हुआ। वाक्यस्य विस्तारः ॥ ८३९ ॥

८४०–छन्दोनाम्नि च ॥ अ० ८ । ३ । ९४ ॥

छन्दोनामविषय में वि पूर्वक स्तृञ् धातु के सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन है। विष्टारपङ्क्तिः । विष्टारबृहती । छन्दोनामग्रहण से यहां न हुआ । पटस्य विस्तारः ॥ ८४० ॥

८४१–गवियुधिभ्यां स्थिरः ॥ अ० ८ । ३ । ९५ ॥

गवि और युधि शब्द से परे स्थिर शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो । गविष्ठिरः । युधिष्ठिरः । इस सूत्र में जो गवि, सप्तम्यन्त गो शब्द से मूर्द्धन्यादेश का विधान है इस ज्ञापन से समास में गोशब्द से सप्तमी का अलुक् होता है ॥ ८४१ ॥

८४२–विकुशमिपरिभ्यः स्थलम् ॥ अ० ८ । ३ । ९६ ॥

वि, कु, शमि, परि इन से स्थल शब्द के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो। विष्ठलम् । कुष्ठलम् । शमिष्ठलम् । परिष्ठलम् । अन्यत्र कुशस्थली । मरुस्थली ॥८४२॥

८४३—अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः ॥ अ० ८।३।९७ ॥

अम्ब, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कु, शेकु, शङ्कु, अङ्गु, मञ्जि, पुञ्जि, परमे, बर्हिस्, दिवि, अग्नि इनसे परे स्थ शब्द के सकार को मूर्द्धन्य आदेशहो अम्बष्ठः। आम्बष्ठः। गोष्ठः। भूमिष्ठः। सव्येष्ठः। अपष्ठः। द्विष्ठः। त्रिष्ठः। कुष्ठः। शेकुष्ठः। शङ्कुष्ठः। अङ्गुष्ठः। मञ्जिष्ठः। पुञ्जिष्ठः। परमेष्ठः। बर्हिष्ठः। दिविष्ठः। अग्निष्ठः॥ ८४३॥

८४४—वा०—स्थास्थिन्स्थॄणामिति वक्तव्यम् ॥

सव्येष्ठाः। परमेष्ठी। सव्येष्ठा॥ ८४४॥

८४५—सुषामादिषु च ॥ अ० ८।३।९८॥

सुषामादिक शब्दों में सकार को मूर्द्धन्यादेश होता है। शोभनं साम यस्यासौ सुषामा ब्राह्मणः। निष्षामा। दुष्षेधः, इत्यादि॥ ८४५॥

८४६—एति संज्ञायामगात् ॥ अ० ८।३।९९॥

संज्ञाविषय में एकार परे होतो इण् और गरहित कवर्ग से परे सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो। हरिषेणः। वारिषेणः। जानुषेणी। एकार से अन्यत्र। हरिसक्थम्। संज्ञासे अन्यत्र। पृथ्वी सेना यस्य स पृथुसेनो राजा। अगात् के ग्रहण से यहां न हुआ। विष्वक्सेनः। इण्, कु से अन्यत्र। सर्वसेनः॥ ८४६॥

८४७—नक्षत्राद्वा ॥ अ० ॥ ८।३।१००॥॥

संज्ञा विषय में एकार परे होतो इण् और गकार भिन्न कवर्गवान् नक्षत्र वाची शब्द से परे सकार को मूर्द्धन्य आदेश विकल्प करके हो। रोहिणिषेणः। रोहिणिसेनः। भरणिषेणः। भरणिसेनः। गकार के निषेध से यहां न हुआ। शताभिषक्सेनः॥ ८४७॥

८४८—ह्रस्वात्तादौ तद्धिते ॥ अ० ८।३।१०१॥

तकारादि तद्धित परे होतो ह्रस्व से परे सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो। तकारादि तद्धित। तर, तम, तय, त्व, तल्, तस्, त्यप्। तर, सर्पिष्टरम्। यजुष्टरम्। तम, सर्पिष्टमम्। यजुष्टमम्। तय, चतुष्टयम्। चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः। त्व, सर्पिष्ट्वम्। यजुष्ट्वम्। तल्, सर्पिष्टा। यजुष्टा। तस्, सर्पिष्टः। त्यप् आविष्ट्यः। ह्रस्वग्रहण

से यहां न हुआ धूस्तरा। गीस्तरा। तादिग्रहण से यहां न हुआ सर्पिस्सा द्भवति। ताद्धित से अन्यत्र सर्पिस्तर्पयति ॥ ८४८ ॥

८४९—निसस्तपतावनासेवने ॥ अ० ८।३।१०२॥

तप धातु परे हो तो अनासेवन अर्थ में निस् के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो। आसेवन (वार २ करना) अर्थ न हो वह अनासेवन कहावे। निष्टपति सुवर्णम्। अग्नि से सुवर्ण को एक वार तपाता है। अनासेवन ग्रहण से यहां न हुआ। निस्तपति पाणिं विष्णुमित्रः ॥ ८४९ ॥

८५०—युष्मत्तत्तत्क्षुःष्वन्तःपादम् ॥ अ० ८।३।१०३॥

तकारादि युष्मत्, तत् और ततक्षुस् परे हों तो सकार को मूर्द्धन्यादेश हो जो वह सकार पाद के मध्य में हो तो। तकारादि युष्मत। त्वं, त्वां, ते, तव, । त्वं, अग्निष्टं नामासीत्। त्वा, अग्निष्ट्वा वर्द्धयामसि। ते, अग्निष्टे विश्वमानय। तव, अप्स्वग्ने सधिष्टव। तत, अग्निष्टद्विश्वमापृणाति। ततक्षुस्, द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः षु। अन्तःपादग्रहण से यहां न हुआ। नित्यमोत्मनोविदाभूदग्निस्तत् पुनराह जातवेदो विचर्षणिः ॥ ८५० ॥

८५१—यजुष्येकेषाम् ॥ अ० ८।३।१०४॥

यजुर्वेद के विषय में तकारादि युष्मद, तत् और ततक्षुस् परे हों तो किन्ही एक आचार्य्यों के मत से सकार को मूर्द्धन्यादेश हो। अर्चिर्भिष्ट्वम्। अर्चिभिस्त्वम्। अग्निष्टेयम्। अग्निस्तेयम्। अग्निष्टत्। अग्निस्तत्। अर्चिर्भिष्टतक्षुः। अर्चिभिस्ततक्षुः॥ ८५१॥

८५२—स्तुस्तोमयोश्छन्दसि ॥ अ० ॥ ८।३।१०५॥

किन्हीं एक आचार्यों के मत से वेदविषय में इण् कवर्ग से परे स्तुत और स्तोम शब्द के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो। त्रिभिष्टुतस्य। गोष्टोमंषोडाशिनम्। गोस्तोमं षोडाशिनम् ॥ ८५२ ॥

८५३—पूर्वपदात् ॥ अ० ८।३।१०६॥

किन्हीं एक आचार्यों के मत में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे वेदविषय में सकार को मूर्द्धन्यादेश हो। द्विषन्धिः। त्रिषन्धिः। द्विसन्धिः। त्रिसन्धिः। मधुष्ठानम्। मधुस्थानम्। द्विषाहस्रं चिन्वीत। इस सूत्र में पूर्वपदमात्र का ग्रहण किया है इस से असमास में भी पूर्वपद से परे सकार को मूर्द्धन्यादेश होता है। त्रिः षमृद्धत्वाय। त्रिः समृद्धत्वाय ॥ ८५३ ॥

८५४–सुञः ॥ अ० ८ । ३ । १०७ ॥

वेदविषय में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे सुञ् निपात के सकार को मूर्द्धन्यादेश हो। अभीषुणः सखीनाम् । ऊर्ध्व ऊषुणः ॥ ८५४ ॥

८५५–सनोतरनः ॥ अ० ८ । ३ । १०८ ॥

इण्कवर्ग से परे नकारान्तभिन्न सन् धातुके सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो। गोषाः । नृषाः । नकार के निषेध से यहां न हुआ । गोसनिं वाचमुदीरयन् ॥ ८५५ ॥

८५६–सहेः पृतनर्त्ताभ्यां च ॥ अ० ८ । ३ । १०९ ॥

पृतना और ऋत से परे सह धातु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो । पृतनाषाहम् ऋताषाहम् । अन्यत्र । विश्वसाट् । चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है इस से ऋतीषहम् । यहां भी मूर्द्धन्य होता है ॥ ८५६ ॥

८५७–न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम्॥अ०८।३।११०

जिस से रेफ परे हो उस सकार को तथा सृपि, सृजि, स्पृशि, स्पृहि और सवनादिकों के सकार को मूर्द्धन्य आदेश न हो विस्रसिकायाः काण्डं जुहोति । विस्रब्धः कथयति । सृपि, पुराक्रूरस्य विसृपः । सृजि, वाचो विसर्जनात् । स्पृशि, दिविस्पृशम् । स्पृहि निस्पृहं कथयति । सवनादि, सवने सवने । सूते सूते । इत्यादि । इस सूत्र में जो 'अश्वसनि, शब्द का ग्रहण किया है इस ज्ञापन से अनिणन्त से भी परे सकार को मूर्द्धन्यादेश होता है । जैसे । जलाषाहम् । अश्वषाः ॥ ८५७ ॥

८५८–सात्पदाद्योः ॥ अ० ८ । ३ । १११ ॥

सात् और पदादि सकार को मूर्द्धन्य आदेश न हो । सात, अग्निसात् । दधिसात् । मधुसात् । पदादि, दधि सिञ्चति । मधु सिञ्चति ॥ ८५८ ॥

८५९–सिचो यङि ॥ ८ । ३ । ११२ ॥

यङ् परे हो तो सिच् के सकार को मूर्द्धन्यादेश न हो । सेसिच्यते । अभिसेसिच्यते । यङ्ग्रहण से यहां न हुआ । अभिषिषिक्षति ॥ ८५९ ॥

८६०–सेधतेर्गतौ ॥ अ० ८ । ३ । ११३ ॥

गति अर्थ में वर्त्तमान सेधति के सकार को मूर्द्धन्यादेश न हो । अभिसेधयति गाः । परिसेधयति गाः । गतिग्रहण से यहां निषेध न हुआ । प्रतिषेधयति गाः ॥ ८६० ॥

८६१–प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च ॥ अ० ८ । ३ । ११४ ॥

प्रतिस्तब्ध और निस्तब्ध ये मूर्द्धन्यादेश प्रतिषेध के लिये निपातन हैं । प्रतिस्तब्धः । निस्तब्धः ॥ ८६१ ॥

८६२—सोढः ॥ अ० ८ । ३ । ११५ ॥

सोढ् के सकार को मूर्द्धन्य आदेश न हो 'सोढ्' यह सह धातु का होता है । परिसोढः । परिसोढुम् । परिसोढव्यम् । सोढ्ग्रहण से यहां न हुआ । परिषहते ॥ ८६२ ॥

८६३—स्तम्भुसिवुसहां चङि ॥ अ० ८ । ३ । ११६ ॥

चङ् परे होतो स्तम्भु, सिवु और सह के सकार को मूर्द्धन्यादेश नहो । स्तम्भुसिवुसहां चङ्युपसर्गात् । महाभास्य ८ । ३ । ११६ । स्तम्भु, सिव, सह इन को उपसर्ग से जो प्राप्ति है उसका निषेध हो किन्तु अभ्यास से जो प्राप्ति उसका न हो स्तम्भु, पर्य्यतस्तम्भत् । अभ्यतस्तम्भत् । सिवु, पर्य्यसीषिवत् न्यसीषिवत् । सह, पर्यसीषहत् । न्यसीषहत् ॥ ८६३ ॥

८६४—सुनोतेः स्यसनोः ॥ अ० ८ । ३ । ११७ ॥

सुनोति के सकार को मूर्द्धन्यादेश नहो । स्य और सन् परे हो तो । अभिसोष्यति । परिसोष्याति । अभ्यसोष्यत् । पर्यसोष्यत् । स्य सन् ग्रहण से यहां न हुआ । सुषाव ॥ ८६४ ॥

८६५—सदेः*परस्य लिटि ॥ अ० ८ । ३ । ११८ ॥

लिट् परे होतो अभ्यास से परे सद के सकार को मूर्द्धन्य आदेश नहो । अभिषसाद । परिषसाद । निषसाद । विषसाद ॥ ८६५ ॥

८६६—वा०—सदो लिटि प्रतिषेधे स्वञ्जेरुपसङ्ख्यानम् ॥

लिट् परे होतो सद् धातु के प्रतिषेध में स्वञ्ज के पर सकार को भी मूर्द्धन्यादेश का प्रतिषेध कहना चाहिये । परिषस्वजे । परिषजाते ॥ ८६६ ॥

८६७—निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वाच्छन्दसि ॥ अ० ८ । ३ । ११९ ॥

वेदविषय में नि, वि, अभि इन उपसर्गों से परे अट् का व्यवधान हो वा न हो तो सकार को मूर्द्धन्य आदेश विकल्प करके हो । न्यषीदत् पिता नः । व्यषीदत् ।

---

* (सदेः) इस सूत्र में काशिकाकार ने ष्वञ्ज धातु को भी मिलाकर मूल सूत्र का अन्यथा पाठ (सादिष्वञ्जोः परस्य लिटि) करके व्याख्यान किया है यह उनका व्याख्यान अनादरणीय है क्योंकि ष्वञ्ज धातु के लिये तो महाभाष्य में वार्तिक ही पढ़ा है।

व्यसीदत् । अभ्यष्टौत् । अभ्यस्तौत् ॥ ८६७ ॥

इति षत्वप्रक्रिया समाप्ता: ॥

॥ अथणत्वप्रक्रिया ॥

८६८—रसाभ्यां नो णः समानपदे ॥ अ० ८ । ४ । १ ॥

रेफ और षकार से परे नकार को णकारादेश हो यदि निमित्त और निमित्ती एक पदस्थ हों तो । अवगीर्णम् । अवगूर्णम् ।कुष्णाति । पुष्णाति । मुष्णाति । समानपद ग्रहण से यहां न हुआ । अग्निर्नयति । वायुर्नयति । इस सूत्र में षकारग्रहण अगले सूत्रों के लिये है क्योंकि षकार से परे नकार को णत्वादेश ष्टुत्व से भी हो जाता है। रषाभ्यां णत्वो ऋकारग्रहणम् । महाभाष्यम् ८ । ४ । १ र और ष से परे णत्वादेश-विधान में ऋकार का भी ग्रहण करना चाहिये । मातॄणाम् । पितॄणाम् । अथवा क्षुभ्रादिगण में जो नृनमन और तृप्नोति शब्दका पाठ है इस ज्ञापन से भी ऋकार से परे नकार को णत्वादेश होता है ॥ ८६८ ॥

८६९अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेपि ॥ अ० ८ । ४ । २ ॥

अट्, कु, पु, आङ्, नुम् इन से व्यवधान में भी रेफ षकार से परे नकार को णकारादेश होता है । अट्, कुरुणा । गुरुणा । किरिणा । गिरिणा । कवर्ग, अर्केण मूर्खेण । पवर्ग, दर्पेण । रेफेण । गर्भेण। कर्मणा ।चर्मणा। । वर्मणा । आङ्पर्याणद्धम् । अट्ग्रहण से भी आङ्व्यवाय में सिद्ध था फिर आङ् ग्रहण (पदव्यवाये च) इस प्रतिषेध के बाधने के लिये है । नुम् बृंहणम् । बृंहयणीम् । यहां नुम्ग्रहण अनुस्वार का उपलक्षणमात्र है । इस से उक्त (बृंहणम्, बृंहणीयम्) उदाहरणों में नुम् के अभाव में अनुस्वार के व्यवधान से णत्वादेश होता है । नुम् के होते भी जहां अनुस्वार नहीं होता वहां नहीं होता है । प्रेन्वनम् । प्रेन्वनीयम् ॥ ८६९ ॥

८७०—पूर्वपदात् सञ्ज्ञायामगः ॥ अ० ८ । ४ । ३ ॥

संज्ञा विषय में गकारभिन्न पूर्वपदस्थ निमित्त से परेनकार को णकारादेश हो । द्रुणसः । खरणसः । शूर्पणखा । संज्ञा से अन्यत्र । चर्मनासिकः । अगग्रहण से यहां न हुआ । ऋगयनम् ॥ ८७० ॥

८७१—वनंपुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः ॥

अ० ॥ ८ । ४ । ४ ॥

संज्ञाविषय में, पुराग, मिश्रका, सिध्रका, शारिका, कोटरा, अग्रे, इन्हीं पूर्वपदों से परे वन शब्द के नकार को णकारादेश हो औरों से न हो। पुरुगावणम्। मिश्रकावणम्। सिध्रकावणम्। शारिकावणम्। कोटरावणम्। अग्रेवणम्। औरों से न हो। जैसे। कुबेरवनम्। शतधारवनम्। असिपत्रवनम्॥ ८७१ ॥

८७२–प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्यो-संज्ञायामपि ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ५ ॥

संज्ञा वा असंज्ञा विषय में प्र, निर, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर, पीयूक्षा इन से परे वन शब्द के नकार को णकारादेश हो। प्रवणे यष्टव्यम्। निर्वणे प्रतिधीयते। अन्तर्वणम्। शरवणम्। इक्षुवणम्। प्लक्षवणम्। आम्रवणम्। कार्ष्यवणम्। खदिरवणम्। पीयूक्षावणम् ॥ ८७२ ॥

८७३–विभाषौषधि*वनस्पतिभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६ ॥

निमित्तवान् ओषधि और वनस्पति वाचक जो पूर्वपद उन से परे वन शब्द के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो। ओषधि, दूर्वावणम्। दूर्वावनम्। मूर्वावणम्। मूर्वावनम्। वनस्पति, शिरीषवणम्। शिरीषवनम्। बदरीवणम्। बदरीवनम्। द्व्यक्षरत्र्यक्षरेभ्य इति वक्तव्यम्। महाभाष्य० ८ । ४ । ६ । दो अक्षर और तीन अक्षर वाले ओषधि वनस्पतियों से हो औरों से न हो। देवदारुवनम्। भद्रदारुवनम् ॥८७३॥

८७४–वा०–इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

इरिकादिकों से परे नकार के णत्वादेश का प्रतिषेध कहना चाहिये। इरिकावनम्। तिमिरिकावनम् ॥ ८७४ ॥

८७५–अन्होऽदन्तात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ७ ॥

निमित्तवान् अदन्त जो पूर्वपद उस से परे अन्ह के नकार को णकारादेश हो। पूर्वाह्णः। अपराह्णः। अदन्तग्रहण से यहां न हुआ। निरन्हः। अन्ह के ग्रहण से यहां न हुआ। दीर्घान्ही ॥ ८७५ ॥

*उद्भिजाः स्थावरास्सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः। ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ १ ॥
अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥२॥ मनुस्मृति अध्याय० १ श्लो० ४७ ॥

८७६-वाहनमाहितात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ८ ॥

आहितवाची निमित्तवान् पूर्वपद से परे वाहन शब्द के नकार को णकारादेश हो । यहां गाड़ी आदि में भर के जो वस्तु ले चलें उस का ग्रहण आहित शब्द से है । इक्षुवाहणम् । शरवाहणम् । दर्भवाहणम् । आहित ग्रहण से यहां न हुआ । दाक्षिवाहनम् । गर्गवाहनम् । यहां गमनक्रिया नहीं विवक्षित है ॥ ८७६ ॥

८७७-पानं देशे ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ९ ॥

देश अभिधेय हो तो पूर्वपदस्थ निमित्त से परे पान शब्द के नकार को णकारादेश हो । पीयत इति * पानम् । जो पियाजाय वह पान कहावे । क्षीरं पानं येषान्ते क्षीरपाणाःउशीनराः । सुरापाणाः प्राच्याः । सौवीर पाणाबाह्लीकाः । कषायपाणा गान्धाराः । इन उदाहरणों में मनुष्याभिधान से भी देशाभिधान की प्रतीति होती है । देशग्रहण से यहां न हुआ । दाक्षिपानम् ॥ ८७७ ॥

८७८-वा भावकरणयोः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १० ॥

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे भाव और करण में जो पान शब्द उस के नकार को णकारादेश हो । भाव, क्षीरपाणम् । क्षीरपानम् । कषायपानम् । कषायपाणम् । करण, क्षीरपाणः । क्षीरपानः । कमण्डलुः ॥ ८७८ ॥

८७९-वा०-वाप्रकरणे गिरिनद्यादीनामुपसंख्यानम् ॥

वाप्रकरण में गिरिनद्यादि कों की गणना करना चाहिये । गिरिनदी । गिरिणदी । चक्रणितम्बा । चक्रानितम्बा ॥ ८७९ ॥

८८०-प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च ॥ अ० ॥ ८ ।४।११ ॥

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे प्राति पदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को णकारादेश हो । प्रातिपदिकान्त, माषवापिणौ । माषवापिनौ । नुम्, माषवापाणि । माषवापानि । विभक्ति, माषवापेण । माषवापेन । व्रीहिवापेन । व्रीहिवापेण । पूर्व पद के अधिकार से उत्तरपद का प्रातिपदिकस्थ अन्त्य जो नकार है उस को णत्वादेश विधान है । इस से यहां नहीं होता । गर्गाणां भगिनी, गर्गभगिनी । दत्तभगिनी । और जब यह वाक्य हो । गर्गाणां भगो गर्गभगः । गर्गभगोऽस्यास्तीति, गर्गभगिणी । तब (८८३)

*यहां (कृत्यल्युटोबहुलम्) इस सूत्र से कर्म में ल्युट् है ॥

अगले सूत्र से नित्य णत्वादेश होता है । माषवापिणी । माषवापिनी । यहां भी णकार विकल्प से होता है क्योंकि ' गतिकारकोपपदानां कृद्भिस्सहसमासवचनप्राक्सुबुत्पत्ते इस परिभाषा से कृदन्त के साथ ही में समास होने से कृत्संज्ञक प्रत्यय का नकार प्रातिपदिकान्त ही माना जाता है । इसी हेतु से सूत्र में नुम् का ग्रहण अलग किया है क्योंकि नुम् समुदाय का भक्त है अतएव प्रातिपदिकान्त नहीं होता है ॥ ८८० ॥

८८१—वा०-युवादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

प्रातिपदिकान्तादिनकार को णत्वविधान में युवादिकों का प्रतिषेध कहना चाहिये। आर्ययूना । क्षत्रिययूना । प्रपक्वानि । परिपक्वानि । दीर्घाह्नी शरत् ॥ ८८१ ॥

८८२—एकाजुत्तरपदेणः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १२ ॥

जिस में एकाच् उत्तर पद है उस समास में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्ति के नकार को णकारादेश हो । वृत्रहणौ । वृत्रहणः । नुम्, क्षीरपाणि । सुरापाणि । विभक्ति, क्षीरपेण । सुरापेण । ण, वर्त्तमान था फिर णग्रहण पूर्वविकल्प के बाधने के लिये है ॥ ८८२ ॥

८८३-कुमतिच ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १३ ॥

कवर्गवान् उत्तरपद वाले समास में पूर्वपदनिमित्त से परे प्रातिपदि कान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को णकारादेश हो । वस्त्रयुगिणौ । वस्त्रयुगिणः । स्वर्गकामिणी । वृषगामिणी । नुम्, वस्त्रयुगाणि । खरयुगाणि । विभक्ति, वस्त्रयुगेण । खरयुगेण ॥ ८८३ ॥

८८४—उपसर्गादसमासेऽपिणोपदेशस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १४ ॥

समास वा असमास में उपसर्गस्थ निमित्त से परे णोपदेश धातु के नकार को णकारादेश हो । प्रणमति । परिणमति । प्रणयनम् । प्रणायकः । परिणायकः । उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रगतानायका अस्माद देशात् प्रनायकोदेशः । असमासग्रहण समास की निवृत्ति के लिये है क्योंकि पूर्वपद के अधिकार से समास ही में प्राप्ति थी । णोपदेशग्रहण से यहां न हुआ । परिनर्दति । परिनृत्यति ॥ ८८४

८८५—हिनुमीना ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १५ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे हिनु, मीना इन के नकार को णकारादेश हो । प्रहिणोति । प्रहिणुतः । प्रमीणाति । प्रमीणीतः ॥ ८८५ ॥

८८६—आनिलोट् ॥ अ० । ८ । ४ । १६ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे लोट् लकार के आदेश आनि शब्द के नकार को णकारादेश हो । प्रवपाणि । परिवपाणि । प्रयाणि । परियाणि । लोट् ग्रहण से यहां न हुआ । प्रवपानि । मांसानि ॥ ८८६ ॥

८८७—नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४। १७ ॥

गद, नद, पत, पद, घुसंज्ञक, (डुदाञ् दाण दो देङ् डुधाञ् धेट्) मा, (माङ् मेङ्) सो, हन्, या, वा, द्रा, प्सा, डुवप्, वह, शमु, चिञ्, दिह, ये धातु परे होतो उपसर्गस्थ मिमित्त से परे नि के नकार को णकारादेश हो । गद, प्रणिगदति । नद, प्रणिनदति । परिणिनदति । पत,प्रणिपतति । परिणिपतति । पद, प्रणिपद्यते । परिणिपद्यते । घु, प्रणिददाति । प्रणिदाता । प्रणियच्छति । प्रणिद्यति । प्रणिदयते । प्रणिदधाति । प्रणिधयति । मा, प्रणिमिमीते । प्रणिमयते । सो, प्रणिष्यति । परिणिष्यति । हन, प्रणिहन्ति । या, प्रणियाति । वा,प्रणिवाति । द्रा, प्रणिद्राति । प्सा, प्रणिप्साति । डुवप, प्रणिवपति। परिणिवपति । वह, प्रणिवहति । शमु, प्रणिशाम्यति । चिञ्, प्रणिचिनोति । दिह, प्रणिदेग्धि । यहां (८६६) सूत्र से अड्व्यवाय का अनुवर्त्तन कर- अट के व्यवधान में भी नि के नकार को णकारादेश होता है । प्रण्यगदत् । प्रण्यागदात् ॥ ८८७ ॥

८८८—शेषे विभाषाकखादावषान्त उपदेशे॥ अ० ॥८ । ४ ।१८॥

उपदेश अवस्था में क, ख जिस के आदि में और ष अन्त में न हो ऐसा पूर्वोक्तों से शेष धातु परे हो तो उपसर्गस्थ निमित्त से परे नि के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो । प्रणिपचति । प्रनिपचति । प्रणिभिनत्ति । प्रनिभिनत्ति । अकखादिग्रहण से यहां न हुआ । प्रनिकरोति । प्रनिखादति। अषान्तग्रहण से यहां न हुआ । प्रनिपिनष्टि । उपदेशग्रहण का यह फल है कि । प्रनिचखाद । प्रनिचकार । प्रनिपेक्ष्यति । इत्यादिकों में प्रतिषेध हो । तथा विश, प्रणिवेष्टा । प्रणिवेक्ष्यति । यहां प्रतिषेध न हो ॥ ८८८ ॥

८८९—अनितेः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १९ ॥

अन्त (समीपवर्ती) जो सगर्स्थ रेफ उस से परे अन धातु के नकार को ण-

कारादेश हो । हेप्राण् । हेपराण् । प्राणिति । पराणिति । यह (८०८) सूत्र का अपवाद है । अन्त ग्रहण से यहां न हुआ । पर्यनिति । यहां दो वर्णों का व्यवधान है इस से नकार को णकारादेश नहीं होता एकवर्ण का व्यवधान तो अन धातु का जो 'अ, अवयव है उसी से प्राप्त है ॥ ८८९ ॥

८९०—उभौसाभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २० ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे अभ्यासयुक्त अन धातु के दोनों नकारों को णकार आदेश हो । प्राणिणिषति । प्राणिणत् । पराणिणिषति । पराणिणत् ॥ ८९० ॥

८९१—हन्तेरत्पूर्वस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २१ ॥

उपसर्गनिमित्त से परे हन् धातु के अकार पूर्वक नकार को णकारादेश हो । प्रहण्यते । परिहण्यते । प्रहणनम् । परिहणनम् अत्पूर्वग्रहण से यहां न हुआ । प्रघ्नन्ति । परिघ्नन्ति। तपरकरण से यहां न हुआ । प्राघानि । पराघानि । ये चिण् के परे प्रयोग हैं ॥ ८९१ ॥

८९२—वमोर्वा ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २२ ॥

व, म परे होंतो उपसर्गस्थ निमित्त से परे हन् धातु के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो । प्रहण्वः । प्रहन्वः । प्रहण्मः । प्रहन्मः ॥ ८९२ ॥

८९३—अन्तरदेशे ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २३ ॥

देश न अभिधेय हो तो अन्तर् शब्द से परे हन् धातु के अकारपूर्वक नकार को णकारादेश हो । अन्तर्हणनम् । अदेश ग्रहण से यहां न हुआ । अन्तर्हननोदेशः अत्पूर्वग्रहण से यहां न हुआ । अन्तरघानि ॥ ८९३ ॥

८९४—अयनं च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २४ ॥

देश न कहा जाय तो अन्तर् शब्द से परे अयन शब्द के नकार को णकारादे- हो । अन्तरयणम् । अदेशग्रहण से यहां न हुआ । अन्तरयनो देशः ॥ ८९४॥

८९५—छन्दस्यृदवग्रहात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २५ ॥

वेदविषय में अवग्रह ऋकार जिस के अन्त में हो उस से परे नकार को णका रादेश हो । जो विग्रह में उच्चारण करने से निरवकाश ग्रहीत हो वह अवग्रह कहाता है । नृमणाः । पितृयाणम । नृ, पितृ ये विग्रह में भिन्न २ भी पद हैं । तथापि यहां मकार और या के साथ ही ऋ, का उच्चारण होता है ॥ ८९५ ॥

८९६—नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २६ ॥

वेदविषय में धातुस्थ निमित्त से तथा उरु और षु से परे नस् शब्द के नकार को णकारादेश हो । धातुस्थ, अग्ने रक्षाणः । शिक्षाणो अस्मिन् । उरु, उरुणस्कृधि । षु, अभीषुणः सखीनाम् । ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये ॥ ८९६ ॥

८९७—उपसर्गाद्बहुलम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २७ ॥

वेदविषय में उपसर्गस्थ निमित्ति से परे नस् के नकार को णकारादेश बहुल करके हो। प्रणसः प्रणो राजा । बहुलग्रहण से प्रनोमुञ्चतम् । यहां नहीं भी होता । भाषा में होता भी है । प्रणसं मुखम् ॥ ८९७ ॥

८९८—कृत्यचः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २८ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे अच् जिस के पूर्व उस कृत्स्थ नकार को णकारादेश हो । अन, मान, अनीय, अनि, इनि और निष्ठादेश में जो नकार उन को णकारादेश होता है । अन, प्रयाणम् । परियाणम् । प्रमाणम् । परिमाणम् । मान, प्रयायमाणम् । परियायमाणम् । अनीय, प्रयाणीयम् । परियाणीयम् । अनि, अपरियाणिः । इनि, प्रयायिणी । परियायिणी । निष्ठादेश, प्रहीणः । परिहीणः । प्रहीणवान् । परिहीणवान् । अच् के ग्रहण से यहां न हुआ । प्रभुग्नः । परिभुग्नः । भुजो कौटिल्ये से निष्ठा के परे प्रयोग है ॥ ८९८ ॥

८९९—वा०—कृत्स्थस्य णत्वे निर्विणस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥

निर्विणो हमनेन वासेन ॥ ८९९ ॥

९००—णेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २९ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे णयन्तधातु से बिहित कृत्तत्स्थ अच् पूर्वक जो नकार उस को णकारादेश विकल्प करकेहो। प्रयापनम्। प्रयापणम् । परियापणम् । परियापनम् । विहितविशेषण से 'प्रयाप्यमाणम्, यहां यक् प्रत्यय के व्यवधान में नकार को णत्वादेश होता है ॥ ९०० ॥

९०१—हलश्चेजुपधात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३० ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से और हलादि इजुपध धातु से परे कृत्स्थ अच्पूर्वक जो नकार उसको णकारादेश विकल्प करके हो । प्रकोपनम् । प्रकोपणम् । हल्ग्रहण से यहां न हुआ । प्रेहणम् । इजुपधग्रहण से यहां न हुआ । प्रवपणम् ॥ ९०१ ॥

९०२—इजादेः सनुमः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३१ ॥

उपसर्गस्थनिमित्त से परे इजादि सनुम् हलन्त धातु उससे विहित जो कृत् प्रत्यय ततृस्थ अच्पूर्वक नकार को णकारादेश हो । प्रेङ्खणम् । प्रेङ्गणम् । प्रोम्भनम् । इस विषय में णकारादेश सिद्ध था फिर णत्वविधान इजादि सनुम् से नियम के लिये है। सनुम् से हो तो इजादि ही सनुम् से हो अन्य से न हो । प्रमङ्गनम् । यहां णत्व नहीं होता ॥ ९०२ ॥

९०३—वा निंसनिक्षनिन्दाम् ॥ अ०॥ ८ । ४ ।३२॥

उपसर्गस्थ निमित्त से निंस, निक्ष और निन्द के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो । प्रणिंसनम्। प्रनिंसनम् । प्रणिक्षणम् । प्रनिक्षणम् । प्रणिन्दनम् । प्रनिन्दनम् ॥ ९०३ ॥

९०४—न भाभूपूकमिगमिप्यायिवेपाम् ॥ अ०॥ ८ । ४ । ३३ ॥

उपसर्गस्थनिमित्त से परे भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायि और वेप धातु के कृत्स्थ नकार को णकारादेश न हो । प्रभानम् । परिभानम् । प्रभवनम् । परिभवनम् । प्रपवनम् । परिपवनम् । प्रकमनम् । परिकमनम् । प्रगमनम् । परिगमनम् । प्रप्यायनम् । परिप्यायनम् । प्रवेपनम् । परिवेपनम् । भादिषु पूञ ग्रहणम् । महाभाष्य ८। ४। ३३ । भादिकों में पूञ् धातु का ग्रहण करना चाहिये।किन्तु पूङ् से नित्य णत्व होता है । प्रपवणं सोमस्य ॥ ९०४ ॥

९०५—वा०—ण्यन्तस्य चोपसंख्यानं कर्तव्यम् ॥

प्रभापनम् । परिभापनम् ॥ ९०५ ॥

९०६—षात्पदान्तात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३४ ॥

पदान्त षकार से परे नकार को णकारादेश न हो । निष्पानम् । दुष्पानम् । सर्पिष्पानम् । षग्रहण से यहां निषेध न हुआ । निर्णयः । पदान्त ग्रहण से यहां निषेध न हुआ। कुष्णाति । पुष्णाति । 'पदान्तात्, यहां पदेऽन्तः यह सप्तमी समास इष्ट है। इस से यहां निषेध न हुआ । सुसर्पिष्केण ॥ ९०६ ॥

९०७—नशेःषान्तस्य ॥ अ० ॥ ८ । ३५ ॥

षकारान्त नश को णकारादेश न हो । प्रनष्टः । परिनष्टः । षान्तग्रहण से यहां

निषेध न हुआ । प्रणश्यति । अन्तग्रहण भूतपूर्व षान्त से भी णत्व के प्रतिषेध के लिये है । प्रनङ्क्ष्यति परिनङ्क्ष्यति ॥ ९०७ ॥

९०८—पदान्तस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३६ ॥

पदान्त नकार को णकारादेश न हो । वृक्षान् । प्लक्षान् । रामान् ॥ ९०८ ॥

९०९—पदव्यवायेऽपि ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३७ ॥

निमित्त और निमित्ती को पदव्यवधान भी हो तो नकार को णत्वादेश न हो । माषकुम्भवापेन । प्रावनद्धम् ॥ ९०९ ॥

९१०—क्षुभ्नादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३८ ॥

क्षुभ्नादिक शब्दों में नकार को णकारादेश न हो । क्षुभ्नाति । अजादेश के स्थानिवद् भाव से यहां भी निषेध होता है । क्षुभ्नीतः । इत्यादि । अवाहितलक्षण णत्वप्रतिषेध क्षुभ्नादिकों में देखना चाहिये ॥ ९१० ॥

इति णत्व प्रक्रिया समाप्ता ॥

———0———

॥ अथ कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया ॥

९११—वासरूपोऽस्त्रियाम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९४ ॥

धात्वधिकार में स्त्री अधिकार के प्रत्ययों को छोड़ के असरूप (असमानरूप) अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का बाधक विकल्प करके हो ॥ ९११ ॥

९१२—कृत्याः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९५ ॥

ण्वुल्प्रत्यय से पूर्व जो २ प्रत्यय अब आगे कहें वे सब कृत्य संज्ञक हों । धात्वधिकार में धातु से जिन २ प्रत्ययों का विधान होता है वे प्रथम (३) सूत्र से कृत् संज्ञक होते हैं फिर उन की कृत्य संज्ञा भी होती है ॥ ९१२ ॥

९१३—कर्त्तरि कृत् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६६ ॥

कृत् संज्ञक प्रत्यय कर्त्ता में हों इस से कृत् संज्ञक प्रत्यय कर्त्ता में प्राप्त हुए इस व्यवस्था में ॥ ९१३ ॥

९१४—तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७० ॥

कृत्यसंज्ञक, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म ही में हों । इस से कृत्य

संज्ञक प्रत्ययोंका भाव कर्म में सामान्यनियम है (७९१ । ७९४ । ७९५। सूत्रों से प्रैष, अतिसर्ग, प्राप्तकाल, अर्ह और शक्ति अर्थ में भी कृत्य प्रत्ययों का विधान है । इस विषय के उदाहरण भी उन्हीं सूत्रों पर देचुके हैं वैसे यहां और भी उदाहरण समझना चाहिये ॥ ९१४ ॥

९१५—तव्यत्तव्यानीयरः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९६ ॥

धातु से तव्यत्, तव्य, और अनीयर् प्रत्यय हों । तकार और रेफ स्वर के लिये हैं। भाव में उत्सर्गमात्र एकवचन और नपुंसक लिङ्ग होता है । एधितव्यम् । एधनीयमनेन। कथितव्यः । कथनीयो वा त्वया धर्म्मः । कथितुंयोग्यः शक्यो वा इत्यादि ॥ ९१५ ॥

९१६—वा०—केलिमर उपसङ्ख्यानम्*॥

पचेलिमाः । पक्तव्याः । माषा । भिदेलिमाः । भेत्तव्याः । सरलाः । यहां कर्म्म में प्रत्यय है ॥ ९१६ ॥

९१७—वा०—वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्च ॥

वस धातु से कर्त्ता में तव्यत् प्रत्यय और वह णित् संज्ञक भी हो यह कहना चाहिये । वसतीति, वास्तव्यः ॥ ९१७ ॥

९१८—कृत्यल्युटो बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११३ ॥

कृत्य संज्ञक और ल्युट् प्रत्यय बहुल करके हों । अर्थात् जहां २ कहे हैं वहां से अन्यत्र भी हों । जैसे कृत्यसंज्ञक प्रत्यय भाव कर्म्म से अन्यत्र । स्नात्यनेनेति स्नानीयम् । चूर्णम् । दीयतेऽस्मै , दानीयो विप्रः । ल्युट् प्रत्यय करण, अधिकरण और भाव में कहेंगे उन से अन्यत्र जैसे । आच्छाद्यते, आच्छादनं वासः । प्रस्कन्दनम् । प्रतपनम् । बहुलग्रहण से और भी कृत् यथाविधान से अन्यत्रभी होते हैं जैसे । पादाभ्यां ह्रियते, पादहारकः । गले चोप्यते, गलेचोपकः ॥ ९१८ ॥

९१९—अचो यत् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९७ ॥

अजन्त धातु से यत् प्रत्यय हो । मेयम् । जेयम् । अज्ग्रहण क्यों किया हलन्त से तो ण्यत् विधान ही करेंगे । प्रथम जो अजन्त धातु है उस से भी हो इस लिये । जैसे । लभ्यम् । पठ्यम् । यहां आगामी आर्द्धधातुक का विषय मान कर गुण और

---

* (केलिमर्) इस प्रत्यय को वृत्तिकारादिक कोई कर्मकर्त्ता में मानते हैं सो महाभाष्य से विरुद्ध है क्योंकि महाभाष्यकार ने तो उक्त प्रत्यय को कर्महीमें दिखलाया है ॥

अवादेश किये पीछे हलन्त से यत् नहीं प्राप्त है। दित्स्यम्। धित्स्यम्। यहां आगामी आर्द्धधातुकविषय मान कर अकार लोप किये पीछे हलन्त से यत् नहीं प्राप्त है॥ ९१९ ॥

९२०–ईद्यति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६५ ॥

यत् प्रत्यय परे हो तो आदन्त अङ्ग को ईकारादेश हो। आदेयम्। गेयम् ॥ ९२० ॥

९२१–वा०–तकिशसिचतियतिजनीनामुपसंख्यानम् ॥

तकि, तक्यम्। शसि, शस्यम्। चति, चत्यम्। यति, यत्यम्। जनि, जन्यम्। यहां जन धातु से यत् प्रत्यय का विधान केवल स्वर के लिये है क्योंकि यत् और ण्यत् में इस का एकसा प्रयोग होता है ॥ ९२१ ॥

९२२–वा०–हनो वध च ॥

हन् धातु से यत् प्रत्यय और हन् को वध आदेश विकल्प करके कहना चाहिये। वध्यः। दूसरे पक्ष में। घात्यः। यहां आगामी ण्यत् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९२२ ॥

९२३–पोरदुपधात् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९८ ॥

अकार जिस के उपधा में हो ऐसे पवर्गान्त धातु से यत् प्रत्यय हो। शप्यम्। लभ्यम्। पवर्गग्रहण से यहां न हुआ। पाक्यम्। वाक्यम्। अदुपधग्रहण से यहां न हुआ। कोप्यम्। गोप्यम्। तपरकरण दीर्घादिकों की निवृत्ति के लिये है। आप्यम् ॥ ९२३ ॥

९२४–शकिसहोश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९९ ॥

शक्लृ और सह धातु से यत् प्रत्यय हो। शक्यम्। सह्यम् ॥ ९२४ ॥

९२५–गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०० ॥

उपसर्ग पूर्व न हो तो गद मद चर और यम धातु से यत् प्रत्यय हो। गद्यम्। मद्यम्। चर्यम्। यम्यम्। अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ। प्रगाद्यम्। प्रमाद्यम्। इस सूत्र में यम धातु का ग्रहण केवल अनुपसर्ग के लिये है क्योंकि यम् धातु से यत् प्रत्यय (९१८) सूत्र से सिद्ध है प्रयाम्यम्। यहां यत् न हुआ वक्ष्यमाण ण्यत् प्रत्यय हो गया ॥ ९२५ ॥

९२६–वा०–अनुपसर्गाच्चराङि चागुरौ ॥

अनुपसर्ग चर धातु से यत् के विधान में गुरु अभिधेय न हो तो आङ्पूर्वक चर धातु से यत् प्रत्यय का विधान करना चाहिये। आचरितुंयोग्य आचर्यो देशः। अगुरु-

ग्रहण से यहां न हुआ । आचार्य उपनयमानः ॥ ६२६ ॥

९२७–अवद्यपण्यवर्यागर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु॥अ० ॥३।१।१०१॥

गर्ह्य (निन्द्य) पणितव्य (व्यवहार के योग्य) अनिरोध (नरोकना) इन अर्थों में क्रम से अवद्य, पण्य, वर्या ये निपातन हैं । अवद्यं पापम् । गर्ह्य से अन्यत्र अनुद्यम् । मनोदुःखम् । वद धातु से क्यप् और यत् प्रत्यय का विधान करेंगे उन में यत् के परे वद्य उसी से नञ् समास में अवद्य सिद्ध होगा वह गर्ह्य अर्थ में निपातन है । अन्यत्र क्यप् प्रत्ययान्त रहेगा जिस से नञ् में अनुद्य होता है। पण्यम् । वस्त्रम्। पण्यः कम्बलः । पण्या गौः । अर्थात् ये वेंचने योग्य पदार्थ हैं । यहां धातु से यत् प्रत्यय है । स्तुत्यम् । शतेन वर्या । यहां वृङ् धातु से यत् है । अन्यत्र वृत्या स्त्रीलिङ्गनिर्देश से यहां न हुआ । वार्या ऋत्विजः ॥ ६२७ ॥

९२८–वह्यं करणम्॥ अ० ॥ ३ । १ । १०२ ॥

वह धातु से करणकारक में यत् प्रत्यय निपातन है । वहत्यनेनेति वह्यम् शकटम् । करण ग्रहण से अन्यत्र वाह्यम् । होता है ॥ ६२८ ॥

९२९—अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०३॥

स्वामी और वैश्य अभिधेय हों तो ऋ धातु से यत् प्रत्यय निपातन है । अर्यः स्वामी वैश्यो वा । स्वामिन्यन्तोदात्तत्वं च महाभाष्य ३ । १ । १०३ ॥ स्वामी अभिधेय हो तो 'अर्य, शब्द को अन्तोदात्तत्व भी निपातन है ॥ ६२९ ॥

९३०–उपसर्य्या काल्या प्रजने ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०४ ॥

प्रजन (प्रथम गर्भग्रहण) में जो (काल्या) समय को प्राप्त हुई वह अभिधेय हो तो उपसर्य्या यह निपातन हो । उपसर्या गौः । उपसर्या स्त्री । यहां उपपूर्व सृज धातु से यत् प्रत्यय निपातन किया है । काल्या प्रजन ग्रहण से यहां न हुआ । उपसार्या वसन्ते वाटिका ॥ ६३० ॥

९३१–अजर्य्यं सङ्गतम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०५ ॥

सङ्गत विशेष्य हो तो नञ्पूर्वक जृष् धातु से कर्त्ता में यत् प्रत्यय निपातन हो । न जीर्यति, अजर्यम् । अजर्यमार्यसङ्गतम् । सङ्गतग्रहण से यहां न हुआ । अजरिता । कम्बलः ॥ ६३१ ॥

९३२-वदः सुपि क्यप् च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०६ ॥

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो वद धातु से क्यप् और यत् प्रत्यय हो । ब्रह्मोद्यम् । ब्रह्मवद्यम् । वेद का कथन है । सत्योद्यम् । सत्यवद्यम् । सुप् के ग्रहण से यहां न हुआ । वाद्यम् । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रवाद्यम् ॥ ९३२ ॥

९३३-भुवो भावे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०७ ॥

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो भू धातु से भाव में क्यप् यत् प्रत्यय हों । ब्रह्मणो भावो ब्रह्मभूयम् । देवभूयंगतः । भावग्रहण अगले सूत्रों के लिये है । क्योंकि सत्तार्थक भू धातु से अकर्म्मकत्व मान कर भाव में क्यप् सिद्ध है । सुप् के ग्रहण से यहां न हुआ (भव्यम्) अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रभाव्यम् ॥ ९३३ ॥

९३४-हनस्त च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०८ ॥

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो हन् धातु से भाव में क्यप् प्रत्यय और हन् को तकार अन्तादेश हो । ब्रह्मणो हननं ब्रह्महत्या । गोहत्या । श्वहत्या वर्त्तते । सुप् के ग्रहण से यहां न हुआ । घातः । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रघातो वर्त्तते । भावग्रहण से यहां न हुआ । श्वघात्यो वृषलः ॥ ९३४ ॥

९३५-वा०-हनस्तश्चित् स्त्रियां छन्दसि ॥

वेदविषयक प्रयोग में (हनस्त च) इस से हन् धातु से विहित क्यप् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में चित् हो । तां भ्रूणहत्यां निगृह्यानुचरणम् । अस्यै त्वा भ्रूणहत्यायै चतुर्थ प्रतिपद्यते । स्त्रीलिङ्ग ग्रहण से यहां चित् नहीं होता है । आघ्नते दस्युहत्थाय । छन्दोग्रहण से यहां चितत्व धर्म्म नहीं होता । श्वहत्या । दस्युहत्या वर्त्तते* ॥ ९३५ ॥

९३६-एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०९ ॥

इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ, जुष् धातुओं से क्यप् प्रत्यय हो । इत्यः । स्तुत्यः । शिष्यः । यहां (३७१) सूत्र से इत् हो जाता है । वृत्यः । आदृत्यः । जुष्यः । क्यप् प्रत्यय वर्तमान था फिर क्यप् के ग्रहण का यह प्रयोजन है कि । अवश्य स्तुत्यः । यहां आवश्यक अर्थ में वक्ष्यमाण जो ण्यत् प्राप्त है वह न हो । क्यब्विधौ वृञ्ग्रहणम्, महाभाष्य ८ । ४ । १०९ । क्यब्विधिमें वृञ् का ग्रहण है इससे

---

*महाभाष्यकार के (श्वह०दस्यु०) इन्हीं प्रयोगों से स्पष्ट है कि हन् धातु से यह क्यप् प्रत्यय लोक में नियम से स्त्रीलिङ्ग में होता है ॥

यहां न हुआ। वाच्यों ऋत्विजः "प्रशस्यस्य श्रः" इस सूत्र में जो प्रशस्य शब्द का ग्रहण है इस ज्ञापन से शंसु धातु से भी क्यप् प्रत्यय होना है क्योंकि प्र उपसर्गपूर्वक शंसुधातु का क्यप् के परे प्रशस्य यह सिद्ध होता है ॥ ९३६ ॥

९३७—वा०—अञ्जेश्चोपसङ्ख्यानं संज्ञायाम् ॥

संज्ञा गम्यमान हो तो अञ्जू धातु से क्यप् प्रत्यय का उपसंख्यान करना चाहिये। आनक्त्यनेनेति, आज्यम्। घृतम्। यहां करण में क्यप् है। यह क्यप् आङ्-पूर्वक ही से होता है। आङ्पूर्वस्य प्रयोगो भविष्यति। महाभाष्य ॥ ३। १। १०९ ॥ ९३७ ॥

९३८—ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः॥ अ० ॥ ३। १। ११० ॥

क्लृपि और चृति धातुओं को छोड़ कर ऋकारोपध धातु से क्यप् प्रत्यय होता है। वृत्यम्। वृध्यम् अक्लृपिचृतिग्रहण से यहां न हुआ। कल्प्यम्। चर्त्यम्। तपरकरण से यहां न हुआ। कीर्त्यम्। यहां ण्यत् होता है। यह कृत संशब्दने का प्रयोग है ॥ ९३८ ॥

९३९—ई च खनः ॥ अ० ॥ ३। १। १११ ॥

खन् धातु से क्यप् प्रत्यय और खन् को ईकारादेश हो। । खेयम्। यहां ह्रस्व इकार भी आदेश महाभाष्यकार को इष्ट है क्योंकि (सन्धि१०९) सूत्र से ह्रस्व वा दीर्घ दोनों के परे पूर्व पर के स्थान में गुण एकारादेश हो जाता है * ॥ ९३९ ॥

९४०—भृञोऽसंज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३। १। ११२ ॥

असंज्ञाविषय में भृञ् धातु से क्यप् प्रत्यय हो। भृत्याः कर्म्मकराः। असंज्ञा ग्रहण से यहां न हुआ। भार्य्या नाम क्षत्रियाः। भार्य्या गृहिणी। यहां तो ण्यत् होता है। (असंज्ञायाम्) इस प्रतिषेध से भार्या शब्द ण्यत् प्रत्ययान्त संज्ञाविषय में होता है उस के लिये कहते हैं ॥ ९४० ॥

* यहां काशिकाकार ने इकार दूसरा प्रश्लेष मान कर (ये विभाषा) इस आत्व की व्यावृत्ति किई यह उन का व्याख्यान आहोपुरुषिकामात्र है क्यों कि क्यप् सान्नि-योग में विधीयमान इत्व अन्तरङ्ग और यकारादि प्रत्यय के परे विधीयमान आत्व बहिरङ्ग है इस से असिद्धंबहिरङ्गमन्तरङ्गे इसी से आत्व की व्यावृत्ति हो जायगी फिर प्रश्लेष इकार क्यों माना जाय। इस लिये महाभाष्यकार की व्याख्या से विरुद्ध है ॥

९४१-का०-संज्ञायां पुंसि दृष्टत्वान्न ते भार्या प्रसिध्यति ॥
स्त्रियां भावाधिकारोस्ति तेन भार्या प्रसिध्यति ॥ १ ॥
अथवा बहुलं कृत्याः संज्ञायामिति तत् स्मृतम् ॥
यथा यत्यं यथा जन्यं यथा भित्तिस्तथैव सा ॥ २ ॥

प्र०-पुंलिङ्गविषयक संज्ञा में ण्यत् प्रत्यय केदेखनेसे तुम्हारा भार्या शब्द नहीं सिद्ध होता है। उ०—स्त्री लिङ्ग विषयक (समूज्ञायां समज०) इस सूत्र में भाव का अधिकार है उस से भार्या शब्द प्रसिद्ध होता है अर्थात् भाव का अधिकार मान कर स्त्री लिङ्ग में भावविषयक क्यप् प्रत्ययान्त भृत्या होगा तथा ण्यत् प्रत्ययान्त भार्या हो जायगा ॥१॥ अथवा जो उक्त सूत्र में भावाधिकार न माने तो कृत्य और ल्युट् बहुल करके होते हैं वह स्मरण संज्ञा को निमित्त होना चाहिये। जैसे यत्य जैसे जन्य और जैसे भित्ति शब्द है वैसे ही वह भार्या शब्द भी सिद्ध होजायगा*॥ ९४१ ॥

९४२-मृजेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११३ ॥

मृज धातु से विकल्प करके क्यप् प्रत्यय हो। मृज्यः ॥ ९४२ ॥

९४३-चजोः कुघिण्यतोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५२ ॥

घित् और ण्यत् प्रत्यय परे हो तो चकार और जकार को कुत्व हो। मार्ग्यः। यहां वक्ष्यमाण ण्यत् प्रत्यय होता और (३५५) से वृद्धि हो गई ॥ ९५३ ॥

९४४-राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ॥
अ० ॥ ३ । १ । ११४॥

राजसूय, सूर्य मृषोद्य रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यथ्य ये क्यप्, प्रत्ययान्त निपातन हैं। अभिषवद्वारा राज्ञा सोतव्यो राजानस्सूयन्ते ऽस्मिन्निति, वा राजसूयः। यज्ञः यहां राजन् शब्दपूर्वक [षुञ] अभिषवे धातु से क्यप् प्रत्यय और निपात से दीर्घादेश होता है। सरत्याकाशमार्गेण गच्छति वा षुवति लोकंकर्मणि प्रेरयतीति सूर्यः। यहां [सृ] गतौ वा [षू] प्रेरणे धातु से क्यप् प्रत्यय और सृ को ऊका-

* अजन्त से विहित यत् प्रत्यय यत जन धातुओं से होता और स्त्री अधिकार में भिद् धातु से अङ् विहित है तथापि बहुल भाव से क्तिन् भी होता है वैसे ही बहुल भाव से ण्यत् प्रत्ययान्त भार्या शब्द हो जायगा ॥

रादेश वा पृ को रुडागम निपातन है। मृषा उद्यत इति मृषोद्यम्। यहां मृषोपपदवद धातु से (९३२) सूत्र से क्यप् और यत् की प्राप्ति में क्यप् विहित है। रोचतेऽसौरुच्यः। यहां रुच धातु से कर्त्ता में क्यप् है। गुप्यते यत्तत् कुप्यम्। यहां संज्ञा में गुप धातु आदि को कुत्व निपातन है। गोप्यते यत्तत् कुप्यम्। सुवर्ण और रजत से भिन्न धन की संज्ञा है। अन्यत्र गोप्यम्। होगा। कृष्टे स्वयमेव पच्यन्त इति कृष्टपच्याः। यहां कर्मकर्त्ता में पच से क्यप् प्रत्यय है। योहि कृष्टे पक्तव्यः सः कृष्टपाक्यो भवति न व्यथत इति, अव्यथ्यः। सूर्यरुच्याव्यथ्याः कर्त्तरि। कुप्यं संज्ञायाम्। कृष्टपचस्यान्तोदात्तत्वं च कर्म कर्त्तरि च। महाभाष्य ३।१।११४॥९४४॥

९४५-भिद्योद्ध्यौनदे ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११५ ॥

नद अभिधेय होतो भिद्य, उद्ध्य ये क्यप् प्रत्ययान्त निपातन हैं। भिनत्ति कूलमिति भिद्यः। उज्झत्युदकमिति, उद्ध्यः। यहां [उज्झ] त्यागे धातु को धत्व भी निपातन है। नदसे अन्यत्र भेत्ता। उज्झिता॥ ९४५॥

९४६-पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११६ ॥

नक्षत्र अभिधेय हो तो पुष्य, सिद्ध्यौ ये निपातन हैं पुष्यन्त्यास्मिन् कार्य्याणीति पुष्यः। सिद्ध्यन्त्यस्मिनर्था इति सिद्ध्यः। अन्यत्र। पोषणम्। सेधनम्॥ ९४६॥

९४७-विपूयविनीयजित्यमुञ्जकल्कहलिषु ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११७ ॥

मुञ्ज, कल्क, हलि इन अर्थों में विपूय विनीय जित्य ये शब्द यथासङ्ख्य निपातन हैं। विपू विनी तथा जिसे यत् प्रत्यय की प्राप्ति में क्यप् प्रत्यय निपातन किया है। विपूयः। मुञ्जः। रज्वादि कर्म के लिये शोधने योग्य है। अन्यत्र विपाव्यम्। विनेतुं योग्यो विनीयः। कल्कः। विनेयमन्यत्। जित्यः। हलिः। जेयमन्यत्॥ ९४७॥

९४८-प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११८ ॥

प्रति और अपि से परे ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो। प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि। महाभाष्य ३।१।११८॥ मत्तस्य प्रतिगृह्यम्। अनृतंहि मत्तो वदति तस्मान्नापि गृह्यम्। लोक में प्रतिग्राह्यम्। अपिग्राह्यम्॥ ९४८॥

९४९-पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११९ ॥

पद अस्वैरिन् बाह्या और पक्ष्य अर्थ में ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो। पद,

प्रगृह्यम् पदम् जिस की प्रगृह्य संज्ञा करते हैं । अवगृह्यम् पदम् । जिस का अवग्रह करते हैं । अस्वैरी (परतन्त्र) गृह्यकाः पक्षिणः । गृहीत हैं । बाह्या, ग्रामगृह्याः । वाप्य । ग्राम से बाहर बाउरी हैं । नगरगृह्या सेना । नगर से बाहर सेना है यह प्रतीति होती है स्त्रीलिङ्ग निर्देश से यहां न हुआ । ग्रामग्राह्याः पादपाः । पत्त्य, पत्त में जो हो वह पत्त्यः कहावे । आर्यैर्गृहीतुंयोग्य आर्यगृह्यः पक्ष्य । अर्जुनगृह्याः । वासुदेवगृह्याः ॥ ९४९ ॥

९५०–विभाषा कृवृषोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२० ॥

कृञ और वृष धातु से क्यप् प्रत्यय विकल्प करके हो । कृत्यम् । कार्यम् । वृष्यम् । वर्ष्यम् ॥ ९५० ॥

९५१–युग्यं च पत्रे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२१ ॥

पत्र (वाहन) अभिधेय हो तो युग्य यह निपातन है । युग्योऽश्वः । युग्यो गौः । यहां युज् धातु मे क्यप् और धातु को कुत्वादेश निपातन है । पत्रग्रहण से यहां न हुआ योग्यमन्यत् ॥ ९५१ ॥

९५२–अमावस्यदन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ ।१।१२२ ॥

अमावस्यत् यह विकल्प करके निपातन है अर्थात् अमापूर्वक वस धातु से ण्यत् प्रत्यय के परे विकल्प करके वृद्धि का अभाव निपातन है अमा शब्द सहायार्थ में वर्त्तमान है । सह वसतोऽस्यां सूर्याचन्द्रमसाविति, अमावस्या । अमावास्या ॥ ९५२ ॥

९५३–छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२३ ॥

निष्टर्क्य, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय, उच्छिष्य, मर्य, स्तर्या ध्वर्य, खन्य, खान्य देवयज्या, आपृच्छ्य, प्रतिषीव्य, ब्रह्मवाद्य, भाव्य स्ताव्य और उपचाय्यपृड ये निपातन हैं । निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः । यहां निस् पूर्वक कृती धातु से ण्यत् प्रत्यय धातु का आद्यन्त विपर्यय और निस के स् को ष् आदेश निपातन है । स्पर्द्धन्ते वा उदेवहूय । यहां देवपूर्वक ह्वेञ् वा हु धातु से क्यप् प्रत्यय धातु के उकार को दीर्घ और । तुक् का अभाव निपातन है । प्रणीयः । उन्नीयः । प्र और उद् इन से परे नी धातु से क्यप् । उच्छिष्यः । उत्पूर्वकशिष से क्यप् । मर्यः । मृङ से यत् । स्तर्या । स्तृञ् से

यत् और स्त्री लिङ्ग में निपातन है । ध्वर्यः । ध्वृ से यत् । खन्यः । खान्यः । खन से यत् और ण्यत् । शुन्धध्वं दैव्याय कर्म्मणे देवयज्यायै । देवपूर्वक यज धातु से यत् प्रत्यय और स्त्रीलिङ्ग में निपातन है । आपृच्छ्यं धरुणंवाज्यर्षति । आङ्पूर्वक प्रच्छ धातु से क्यप् । प्रतिषीव्यः । प्रतिपूर्वक सीव्यति से क्यप् और षत्व निपातन है । ब्रह्मवाद्यम । ब्रह्मन् उपपद वद धातु से ण्यत् । भाव्यः । स्ताव्यः । भू और ष्टुञ् से ण्यत् । उपचाय्यपृडम् । यहां उपपूर्वक चिञ् धातु से पृड उत्तर पद के परे ण्यत् प्रत्यय और आयादेश निपातन है। हिरण्यइतिच महाभाष्य ३।१।१२३ हिरण्य अर्थ में उपचाय्यपृड हो।। हिरण्यसे अन्यत्र उपचेयपृडम्। होगा। 'निष्टर्क्ये व्यत्ययं विद्यान्निसः षत्वं निपातनात् ॥ ण्यदायादेश इत्येतावुपचाय्ये निपातितौ ॥१॥ण्यदेकस्माच्चतुर्भ्यः क्यप् चतुर्भ्यश्च यतो विधिः ॥ ण्यदेकस्माद्यशब्दश्च द्वौ क्यपौ ण्यद्विधिश्चतुः ॥ २ ॥
महाभाष्य ३ । १ । १२३ ॥ इन कारिकाओं का अर्थ निष्टर्क्यादि प्रयोगों की व्याख्या में आगया है ॥ ९५३ ॥

९५४—ऋहलोर्ण्यत् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२४ ॥

ऋवर्णान्त और हलन्तों से ण्यत् प्रत्यय हो । कार्य्यम् । हार्य्यम् । वाक्यम् पाक्यम् ॥ ९५४ ॥

९५५—वा०—पाणौ सृजेर्ण्यद्विधिः ॥

पाणि शब्द उपपद हो तो सृज धातु से ण्यत् प्रत्यय का विधान करने योग्य है पाणिभ्यां सृज्यत इति पाणिसर्ग्या रज्जुः । यहां (९७ ३) से कुत्व हो गया ॥ ९५५ ॥

९५६—वा०—समवपूर्वाच्च ॥

समवपूर्व भी सृज धातु से ण्यत् प्रतपय विधान करने योग्य है । समवसर्ग्या रज्जुः ॥ ९५६ ॥

९५७—वा०—लपिदभिभ्यां * चेति वक्तव्यम् ॥

लप और दभ धातु से भी ण्यत् प्रत्यय कहने योग्य है । अपलाप्यम् । अपदाम्यम् ॥ ९५७ ॥

९५८—न क्वादेः ॥ ७। ३ । ५९ ॥

* धातुपाठ में अपठित भी दभ धातु है तथापि वार्त्तिकबल से स्वीकार करना चाहिये ॥

कवर्ग जिस के आदि में है उस धातु के चकार और जकार को कुत्व न हो। कूज्यमनेन। खर्ज्यम्। गर्ज्यम्। कूजः। खर्जः। गर्जः ॥ ९५८ ॥

९५९-अजिव्रज्योश्च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६० ॥

अज और व्रज धातु को कुत्व न हो। परिव्राज्यम्। परिव्राजः। समाजः। उदाजः यहां घञ् प्रत्यय है। ण्यत् प्रत्य की विवक्षा में (१५५) सूत्र से वीभाव होने से अज धातु का ण्यत् प्रत्ययान्त प्रयोग नहीं होता ॥ ९५९ ॥

९६०-वञ्चेर्गतौ ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६३ ॥

गति अर्थ में वर्त्तमान वञ्च धातु को कवर्गादेश न हो। वञ्चितुं गन्तुं योग्यं वञ्च्यम्। गतिग्रहण से यहां न हुआ। वङ्क्यम्। काष्ठम्। काष्ठटेढ़ा है ॥ ९६० ॥

९६१-ण्य आवश्यके ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६५ ॥

आवश्यक अर्थ में ण्य प्रत्यय परे हो तो कवर्गादेश न हो। अवश्यपाच्यम्। अवश्यवाच्यम्। आवश्यक से अन्यत्र। पाक्यम्। वाक्यम् ॥ ९६१ ॥

९६२-यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६६ ॥

ण्य प्रत्यय परे हो तो यज, याच, रुच, प्रवच, ऋच इन धातुओं को कुत्वादेश न हो। याज्यम्। याच्यम्। रोच्यम्। प्रवाच्यम्। यह पाठविशेष का नाम है। अर्च्यम्। यद्यपि ऋदुपधत्व मान कर ऋच धातु से क्यप् प्रत्यय भी प्राप्त है तथापि ण्य के परे जो इस को कुत्व का निषेध किया है इस ज्ञापन से ण्यत् प्रत्यय इस से होगा॥ ९६२॥

९६३-वा०-ण्यप्रतिषेधे त्यजेरुपसंख्यानम् ॥

ण्य के परे कुत्व प्रतिषेध में त्यज धातु का भी उपसंख्यान करना चाहिये। त्यक्तुं योग्यं त्याज्यम् ॥ ९६३ ॥

९६४-भोज्यं भक्ष्ये ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६९ ॥

भक्ष्य अर्थ में भोज्य यह निपातन हो। भोज्यमभ्यवहार्यमितिवक्तव्यम्। महाभाष्य ७ । ३ । ६९ ॥ अभ्यवहार्यमात्र अर्थ होतो भोज्य यह निपातन हो। भोज्यः सूपः। भोज्या यवागूः। अभ्यवहार से अन्यत्र। भोग्यः कम्बलः ॥ ९६४ ॥

९६५-ओरावश्यके ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२५ ॥

आवश्यक अर्थ द्योत्य होतो उवर्णान्त धातु से ण्यत् प्रत्यय हो। लाव्यम्। पाव्यम्। आवश्यक से अन्यत्र। लव्यम्। पव्यम् ॥ ९६५ ॥

९६६—आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२६ ॥

आङ् पूर्वक षुञ् यु डुवप् रप् लप् त्रपि और चम् धातु से ण्यत् प्रत्यय हो । यह यत् प्रत्यय का अपवाद है । आसाव्यम् । याव्यम् । वाप्यम् । राप्यम् । लाप्यम् । त्राप्यम् । आचाम्यम् । ९६६ ॥

९६७—आनाय्योऽनित्ये ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२७ ॥

अनित्य अर्थ अभिधेय होतो आङ्पूर्वक णीञ् धातु से आनाय्य यह निपातन है । आनाय्यो नित्य इति चेद्दक्षिणाग्नौ कृतं भवेत् । एकयोनौ तु तं विद्यादानेयो ह्यन्यथा भवेत् । महाभाष्य ३ । १ । १२७ । आनाय्यो दक्षिणाग्निः । यहां ण्यत् प्रत्यय और आयादेश निपातन है । जो गार्हपत्य अग्नि से लिया जाता और आहवनीय अग्नि के साथ एक योनि को प्राप्त है उस विशेषदक्षिणाग्नि में यह शब्द रूढ़ि है । और जो वैश्य कुल से लिया जाता है उस में आनेय होगा ॥ ९६७ ॥

९६८—प्रणाय्योऽसंमतौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२८ ॥

असंमति अभिधेय होतो प्रणाय्य यह निपातन हो । संमति (भलीभातिमानना वा आदर) जिस में नहो वह असंमति कहावे । प्रणाय्यश्चोरः । प्रणाय्योऽप्रियः । प्रणाय्योऽन्तेवासी । यह विरक्त है । अर्थात् अपनी अनिच्छा से संसार से वैराग्य को प्राप्त है ॥ ९६८ ॥

९६९—पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२९ ॥

मान, हविष्, निवास, सामिधेनी ये अभिधेय हों तो यथाक्रम से पाय्य, सान्नाय्य, निकाय्य, धाय्या, ये निपातन हैं । मीयतेऽनेनेति पाय्यं मानम् । यहां ण्यत् प्रत्यय धातु के आदि म को प आदेश० । अन्यत्र । मेयम् । सम्यङ्नीयते होमार्थमग्निंप्रतीति सान्नाय्यम् । हविः । ण्यत् आयादेश और सम् के अकार को दीर्घ निपातन० । अन्यत्र सन्नेयम् । निचीयते धान्यादिकमत्रेति निकायः । निवासः । आय् और धातु के आदि को कुत्व निपातन० । अन्यत्र । चेयम् । धीयतेऽनया समिदिति, धाय्या । सामिधेनी ऋक् । ण्यत् प्रत्यय निपातन० । सामिधेनी शब्द ऋग्विशेष का वाचक है । धाय्या शंसत्याग्निर्नेता त्वं सोमक्रतुभिः ॥ ९६९ ॥

९७०—क्रतौ कुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३० ॥

क्रतु अभिधेय हो तो कुण्डपाय्य और संचाय्य निपातन हैं। कुण्डेन पीयतेऽस्मिन् साम इति कुण्डपाय्यः। क्रतुः। यहां तृतीयान्त कुण्ड शब्द पूर्वक पिबति से यत् प्रत्यय और युगागम निपातन है। क्रतु ग्रहण से यहां न हुआ। कुण्डपानम्। तथा सञ्चेयः॥ ९७० ॥

९७१-अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः ॥ अ० ॥३।१।१३१॥

अग्नि अभिधेय होतो परिचाय्य उपचाय्य और समूह्य से निपातन हों। परिचेतुं योग्यः, परिचाय्यः। उपचाय्यः। परि उपपूर्वक चिञ् धातु से ण्यत् और आयादेश निपातन०। समूह्यं चिन्वीत पशुकामः। सम् पूर्वक वह धातु से ण्यत् प्रत्यय धातु को संप्रसारण और दीर्घत्व निपातन०। अग्नि से अन्यत्र। परिचेयम्। उपचेयम्। संवाह्यम् ॥ ९७१ ॥

९७२-चित्याग्निचित्ये च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३२ ॥

अग्नि अभिधेय हो तो चित्य और अग्निचित्या निपातन हों। चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः। अग्निचयनमेव, अग्निचित्या। यहां भाव में य प्रत्यय अन्तोदात्तत्व और तुगागम निपातन०। अग्निचित्येत्यन्तोदात्तत्वं भावे। महाभाष्य ३। १।१३२॥९७२॥

९७३-भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६८ ॥

भव्य आदि कृत्य प्रत्ययान्त कर्त्ता में विकल्प करके निपातन हैं। द्वितीय पक्ष में यथाप्राप्त भाव कर्म में होंगे। भवत्यसौ भव्यः। भव्यमनेन वा। गेयोमाणवकः साम्नाम् गेयानि माणवकेन सामानि। प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य। प्रवचनीयो वा गुरुणा स्वाध्यायः।उपस्थानीयोऽन्तेवासी गुरोः। उपस्थानीयः शिष्येण वा गुरुः। जायतेऽसौ जन्यः जन्यमनेन वा। आप्लवते, आप्लाव्यः आप्लाव्यमनेन वा। आपतत्यसावापात्यः।आपात्यमनेन वा ॥ ९७३ ॥

इति कृत्यप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ कृदन्तप्रक्रियारम्भः ॥

१७४—ण्वुल्तृचौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३३ ॥

सब धातुओं से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय हों । इस प्रकरण में सर्वत्र (३) सूत्र से कृत्संज्ञा होती और (९१३) सूत्र से कृत् संज्ञक प्रत्यय सामान्य से कर्त्ता में होते हैं । करोतीति, कारकः । कर्त्ता । हारकः । हर्त्ता । स्त्रीलिङ्ग में कारिका । कर्त्री । हारिका । हर्त्री । कुटिता यहां (३४५) सूत्र से ङित्व मान कर गुणादेश न हुआ । कोटकः । विजिता (४२८) सूत्र से इट्० । घातकः यहां (५०२) सूत्र से तकारादेश० । दायकः । शमकः । दमकः । रन्धकः । जम्भकः । यहां (१६५) सूत्र से नम् हो० । रधिता (४०८) से नुम् निषे० । एषिता । एष्टा । सहिता । सोढा यहां (२१२) सूत्र से इट् । [illegible]—भावयिता । [illegible]—बुभूषिता । यङन्त—पापचकः । यहां अल्लोप के स्थानिवद्भाव से वृद्धि [illegible] । यङ्लुगन्त-पापाचकः ॥ १७४ ॥

१७५—नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३४ ॥

नन्द्यादिक, ग्रह्यादिक और पचादिक धातुओं से यथाक्रम से ल्यु, णिनि और अच् प्रत्यय हों । अर्थात् नन्द्यादिकों से ल्यु, ग्रह्यादिकों से णिनि और पचादिकों से अच् होता है । नन्दयतीति, नन्दनः । जनानर्दयतीति जनार्दनः । मधुसूदनः । विशेषेण भीषयतीति विभीषणः । वामनः । मदनः । दूषणः । लवणः । यहां गणपाठक्रम से निपातन से णत्वादेश है । ग्राही । स्थायी । मन्त्री । विशयी । यहां वृद्धि का अभाव निपातन है । विषयी । यहां षत्व निपातन है । परिभावी । परिभवी । यहां विकल्प करके वृद्धि का अभाव है । पचतीति पचः । अजपि सर्वधातुभ्यः । महाभाष्य ३ । १ । १३४ । सब धातुओं से अच् प्रत्यय कहना चाहिये । भवतीति भवः । सवः । यह अच् प्रत्यय धातु मात्र से इष्ट है इस से पचादिगण का कथन शब्दों के साथ अनुबन्ध लगाने और बाधकों के बाधने के लिये है जैसे । नदट् । चोरट् । देवट् इत्यादि टित् माने हैं । नदः चोरः । देवः । स्त्रीलिङ्ग में नदी । चोरी । देवी । यहां इगुपधत्व मान कर दिवु धातु से क प्रत्यय प्राप्त था । उस को बाध कर अच् प्रत्यय हुआ । जारभरा । श्वपचा । इन में अगला अण् प्राप्त था । चेक्रियः । लोलुवः । पोपुवः । मरीमृजः ॥ १७५ ॥

१७६—इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३५ ॥

इक् जिस के उपधा में हो और ज्ञा प्री तथा कृ धातु से क प्रत्यय हो । बुधः । विक्षिपः ।

। ज्ञः । प्रीणातीति प्रियः । किरतीति किरः ॥ ९७६ ॥

९७७–आतश्चोपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३६ ।

उपसर्ग पूर्व हो तो आदन्त धातु से क प्रत्यय हो । आगे ण प्रत्यय कहेंगे उस का यह अपवाद है । प्रस्थः । प्रवः ॥ ९७७ ॥

९७८–पाघ्राध्माधेट्दृशः शः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३७ ॥

पा घ्रा ध्मा धेट् और दृश धातु से श प्रत्यय हो पिबतीति, पिबः । उर्ध्वंपिबति, उत्पिबः । विपिबः । जिघ्रः । धमः । धयः । विधयः । पश्यतीति पश्यः ॥ ९७८ ॥

९७९–वा०–जिघ्रः संज्ञायां प्रतिषेधः ॥

व्याजिघ्रतीति व्याघ्रः ॥ ९७९ ॥

९८०–अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसाति साहिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३८ ॥

उपसर्गरहित लिम्प विन्द धारि पारि वेदि उदेजि चेति साति साहि इन धातुओं से श प्रत्यय हो । लिम्पतीति । लिम्पः । विन्दतीति, विन्दः । धारयतीति, धारयः । पारयतीति, पारयः । वेदयतीति, वेदयः । उदेजयतीति, उदेजयः । चेतयतीति,चेतयः । साति सुखार्थक सौत्र धातु है । सातयतीति, सातयः । साहयतीति, साहयः । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रलिपः ॥ ९८० ॥

९८१–वा०–अनुपसर्गान्नौ लिम्पेः ॥

(अनुपसर्गात्०) इस विषय में निपूर्वक लिम्प धातु से श प्रत्यय कहना चाहिये निलिम्पा नाम देवाः ॥ ९८१ ॥

९८२–वा०–गवादिषु विन्देः संज्ञायाम् ॥

गवादिक उपपद हों तो विद्लृ धातु से श प्रत्यय संज्ञा में कहना चाहिये । गोविन्दः । अरविन्दः । ॥ ९८२ ॥

९८३–ददातिदधात्योर्विभाषा ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३९ ॥

उपसर्गरहित डुदाञ् और डुधाञ् धातु से श प्रत्यय विकल्प करके हो । यह (९८६) सूत्र का अपवाद है । ददातीति, ददः । दायः । दधः । धायः । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रददातीति, प्रदः । प्रधः । यहां (९७६) सूत्र से क प्रत्यय हो गया ॥ ९८३ ॥

९८४–ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४० ॥

उपसर्गरहित ज्वल आदि कस पर्यन्त धातुओं से विकल्प करके ण प्रत्यय हो यहां इति शब्द आदि शब्द के लिये है । ज्वलतीति, ज्वालः । ज्वलः । चालः । चलः । दूसरे पक्ष में अच् प्रत्यय हो जाता है । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रज्वलः ॥ ९८४ ॥

९८५–वा०–तनोतेरुपसंख्यानम् ॥

तनु धातु से ण प्रत्यय का उपसंख्यान चाहिये । अवतनोतीत्यवतानः ॥ ९८५ ॥

९८६–श्याद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४१ ॥

श्यैङ्, आकारान्त, व्यध, आस्रु, संस्रु, अतीण, अवसा, अवहृ, लिह, श्लिष, श्वस इन धातुओं से ण प्रत्यय हो । आकारान्त ग्रहण से श्यैङ् और अवपूर्वक सा धातु से ण हो जाता तथापि इन का अलग ग्रहण सोपसर्ग लक्षण क प्रत्यय के बाधने के लिये है । अवश्यायः । प्रतिश्यायः । दायः । धायः । शायः । व्याधः । आस्रावः । संस्रावः । अत्यायः । अवसायः । अवहारः । लेहः । श्लेषः । श्वासः ॥ ९८६ ॥

९८७—दुन्योरनुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४२ ॥

उपसर्ग पूर्व न हो तो दु और नी धातु से ण प्रत्यय हो । दुनोतीति, दावः । नयतीति, नायः । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रदवः । प्रणयः ॥ ९८७ ॥

९८८–विभाषा ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४३ ॥

ग्रह धातु से विकल्प करके ण प्रत्यय हो । यह अच् का अपवाद है गृह्णातीति ग्राहः । ग्रहः । यह व्यवस्थित विभाषा है । इस से जलचर में 'ग्राह, नित्य होता और ज्योतिः में 'ग्रह, यही होता है * ॥ ९८८ ॥

---

* इस सूत्र के विवरण में जो काशिकाकार ने (भवतेश्चेति वक्तव्यम्) यह वार्त्तिक पढ़ा है सो महाभाष्य कार के मत से विरुद्ध है महाभाष्य में उस का मूल नहीं है । इस से प्राप्त्यर्थक भू धातु से अच् प्रत्ययान्त भाव और सत्तार्थक से भव समझ लेना चाहिये । भाव पदार्थों का नाम और भव महादेव और संसार आदि का नाम है ॥

९८९—गेहे कः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४४ ॥

गेह (घर) कर्त्ता हो तो ग्रह धातु से क प्रत्यय हो । गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम् । गृह्णन्ति पदार्थानिति, गृहाणि वेश्मानि । । तात्स्थ्योपाधि से स्त्री जनों को भी गृह कहते हैं । गृहाः । दाराः ॥ ९८८ ॥

९९०—शिल्पिनि ष्वुन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४५ ॥

शिल्पी कर्त्ता हो तो धातु से ष्वुन् प्रत्यय हो । नृतिखनिरञ्जिभ्य इति वक्तव्यम् । महाभाष्य ३ । १ । १४५ । शिल्प (क्रिया करने की चतुराई) जिस में विद्यमान है वह शिल्पी कहावे ॥ नृत्यतीति, नर्त्तकः । खनकः । नर्त्तकी । खनकी । रञ्जकः । रञ्जकी * ॥ ९९० ॥

९९१—गस्थकन ॥ अ ॥ ३ । १ । १४६ ॥

शिल्पी कर्त्ता हो तो गै धातु से थकन् प्रत्यय हो । गायतीति, गाथकः । स्त्री लिङ्ग में । गाथिका ॥ ९९१ ॥

९९२—ण्युट् च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४७ ॥

शिल्पी कर्त्ता में गै धातु से ण्युट प्रत्यय हो । गायतीति, गायनः । स्त्री गायनी ॥९९२॥

९९३—हश्च व्रीहिकालयोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४८ ॥

व्रीहि और काल कर्त्ता हों तो ओहाक् ओहाङ् धातु से ण्युट् प्रत्यय हो । जहाति जलं जिहीते प्राप्नोति, वा हायनः । व्रीहिः । जहाति भावान् जिहीते प्राप्नोति, वा हायनः वत्सरः ॥ ९९३ ॥

---

* रजकः, रजकी । यहां शिल्पी कर्त्ता में उणादिस्थ क्वुन् प्रत्यय होता है । इस विषय में जो कौमुदीकार ने लिखा कि भाष्यमत से नृति खनि इन्हीं से ष्वुन् और रञ्जि से क्वुन् होता है । यह उनका कथन अयुक्त है क्योंकि जो रञ्जि से ष्वुन् नहीं होता है तो महाभाष्य कार ने रञ्जि का परिगणन क्यों किया महाभाष्य के परिगणन से नृति खनि और रञ्जि इन तीनों से ष्वुन् प्रत्यय होगा । इस विषय में काशिकाकार ने ष्वुन् प्रत्यय का विधान करके भी नकार का लोप माना यह उन का मानना असङ्गत है क्योंकि नलोप तो कित् ङित् के परे होता है । और महाभाष्य कार भी रजक शब्द उणादिस्थ क्वुन् प्रत्यय से मानते हैं । रजकरजनरजःसु कित्वात् सिद्धम् । कित एवैते औणादिकाः । महाभाष्य ६ । ४ । २४ ॥

९९४-प्रसृल्वः समभिहारे वुन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४९

समभिहार (वार २ होने) अर्थ में प्रु सृ लू इन धातुओं से वुन् प्रत्यय हो। प्रुसृल्वः साधुकारिणि वुन्विधानम्। महाभाष्य ३ । १ । १४९ ॥ साधुकारी अर्थात् अच्छे प्रकार क्रिया करने वाला कर्त्ता अभिधेय हो तो प्रुसृलू इन से वुन् का विधान करना चाहिये प्रवत इति प्रवकः । सरकः । लवकः । साधुकारित्व अर्थ में वुन्विधान से जहां एक वार भी अच्छे प्रकार काम करना हो वहां वुन् प्रत्यय हो और वार२ भी काम का अच्छा करना न हो वहां नहो॥ ९९४ ॥

९९५-आशिषि च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १५० ॥

आशीर्वाद अर्थ गम्यमान हो तो धातु से वुन् प्रत्यय हो । जीव्तात् जीवकः । नन्दतात् नन्दकः ॥ ९९५ ॥

९९६-कर्मण्यण् * ॥ अ० ॥ ३ । २ । १ ॥

कर्म उपपद हो तो धातु से अण् प्रत्यय हो । कर्म तीन प्रकार का है अर्थात् निर्वर्त्य, विकार्य्य, प्राप्य नं० । निर्वर्त्य, कुम्भकारः । विकार्य्य, काण्डलावः । शरलावः। प्राप्य, वेदाध्यायः । चर्चापारः । शमनीपारः।सूत्रपाठः । यहां सर्वत्र उपपद समास होता है । आदित्यं पश्यति । हिमवन्तं शृणोति । । ग्रामं गच्छति। इत्यादिकों में अनभिधान से नहीं होता अर्थात् । लोक में अर्थप्रतिपादन करने के लिये आदित्य दर्श आदि शब्दों का प्रयोग नहीं करते हैं ॥ ९९६ ॥

९९७-वा०-अन्नादायेति च कृतां व्यत्ययश्छन्दसि ॥

* जिस का उपादान कारण विद्यमान न हो वह निर्वर्त्य कहाता है जैसे संयोगं करोति । अथवा जिस का विद्यमान भी उपादन कारण न विवक्षित हो वह भी निर्वर्त्य कहाता है जैसे घटं करोति । जब उपादान कारण ही परिणामी माना जाय तो निर्वर्त्य कर्म्म भी विकारी हो जाता है जैसे मृदं घटं करोति और जब भेदविवक्षा है तब वही निर्वर्त्य कर्म्म रहता है जैसे मृदा घटं करोति । विकार्य्य कर्म्म दो प्रकार का है । अर्थात् एक तो प्रकृति के विनाश से जो कुछ विकार उत्पन्न हो जैसे काष्ठादि भस्म और दूसरा गुणान्तर से जो उत्पन्न हो जैसे सुवर्णादि विकार कुण्डलादि ।जिस में प्रत्यक्ष वा अनुमान से क्रियाकृत विशेष न पाया जाय अर्थात् प्रथम से न हो वह प्राप्य कर्म्म कहाता है ॥

वेदविषय में अन्नादाय इत्यादिक प्रयोगों के लिये कृतसंज्ञक प्रत्ययों का व्यत्यय देखना चाहिये । अत्तीति अदः । अन्नस्यादः अन्नादः तस्मै अन्नादाय । अन्नादाय आ-दायान्नपतये य आहुतिमन्नादां हुत्वा (अन्नमत्ति) इस विग्रह में कर्मोपपद अद धातु से अण् की प्राप्ति में पचाद्यच् का विधान है ॥ ९९७ ॥

९९८—वा०—शीलिकामिभक्ष्याचारिभ्यो णः पूर्वपद प्रकृतिस्वरत्वञ्च ॥

शीलि, कामि, भक्षि आङ्पूर्वक चर इन धातुओं से ण प्रत्यय और पूर्वपद को प्रकृतिस्वर कहना चाहिये । मांसशीलः । मांसशीला । मांसकामः । मांसकामा । मांस-भक्षः । मांसभक्षा । कल्याणाचारः । कल्याणाचारा ॥ ९९८ ॥

९९९—वा०—ईक्षिक्षमिभ्यां च ॥

सुखप्रतीक्षः । सुखप्रतीक्षा । कल्याणक्षमः । कल्याणक्षमा ॥ ९९९ ॥

१०००—ह्वावामश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । २ ॥

कर्म उपपद हो तो ह्वेञ् वेञ् और माङ् धातु से अण् प्रत्यय हो । स्वर्गह्वायः । तन्तुवायः । धान्यमायः ॥ १००० ॥

१००१—आतोऽनुपसर्गे कः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३॥

उपसर्ग पूर्व न हो तो आकारान्त धातुओं से क प्रत्यय हो । यह अण् का अपवाद है । गोदः । कम्बलदः । पार्ष्णित्रम् । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । गोसंदायः ॥ १००१ ॥

१००२—सुपि स्थः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४ ।

सुबन्त उपपद हो तो स्था धातु से क प्रत्यय हो* । कूटस्थः । समस्थः । विषमस्थः । इस सूत्र में महाभाष्यकारने योगविभाग भी माना है जैसे (सुपि) सुबन्त उपपद हो तो अकारान्त धातु से क प्रत्यय हो । कच्छेनपिबतीति कच्छपः । कटाहेनपिबतीति, कटाहपः । द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः । पादपः (स्थः) सुबन्त उपपद होतो स्था धातु

---

* स्था धातु से भी कर्त्ता में क प्रत्यय इष्ट होतो इस से पृथक् क विधान न करते इस लिये पृथक् विधान सामर्थ्य से स्था से भाव में क होगा परन्तु यह भावस्थ क प्रत्यय कर्ता वाले क प्रत्यय की बाधा नहीं करता क्योंकि (स्थः) इस अंश में भाव का प्रत्यक्ष ग्रहण नहीं है ॥

से क प्रत्यय हो। आखूनामुत्थानमाखूत्थः। शलभोत्थः। सुपि, इस अंश में कर्त्ता में क प्रत्यय होगा (स्थः) भाव में होने के लिये है। अब अगले सूत्रों में (कर्मणि, सुपि) इन दोनोंपदों की अनुवृत्ति है अर्थात् यथायोग्यता से दोनों उपस्थित होते हैं॥ १००२॥

१००३—तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ॥ अ० ॥३।२।५॥

तुन्द और शोक कर्म उपपद हों तो परिपूर्वक मृज और अपपूर्वक नुद धातु से क प्रत्यय हो। आलस्यसुखाहरणयोः। महाभाष्य ३। २। ५ (तुन्दशोकयोः०) इस विषय में आलस्य, सुखाहरण और कहना चाहिये अर्थात् आलस्य गम्यमान हो और सुखोत्पत्ति अर्थ होतो उक्त धातुओं से क प्रत्यय हो। तुन्दं परिमार्ष्टि, तुन्दपरिमृजोलस आस्ते। अन्यत्र। तुन्दपरिमार्जः। शोकापनुदः पुत्रोजातः। अन्यत्र जो संसार की अनित्यता आदि दिखा कर शोकमात्र की निवृत्ति करता किन्तु सुख नहीं उत्पन्न करता वह शोकापनोद होगा॥ १००३॥

१००४—वा०—कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम्॥

मूलानि विभुजति, मूलविभुजो रथः। नखानि मुञ्चन्ति, नखमुचानि धनूंषि। काकगुहास्तिलाः। सरसिरुहं कुमुदम्॥ १००४

१००५—प्रे दाज्ञः॥ अ०॥ ३। २। ६॥

कर्म उपपद हो तो प्रपूर्वक दा और ज्ञा धातु से क प्रत्यय हो। धनं प्रददाति, धनप्रदः। शास्त्रप्रज्ञः। पथिप्रज्ञः। प्रमात्र से अन्यत्र। धनसंप्रदायः॥ १००५॥

१००६—समि ख्यः॥ अ०॥ ३। २। ७॥

कर्म उपपद हो तो सम्पूर्वक ख्या धातु से क प्रत्यय हो। शास्त्रसंख्यः। गोसंख्यः॥ १००६॥

१००७—गापोष्टक्॥ अ०॥ ३। २। ८॥

कर्म उपपद होतो उपसर्ग रहित गा, पा धातुओं से टक् प्रत्यय हो। सामगायतीति सामगः। स्त्री सामगी। सुराशीध्वोः पिबतेः। महाभाष्य ३। २। ८। सुरापः सुरापा। शीधुपी। इन से अन्यत्र। क्षीरपा ब्राह्मणी। पिबति से अन्यत्र सामसंगायः॥ ॥ १००७॥

१००८—वा०—बहुलं तणि॥

तण् (संज्ञा, छन्दः) विषय में पिबति से बहुल करके टक् प्रत्यय हो। या ब्राह्मणी सुरापी भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति या ब्राह्मणी सुरापा भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति ॥ १००८ ॥

१००९–हरतेरनुद्यमनेऽच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९ ॥

कर्म उपपद हो तो अनुद्यमन अर्थ में वर्त्तमान हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो। उद्यमन उद्यम को कहते हैं उस से अन्य अनुद्यमन कहाता है। अंशं हरति, अंशहरः। भागहरः। रिक्थहरः। अनुद्यमन ग्रहण से यहां न हुआ। भारहारः ॥ १००९ ॥

१०१०–वा०–अच्प्रकरणे शक्तिलाङ्गलाङ्कुशयष्टितोमरघटघटीधनुष्षुग्रहेरुपसंख्यानम् ॥

अच् प्रकरण में शक्ति, लाङ्गल, अंकुश, यष्टि, तोमर, घट, घटी, धनुष् ये उपपद हों तो ग्रह धातु से अच् प्रत्यय का उपसंख्यान करना चाहिये। शक्तिग्रहः। लाङ्गलग्रहः। अंकुशग्रहः। यष्टिग्रहः। तोमरग्रहः। घटग्रहः। घटीग्रहः। धनुर्ग्रहः ॥ १०१० ॥

१०११—वा०—सूत्रे च धार्य्येऽर्थे ॥

तथा सूत्र उपपद हो तो धारणार्थक ग्रह धातु से उपसंख्यान करना चाहिये। सूत्रग्रहः। सूत्र को धारण करता है। धार्यर्थ से अन्यत्र अर्थात् जो सूत्र को ग्रहण करता है वह सूत्रग्राह कहाता है ॥ १०११ ॥

१०१२–वयसि च ॥ अ० ॥ ३ । २। १० ॥

वयस् यौवनादिभाव गम्यमान हो तो कर्मोपपद हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो। यह उद्यमन के लिये हैं। कवचहरः कुमारः। शकटहरः वृषभः ॥ १०१२ ॥

१०१३–आङिताच्छील्ये ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११ ॥

ताच्छील्य (तत्स्वभावता) अर्थ गम्यमान हो और कर्म उपपद हो तो आङ् पूर्वक हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो। पुष्पाणि आहरति तच्छीलः। पुष्पाहरः। फलाहरः। स्वभाव से निष्प्रयोजन भी पुष्प और फलों को लेता है। ताच्छील्य से अन्यत्र भारमाहरतीति, भाराहारः ॥ १०१३ ॥

१०१४—अर्हः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२ ॥

कर्म्म उपपद हो तो अर्ह धातु से अच् प्रत्यय हो। वेदार्हः। स्त्री वेदार्हा ॥ १०१४ ॥

१०१५-स्तम्बकर्णयो रमिजपोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३ ॥

स्तम्ब और कर्ण ये सुबन्त यथासंख्य उपपद हों तो रम और जप धातु से अच् प्रत्यय हो । रम अकर्म्मक और जप शब्दकर्म्मक है इस से यहां कर्म्म शब्द की अनुवृत्ति नहीं होती है । स्तम्बकर्णयोर्हस्तिसूचकयोः । महाभाष्य ३ । २ । १३ (स्तम्बकर्णयोः) यहां हस्तिन् , सूचक और कहना चाहिये अर्थात् हस्ती सूचक अभिधेय हों तो उक्त अच् प्रत्यय हो । स्तम्बे रमते, स्तम्बेरमः । हस्ती । कर्णेजपति । कर्णेजपः सूचकः । हस्ति सूचक से अन्यत्र स्तम्बेरन्ता । कर्णेजपिता मशकः ॥ १०१५ ॥

१०१६-शमि धातोः संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४ ॥

शम् उपपद हो तो संज्ञाविषय में धातु मात्र से अच् प्रत्यय हो । शंकर । शम्भवः । शंवदः । यहां धातुग्रहण हेत्वादि अर्थों में जो ट प्रत्यय का विधान करेंगे उस के बाधने के लिये है । अर्थात् उन अर्थों में भी शम्पूर्वक कृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो । शंकरा नाम परिव्राजिकाशंकरा नाम शकुनिका तच्छीला च ॥ १०१६ ॥

१०१७-अधिकरणे शेतेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५ ॥

सुबन्त उपपद हो तो अधिकरण में शीङ् धातु से अच् प्रत्यय हो । खे शेते,खशयः । गर्त्तशयः ॥ १०१७ ॥

१०१८-वा०-अधिकरणे शेतेः पार्श्वादिषूपसंख्यानम् ॥

(अधिकरणे शेतेः) यहां पार्श्वादि पूर्व हो तो भी उपसंख्यान करना चाहिये । पार्श्वाभ्यां शेते पार्श्वशयः । पृष्ठशयः । उदरशयः ॥ १०१८ ॥

१०१९-वा०-दिग्धसहपूर्वाच्च ॥

दिग्धसहपूर्वक भी शीङ् धातु से अच् प्रत्यय कहना चाहिये । दिग्धेन सह शेते, दिग्धसहशयः । यहां (दिग्धसह) इतना समुदाय पूर्व इष्ट किन्तु प्रत्येक शब्द पूर्व नहीं इष्ट है ॥ १०१९ ॥

१०२०-वा०उत्तानादिषु कर्त्तृषु ॥

कर्तृवाचक उत्तानादिक शब्द उपपद हों तो शीङ् धातु से अच् प्रत्यय हो । उत्तानःशेते उत्तानशयः । अवनतोमूर्द्धायस्य स, अवमूर्द्धा । अवमूर्द्धा शेते, अवमूर्द्धशयः ॥ १०२० ॥

१०२१-वा-गिरौ डश्छन्दसि

गिरि शब्द उपपद होतो वेदविषय में शीङ् धातु से ड प्रत्यय कहना चाहिये। गिरौ शेते, गिरिशः। लोक में गिरिश, यह शब्द (स्त्रैण०९८२)सूत्र से तद्धितविषय में होता है ॥ १०२१ ॥

१०२२-चरेष्टः। अ० ॥ ३ । २॥१६ ॥

अधिकरणवाची सुबन्त उपपद होतो चर धातु से ट प्रत्यय हो। खेचरतीति, खेचरः। खेचरी। निशाचरः। निशाचरी। कुरुचरः। कुरुचरी। मद्रचरः। मद्रचरी। दिवाचरः। दिवाचरी। अधिकरण ग्रहण से यहां न हुआ। कुरूँश्चरतीति। पञ्चालाँश्चरतीति * ॥ १०२२ ॥

१०२३-भिक्षासेनादायेषु च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७ ॥

भिक्षा सेना और आदाय शब्द उपपद होंतो चर धातु से ट प्रत्यय हो। भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः। सेनाचरः। आदाय यह ल्यबन्त है। आदाय चरतीति, आदायचरः। सहचरः यह तो पचादिगण में जो चरट् शब्द का पाठ है उस से बनेगा॥१०२३॥

१०२४-पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८ ॥

पुरस् अग्रतस् अग्रे ये उपपद होंतो सृ धातु से ट प्रत्यय हो। पुरस्सरति, पुरस्सरः। अग्रतस्सरः। अग्रम् अग्रेण अग्रे वा सरति अग्रेसरः। यहां अग्रे शब्द एकारान्त निपातन से है ॥ १०२४ ॥

१०२५-पूर्वे कर्त्तरि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १९ ॥

कर्त्तृवाचक पूर्व शब्द उपपद होतो सृ धातु से ट प्रत्यय हो। पूर्वः सरतीति, पूर्वसरः। कर्त्तृ से अन्यत्र पूर्व देशं सरतीति पूर्वसारः ॥ १०२५ ॥

१०२६-कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ॥ अ० ॥ ३ । २ । २० ॥

हेतु ताच्छील्य और आनुलोम्य अर्थ गम्यमान और कर्म उपपद होंतो कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो। हेतु (कारण)ताच्छील्य (तत्स्वभावता) आनुलोम्य (अनुकूलपन) हेतु, यशस्करी विद्या। शोककरी कन्या। दुःखकरं पापम्। ताच्छील्य, श्राद्धकरः। अर्थकरः। आनुलोम्य, वचनकरः। इन से अन्यत्र। कुम्भकारः। नगरकारः ॥ १०२३ ॥

* कुरु देश में भ्रमण करता है इस अर्थ की अपेक्षा में (कुरुषु चरति) यह विग्रह होता और अन्यदेश से कुरुदेश को प्राप्त होता है इस विवक्षा में (कुरूंश्चरति) यह विग्रह होता है ॥

१०२७—दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु ॥ अ० ॥ ३ । २ । २१ ॥

दिवादिक शब्द उपपद हों तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो। दिवा करोति, दिवाकरः। विभां करोति विभाकरः। निशाकरः। प्रभाकरः। भास्करः। यहां (सन्धि० २०१) सत्व०। कारकरः। अन्तकरः। अनन्तकरः। आदिकरः। बहुकरः। संख्या से पृथक् बहु शब्द का ग्रहण बहुत्व की अपेक्षा से है। नान्दीकरः। किंकरः। लिपि लिबि एकार्थक हैं। लिपिकरः। लिबिकरः। बलिकरः। संख्या, एककरः। द्विकरः। त्रिकरः। जङ्घाकरः। बाहुकरः। अहस्करः। यत्करः। तत्करः। चोर अभिधेय हो तो तस्करः। होगा (सन्धि० २४८) से सुडागम और तलोप०। धनुष्करः। अरुष्करः। यहां (सन्धि० १९८) से षत्व०। किंयत्तद्बहुषु कृञोऽज् विधानम्॥ महाभाष्य ३ । २ । २१। पूर्वोक्त शब्दों में किं यद् तद् और बहु उपपद हों तो अच् प्रत्यय का विधान करना चाहिये। अन्यत्र ट होगा। किंकरा। यत्करा। किंकरी। तस्करी आदि ङीबन्त तो पुंयोग से होते हैं॥ १०२७॥

१०२८—कर्मणि भृतौ ॥ अ० ॥ ३ । २ २२ ॥

कर्म वाचक कर्म शब्द उपपद हो तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो। भृति (वेतन) कर्माणि करोति कर्मकरः। भृत्यः। भृति से अन्यत्र। कर्मकारः॥ १०२८॥

१०२९—न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ॥ अ० ॥ ३ । २ । २३ ॥

शब्द, श्लोक, कलह, गाथा, वैर, चाटु, सूत्र, मंत्र, पद, ये उपपद हों तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय न हो। हेत्वादि अर्थों में प्राप्त टप्रत्यय का प्रतिषेध है। शब्दकारः। श्लोककारः। कलहकारः। गाथाकारः। वैरकारः। चाटुकारः। सूत्रकारः। मन्त्रकारः। पदकारः॥ १०२९॥

१०३०—स्तम्बशकृतोरिन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । २४ ॥

स्तम्ब और शकृत् उपपद हों तो कृञ् धातु से इन प्रत्यय हो। स्तम्बशकृतोर्व्रीहिवत्सयोः। महाभाष्य ३ । २ । २४ उक्त सूत्र में व्रीहि, वत्स और कहना चाहिये। स्तम्बकरिः। व्रीहिः। शकृत्करिः। वत्सः। अन्यत्र। स्तम्बकारः। शकृत्कारः॥ १०३०॥

१०३१—हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । २५ ॥

दृति और नाथ कर्म उपपद हों और पशु कर्त्ता हो तो हृञ् धातु से इन् प्रत्यय हो । दृतिं चर्ममयं पात्रं हरति दृतिहरिः । नाथं नासारज्जुं हरति, नाथहरिः । पशुः । अन्यत्र दृतिहारः । नाथहारः ॥ १०३१ ॥

१०३२—फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च । अ० ॥ ३ । २ । २६ ॥

फलेग्रहि और आत्मम्भरि ये दोनों शब्द निपातन हैं । फलानि गृह्णाति, फलेग्रहिः । यहां उपपद को एकार और धातु से इन् प्रत्यय निपातन है । भृञः कुक्ष्यात्मनोर्मुम् च । महाभाष्य० ३ । २ । २६ । भृञ् धातु से इन् प्रत्यय के विधान में कुक्षि और आत्मन् शब्द को मुम् आगम् निपातन होना चाहिये । कुक्षिंबिभर्त्ति, कुक्षिंभरिः । आत्मम्भरिश्चरति यूथमसेवमानः । यहां चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है इस से 'उदरम्भरिः, । यह भी निपातन जानना चाहिये ॥ १०३२ ॥

१०३३—छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । २७

कर्म उपपद हो तो वेदविषय में वन, षण, रक्ष, मथ इन धातुओं से इन् प्रत्यय हो । ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम् । गोसनिं यौ पथि रक्षी श्वानौ । हविर्मथीनाम् ॥ १०३३ ॥

१०३४—एजेः खश् ॥ अ० ॥ ३ । २ । २८ ॥

कर्म उपपद हो तो णिजन्त एजृ धातु से खश् प्रत्यय हो । जनान् एजयतीति । (जन—एजि—शप्—खश्=) यहां ॥ १०३४ ॥

१०३५—अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६७ ॥

खिदन्त उत्तर पद परे हो तो अरुष् द्विषत् और अव्ययभिन्न अजन्त शब्दों को मुमागम हो । मुम् होकर जन + म्—एज्—अ—अ=) जनमेजयः ॥ १०३५ ॥

१०३६—वा०—खश्प्रकरणे वातशुनीतिलशर्धेष्वजधेट्तुदजहातिभ्यः ॥

खश् प्रत्यय के प्रकरण में वात शुनी तिल शर्द्ध ये यथाक्रम उपपद हों तो अज धेट् तुद और जहाति से खश् प्रत्यय का विधान करना चाहिये । वातमजाः । मृगाः । शुनीं धयति, यहां ॥ १०३६ ॥

१०३७—खित्यनव्ययस्य ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६६ ॥

खिदन्त उत्तरपद परे हो तो अव्यय रहित पूर्वपद को ह्रस्व आदेश हो । शुनि-

धयः । तिलंतुदः । शर्द्धमपानशब्दं जहति—जाहयन्ति, शर्द्धञ्जहाः माषाः । यहां हा धातु अन्तर्भावित ण्यर्थ है ॥ १०३७ ॥

१०३८—नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । २९ ॥

नासिका और स्तन कर्म उपपद हों तो ध्मा और धेट् धातुओं से खश् प्रत्यय हो । स्तने धेटः । नासिकायां ध्मश्च धेटश्च । महाभाष्य ३ । २ । २९ । स्तनं धयति स्तनन्धयः । नासिकन्धमः । नासिकन्धयः । स्त्रीलिङ्ग में । स्तनन्धयी । यहां धेट् के टित् से (स्त्रैण्ता०३५) से ङीप् प्रत्यय हो जाता है । सूत्र में बह्वच् भी नासिका शब्द का पूर्वनिपात अल्पाच्पूर्वनिपात के अनित्यत्व के लिये है ॥ १०३८ ॥

१०३९—नाडीमुष्ट्योश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३० ॥

नाडी और मुष्टि कर्म उपपद हों तो ध्मा और धेट् धातु से खश् प्रत्यय हो । यहां मुष्टि, इस त्रिसंज्ञकान्त का अपूर्व निपात है इस से संख्यातानुदेश नहीं होता है । नाडीं धयति, नाडिन्धयः । नाडीं धमति, नाडिन्धमः । मुष्टिन्धयः । मुष्टिन्धमः चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है इस से वातन्धयः । वातन्धमः । पर्वतः । खारिंधयः खारिन्धमः । ये भी जानना चाहिये ॥ १०३९ ॥

१०४०—वा०—नासिकानाडीमुष्टिघटीखारीष्विति वक्तव्यम् ॥

घटिन्धयः । घटिन्धमः । खारिन्धयः । खारिन्धमः । नासिका, नाडी, मुष्टि शब्दों के विषय में उदाहरण दे चुके हैं ॥ १०४० ॥

१०४१—उदि कूले रुजिवहोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३१ ॥

कूलकर्म उपपद होतो उत्पूर्वक रुज और वह धातु से खश् प्रत्यय हो । कूलमुद्रुजतीति, कूलमुद्रुजोरथः । कूलमुद्वहः ॥१०४१ ॥

१०४२—वहाभ्रे लिहः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३२ ॥

वह और अभ्र कर्म उपपद हों तो लिह धातु से खश् प्रत्यय हो । वहं स्कन्धं लेढीति, (वह—मुम्—लिह—शप्—खश्=) वहंलिहः । गौः । यहां अदादित्व से शप् का लुक् हो जाता है ॥ १०४२ ।

१०४३—परिमाणे पचः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३३ ॥

परिमाणवाचक कर्म उपपद हो तो पच धातु से खश् प्रत्यय हो । प्रस्थंपचाति, प्रस्थं पचा स्थाली । द्रोणम्पचः । खारिम्पचः कटाहः ॥ १०४३ ॥

१०४४–मितनखे च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३४ ॥

मित और नख ये कर्म उपपद हों तो पच धातु से खश् प्रत्यय हो । मितम् पचति, मितम्पचा ब्राह्मणी । नखम्पचा यवागूः । यहां पच धातु ताप अर्थ वाचक है ॥१०४४॥

१०४५–विध्वरुषोस्तुदः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३५ ॥

विधु और अरुष् कर्म उपपद हों तो तुद धातु से खश् प्रत्यय हो । विधुन्तुदः । अरूंषि मर्मस्थलानि तुदति अरुन्तुदः । यहां मुम् किये पीछे अरुष् के सकार को संयोगान्तलोप हो जाता है ॥ १०४५ ॥

१०४६–असूर्य्यललाटयोर्दृशितपोः ॥ अ० ॥ ३ । २ ।३६॥

असूर्य्य और ललाट शब्द यथाक्रम से उपपद हों तो दृशि और तप धातु से खश् प्रत्यय हो । सूर्य्यं न पश्यन्ति, असूर्यंपश्याः राजदाराः । यहां नञ् का दृश से सम्बन्ध है इस से यह असमर्थ समास इसी (असूर्य्य) निर्देश से होता है । अनिवार्य्य सूर्य का भी दर्शन नहीं करने वालीं राजदारा हैं। ललाटंतपः सूर्यः ॥ १०४६ ॥

१०४७–उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३७॥

उग्रम्पश्य, इरम्मद और पाणिन्धम ये शब्द निपातन किये हैं । उग्र शब्द यहां क्रियाविशेषण है । उग्रं यथा स्यात्तथा पश्यति, उग्रम्पश्यः । इरया जलेन माद्यति, इरम्मदः । पाणयो ध्मायन्तेऽस्मिन्निति, पाणिन्धमः पन्थाः । जो अन्धकारयुक्त मार्ग होता है उस में सर्पादिक क्षुद्र जीवों की निवृत्ति के लिये कभी हाथ से ताली भी देते हैं ॥ १०४७ ॥

१०४८-प्रियवशे वदः खच् ॥ अ० ॥ ३ । २ ३८ ॥

प्रिय और वश ये कर्म उपपद हों तो धातु से खच् प्रत्यय हो । प्रियं वदतीति, प्रियंवदः । वशंवदः ॥ १०४८ ॥

१०४९-वा०–खच्प्रकरणे गमेः सुपि उपसंख्यानम् ॥

खच् के प्रकरण में सुबन्त पूर्वक गम धातु से भी उपसंख्यान करना चाहिये । मितंगमो हस्ती । मितंगमा हस्तिनी ॥ १०४९ ॥

१०५०–वा०–विहायसो विह च ॥

इस प्रकरण में विहायस् शब्द जो गम धातु के पूर्व हो तो उस को विह आदेश भी हो । विहायसाकाशमार्गेण गच्छति, विहंगमः पक्षी ॥ १०५०

१०५१—वा०—खश्च डिच्च ॥

विहायस् शब्द को विह आदेश होने में गम से परे खच् प्रत्यय विकल्प करके डित्वत् हो। विहंगः ॥ १०५१ ॥

१०५२—वा०—डे च ॥

गम से ड प्रत्यय परे हो तो भी विहायस् को विह आदेश हो। विहगः। यहां गम धातु से (१०६९) इस से ड प्रत्यय होता है ॥ १०५२ ॥

१०५३—द्विषत्परयोस्तापेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३९ ॥

द्विषत् और पर कर्म उपपद हों तो णिजन्त तप धातु से खच् प्रत्यय हो। द्विषन्तं तपति, द्विषत्—ताप्—णिच्—खच्। इस व्यवस्था में ॥ १०५३ ॥

१०५४-खचि ह्रस्वः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९४ ॥

खच्परक णि परे हों तो अङ्ग की उपधा को ह्रस्वादेश हो। इस से ह्रस्वादेश होकर द्विषन्तपः सिद्ध होता है। ऐसे ही। परन्तपः। द्विषतीं तापयति। यहां लिङ्गविशिष्टपरिभाषा का अनित्यत्व * मान कर खच् नहीं होता है। अथवा (द्विषत्परयोः) यहां द्विषत्कारक निर्देश मान कर तकारान्त द्विषत् शब्द का ग्रहण है ॥ १०५४ ॥

१०५५—वाचि यमो व्रते ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४० ॥

व्रत (नियम) अर्थ में वाच् कर्म उपपद हो तो धातु से खच् प्रत्यय हो। वाचं यच्छति, वाच्—अम्—यम् —खच्। यहां ॥ १०५५ ॥

१०५६—वाचंयमपुरंदरौ च ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६९ ॥

वाचंयम और पुरन्दर ये निपातन किये हैं। अर्थात् वाच् और पुर शब्द को अमन्तत्व निपातन है। इस से वाच् शब्द को अमन्तत्व हो कर। वाचंयमः। होता है। नियम से अन्यत्र असामर्थ्य से वचन न निकले वहां वाग्यामः होगा ॥ १०५६ ॥

१०५७—पूःसर्वयोर्दारिसहोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४१ ॥

पुर्, सर्व ये कर्म यथाक्रम से उपपद हों तो दारि, सह धातुओं से खच् प्रत्यय हो। पुरंदारयति, पुरन्दरः। यहां भी अमन्तत्व हो गया। सर्वसहः कृत् संज्ञकों में (६१८) सूत्र के बहुल नियम से भगपूर्वक दारि धातु से भी खच् प्रत्यय होता है। भगन्दरः ॥ १०५७ ॥

---

* वा० नासिका नाडी० यहां घट शब्द के साथ घटी शब्द के ग्रहण से लिङ्गविशिष्टपरिभाषा अनित्य है ॥

१०५८—सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४२ ॥

सर्व, कूल, अभ्र, करीष ये कर्म उपपद हों तो कष धातु से खच् प्रत्यय हो। सर्वं कषति, सर्वंकषः खलः। कूलंकषा नदी। अभ्रंकषो गिरिः। करीषंकषा वात्या॥ १०५८॥

१०५९—मेघर्त्तिभयेषु कृञः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४३ ॥

मेघ, ऋति, भय ये कर्म उपपद हों तो कृञ् धातु से खच् प्रत्यय हो। मेघंकरः। ऋतिंकरः। भयंकरः। यहां भय शब्द के साथ तदन्तविधि भी है अभयंकरः॥ १०५९॥

१०६०—क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४४ ॥

क्षेम, प्रिय, मद्र ये कर्म उपपद हों तो कृञ् धातु से अण् और खच् प्रत्यय हो। क्षेमं करोति, क्षेमकारः। क्षेमंकरः। प्रियकारः। प्रियंकरः। मद्रकारः। मद्रंकरः। यहां वा, ग्रहण करने से दूसरे पक्ष में (९९६) सूत्र से अण् प्रत्यय हो जाता है फिर अण् ग्रहण हेत्वादिक अर्थों में जो कृञ् से ट प्रत्यय विहित है उस के बाधने के लिये है। क्षेमकरः। यह तो कर्म की शेषत्वविवक्षा मान कर कृञ् से पृथक् पचाद्यच् होता है॥ १०६०॥

१०६१—आशिते भुवः करणभावयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४५ ॥

आशित शब्द सुबन्त उपपद हो तो भू धातु से करण और भाव में खच् प्रत्यय हो। करण, आशितो भवत्यनेनेति, आशितम्भव ओदनः। भाव, आशितस्य भवनं आशितंभवं वर्त्तते॥ १०६१॥

१०६२—संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४६ ॥

कर्म वा अन्य सुबन्त उपपद हो तो भृ, तॄ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि, दम इन धातुओं से खच् प्रत्यय हो। यहां यथासंभव कर्म और सुप् उक्त धातुओं से संबद्ध होते हैं। विश्वं बिभर्त्ति, विश्वम्भरा वसुन्धरा। रथेन तरति रथन्तरं साम। पतिंवरा कन्या। शत्रुंजयो हस्ती। युगन्धरः पर्वतः। शत्रुंसहः। शत्रुंतपः। अरिंदमः। संज्ञा ग्रहण से यहां न हुआ। कुटुम्बं बिभर्त्तीति, कुटुम्बभारः॥ १०६२॥

१०६३—गमश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४७ ॥

सुबन्त उपपद हो तो संज्ञा में गम धातु से खच् प्रत्यय हो। सुतया गच्छति, सुतंगमः। पृथक् सूत्र उत्तरार्थ है॥ १०६३॥

१०६४–अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ॥ अ०॥३।२।४८ ॥

अन्त, अत्यन्त, अध्वन्, दूर, पार, सर्व, अनन्त ये कर्म उपपद हों तो गम धातु से ड प्रत्यय हो। अन्तगः। अत्यन्तगः। अध्वगः। दूरगः। पारगः। सर्वगः। अनन्तगः। यहां डकार टि लोप के लिये है इस से ड प्रत्यय के परे भसंज्ञा के विना भी टिलोप हो जाता है ॥ १०६४ ॥

१०६५–वा०–डप्रकरणे–सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम् ॥

गम धातु से डप्रत्यय के प्रकरण में सर्वत्र और पन्न शब्द का भी उपसंख्यान करना चाहिये। सर्वत्र गच्छति, सर्वत्रगः। पन्नं पतितं गच्छति पन्नगः ॥ १०६५ ॥

१०६६–वा०–उरसो लोपश्च ॥

ड प्रकरण में गम धातु से उरस् पूर्व हो तो उस के अन्त्य सकार का लोप भी हो। उरसा गच्छति, उरगः ॥ १०६६ ॥

१०६७–वा०–सुदुरोरधिकरणे ॥

सु और दुर् उपपद हों तो गम धातु से अधिकरण में ड प्रत्यय कहना चाहिये सुखेन गच्छत्यस्मिन्निति सुगः। दुःखेन गच्छत्यस्मिन्निति दुर्गो मार्गः ॥ १०६७ ॥

१०६८–वा०–निसो देशे ॥

देश अभिधेय हो तो निस् से परे गम धातु से ड प्रत्यय कहना चाहिये। निश्चयेन गच्छत्यस्मिन्निति निर्गो देशः ॥ १०६८ ॥

१०६९–वा०–अपर आह–डप्रकरणे अन्येष्वपि दृश्यते ॥

इस प्रकरण में और भी उपपद हों तो ड प्रत्यय देखा गया है। तत्रस्त्र्यगारगः, अश्नुते यावदध्वाय 'ग्रामगः, ध्वंसते 'गुरुतल्पगः, ॥ १०६९ ॥

१०७०– आशिषि हनः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४९ ॥

आशीर्वाद अर्थ गम्यमान और कर्म्म उपपद हो तो हन धातु से ड प्रत्यय हो। शत्रुं बध्यात् शत्रुहः। तव पुत्रो भूयात्। तिमिहः। आशीः से अन्यत्र शत्रुघातः॥१०७०॥

१०७१–वा०-दारावाहनोऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम् ॥

संज्ञा विषय में दारु शब्द पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय और अन्त्य को टकारादेश कहना चाहिये। दारु आहन्ति, दार्वाघाटः। दार्वाघाटस्तेवनस्पतीनाम्॥१०७१॥

१०७२–वा०– चारौ वा ॥

चारु शब्द उपपद हो तो आङ्पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय नित्य और अन्त्य को टकारादेश विकल्प करके कहना चाहिये। चार्वाघाटः। चार्वाघातः ॥ १०७२ ॥

१०७३–वा०–कर्मणि समि च ॥

कर्म्म उपपद हो तो सम्पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय और उस को टकारादेश विकल्प करके कहना चाहिये। वर्णान् संहन्ति, वर्णसंघाटः। वर्णसंघातः। पदानि संहन्ति पदसंघाटः। पदसंघातः ॥ १०७३ ॥

१०७४–अपे क्लेशतमसोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५० ॥

क्लेश, तमस्, कर्म उपपद हों तो अप पूर्वक हन धातु से ड प्रत्यय हो। क्लेशमपहन्ति, क्लेशापहः पुत्रः। तमोपहन्ति तमोपहः सूर्यः ॥ १०७४ ॥

१०७५–कुमारशीर्षयोर्णिनिः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५१ ॥

कुमार और शीर्ष कर्म उपपद होंतो हन धातु से णिनि प्रत्यय हो। कुमारं हन्ति कुमारघाती। शीर्षघाती। यह शीर्ष शब्द शिरस् शब्द को शीर्ष भाव निपातन के लिये है ॥ १०७५ ॥

१०७६–लक्षणे जायापत्योष्टक् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५२ ॥

जाया और पति ये कर्म उपपद हों और लक्षणवान् कर्त्ता अभिधेय होतो हन धातु से टक् प्रत्यय हो। जायां हन्ति जायाघ्नो ब्राह्मणः। पतिघ्नी वृषली ॥ १०७६ ॥

१०७७–अमनुष्यकर्तृके च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५३ ॥

कर्म उपपद हो तो मनुष्याभिन्न कर्त्ता में हन धातु से टक् प्रत्यय हो। जायां हन्ति, जायाघ्नस्तिलकालकः। पतिं हन्ति पतिघ्नी पाणिरेखा। शशघ्नी शकुनी। श्लेष्माणं हन्ति, श्लेष्मघ्नम् मधु। पित्तं हन्ति पित्तघ्नम्। घृतम्। अमनुष्यकर्तृक ग्रहण से यहां न हुआ। आखुघातः शूद्रः। नगरघातोहस्ती। यहां टक् प्रत्यय प्राप्त भी है तथापि कृत्संज्ञकों के बहुल भावसे कर्मोपपद लक्षण अण् होता है। प्रलम्बघ्नः। शत्रुघ्नः। कृतघ्नः। इत्यादिक, तो मूलविभुजादि क प्रत्यय से होते हैं ॥ १०७७ ॥

१०७८–शक्तौ हस्तिकपाटयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५४ ॥

शक्ति गम्यमान हो और हस्ति, कपाट कर्म उपपद होंतो हन धातु से टक् प्र-

त्यय हो यह मनुष्यकर्तृक विषय के लिये सूत्र है । हस्तिनं हन्तुं शक्तः, हस्तिघ्नः । मनुष्यः । कपाटघ्नश्चोरः । शक्तिग्रहण से यहां न० । विषेण हस्तिनं हन्ति, हस्तिघातः । यहां अण् होता है ॥ १०७८ ॥

१०७९-पाणिघताडघौ शिल्पिनि ॥ अ० ॥ ३ । २।५५॥

शिल्पी कर्त्ता अभिधेय होता पाणिघ,ताडघ ये दोनों शब्द निपातन हैं।पाणिं हन्ति पाणिघः । ताडघः । यहां पाणि और ताडकर्मोपपद हन धातु से टक् प्रत्यय के परे धातु की टि लोप और घकारादेश निपातन है ॥१०७९॥

१०८०-वा०-राजघ उपसंख्यानम् ॥

उक्त निपातनों में 'राजघ, यह भी उपसंख्यान करना चाहिये । राजानं हन्ति राजघः ॥१०८०॥

१०८१-आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५६ ॥

च्विरहित च्व्यर्थ आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध, प्रिय ये कर्म्म उपपद हों तो कृञ् धातु से करण में ख्युन् प्रत्यय हो।अनाढ्यमाढ्यमनेन कुर्वन्ति, आढ्यं करणम् । सुभगंकरणम् । स्थूलंकरणम् । पलितंकरणम् । नग्नंकरणम् । अन्धंकरणम् प्रियंकरणम् । च्व्यर्थग्रहण से यहां न हुआ । आढ्यं घृतेन कुर्वन्ति घृतेनाभ्यञ्जयन्ति 'अच्वौ, यह प्रतिषेध आगे के लिये है क्योंकि यहां च्व्यन्त विषय में ख्युन् के प्रतिषेध में ल्युट् हो जायगा ल्युट् में समान रूप समान ही स्वर आदि कार्य हैं । आढ्यी करणम् * ॥ १०८१ ॥

१०८२-कर्त्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ॥ अ० ॥ ३ । २।५७॥

च्विरहित च्व्यर्थ आढ्यादिक सुबन्त उपपद हों तो भू धातु से कर्त्ता में खि-

---

* ख्युनि प्रतिषेधानर्थक्यं ल्युट्ख्युनोराविशेषात् । ख्युनि च्वि प्रतिषेधोनर्थकः । किंकारणम्।ल्युट् ख्युनोरविशेषात् ख्युनामुक्ते ल्युटा भवितव्यम् । नचैवास्तिविशेषः। च्विन्त उपपदे ख्युनो वा ल्युटो वा । तदेव रूपं स एव च स्वरः । महाभाष्य० ३ । २ । ५६ ॥ स्त्रीलिङ्ग में (स्त्रैण० ३६) ख्युन् प्रत्ययान्त से भी ङीप् हो जायगा । आढ्यं करणी । काशिकाकारने जो इस विषय में अर्थतः ल्युट् प्रत्यय का भी प्रतिषेध माना है सो असङ्गत है ॥

ष्णुच् और खुकञ् प्रत्यय हों। अनाढ्य आढ्यो भवति, आढ्यम्भविष्णुः। आढ्यम्भावुकः। सुभगंभविष्णुः। सुभगंभावुकः। स्थूलंभविष्णुः। स्थूलंभावुकः। पलितंभविष्णुः। पलितंभावुकः। नग्नंभविष्णुः। नग्नंभावुकः। अन्धंभविष्णुः। अन्धम्भावुकः। प्रियंभविष्णुः। प्रियंभावुकः। कर्त्तृग्रहण से करण में नहीं होते हैं। च्व्यर्थ मात्र से अन्यत्र आढ्यो भविता। अच्विग्रहण से यहां न०। आढ्योभविता ॥ १०८२ ॥

१०८३—स्पृशोऽनुदके क्विन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५८ ॥

अनुदक सुबन्त उपपद हो तो स्पृश धातु से क्विन् प्रत्यय हो घृतं स्पृशति, घृतस्पृक्। मन्त्रेणस्पृशति, मन्त्रस्पृक्। जलेन स्पृशति, जलस्पृक्। अनुदकग्रहण से यहां न हुआ उदकस्पर्शः। कर्म की अनुवृत्ति नहीं है किन्तु निवृत हो गई ॥ १०८३ ॥

१०८४—ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चाञ्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५९ ॥

ऋत्विज्, दधृष्, स्रज्, दिश्, उष्णिज् ये क्विन् प्रत्ययान्त निपातन और अञ्चु युजि, क्रुञ्चु धातुओं से क्विन् प्रत्यय हो। ऋतौ यजति, ऋतुं यजति, वा ऋतुप्रयुक्तो यजति, ऋत्विक्। यहां ऋतु शब्दपूर्वक यज धातु से क्विन् प्रत्यय है। धृष्णोतीति, दधृक्। यहां ञिधृषा धातु से क्विन् प्रत्यय धातुद्विर्वचन और अन्तोदात्तत्व भी निपातन है। सृज्यते या सा स्रक् यहां स्रज से कर्म्म में क्विन् प्रत्यय और अमागम निपातन है दिश्यते जनैर्या सा दिक्। यहां दिश् से कर्म्म में क्विन है। ऊर्ध्वं स्निह्यति उष्णिक्। यहां उत्पूर्वक स्निह धातु से क्विन् षत्व और उपसर्गान्त लोप निपातन है। निपातनशब्दों के साथ जो अञ्चु आदि धातुओं से क्विन् का विधान किया है इस से उन में कुछ अलाक्षणिक कार्य भी होता है। जैसे सोपपद अञ्चु से क्विन् प्रकर्षेणाञ्चति, प्राङ्। प्रत्यङ्। उदङ्। युज् और क्रुञ्च् से निरुपपद से होता है। युङ्। युञ्जौ। युञ्जः। क्रुङ्। क्रुञ्चौ। क्रुञ्चः। यहां निपातन से न लोप नहीं होता। इन क्विन्प्रत्ययान्तों में (नामि० ११५) से सर्वत्र पदान्त में कुत्व होता है ॥ १०८४ ॥

१०८५—त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६०

त्यदादिक उपपद हों तो अनालोचन अर्थ में वर्तमान दृश धातु से कञ् और क्विन् प्रत्यय हों। तमिवेमं पश्यन्ति जनाः सोयं स इव दृश्यमानस्तमिवात्मानं पश्यति तादृक्। तादृशः। यादृक्। यादृशः। स्त्री, तादृशी। यादृशी। यहां (स्त्रैण० ३५)

सूत्र से ङीप् प्रत्यय हो जा० । अनालोचनग्रहण से यहां न हुआ । तं पश्यति तद्दर्शः । तादृगादिक शब्द रूढि शब्दों के समान हैं। दर्शनक्रिया के अर्थ को नहीं कहते हैं ॥ १०८५॥

१०८६—वा०—दृशेः समानान्ययोश्च ॥

समान और अन्य शब्द भी उपपद हों और अनालोचन गम्यमान हो तो दृश धातु से क्विन् और कञ् प्रत्यय हों। सदृक् । सदृशः । अन्यादृक् । अन्यादृशः ॥ १०८६ ॥

१०८७—सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६१ ॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो सदादिक धातुओं से क्विप् प्रत्यय हो। द्विष के साहचर्य से अदादि षूङ् धातु का ग्रहण है । युज से युजिर् और युज दोनों का ग्रहण है। विद इस को अकारान्त पढ़ने से विद ज्ञाने । विद सत्तायाम् । विद विचारणे । इन तीनों का ग्रहण है किन्तु विद्लृ का नहीं है। सत, शुचिषत् । द्युषत् । पारिषत्। सू, वीरसूः । शतसूः । प्रसूः । द्विष, मित्रद्विट् । परिद्विट् । प्रद्विट् । द्रुह, मित्रध्रुक् । मित्रध्रुग् । प्रध्रुक् । दुह, गोधुक् । परिधुक् । युज्, अश्वयुक् । प्रयुक् । विद, वेदवित् । प्रवित् । ब्रह्मवित । भिद्, काष्ठभित् । प्रभित । छिद्, रज्जुच्छित् । प्रच्छित्। जि, शत्रुजित् । परिजित् । नी, सेनानीः । प्रणीः । ग्रामणीः । इत्यादिकों में स्त्रैण० (६६६) सूत्र में ग्रामणी शब्द के निर्देश को मान कर (८७०) से णत्व होजाता है । राज्, विराट् सम्राट् ॥ १०८७ ॥

१०८८—भजो ण्विः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६२ ॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो भज धातु से ण्वि प्रत्यय हो। विश्वं भजति, विश्वभाक् । सुखभाक् । प्रभाक् ॥ १०८८ ॥

१०८९—छन्दसि सहः॥ अ० ॥ ३ । २ । ६३ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो सह धातु से ण्वि प्रत्यय हो । तुराषाट्। यहां (८०६) से षत्व० ॥ १०८९ ॥

१०९०—वहश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६४ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो वह धातु से ण्वि प्रत्यय हो। प्रष्ठवाट् ॥१०९०॥

१०९१—कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६५ ॥

वेदविषय में कव्य, पुरीष, पुरीष्य ये उपपद हों तो वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय हो। कव्यवाहनः। पुरीषवाहनः। पुरीष्यवाहनः॥ १०९१॥

१०९२–हव्येऽनन्तः पादम्॥ अ०॥ ३। २। ६६॥

वेदविषय में हव्य शब्द उपपद हो तो वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय हो जो वह पाद के मध्य में न हो। अग्निश्च हव्यवाहनः। अनन्तःपादग्रहण से यहां न हुआ। हव्यवाडग्निरजरः पिता नः॥ १०९२॥

१०९३–जनसनखनक्रमो विट्॥ अ०॥ ३। २। ६७॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो जन आदि धातुओं से विट् प्रत्यय हो। जन, अब्जाः। गोजाः। सन, गोषा इन्द्रो नृषा असि। खन, विसखाः। कूपखाः। क्रम, दधिक्राः। गम, अग्रेगा उन्नेतॄणाम्॥ १०९३॥

१०९४–अदोऽनन्ने॥ अ०॥ ३। २। ६८॥

अद धातु से अन्नभिन्न सुबन्त हो तो विट् प्रत्यय हो। आममत्ति, आमात्। सस्यात्। अनन्नग्रहण से यहां न हुआ। अन्नादः॥ १०९४॥

१०९५–क्रव्ये च॥ अ०॥ ३। २। ६९॥

क्रव्य शब्द उपपद हो तो अद धातु से विट् प्रत्यय हो क्रव्यात्। यहां भी पूर्व सूत्र से विट् प्रत्यय हो जाता फिर यह सूत्र असरूप प्रत्यय के बाधने के लिये है इस से क्रव्योपपद अद धातु से अण् प्रत्यय नहीं होता है॥ १०९५॥

१०९६–दुहःकप्घश्च॥ अ०॥ ३। २। ७०॥

सुबन्त उपपद हो तो दुह धातु से कप् प्रत्यय और धातु को घकारान्तादेश हो। कामान्दोग्धि, कामदुघा। अर्थदुघा॥ १०९६॥

१०९७–मन्त्रेश्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन्॥अ०॥३।२।७१॥

मन्त्र विषय में श्वेतवह, उक्थशस्, पुरोडाश इन से ण्विन् प्रत्यय हो। कर्तृवाचक श्वेत शब्दोपपद वह धातु से कर्मकारक में ण्विन् प्रत्यय हो। श्वेता यं वहन्ति स श्वेतवाः। कर्म्मवाचक वा करणवाचक उक्थ शब्द पूर्वक शंसु धातु से ण्विन्। उक्थानि शंसति उक्थैर्वा शंसति उक्थशाः॥। पुरः पूर्वक दाशृ को डकारादेश कर्म्म में ण्विन्। पुरोदाशन्त इममिति पुरोडाः। इस विषय में पदान्त में (नामि० १२१, १२३) से डस् आदि कार्य होते हैं॥ १०९७॥

१०९८–अवे यजः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७२ ॥

मन्त्रविषय में अव उपपद हो तो यज धातु से ण्विन् प्रत्यय हो । अवयजति, अवयाः । त्वं यज्ञे वरुणस्यावया असि ॥ १०९८ ॥

१०९९–विजुपे छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७४ ॥

वेदविषय में उप उपपद होतो यज धातु से विच् प्रत्यय हो । उपयडभीरूर्ध्वं वहन्ति यहां छन्दोग्रहण ब्राह्मण विषय के लिये भी है ॥ १०९९ ॥

११००–आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च ॥ अ० ॥३।२।७३ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो आकारान्त धातु से मनिन्, क्वनिप्, वनिप्, विच्, प्रत्यय हों । मनिन्, शोभनं ददाति सुदामा । अश्वत्थामा । क्वनिप्, सुधीवा । सुपीवा । वनिप् । भूरिदावा । घृतपावा । विच्, कीलालपाः ॥ ११०० ॥

११०१–अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७५ ॥

आकारान्तों से अन्य धातुओं से भी मनिम्, क्वनिप्, वनिप् विच् प्रत्यय देखे जाते हैं ॥ ११०१ ॥

११०२–नेड्वशि कृति ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८ ॥

वशादि कृत् संज्ञक प्रत्यय परे हो तो इट् न हो । इस से इट् का निषेध हो कर शोभनं शृणाति सुशर्म्मा । क्वनिप् प्रातरित्वा । प्रातरित्वानौ । वनिप् विजावा । अग्रे गावा । विच् रेडसि पर्ण नयेः । यहां अपि शब्द सर्वोपाधिनिवृत्ति के लिये है । इस से केवल से भी होता है । धीवा । पीवा ॥ ११०२ ॥

११०३–क्विप् च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७६ ॥

धातु से क्विप् प्रत्यय हो । उखायाः स्रस्यते उखास्रत् । पर्णध्वत् । वाहाद् भ्रस्यति वाहभ्रट् । यह क्विप् प्रत्यय सोपपद वा निरुपपद धातु से लोक वेद में सर्वत्र होता है ॥ ११०३ ॥

११०४–छ्वमन्त्रनक्विषु च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९७ ॥

इस् मन् त्रन् क्वि ये परे हों तो छादि धातु की उपधा को ह्रस्व आदेश हो । तनुं छादयति, तनुच्छत् । ज्वरतीति, जूः । जूरौ । जूरः । तूः । सूः । जनानवतीति, जनीः । जनावौ । जनावः । मवतीति मूः । यहां सर्वत्र (९५८) से ऊठ् । मूर्च्छति, मूः मुरौ । मुरः । धूर्वति, धूः । धुरौ । धुरः (५५९) से छ्व लोप० ॥ ११०४ ॥

११०५—गमः क्वौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४० ॥

क्वि परे हो तो गम के अनुनासिक का लोप हो। अङ्गान् गच्छति, अङ्गगत्। कश्मीरगत्। कलिङ्गगत् ॥ ११०५ ॥

११०६—वा०-गमादीनामिति वक्तव्यम् ॥

क्वि के परे गमादिकों के अनुनासिक का लो०। परितस्तनोतीति, परीतत्। परीतत्सह कुण्डिकया। संयच्छतीति संयत्। शोभनं नमति, सुनत् ॥ ११०६ ॥

११०७—वा०— ऊङ् च ॥

लोपविषय में गमादिकों के अन्त्य को ऊङ् भी हो। अग्रे गच्छति अग्रेगूः। अग्रे भ्राम्यति, अग्रेभ्रूः ॥ ११०७ ॥

११०८—स्थः क च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७७ ।

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो स्था धातु से क और क्विप् प्रत्यय हो। शं सुखं यथास्यात्तथा तिष्ठति, शंस्थः। शंस्थाः। यद्यपि (क, क्विप्) प्रत्यय (१००२, १०१२) सत्रों से हो जाते। तथापि यह सूत्र बाधकों के बाधने के लिये है इस से 'शंस्थः, आदि में (१०१६) सूत्र से प्राप्त अच् को बाधता है ॥ ११०८ ॥

११०९--सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७८॥

अजातिवाची सुबन्तमात्र उपपद और ताच्छील्य अर्थ गम्यमान हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। उष्णं भोक्तुं शीलमस्य, उष्णभोजी। शीतभोजी। कटुभोजी। मिष्टभोजी। न्यायकारी। उदासर्तुं शीलमस्या उदासारिणी। उदासारिण्यौ। उदासारिण्यः। प्रत्यासारिण्यः। अनुयायी। विसारी। अनुजीवी अजाति ग्रहण से यहां न हुआ। गवां दोग्धा। ताच्छील्य ग्रहण से यहां न हुआ। कदाचिन्न्यायं करोति ॥ ११०९ ॥

१११०--वा०—णिनिविधौ साधुकारिण्युपसंख्यानम् ॥

साधु करोति, साधुकारी। साधु, ददाति, साधुदायी ॥ १११० ॥

११११—वा०—ब्रह्मणि वदः ॥

ब्रह्म उपपद हो तो वद धातु से णिनि प्रत्यय हो। ब्रह्म वदति, ब्रह्मवादी। ब्रह्मवादिनो वदन्ति। उक्त दोनों वार्त्तिक ताच्छील्य से अन्यत्र के लिये हैं ॥ ११११ ॥

१११२—कर्त्तर्य्युपमाने ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७९ ॥

उपमानवाची कर्त्ता उपपद हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। उष्ट्र इव क्रोशति, उष्ट्रक्रोशी। ध्वाङ्क्षरावी। अताच्छील्यार्थ वा जात्यर्थ यह सूत्र है। कर्त्तृग्रहण से यहां न० अपूपानिव माषान् भक्षयति। उपमानग्रहण से यहां न०। उष्ट्रः क्रोशति॥१११२॥

१११३-व्रते ॥अ० ॥ ३ । २ । ८० ॥

शास्त्रोक्त नियम गम्यमान हो और सुबन्त उपपद हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। स्थण्डिलस्थायी। स्थण्डिलशायी। नियम से स्थण्डिल ही पर सोता है। व्रत ग्रहण से यहां न हुआ। कदाचित् स्थण्डिले शेते देवदत्तः। यह जाति के अर्थ वा ताच्छील्य से अन्य अर्थ में होने के लिये सूत्र है॥ १११३ ॥

१११४-बहुलमाभीक्ष्ण्ये ॥ अ० ॥। ३ । २ । ८१ ॥

आभीक्ष्ण्य (वार वार होना) अर्थ गम्यमान हो और सुबन्त उपपद हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। कषायपायिणो गान्धाराः। क्षीरपायिण उशीनराः। सौवीरपायिणो बाल्हीकाः। बहुल ग्रहण से यहां न हुआ। कुल्माषखादः ॥ १११४ ॥

१११५-मनः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८२ ॥

सुबन्त उपपद हो तो मन् धातु से णिनि प्रत्यय हो। दर्शनीयं मन्यते, दर्शनीयमानी। शोभनमानी। बहुमानी। सामान्य मन् के ग्रहण से मन् मात्र का ग्रहण प्राप्त है तथापि पूर्व सूत्र से 'बहुल, शब्द की अनुवृत्ति कर के किसी मन् से णिनि नहीं भी होता इस से यहां मन्यति का ग्रहण है किन्तु तनादि मनु धातु का ग्रहण नहीं है ॥१११५॥

१११६-आत्ममाने खश्च ॥अ० ॥ ३ । २ । ८३ ॥

आत्ममान (अपने को मानना) अर्थ गम्यमान हो तो मन् धातु से णिनि और खश् प्रत्यय हो। आत्मानं पण्डितं मन्यते, पण्डितंमन्यः। पण्डितमानी। आत्ममान ग्रहण से यहां दो प्रत्यय न हुए। विष्णुमित्रं पण्डितं मन्यते, पण्डितमानी ॥ १११६ ॥

१११७-इचएकाचोम्प्रत्ययवच्च ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६८ ॥

खिदन्त उत्तरपद परे हो तो इजन्त एकाच् को अम् आगम हो और वह अम् विभक्ति के तुल्य हो। गांमन्यः। यहां (१११) से ओकार को आकारादेश०। स्त्रींमन्यः। स्त्रियंमन्यः। यहां (नामि० ९०) से इयङ् विक०। इज्ग्रहण से यहां न हुआ। त्वम्मन्यः। एकाज् ग्रहण से यहां न हुआ। लेखाभ्रंमन्यः ॥ १११७ ॥

१११८-भूते ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८४ ॥

यहां से जो प्रत्यय विधान करें सो भूत काल में हो। यह अधिकार वर्तमाना-धिकार से पूर्व २ है ॥ १११८ ॥

१११९—करणे यजः॥ अ० ॥ ३ । २ । ८५॥

करण उपपद हो तो भूतकाल में यज धातु से णिनि प्रत्यय हो। सोमेनेष्टवान् सोमयाजी। अग्निष्टोमेनायाक्षीत्, अयष्ट वा अग्निष्टोमयाजी। भूत काल से अन्यत्र अग्निष्टोमेन यजते ॥ १११९ ॥

११२०—कर्मणि हनः॥ अ० ॥ ३ । २ । ८६ ॥

कर्म उपपद हो तो हन धातु से भूतकाल में णिनि प्रत्यय हो। पितृव्यघाती। मातुलघाती। यहां से सह पर्यन्त कर्माधिकार है ॥ ११२० ॥

११२१--ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्॥ अ० ॥ ३ । २ । ८७ ॥

ब्रह्मन्, भ्रूण, वृत्र ये कर्म उपपद हों तो भूतकाल में हन धातु से क्विप् प्रत्यय हो। ब्रह्माणमवधीत् ब्रह्महा। भ्रूणहा। वृत्रहा। धातु मात्र से क्विप् प्रत्यय का विधान कर चुके हैं इस से यह ब्रह्मादि विषयक क्विप् प्रत्यय नियमार्थ है। वह यहां दो प्रकार का नियम है। प्रथम भूतकाल में ब्रह्मादिक ही उपपद हों तो हन धातु से क्विप् हो अन्योपपद हो तो न हो इस से पुरुषं हतवान्। यहां क्विप् न०। दूसरा, भूतकाल में ब्रह्मादिक उपपद हों तो हन से क्विप् ही हो किन्तु और प्रत्यय न हो इस से वृत्रमवधीत् यहां कर्मोपपद अण् भी नहीं होता ॥ ११२१ ॥

११२२--बहुलं छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८८ ॥

वेदविषय में कर्म उपपद हो तो हन धातु से बहुल करके क्विप् प्रत्यय हो। मातृहा सप्तमं नरकं प्रविशेत्। पितृहा। भ्रातृहा। कहीं नहीं भी होता अमित्रघातः ॥११२२॥

११२३—सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ॥ अ०॥ ३ । २।८९

स्वादिक कर्म उपपद हों तो कृञ् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय हो। शोभनं कृतवान् सुकृत्। कर्मकृत्। पापकृत्। मन्त्रकृत्। पुण्यकृत्। यहां तीन प्रकार का नियम है प्रथम, स्वादिक उपपद हों तो कृञ् से क्विप् ही हो और प्रत्यय न हो। इस से कर्म कृतवान्। यहां अण् नहीं होता। दूसरा स्वादिक उपपद हों तो कृञ् ही से क्विप् हो इस से। मन्त्रमधीतवान्, यहां क्विप् न०। स्वादिक उपपद हों तो भूतकाल ही में कृञ् से क्विप् हो अन्यकाल, में न हो। इस से मन्त्रङ्करोति करिष्यति

वा यहां क्विप् न० । स्वादिकों का नियम नहीं है इस से अन्योपपद में भी सामान्य क्विप् होता है । भाष्यकृत् । शास्त्रकृत् ॥११२३॥

११२४–सोमे सुञः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९० ॥

सोम कर्म उपपद हो तो भूतकाल में षुञ् धातु से क्विप् प्रत्यय हो । सोमं सुतवान् सोमसुत् ॥११२४॥

११२५–अग्नौ चेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९१ ॥

अग्नि कर्म उपपद हो तो चिञ् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय हो । अग्निं चितवानग्निचित् । अग्निचितौ । अग्निचितः ॥११२५ ॥

११२६–कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९२ ॥

कर्म उपपद हो तो भूतकाल में चिञ् धातु से कर्म कारक में क्विप् प्रत्यय हो जो धातु उपपद और प्रत्यय के समुदाय से अग्न्याधारस्थल विशेष की आख्या पाई जाय । श्येन इव चितः श्येनचित् । कङ्कचित् । अग्नि के लिये जो ईंटों का चय के धरना है उस की संज्ञा हैं ॥११२६॥

११२७–कर्मणीनिर्विक्रियः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९३ ॥

कुत्सानिमित्तक कर्म उपपद हो तो विपूर्व डुक्रीञ् धातु से भूतकाल में इनि प्रत्यय हो सोमं विक्रीतवान् सोमविक्रयी । रसविक्रयी । कर्म वर्त्तमान था फिर कर्म ग्रहण शुद्ध कर्म से अन्य कर्म को ग्रहण करने के लिये है इस से यहां कुत्सानिमित्तक कर्म का ग्रहण होता है अतएव यहां न हुआ । धान्यविक्रायः ॥११२७॥

११२८–दृशेः क्वनिप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९४ ॥

कर्म उपपद हो तो दृश धातु से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय हो । पारं दृष्टवान् पारदृश्वा । मेरुदृश्वा ॥११२८॥

११२९–राजनि युधिकृञः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९५ ॥

राजन् शब्द कर्म उपपद हो तो युधि कृञ् धातुओं से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय हो । राजानं योधितवान् राजयुध्वा । यद्यपि युधि अकर्म्मक है तथापि अन्तर्भावितण्यर्थ मानकर सकर्मक हो जाता है । राजानं कृतवान् राजकृत्वा ॥११२९॥

११३०–सहे च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९६ ॥

सह शब्द उपपद हो तो युधि कृञ् धातुओं से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय हो। सहायौत्सीत् सहयुध्वा। सहाकार्षीत् सहकृत्वा ॥११३०॥

११३१--सप्तम्यां जनेर्डः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९७ ॥

सप्तम्यन्त उपपद हो तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय हो। उपसरे जातः उपसरजः। सरसिजः। यहां (सामा० तत्पुरुषे कृति०)सूत्र से सप्तमी का अलुक् भी होता है लुक पक्ष में। सरोजः ॥ ११३१ ॥

११३२--पञ्चम्यामजातौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९८ ॥

जातिभिन्न पञ्चम्यन्त उपपद हों तो जन धातु से भूतकाल में ड प्रत्यय हो। संस्काराज्जातः संस्कारजः। पङ्कजः। दुःखजः। अजातिग्रहण से यहां न हुआ। हस्तिनो जातः। अश्वाज्जातः ॥ ११३२ ॥

११३३-उपसर्गे च संज्ञायाम् ॥ ३ । २ । ९९ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय संज्ञाविषय में हो। प्रकर्षेण जाताः प्रजाः ॥ ११३३ ॥

११३४--अनौ कर्मणि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०० ॥

कर्म उपपद हो तो अनूपसर्गपूर्वक जन धातु से भूतकाल में ड प्रत्यय हो। रामनुजातो रामानुजः। भरतानुजः ॥ ११३४ ॥

११३५--अन्येष्वपि दृश्यते । अ० ॥ ३ । २ । १०१ ॥

अन्य भी उपपद हों तो भूत काल में जन धातु से ड प्रत्यय देखा जाता है। सप्तम्यन्तोपपद में कहा है उस से अन्यत्र जैसे। नाजनीति, अजः। द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जाता द्विजाः। अजातिविषयक पञ्चम्यन्तोपपद में कहा है उस से अन्यत्र जाति विषय में जैसे। ब्राह्मणजो धर्म्मः। क्षत्रियजं युद्धम्। वैश्यजो व्यापारः। उपसर्गोपपद से संज्ञा विषय में कहा है उस से अन्यत्र असंज्ञा में। अभिजाः। परिजाः केशाः। अनुपूर्वक से कर्मोपपद में कहा है अन्यत्र। अनुजातः। अनुजः। अपि शब्द सर्वोपाधिनिवृत्ति के लिये है इस से यहां भी होता है। परितः खाताः परिखा। आखा ॥ ११३५ ॥

११३६--क्तक्तवतू निष्ठा ॥ अ० ॥ १ । १ । २६ ॥

क्त क्तवतु ये निष्ठा संज्ञक हों ॥ ११३६ ॥

११३७--निष्ठा ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०२ ॥

भूतकाल में धातु से निष्ठा संज्ञक प्रत्यय हों । अकारीति कृतः । अकार्षीदिति कृतवान् । भुक्तम् । भुक्तवान् । यह क्त प्रत्यय कर्म्म (९१४) में और क्तवतु कर्त्ता (९१३) में होता है ॥ ११३७ ॥

११३८--निष्ठायामण्यदर्थे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६० ॥

ण्यदर्थ जो भावकर्म्म * उस से अन्य अर्थ (कर्त्ता आदि) में निष्ठा परे हो तो क्षि धातु को दीर्घादेश हो ॥ ११३८ ॥

११३९--क्षियो दीर्घात् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४६ ॥

क्षि धातु के दीर्घ से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो। अक्षैषीदिति, क्षीणवान्। भाव में क्षितमेनन । कर्म, क्षितः कामोनया ॥ ११३९ ॥

११४०--रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ॥अ०॥ ८।२।४२॥

रेफ और दकार से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश तथा उस निष्ठा से पूर्व धातु के दकार को भी नकारादेश हो। शीर्णः । विस्तीर्णम् । यहां० (२६५) सूत्र से ऋकार को इकारादेश (संधि० ५७) सूत्र से रपरत्व० । द, भिन्नः । भिन्नवान् रदग्रहण से यहां न हुआ । कृतः । कृतवान् । निष्ठाग्रहण से यहां न० । कर्त्ता । तग्रहण से यहां० । चरितम् । पूर्वग्रहण से पर को न हुआ । भिन्नवद्भ्याम् ॥११४०॥

११४१-संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ॥ अ० । ८ । २ । ४३ ॥

संयोगादि जो यण्वान् आकारान्त धातु उस से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो । संस्त्यानः । ग्लानः । प्रद्राणः । संयोगादिग्रहण से यहां न० (यातः) यातवान् आद्ग्रहण से यहां न०। च्युतः । च्युतवान् । प्लुतः । प्लुतवान्। धातु ग्रहण से यहां न० । निर्यातः । यण्वद्ग्रहण से स्नातः । स्नातवान् । यहां न० ॥ ११४१ ॥

११४२--ल्वादिभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४४ ॥

लूञादिक धातुओं से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो । यहां क्र्यादिगणस्थ [लूञ्] छेदने से लेकर [व्री] गतौ इस धातु पर्यन्त धातुओं का ग्रहण है । उन

* ण्यत् कृत्य संज्ञक प्रत्यय हैं कृत्य प्रत्यय (९१४) सूत्र से भावकर्म्म में होते हैं इस से ण्यदर्थ भावकर्म्म है ।

में रेफ से परे नकारादेश पूर्व से भी सिद्ध है शेष धातुओं से अप्राप्त है लूनः। लूनवा-न्। धूनः। धूनवान् ॥ ११४२ ॥

११४३--वा०--दुग्वोर्दीर्घश्च ॥

दु और गु धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश और उन को दीर्घ भी कहना चाहिये दु, आदूनः। गु, आगूनः ॥ ११४३ ॥

११४४--वा०--पूञो विनाशे ॥

विनाश अर्थ में वर्त्तमान पूञ् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो। पूनाः* यवाः। यव विनाश को प्राप्त हो गए। विनाशग्रहण से यहां न० पूतं धान्यम्। धान्य पवित्र है ॥ ११४४ ।

११४५--वा०--सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्तृकस्य ॥

जिस का ग्रास कर्म ही कर्त्ता हुआ हो उस षिञ् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो। असायि ग्रासः स्वयमेवेति सिनो ग्रासः स्वयमेव। ग्रास कर्म कर्तृ ग्रहण से यहां न०। सिता पाशेन सूकरी। फसरी से सूकरी आप ही बंधगई इस अपेक्षा में निष्ठा त,को, न न हुआ। ग्रास शब्द भी जब कर्म ही रहता तब निष्ठा त-कार को नकार नहीं होता है। सितो ग्रासो देवदत्तेन ॥ ११४५ ॥

११४६--ओदितश्च ॥ अ० ॥ ८। २। ४५ ॥

जिसका ओकार इत् संज्ञक हो उस से परे निष्ठा तकार को नकारादेश हो। ओलजी, लग्नः। लग्नवान्। ओविजी, उद्विग्नः। उद्विग्नवान्। ओहाक्, प्रहीणः प्र-हीणवान् ॥ ११४६ ॥

११४७--द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः ॥ अ० ॥ ६। १। २४ ॥

निष्ठा परे हो तो द्रवमूर्त्ति (घृतादिपदार्थ का कड़ापन) और स्पर्श (लागना) अर्थ में वर्त्तमान श्यैङ् धातु को संप्रसारण हो। स्पर्श, शीतं वर्त्तते। शीतो वायुः। द्रवमूर्त्ति में अगले सूत्र में उदाहरण देंगे। द्रवमूर्त्ति स्पर्श ग्रहण से यहां न० संश्यानो वृश्चिकः। सिमिटा हुआ वीछी है ॥ ११४७ ॥

---

* धातु अनेकार्थ होते हैं इस से ,,पूनाः यवाः, यहां पूञ् धातु विनाशार्थक है ॥

११४८--श्योऽस्पर्शे ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४७ ॥

स्पर्श भिन्न अर्थ में वर्त्तमान श्यैङ् धातु से परे निष्ठा तकार को नकारादेश हो। शीनं घृतम्। जमा घृत है अस्पर्श ग्रहण से यहां न हुआ। शीतो वायुः ॥ ११४८ ॥

११४९--प्रतेश्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । २५ ॥

निष्ठा परे हो तो प्रति से परे श्यैङ् धातु को संप्रसारण हो। प्रतिशीनः। प्रतिशीनवान् ॥ ११४९ ॥

११५० विभाषाभ्यवपूर्वस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २६ ॥

निष्ठा परे हो तो अभि अव पूर्वक श्यैङ् धातु को विकल्प करके संप्रसारण हो। अभिशीनम्। अभिश्यानम्। अवशीनम्। अवश्यानम्। द्रवमूर्त्तिस्पर्शविवक्षा में भी विकल्प होता है। अभिशीनम्। अभिश्यानम्। अवशीनम्। अवश्यानम् वा घृतम्। अभिशीतः। अभिश्यानः। अवशीतः। अवश्यानो वा वायुः। यह व्यवस्थित विभाषा है इस से अभि, अव और किसी के साथ में हों तो संप्रसारण नहीं होता। समवश्यानः। समभिश्यानः ॥ ११५० ॥

११५१--अञ्चोऽनपादाने ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४८ ॥

अनपादान में अञ्चु धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो ॥ ११५१ ॥

११५२--यस्य विभाषा ॥ अ० ॥ ७ । २ । १५ ॥

जिस धातु के विषय में कहीं विकल्प करके इट् कहा है उस से निष्ठा में इडागम न हो। सम्+अञ्चु+त=समक्तः। न्यक्तः। उदित् धातु से क्त्वा प्रत्यय को विकल्प करके इडागम कहेंगे इस से यहां इट् (४६) न हुआ। अनपादान ग्रहण से यहां न०। उदक्तमुदकं कूपात् ॥ ११५२ ॥

११५३--दिवोऽविजिगीषायाम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४९ ॥

अविजिगीषा (न जीतने की इच्छा) अर्थ में दिवु धातु से परे निष्ठा तकार को नकारादेश हो। आद्यूनः। अविजिगीषाग्रहण से यहां न०। द्यूतं वर्त्तते ॥ ११५३ ॥

११५४--निर्वाणोऽवाते ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५० ॥

अवात अर्थ में निर्वाण यह निपातन है। निर्वाणोमुनिः। निवृत्त सुख को मुनि प्राप्त है यहां वात (पवन) से अन्य कर्त्ता में निस्पूर्वक वा धातु से निष्ठा तकार को नकारादेश होता है। वात में तो। निर्वातः। होगा ॥ ११५४ ॥

११५५–शुषः कः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५१ ॥

शुष धातु से परे निष्ठा के तकार को ककारादेश हो । शुष्कः । शुष्कवान् । शुष्कवन्तौ ॥ ११५५ ॥

११५६–पचो वः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५२ ॥

पच धातु से निष्ठा तकार को वकारादेश हो । पक्वः । पक्ववान् ॥ ११५६ ॥

११५७–क्षायो मः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५३ ॥

क्षै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकारादेश हो । क्षामः । क्षामवान्॥११५७॥

११५८–स्त्यः प्रपूर्वस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २३ ॥

निष्ठा परे हो तो प्र पूर्वक स्त्यै धातु को संप्रसारण हो ॥ ११५८ ॥

११५९–प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५४ ॥

प्रपूर्वक स्त्यै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकारादेश विकल्प करके हो । प्रस्तीमः । प्रस्तीमवान् । प्रस्तीतः । प्रस्तीतवान् ॥ ११५९ ॥

११६०–आदितश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । १६ ॥

आकार जिस का इत् संज्ञक हो उस से परे निष्ठा को इट् आगम न हो॥११६०॥

११६१–ति च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८९ ॥

तकारादि कित् परे हो तो चर, फल धातुओं के अकार को उकारादेश हो ॥११६१॥

११६२–अनुपसर्गात्फुल्लक्षीवकृशोल्लाघाः ॥अ०॥८।२।५५॥

उपसर्ग से न परे हों तो फुल्ल, क्षीव, कृश और उल्लाघ ये निपातन हैं। फुल्लः। यहां [ञिफला] विशरणे धातु से निष्ठा के त को लत्व निपातन और (११६०) इट् निषेध तथा (११६१) से उकार होता है । इस धातु से निष्ठा को लकार एकदेश में भी इष्ट है । फुल्लवान्। [क्षीबृ]मदे क्षीवः मत्त का नाम है (कृश)तनूकरणे । कृशः । दुर्बलशरीर । उत् पूर्व [लाघृ] सामर्थ्ये से उल्लाघः नीरोग कहाता है । इन प्रयोगों में निष्ठा के तकार का लोप और उस के असिद्ध (सन्धि० ९४) होने से प्राप्त इट् का निषेध निपातन है । उपसर्ग से परे उक्त निपातन नहीं होते हैं जैसे प्रफुल्लतः।प्रक्षीवितः । प्रकृशितः । प्रोल्लाघितः। प्रफुल्ल शब्द तो फुल्ल विकसने से (१७५) सूत्र से होगा ॥ ११६२ ॥

११६३वा०—उत्फुल्लसंफुल्लयोरिति वक्तव्यम् ॥

ञिफला धातु से निष्ठा तकार को नकारादेश विधान में उत्फुल्ल संफुल्ल इन शब्दों का भी उपसंख्यान करना चाहिये। उत्फुल्लः। संफुल्लः ॥ ११६३ ॥

११६४—नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योन्यतरस्याम् ॥

अ० ॥ ८ । २ । ५६ ॥

नुद, विद, उन्द, त्रा, घ्रा, ह्री इन धातुओं से परे निष्ठा तकार और पूर्व दकार को नकारादेश विकल्प करके हो। नुद, नुन्नः। नुत्तः। विद, विन्नः। वित्तः। यहां रुधादि गणस्थ [विद] विचारणे। धातु का ग्रहण है। उन्दी, उन्द+त यहां॥ ११६४॥

११६५—श्वीदितो निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । १४ ॥

श्वि और ईदित धातु से परे निष्ठा को इट् आगम न हो। इस से इट् का निषेध हो कर उन्नः। उत्तः। त्रा, त्रातः। त्राणः। घ्रा, घ्राणः। घ्रातः। ह्रीणः। ह्रीतः॥ ११६५॥

११६६—न ध्याख्यापॄमूर्छिमदाम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५७ ॥

ध्या ख्या पॄ मूर्छि मद इन से परे निष्ठा को नकारादेश न हो। ध्यातः। ध्यातवान्। ख्यातः। ख्यातवान्। पूर्तः। पूर्तवान्। मूर्त्तः (५५९) मूर्त्तवान्। मत्तः मत्तवान् ॥ ११६६ ॥

११६७-वित्तो भोगप्रत्यययोः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५८ ॥

भोग और प्रत्यय (प्रतीत) अर्थ में वित्त, यह निपातन हो। भोग, बहु वित्तम् अस्य। इस के बहुत धन है। सब प्रकार धन ही भोगते हैं इस से भोग अर्थ प्रकाशित होता है। प्रत्यय, वित्तोयं पुरुषः। पुरुष प्रतीत हुआ है। यहां विद्लृ का ग्रहण है। उक्त अर्थों से अन्यत्र विन्नः होगा। वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते वित्तेर्विन्नश्चवित्तश्च भोगे वित्तश्च विन्दतेः। महाभाष्य ८ । २ । ५८ [विद] ज्ञाने से निष्ठान्त विदितः, और [विद] सत्तायाम् से निष्ठान्त विन्न तथा विद विचारणे से निष्ठान्त (११६४) विन्न, वित्त और भोग वा प्रत्यय में [विद्लृ] लाभे से वित्त इष्ट है। यहां कारिका में भोग उपलक्षण मात्र है इस से प्रत्यय का भी ग्रहण है ॥ ११६७॥

११६८–भित्तं शकलम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५९ ॥

शकल(टुकड़ा)वाच्य हो तो भित्त यह निपातन है । भिदिर्, भित्तम् । शकलम् । अन्यत्र भिन्नम् ॥ ११६८ ॥

११६९–ऋणमाधमर्ण्ये ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६० ॥

आधमर्ण्य (ऋण का लेना) अर्थ में ऋण यह निपातन हो । ऋणं धारयति यहां ऋ धातु से निष्ठा के तकार को नकारादेश निपातन है । आधमर्ण्य ग्रहण से यहां न हुआ । ऋतं वदयामि । ऋणे अधमः, अधमर्णः अधमर्णस्य भावः आधमर्ण्यम् । ऋणमें जो लेनेवाला है वह अधम कहाता है यहां समास में सप्तम्यन्त ऋण शब्द का अपूर्वनिपात आधमर्ण्य,इस निर्देश को देख कर होता है तथा यह आधमर्ण्य उप लक्षण भी है इस से उत्तमर्ण, यह भी होता है ॥११६९॥

११७०–नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्त्तसूर्त्तगूर्त्तानि छन्दसि ॥ अ० ॥ ८। २ । ६१॥

वेदविषय में नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त्त, सूर्त्त, गूर्त्त, ये निपातन हों । नसत्त मञ्जसा । निषत्तमस्य चरतः । इनमें नञ् और निपूर्वक सद् धातु से निष्ठातकार को नकारादेश का अभाव निपातन है लोक में असन्न, निषण्ण होंगे। अनुत्तमा ते मघवन् । यहां नञ् पूर्वक उन्दी से निष्ठा को नत्वाभाव नि० । अनुन्न यह लोक में होगा । प्रतूर्त्तं वाजिनम् । यहां त्वर वा तुर्वी धातु से निष्ठा को नत्वाभाव० । लोक में प्रतूर्णम् सूर्त्ता गावः । यहां सृ धातु से निष्ठा को नत्वाभाव० । लोक में । सृताः । गूर्त्ता अमृतस्य । यहां गूरी से निष्ठा को नत्वाभा० । लोक में गूर्णम् ॥११७०॥

११७१–स्फायः स्फी निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । २२ ॥

निष्ठा परे हो तो स्फाय धातु को स्फी आदेश हो । स्फायी,स्फीतः । स्फीतवान् । निष्ठाग्रहण से यहां न० । स्फातिः । यह क्तिन् प्रत्ययान्त है ॥११७१॥

११७२–इण् निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४७ ॥

निर् से परे जो कुष धातु उस से निष्ठा परे हो तो उस को इडागम हो । निष्कुषितः ॥ ११७२॥

११७३-वसतिक्षुधोरिट् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५२ ॥

वस और क्षुध धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को इट् का आगम हो । वस, उषितः । उषितवान् । क्षुधितः । क्षुधितवान् ॥११७३॥

११७४-अञ्चेःपूजायाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५३ ॥

पूजार्थ में अञ्चु से क्त्वा और निष्ठा को इडागम् हो । अञ्चिता अस्य गुरवः पूजा से अन्यत्र उदक्तमुदकं कूपात् ॥११७४॥

११७५-लुभो विमोहने ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५४ ॥

विमोहन (व्याकुल करना) अर्थ में वर्त्तमान् लुभ धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को इट् आगम हो । विलुभितः । विलुभितानि पदानि । विमोहनग्रहण से यहां न हुआ । लुब्धो वृषलः ॥११७५ ॥

११७६-क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५० ॥

क्लिशू धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को विकल्प करके इट् आगम हो। क्लिष्टः। क्लिष्टवान् । क्लिशितः । क्लिशितवान् । यहां [क्लिश] उपतापे और [क्लिशू] विबाधने इन दोनों का ग्रहण है ॥११७६॥

११७७-पूङश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५१ ॥

पूङ् धातु से क्त्वा और निष्ठा को इडागम विकल्प करके हो । पू+इ+त । यहां ॥११७७॥

११७८-पूङःक्त्वा च ॥ अ० ॥ १ । २ । २२ ॥

पूङ् धातु से परे क्त्वा और निष्ठा कित् न हो । पवितः । इट विकल्प में पूतः ॥११७८॥

११७९-निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ॥

अ० ॥ १ । २ । १९ ॥

ञिष्विदा, ञिमिदा, ञिक्ष्विदा, ञिधृषा इन से परे सेट् निष्ठा कित् न हो । शीङ् शयितः । शयितवान् । यहां ङकारोच्चारण यङ्लुगन्त की निवृत्ति के लिये है । शेश्यितः । शेश्यितवान् ॥११७९॥

११८०—वा०—आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या ॥

आदि कर्म (प्रथम क्रिया) में धातु से निष्ठा संज्ञक प्रत्यय कहना चाहिये ॥ ११८० ॥

११८१—आदिकर्मणिः क्तः कर्त्तरि च ॥ अ० ॥३।४।७१ ॥

आदि कर्म्म में जो क्त प्रत्यय विहित है वह कर्त्ता और भावकर्म्म में हो॥ ११८१॥

११८२—विभाषा भावादिकर्मणोः ॥ अ०॥७।२ । १७ ॥

आकार जिस का इत् संज्ञक हो उस धातु से परे भाव और आदिकर्म में जो निष्ठा उस को विकल्प करके इट् आगम न हो । प्रस्वेदितम् मैत्रेण । मैत्र ने प्रस्वेदकिया । प्रस्वेदितश्चैत्रः । चैत्र प्रथम प्रस्वेद को प्राप्त हुआ । प्रस्वेदितवान् । प्रमेदितम् । प्रमेदितः । प्रमेदितवान् । प्रक्ष्वेदितम् । प्रक्ष्वेदितः । प्रक्ष्वेदितवान् । प्रधार्षितम् । प्रधार्षितः । प्रधार्षितवान् ॥ ११८२ ॥

११८३—मृषस्तितिक्षायाम् ॥ अ० ॥ १ । २ । २० ॥

मृष धातु से परे तितिक्षा (सहन) अर्थ में इट्सहित निष्ठा कित् न हो । मर्षितः । मर्षितवान् । तितिक्षाग्रहण से यहां न हुआ । अपमृषितं वाक्यम् । स्पष्टाक्षर वाक्य नहीं है ॥ ११८३ ॥

११८४—उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् ॥

अ० ॥१ । २ । २१ ॥

उकारोपध धातु से परे भाव और आदिकर्म में जो सेट् निष्ठा सो विकल्प करके कित् न हो । प्रद्युतितम् । प्रद्योतितं वानेन । प्रद्योतितः । प्रद्युतितः साधुः । प्रमुदितम् । प्रमोदितमनेन । प्रमुदितः । प्रमोदितः साधुः । उदुपधग्रहण से यहां न हुआ । लिखितमनेन । विदितमनेन । भावादिकर्मग्रहण से यहां न हुआ । रुचितं कार्षापणं ददाति । सेट्ग्रहण से यहां न हुआ । प्रभुक्त ओदनः । यहां शब्विकरण धातुओं का ग्रहण इष्ट है शब्विकरणेभ्य एवेष्यते । महाभाष्य० १ । २ । २१ । इस से यहां न हुआ । गुधितः गुधितवान् ॥ ११८४ ॥

११८५—निष्ठायां सेटि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५२ ॥

सेट्निष्ठा परे हो तो णि प्रत्यय का लोप हो । भावितः । भावितवान् । गुह, गूढः ।

गूढवान् । वनु, वतः । तनु, ततः (३०३) पत्लृ, पतितः । यद्यपि पत् धातु को वि-
कल्प करके इट् (५१८) से विहित है इस से निष्ठा में इट् निषेध (११५२) भी
प्राप्त है तथापि (सामा०—द्वितीया०) सूत्र में पतित शब्द के ग्रहण से (पतित,) य-
हां इट्आगम (४६) होता है ॥ ११८५ ॥

११८६—क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताऽविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । १८ ॥

मन्थ, मनस्, तमस्, सक्त, अविस्पष्ट, स्वर, अनायास, भृश इन अर्थों में यथा-
संख्य करके क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, म्लिष्ट, विरिब्ध, फाण्ट, बाढ ये इट्रहित नि-
पातन हैं [क्षुभ] संचलने क्षुब्धो मन्थः । मन्थ यह मथनिआ आदि जो मन्थनदण्ड हैं
उन का नाम है । मंथ से अन्यत्र । क्षुभितम् [स्वन ध्वन] शब्दे स्वान्तं मनः । ध्वा-
न्तं तमः । अन्यत्र । स्वनितम् । ध्वनितम् [लगे] संगे लग्नम् । सक्तम् । जो किसी
में लग रहा है । यहां निष्ठा को नकारादेश भी निपातन है । अन्यत्र । लगितम् [म्लेच्छ]
अव्यक्ते शब्दे म्लिष्टम् । अविस्पष्टम् । जो अच्छे प्रकार स्पष्ट न हो [रेभृ] शब्दे वि-
रिब्धः । स्वरः । इन दोनों प्रयोगों में एकार को इकार भी निपातन है । अन्यत्र । म्ले-
च्छितम् । विरेभितम् [फण] गतौ फाण्टम् अनायाससाध्यं कषायम् । विना परिश्रम
से सिद्ध होने वाले काढ़े को कहते हैं अर्थात् जो ओषधि पकाई वा पीसी न जाय कि-
न्तु जल में भिगोने से उन से जो रस उत्पन्न हो और उस को पीछे से कुछ उष्ण
कर लिया जाय वह अनायाससाध्य काढा फाण्ट कहाता है । अन्यत्र । फाणितम्
[बाहृ] प्रयत्ने । बाढम् । भृशम् । अतिशय को कहते हैं अन्यत्र । बाहितम् ॥ ११८६ ॥

११८७—धृषिशसी वैयात्ये ॥ अ० ॥ ७ । २ । १९ ॥

निष्ठा परे हो तो वैयात्य (अविनय*) ही अर्थ में ञिधृषा और शसु अनिट्
हों अन्यत्र न हों । ञिधृषा , अयं धृष्टः पुरुषः यह ढीठ पुरुष है । अयं विशस्तः
पुरुषः । यह हिंसक पुरुष है । ञिधृषा, से निष्ठा को इट् निषेध (११६०) सूत्र

* विरूपं यातं गमनं चेष्टनं यस्य स वियातस्तस्य भावो वैयात्यमविनयः । जिस
का विरूप गमन चेष्टा है वह वियात कहावे उस का होना वैयात्य अर्थात् अविनय
कहाता है ॥

से सिद्ध तथा शसु, से (११५२) सूत्र से सिद्ध है इस से वैयात्य अर्थ में यह अनिट् विधान करना नियमार्थ है अर्थात् वैयात्य ही अर्थ में धृषि, शसि अनिट् हों अन्यत्र न हों। वैयात्य से अन्यत्र धर्षितः। विशसितः ॥ ११८७ ॥

११८८—दृढः स्थूलबलयोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २० ॥

स्थूल और बलवान् ये अर्थ वाच्य हों तो दृढ, यह निपातन है। दृढः स्थूलः। दृढो बलवान्। यहां [दृह, दृहि] वृद्धौ इन दोनों धातुओं से क्त प्रत्यय को इट् का अभाव और ढकारादेश तथा धातु के हकार का लोप और दृहि के इदित्भाव से (१२७) हुए नकार का लोप निपातन है स्थूल और बल से अन्यत्र दृहितः। दृंहितः ॥११८८॥

११८९—प्रभौ परिवृढः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २१ ॥

प्रभु वाच्य हो तो परिवृढ यह निपातन है। परिवृढः कुटुम्बी। यहां [वृह, वृहि] वृद्धौ इन से दृढ शब्द के तुल्य समस्त कार्य होते हैं। प्रभु अर्थ से अन्यत्र। परिवृहितः परिवृंहितः ॥ ११८९ ॥

११९०—कृच्छ्रगहनयोः कषः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २२ ॥

कृच्छ्र (दुःख वा दुःख का निमित्त) और गहन (सघन) अर्थ में कष धातु से निष्ठा को इडागम न हो। कष, कष्टं दुःखम्। कष्टो रोगः। दुःख तथा दुःख का निमित्त रोग आदि कष्ट कहाता है। गहन, कष्टाः पर्वताः। कष्टानि वनानि। कृच्छ्रगहन से अन्यत्र। कषितं सुवर्णम् ॥११९०॥

११९१—घुषिरविशब्दने ॥ अ० ॥ ७ । २ । २३ ॥

निष्ठा परे हो तो अविशब्दन (विशब्दन प्रतिज्ञा उस से अन्य) अर्थ में घुषिर् धातु अनिट् हो। घुष्टा रज्जुः। अविशब्दनग्रहण से यहां न हुआ। अवघुषितं वाक्यमाह अर्थात् प्रतिज्ञातवाक्य कह रहा है। चुरादिगणस्थ घुषिर धातु से*जो णिच् होता है उस की अनित्यता में अविशब्दन निषेध ज्ञापक है ॥११९१॥

*घुषिर् धातु पिछले दो गणों में पढ़ा है अर्थात् भ्वादिगण में (घुषिर्) अविशब्दने तथा चुरादिगण में (घुषिर् विशब्दने) इनदोनों में से अविशब्दन अर्थ में निष्ठा के परे घुषिर् धातु अनिट् है। विशब्दन में अनिट् नहीं है। यहांयहशंका है कि विशब्दन में इट् निषेध क्यों किया अर्थात् विशब्दमें चुरादिणिच् हो कर घोषि हो जाता है किन्तु घुष नहीं रहता है इस से (अविशब्दने)यह ज्ञापक है कि चुरादिणिच् उक्त धातु से अनित्य है ॥

११९२–अर्देः सन्निविभ्यः ॥ अ० ॥ ७ । २ ॥ २४ ॥

सम् नि वि इन से परे जो अर्द धातु उससे परे निष्ठा को इट् आगम न हो । समर्णः (११४०) न्यर्णः । व्यर्णः । अर्दग्रहण से यहां न० । समेधितः । सन्निविग्रह० । अर्दितः । यहां न हुआ ॥११९२॥

११९३–अभेश्चाविदूर्य्ये ॥ अ० ॥ ७ । २ । २५ ॥

आविदूर्य्य (जो बहुत दूर न हो वा अतिसमीप हो उस) अर्थ में अभि से परे जो अर्द धातु उस से परे निष्ठा को इट् न हो । अभ्यर्णम् (११४०) अन्यत्र । शीतेनाभ्यर्दितोवृषभः । वृषभ शीत से पीडित हो रहा है ॥११९३ ॥

११९४–णेरध्ययने वृत्तम् ॥ अ० ॥७ ।२।२६ ॥

अध्ययन अर्थ में णयन्त वृतु धातु से निष्ठा को इट् का अभाव और णिच् का लोप निपातन है । वृत्तं व्याकरणमनेन । इस ने व्याकरण का संपादन कर लिया अध्ययन से अन्यत्र । वर्त्तिता रज्जुः । वर्त्तीहुई डोरि है

११९५–शृतं पाके ॥ अ० ॥ ६ । १ । २७ ॥

क्तप्रत्यय के परे पाक अर्थ में णिजन्त वा णिच् रहित श्रा धातु को शृभाव निपातन है ॥ ११९५ ॥

११९६–वा०–क्षीरहविषोरिति वक्तव्यम् ॥

उक्त शृभाव क्षीरहविर्विषयक पाक अर्थ में कहना चाहिये [श्रा] पाके शृतं क्षीरं स्वयमेव । शृतं हविः स्वयमेव । णिजन्त, शृतं क्षीरं देवदत्तेन । अन्यत्र श्राणा (११४१) श्रपिता वा यवागूः । श्रा धातु अकर्मक है इससे कर्मकर्तृ विषयक पच धातु के अर्थ में वर्त्तमान है णिजन्त श्रा धातु से फिर प्रयोजकव्यापार में णिच् किया जाय जैसे (श्रा+पुक्+ णिच्+णिच्+क्त+सु=) यहां ॥ ११९६ ॥

११९७–वा०–श्रपेः शृतमन्यत्र हेतोरिति वक्तव्यम् ॥

णिजन्त श्रा (श्रपि) धातु से जो हेतु अर्थात् प्रयोजक व्यापार उस से अन्यत्र शृभाव निपातन करना चाहिये । शृभाव का निषेध होकर । अश्रापि क्षीरं देवदत्तेन यज्ञदत्तेन, श्रपितं क्षीरं देवदत्तेन यज्ञदत्तेनेति ॥ ११९७ ॥

११९८–वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टछन्नज्ञप्ताः॥अ०॥७।२।२७॥

णिच् विषय में दान्त,शान्त, पूर्ण दस्त स्पष्ट छन्न ज्ञप्त ये विकल्प करके निपातन

हैं। दमु, दान्तः (५८७) पक्ष में दमितः। शमु, शान्तः। शमितः। पूरी पूर्णः। पूरितः। दसु, दस्तः। दासितः। स्पश, स्पष्टः। स्पाशितः। छद, छन्नः। छादितः। इन दान्तादिकों में णिलुक् और इट् का अभाव निपातन हैं। ज्ञप, ज्ञप्तः। ज्ञपितः। ज्ञप्त, का ग्रहण विकल्पार्थ इट् विधान के लिये है क्योंकि ज्ञप से(५१४)सूत्र से इट्विकल्प विधान हैं इस से (११५२) सूत्र से नित्य इट् प्रतिषेध प्राप्त है ॥११९८॥

११९९-रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् अ० ॥ ७ । २ । २८ ॥

रुष अम त्वर संघुष् आस्वन इन धातुओं से निष्ठा को इट् आगम विकल्प करके हो। रुष, रुष्टः। रुषितः (२१२) से इट् विकल्प (११५२) सूत्र से निषेध प्राप्त था अम, आन्तः (५८७) अमितः। ञित्वरा, तूर्णः (११९०) इट् प्रतिषेध प्राप्त था। समघुषिर्, संघुषितः। आस्वन, आस्वान्तः। आस्वनितः ॥ ११९९ ॥

१२००-हृषेर्लोमसु ॥ अ० ७ । २ । २९ ॥

लोम विषय में वर्त्तमान हृष धातु से परे निष्ठा को विकल्प करके इट् आगम हो ॥ १२०० ॥

१२०१-वा०-हृषेर्लोमकेशकर्त्तृकस्येति वक्तव्यम् ॥

उक्त इट् विकल्प लोम और केश कर्त्तृक हृष धातु से कहना चाहिये। हृष्टानि लोमानि। हृषितानि लोमानि। हृष्टं लोमभिः। हृषितं लोमभिः। हृष्टाः केशाः। हृषिताः केशाः। हृष्टं केशैःहृषितं केशैः [हृषु] अलीके तथा [हृष] तुष्टौ दोनों का ग्रहण है। उन में हृषु उदित् होने से निष्ठा में (११५२) अनिट तथा हृष सेट् है। लोम से अन्यत्र हृषु, हृष्टो देवदत्तः। हृष, हृषितो देवदत्तः ॥ १२०१ ॥

१२०२-वा०-विस्मितप्रतिघातयोरिति वक्तव्यम् ॥

विस्मित (विस्मय को प्राप्त) प्रतिघात (ताडना को प्राप्त) इन अर्थों में हृषु धातु से इट् विकल्प करके कहना चाहिये। विस्मित, हृष्टो देवदत्तः। हृषितो देवदत्तः। प्रतिघात, हृष्टा दन्ताः। हृषिता दन्ताः ॥ १२०२ ॥

१२०३-अपचितश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३० ॥

अपचित यह विकल्प करके निपातन है। अपचितः। अपचायितो वानेन गुरुः। इस ने गुरु सत्कार युक्त किया। यह अपपूर्वक चायृ धातु से निष्ठा को इट् अभाव और धातु को चिभाव निपातन है ॥ १२०३ ॥

१२०४—प्यायः पी ॥ अ० ॥ ६ । १ । २८ ॥

निष्ठा परे हो तो ओप्यायी धातु को विकल्प करके पी आदेशहो [ओप्यायी] वृद्धौ । पीनं मुखम् । पीनमुरः ॥ १२०४ ॥

१२०५—वा० —आङ्पूर्वादन्धूधसोः ॥

आङ्पूर्वक ओप्यायी धातु से निष्ठा परे हो तो उस धातु को पी आदेश कहना चाहिये । आपीनोऽन्धुः । आपीनम् ऊधः । पूर्वसूत्र से सर्वत्र पी आदेश सिद्ध है फिर भी जो (आङ्पूर्व०) इत्यादि विधान है सो नियमार्थ है अर्थात् आङ् पूर्वक से निष्ठा के परे अन्धु और ऊधस् ही वाच्य हों तो (पी) आदेश हो अन्यत्र न हो । आप्यानश्चन्द्रमाः । तथा यह उभयतो नियम भी है अन्धु ऊधस् वाच्य हों तो आङ्पूर्वक ही से निष्ठा के परे पी आदेश हो । अन्यपूर्व से न हो । प्रप्यानोन्धुः । प्रप्यानमूधः ॥ १२०५ ॥

१२०६—ह्लादो निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९५ ॥

निष्ठा परे हो तो ह्लाद अङ्ग को ह्रस्वादेश हो । प्रह्लन्नः । प्रह्लन्नवान् । निष्ठा ग्रहण से यहां न हुआ । प्रह्लादयति ॥ १२०६ ॥

१२०७—द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४० ॥

तादि कित् परे हो तो द्यति, स्यति, मा, स्था इन अङ्गों को इकारादेश हो । द्यति [दो] अवखण्डने । दितः । दितवान् । स्यति, [षो] अन्तकर्मणि । सितः । सितवान् मा, [मा] माने [माङ्] माने [मेङ्] प्रणिदाने । मितः । मितवान् । स्था, [ष्ठा] गतिनिवृत्तौ । स्थितः । स्थितवान् ॥ १२०७ ॥

१२०८—शाछोरन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४१ ॥

तादि कित् परे हो तो शा, छा अङ्गों को इकारादेश विकल्प कर के हो । निशितम् । निशातम् । निशितवान् । निशातवान् । अवच्छितम् । अवच्छातम् । अवच्छितवान् । अवच्छातवान् । यह व्यवस्थित विभाषा है इस से व्रतविषय में श्यति को नित्य इकारादेश होता है । संशितं व्रतम् । सम्यक् प्रकार से संपादन किया व्रत है । संशितो ब्राह्मणः । व्रतविषयक यत्नवान् ब्राह्मण है ॥ १२०८ ॥

१२०९—दधातेर्हिः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४२ ॥

तादि कित् परे हो तो डुधाञ् धातु को हि आदेश हो । अभिहितम् । निहितम् विहितम् ॥ १२०९ ॥

१२१०—सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४५ ॥

वेदविषय में सुधित, वसुधित, नेमधित धिष्व, धिषीय ये निपातन हैं । गर्भं माता सुहितम् वसुधितमग्नौ जुहोति । नेमधिता बाधन्ते । इन में सु, वसु, नेमपूर्वक [डुधाञ्] धातु को इकारादेश निपातन है लोक में । सुहित, वसुहित नेमहित होगा । धिष्वसोमम् सुरेता रेतो धिषीय । इन दोनों में डुधाञ् को इत्व वा प्रत्यय को इडागम निपातन है (धिष्व) लोट् मध्यमैकवचन में ह लोक में (धत्स्व) होता तथा (धिषीय) आशीर्लिङ् के उत्तमैकवचन में है लोक में (धासीय) होता है ॥ १२१० ॥

१२११-दो दद् घोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४६ ॥

तादि कित् परे हो तो घु संज्ञक दा धातु को दथ् आदेश हो । डुदाञ् दत्तः । दत्तवान् । दाग्रहण से यहां न हुआ । धेट्, पाने धीतः । धीतवान् । यहां (३४१) ईकारादेश० । घुग्रहण से यहां न० । दैप् शोधने । अवदातम् मुखम् । उक्त आदेश को दत्, दद्, दध्, दथ् इन में कौन सा मानना चाहिये ॥ १२११ ॥

१२१२—का०—तान्ते दोषो दीर्घत्वं स्याद् दान्ते दोषो निष्ठानत्वम् । धान्ते दोषो धत्वप्राप्ति स्थान्तेऽदोषस्तस्मात्थान्तः ॥

यदि उस को तान्त अर्थात् (दत्) माने तो विदत्त, यहां अगले (१२१५) सूत्र से उपसर्ग के इक् को दीर्घादेश * प्राप्त है । दान्त (दद्) माने तो [दद्+त+सु=] दत्त यहां [११४०] सूत्र से निष्ठा को तथा पूर्व द को नकारादेश प्राप्त है । धान्त [दध्] माने तो (१४१) सूत्र से निष्ठा तकार को धकार प्राप्त है इस से थान्त [दथ्] मानना चाहिये क्योंकि थान्त में दोष नहीं है उपसर्ग से परे [प्र+दा+त+सु=] यहां ॥ १२१२ ॥

१२१३—अच उपसर्गात्तः ॥ ७ । ४ । ४७ ॥

अजन्त उपसर्ग से परे घु संज्ञक दा धातु को त आदेश हो । आदेश होकर

---

* (दस्ति) इस सूत्र का जब यह अर्थ हो कि डुदाञ् धातु का जो तकारान्त आदेश उस के विषय में इगन्तोपसर्ग को दीर्घ हो । तब दीर्घादेश प्राप्त है।

दान्त धान्त पक्ष में भी पारिभाषिकस्थ सन्निपात परिभाषा के विरोध से दत्व धत्व नहीं प्राप्त हैं ।

(प्रद्त+त+सु=) प्रत्तम् । अवत्तम् ॥ १२१३ ॥

१२१४--का०--अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि । सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते ॥

• अवदत्त, विदत्त, आदिकर्म में प्रदत्त, सुदत्त, अनुदत्त तथा निदत्त ये भी इष्ट हैं अर्थात् इन सभों में दा को तकारादेश प्राप्त है सो न हुआ किन्तु दथ् आदेश होता है (चेष्यते) यहां चकारग्रहण से यह जानना चाहिये कि एक पक्ष में तकार आदेश होता भी है ॥ १२१४ ॥

१२१५--दस्ति ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १२४ ॥

डुदाञ् धातु का जो तकारादि आदेश सो परे हो तो इगन्त उपसर्ग को दीर्घादेश हो । नीत्तम् । वीत्तम् । परीत्तम् । इन में दा के आकार के स्थान में यद्यपि (१२१३) त आदेश होता है तथापि (सं०२०२) सूत्र से पूर्व द् को चर हो कर तकारादि आदेश हो जाता है । आश्रयात्सिद्धत्वं भविष्यति । महाभाष्य ६ । ३।१२४ । चर्त्वके आश्रय से चर का सिद्धभाव हो जायगा अर्थात् (दस्तियहां) जो तकारादि का आश्रय किया है इस से चर् (संधि० ८४) असिद्ध नहीं होगा ॥ १२१५ ॥

१२१६--अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३६ ॥

ल्यप् और तादि कित् परे हो तो अद् धातु को जग्धि आदेश हो । अद, जग्धः । जग्धवान् । यहां क्त प्रत्यय के परे अद को जग्धि आदेश, इकारेत् (नामि० १३) संज्ञा, निष्ठा तकार को (१४१) धकार और पूर्व धकार का (सं०३१०) लोप् हो जाता है । स कटं प्रकृतः । प्रकृतः कटस्तेन । यहां (११८१) सूत्र से आदि कर्म विषयक क्त प्रत्यय कर्त्ता में होता है । तथा । प्रक्षीणः तपस्वी । यहां भी कर्ता में होता और (११३८) क्षि धातु को दीर्घ (११३९) सूत्र से निष्ठा को नत्वादेश होता है ॥ १२१६ ॥ ॥

१२१७--वाक्रोशदैन्ययोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६१

भाव कर्म से अन्य अर्थ में निष्ठा परे हो तो आक्रोश (कोशना) और दैन्य (दीनता) अर्थ में क्षि धातु को विकल्प करके दीर्घादेश हो आक्रोश, क्षीणायुर्भव । यहां क्षि को दीर्घादेश होकर (११३९) निष्ठा को नत्व हो जाता है द्वितीय पक्ष में । क्षितायुर्भव । दैन्य, क्षितः क्षीणोयं वा तपस्वी ॥ १२१७ ॥

१२१८-वा०-निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः ॥

षत्वविधि, स्वरविधि, प्रत्ययविधि, तथा इड्विधि में निष्ठादेश सिद्ध है यह कहना चाहिये । ष,वृक्णः। वृक्णवान्। यहां (११४६) निष्ठा को नकारादेश उस के असिद्ध (सं० ९४) होने से च् को (२३३) सूत्र से षत्व प्राप्त है सो नकारादेश के सिद्ध होने से झल् के अभाव से नहीं होता किन्तु (सं०१६१) कुत्व होता है स्वर आदि विषयों की आवश्यकता न होने से उन के उदाहरण नहीं दिये॥ १२१८

१२१९-गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७२ ॥

गति जिनका अर्थ है उनसे तथा अकर्मक, श्लिष शीङ्, स्था, आस, वस, जन रुह,जृष् इनधातुओं से विहित जो क्त प्रत्यय सो कर्ता और यथाप्राप्त भाव कर्म में हो। गत्यर्थ, गम्लृ, ग्रामं गतो देवदत्तः । ग्राम को देवदत्त गया । गतो ग्रामो देवदत्तेन । देवदत्त को ग्राम प्राप्त हुआ । अकर्मक, ग्लै, ग्लानो देवदत्तः । ग्लानं देवदत्तेन । श्लिष लक्ष्मीम् आश्लिष्टो विष्णुः । आश्लिष्टा लक्ष्मी विष्णुना । शीङ् खट्वामधिशयितः । खट्वाधिशयिता ।स्था गुरुमुपस्थितः। गुरुरुपस्थितस्तेन । आस, उपासितः परमेश्वरं भवान् । उपासितः परमेश्वरो भवता । वस, गुरुमनूषितो भवान् । अनूषितो गुरुर्भवता। जन, राममनुजातो लक्ष्मणः । अनुजातो लक्ष्मणेन रामः । रुह, अश्वमारूढोदेवदत्तः आरूढोऽश्वो देवदत्तेन । जृष, शुनीमनुजीर्णः श्वा । शुनानुजीर्णा शुनी । उक्त प्रयोगों में (९१४) सूत्र से प्राप्त भावकर्म में भी (क्त) होता है श्लिष आदि अकर्मक भी हैं तथापि सोपसर्ग सकर्मक होजाते हैं इस से इन का ग्रहण है ॥ १२१९ ॥

१२२०-क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७६ ॥

ध्रौव्य (स्थिरता) गति (गमन) और प्रत्यवसान (भक्षण) अर्थ वाले धातुओं से विहित जो क्त प्रत्यय सो अधिकरण और यथाप्राप्त भाव कर्म में हो । ध्रौव्यार्थक अकर्मक हैं उन से कर्त्ता, भाव, अधिकरण में गत्यर्थकों से कर्त्ता, कर्म, अधिकरण में तथा प्रत्यवसानार्थकों से कर्म और अधिकरण में क्त होता है । ध्रौव्यार्थ, आसितो देवदत्तः । आसितं मुकुन्देन । आसितम् मुकुन्दस्य वा । गत्यर्थ, देवदत्तो ग्रामं गतः । गतो देवदत्तेन ग्रामः । देवदत्त को ग्राम प्राप्त हुआ है। गतं देवदत्तस्य । यहां देवदत्त का गमन

हुआ है प्रत्यवसानार्थ,भुक्त ओदनो देवदत्तः । देवदत्तस्य भुक्तम् । उक्त उदाहरणों में (९१४,१८६) सूत्रों के अनुसार कर्म और कर्त्ता में भी क्त प्रत्यय होता है ॥१२२०॥

१२२१–ञीतः क्तः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८७ ॥

ञि जिस का इत्संज्ञक हो उस से वर्त्तमान काल में क्त प्रत्यय हो । ञिक्ष्विदा क्ष्विण्णः । क्ष्विण्णवान् ॥ १२२१ ॥

१२२२–मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । २।१८८ ॥

मति (इच्छा) बुद्धि (ज्ञान) पूजा (सत्कार) इन अर्थों वाले धातुओं से वर्त्तमान काल में क्त प्रत्यय हो । राज्ञां मतः । राज्ञामिष्टः । राज्ञां बुद्धः । राज्ञां ज्ञातः राज्ञां पूजितः । राज्ञामर्चितः । (राज्ञाम्) यह षष्ठी (कार० १२०) से होती है । चकार अनुक्त शब्दों के संग्रह करने के लिये है इस से अगले प्रयोग भी जानने चाहिये ॥ १२२२ ॥

१२२३--का० शीलितो रक्षित क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि ॥
रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि ॥ १ ॥
हृष्टतुष्टौ तथा क्रान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ ॥
कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृताः पूर्ववत्स्मृताः ॥ २ ॥

शीलित, रक्षित, क्षान्त, आक्रुष्ट, जुष्ट, रुष्ट, रुषित, अभिव्याहृत, हृष्ट, तुष्ट क्रान्त तथा संयत उद्यत ये भी वर्तमान काल में जानने चाहिये । 'कष्ट, इस शब्द को भविष्यत्काल में कहते हैं और अमृत शब्द का पूर्ववत् (शीलित आदि के तुल्य वर्त्तमान काल में) स्मरण करना चाहिये । न म्रियन्ते,अमृताः ॥ १२२३ ॥

१२२४--नपुंसकेभावे क्तः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११४ ॥

भाव का प्रकाश करना हो तो नपुंसकलिङ्ग में धातु से क्त प्रत्यय हो । हसितम् । शयितम् । जल्पितम् देवदत्तेन ॥ १२२४॥

१२२५–सुयजोर्ङ्वनिप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०३ ॥

षुञ् और यज धातु से भूतकाल में ङ्वनिप् प्रत्यय हो । असावीत् असोष्ट वा सुत्वा । सुत्वानौ । सुत्वानः । अयाक्षीत् अयष्ट वा, यज्वा । यज्वानौ । यज्वानः ॥१२२५॥

१२२६--जीर्यतेरतृन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०४ ॥

जूष धातु से भूतकाल में अतृन् प्रत्यय हो । अजरत् अजारीद् वा जरन् । जरन्तौ । जरन्तः । वासरूपविधि (६११) से निष्ठा संज्ञक भी होते हैं । जीर्णः । जीर्णवान् ॥ १२२६ ॥

१२२७--छन्दसि लिट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०५ ॥

वेदविषय में भूतकाल में धातु से लिट् प्रत्यय हो । अहं सूर्यमुभयतो ददर्श । अहं द्यावापृथिवी आततान ॥ १२२७ ॥

१२२८--लिटः कानज्वा ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०६ ॥

पूर्वविहित (१२२७) वेदविषयक लिट् के स्थान में कानच् आदेश विकल्प करके हो । अग्निमचैषीत्, अग्निं चिक्यानः । सोमं सुषुवाणः । इन में चिञ् वा षुञ् धातु से लिट् के स्थान में कानच् आदेश है । विकल्प के ग्रहण से कहीं नहीं भी होता । जैसे पूर्वोक्त उदाहरण । अहं सूर्यमुभयतो ददर्श । इत्यादि ॥ १२२८ ॥

१२२९--क्वसुश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०७ ॥

पूर्वविहित (१२२७) वेद विषयक लिट् के स्थान में क्वसु आदेश भी हो ॥ १२२९ ॥

१२३०--वस्वेकाजाद्घसाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६७ ॥

द्विर्वचन किये हुए एकाच्, आकारान्त, घस्लृ इन्हीं धातुओं से परे जो वसु उस को इट् आगम हो । एकाच्, अशकदिति शेकिवान् । यहां शकृ धातु से लिट् (१२२७) के स्थान में क्वसु (१२२९) और धातुद्विर्वचन (३६) तथा एत्वाभ्यासलोप (१२९) होकर जो एकाच् (शेक्) हो जाता है उस से परे वसु को इडागम हो जाता है । आत्, पपिवान् । घस्लृ जक्षिवान् । यहां (२१४ सूत्र से उपधालोप और उस को (संधि० ६८) रूपातिदेश हो कर द्वित्व (३६) और षत्व (२८४) हो जाता है क्वसु तो लिट् के स्थान में ही होता है और लिड्विषय में क्रादिनियम (१४८) वा उदात्तत्व से इट् प्राप्त ही है । फिर भी जो इट् का विधान किया इस से यह सूत्र नियमार्थ है अर्थात् वसु को इट् एकाच् आदि ही से परे हो अन्य से न हो । इस से बिभिद्वान् । बभूवान् । इत्यादि में इट् नहीं होता ॥ १२३० ॥

१२३१-भाषायां सदवसश्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०८ ॥

भाषा अर्थात् लोक में सद, वस, श्रु इन धातुओं से परे भूतकाल में विकल्प करके लिट् और उस के स्थान में क्सु आदेश नित्य हो । षद्लृ, उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम् । विकल्पपक्ष में अपने २ विषय में यथोक्त प्रत्यय होते हैं । जैसे भूतसामान्य काल में लुङ् । उपासदत् । अनद्यतन भूतमें लङ् । उपासीदत् । परोक्षभूत में लिट् । उपससाद [वस] निवासे । अनूषिवान् (२८३)कौत्सः पाणिनिम् । अन्ववात्सीत् अन्ववसत । अनूवास । श्रु, उपशुश्रुवान् कौत्सः पाणिनिम् । उपाश्रौषीत । उपाशृणोत् । उपशुश्राव ॥ १२३१ ॥

१२३२ उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०९ ॥

उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान ये भाषा में निपातन है । उपेयिवान् । यहां उपपूर्वक [इण] गतौ धातु से लिट् विकल्प करके और उसको नित्य क्सु द्विर्वचन (३६) अभ्यास दीर्घ (३४०) और अभ्यासदीर्घसामर्थ्य से एकादेश (सं०१०१) का प्रतिबन्ध हो कर अनेकाच् (उप+ई+इ+वसु=) से इट् निपातन है । उपेयुषां । उपेयुषे । उपेयुषः । उपेयुषि । इत्यादिकों में निपातन इट् नहीं होता क्योंकि 'उपेयिवान्' यहां क्रादिनियम (१७८) से प्राप्त भी इट् था पर (१२३०) सूत्र के नियम से अनेकाच् से नहीं होता था उसी इट् का प्रादुर्भाव मात्र किया किन्तु अपूर्व इट् विधान नहीं किया इस से अजादिकों में जहां वसु को (नामि० १५१) सूत्र से संप्रसारण होता वहां इट् नहीं होता है । यहां उप अविवक्षित है जैसे । समीयिवान् । ईयिवान् । लिट् के विकल्प पक्ष में पूर्ववत् लुङादि होते हैं । उपागात् । उपैत् । उपेयाय । अनाश्वान् । यहां नञ् पूर्वक [अश] भोजने धातु से पूर्ववत् लिट् क्सु और इट् अभाव निपातन हैं । विकल्प पक्ष में । अनाश्वान् । नाशीत् । नाश्नात् । नाश। अनूचानः कर्त्तरि ॥ महाभाष्य ३ । २ । १०९ । अनूक्तवान् अनूचानः । यहां अनुपूर्वक वच से कर्त्ता में पूर्ववत् लिट् उस के स्थान में कानच् आदेश निपातन है । दूसरे पक्ष में । अनूचानः । अन्ववोचत् । अन्वब्रवीत । अनूवाच ॥ १२३२ ॥

१२३३--विभाषा गमहनविदविशाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६८ ॥

गम, हन विद विश,इन से परे वसु को इट् विकल्प करके हो । गम्लृ,जग्मिवान् [२१४] जगन्वान् (१३७) हन,जघ्निवान् । जघन्वान् । विद, विविदिवान् । वि-

विद्वान् । विश, विविशिवान् । विविश्वान् । विश के साहचर्य्य से यहां विद करके [विद्लृ] लाभे का ग्रहण है जो इस ग्रन्थ में (२७७) संख्या पर सूत्र लिखा है उस से अष्टाध्यायी के क्रम से मण्डूकप्लुतिवत् दृश् का अनुवर्त्तन कर । दृशिर् से ददृशिवान् । ददृश्वान् । ये भी समझने चाहिये ॥ १२३३ ॥

१२३४—सनिंससनिवांसम् ॥ अ० ॥ ७ । २ ॥ ६९ ॥

वसु के इट्प्रकरण में 'सनिंससनिवांसम्' यह निपातन है । अग्निंत्वाग्ने सनिंससनिवांसम् । यहां सनिङ्पूर्वक [षुञ्] अभिषवे वा [षन] संभक्तौ से वसु को इट् आगम तथा एत्व और अभ्यास लोप का अभाव निपातन है यह निपातन वेद ही में आता है ॥ १२३४ ॥

१२३५ — लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२४ ॥

जब प्रथमान्त के साथ लट् (४) प्रत्यय का समानाधिकरण न हो तो उस के स्थान में शतृ और शानच् प्रत्यय विकल्प से हों । ये दोनों प्रत्यय शित् हैं इस से इन की सार्वधातुक संज्ञा (१८) होकर इन के परे शप् (१९) आदि प्रत्यय भी होते हैं । जैसे (पच्+शप्+शतृ+अम्=) पचन्तं चैत्र पश्य । यहां लट् जिस का वाचक है वह कर्तृसंज्ञक चैत्र शब्द द्वितीयान्त है (७५२) इस संख्या पर जो सूत्र लिखा है उस से विभाषा पद की अनुवृत्ति यहां आती है उस को व्यवस्थित विभाषा मान कर प्रथमासमानाधिकरणमें लट् के स्थान में शतृ शानच् विकल्प करके होते हैं यह समझना चाहिये । पचन् मैत्रः । पचति मैत्रो वा । मैत्र किसी के लिये पचा रहा है ॥ अप्रथमासमानाधिकरण में तो नित्य होते हैं ॥ १२३५ ॥

१२३६ — आने मुक् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८२ ॥

आन परे हो तो अङ्ग के अकार को मुक् का आगम हो । पचमानं चैत्र पश्य । यहां लट् के स्थान में शानच् आदेश है । पचमानो मैत्रः । पचते मैत्रः । मैत्र अपने लिये पकाता है ॥ १२३६ ॥

१२३७ — वा० — माङ्याक्रोशे ॥

माङ् उपपद हो तो आक्रोश (निन्दा) अर्थ में उक्तविषयक शतृ शानच् हों । मा पचन् । मा पचमानः । मत पका रे ॥ २१३७ ॥

१२३८—संबोधने च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२५ ॥

संबोधनविषय में लट् के स्थान में शतृ शानच् प्रत्यय विकल्प कर के हों। हे पचन्। हे पचमान। हे कुर्वन्। हे कुर्वाण ॥ १२३८ ॥

१२३९—लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२६ ॥

क्रिया के लक्षण (परिचय कराने) और हेतु (कारण) अर्थ में वर्तमान धातु से परे लट् के स्थान में शतृ शानच् आदेश विकल्प कर के हों। लक्षण, शयाना वर्धते दूर्वा। शयाना भुञ्जते यवनाः। हेतु, धनमर्जयन् वसति। अधीयानो वसति। लक्षणहेतुग्रहण से यहां न हुए। अधीते। भुङ्क्ते। क्रियाग्रहण से द्रव्य और गुण के परिचयादि में न०। यः कम्पते स वटः। यः स्थिरो भवति स गुरुः ॥ १२३९ ॥

१२४०—ईदासः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८३ ॥

आस् धातु से आन को ईकारादेश हो। आसीनः। आस्ते। आसीनं पश्य। आसीनेन कृतम् इत्यादि ॥ १२४० ॥

१२४१—विदेः शतुर्वसुः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३६ ॥

विद (विद ज्ञाने) से परे शतृ को वसु आदेश विकल्प करके हो। विद्वान्। विदन्। विदुषी (नामि० १५६) १२४१ ॥

१२४२—तौ सत् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२७ ॥

पूर्वोक्त शतृ और शानच् सत्संज्ञक हों ॥ १२४२ ॥

१२४३—लृटः सद्वा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४ ॥

लृट् के स्थान में सत्संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों। यहां भी यह विकल्प व्यवस्थित विभाषा है इस से जैसे लट्स्थानी शतृ शानच् प्रथमासमानाधिकरण में विकल्प करके और द्वितीयादिकों में नित्य होते हैं वैसे यहां भी हों। करिष्यन्तं करिष्यमाणं मैत्रं पश्य। करिष्यमाणः। करिष्यति। हे करिष्यन्। हे करिष्यमाण। अर्जयिष्यमाणो वसति ॥ १२४३ ॥

१२४४—पूङ्यजोः शानन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२८ ॥

वर्त्तमान काल में पूङ् और यज धातु से शानन् प्रत्यय हो। पूङ्, पवमानः। यज, यजमानः ॥ १२४४ ॥

१२४५-ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ॥ अ० ॥३।२।१२९॥

वर्त्तमानकाल में ताच्छील्य (स्वभाव) वयोवचन (अवस्थासंबन्धीवचन) शक्ति (सामर्थ्य) इन अर्थों में धातु से चानश् प्रत्यय हो । ताच्छील्य, घृतं भुञ्जानः । वयोवचन, कवचं बिभ्राणः । शक्ति, शत्रुं निघ्नानः॥ १२४५ ॥

१२४६-इङ्धार्य्योः शत्रकृच्छ्रिणि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३० ॥

कष्टसाध्य जिस का क्रियाफल न हो वह कर्त्ता वाच्य हो तो वर्त्तमान काल में इङ् और णिजन्त धृञ् धातु से शतृ प्रत्यय हो । अधीयन् पारायणम् । धारयन्नुपनिषदम् । अकृच्छ्रिन् ग्रहण से यहां न हुआ । कृच्छ्रेणाधीते । कृच्छ्रेण धारयति ॥ १२४६ ॥

१२४७- द्विषोऽमित्रे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३१ ॥

अमित्र (शत्रु) कर्त्ता वाच्य हो तो वर्त्तमानकाल में द्विष धातु से शतृ प्रत्यय हो द्वेष्टीति द्विषन् । द्विषन्तौ । द्विषन्तः । अमित्रग्रहण से यहां न हुआ । पिता पुत्रं द्वेष्टि ॥ १२४७ ॥

१२४८-सुञो यज्ञसंयोगे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३२ ॥

वर्त्तमान काल में यज्ञसंयोग (अभिषव) अर्थ में वर्त्तमान षुञ् धातु से शतृ प्रत्यय हो । सर्वे सुन्वन्तः । यहां संयोगग्रहण प्रधान कर्त्ताओं के ग्रहण करने के लिये है अर्थात् साधारण यज्ञ करने कराने वालों के ग्रहण में नहीं होता । याजकाः सुन्वन्ति । यज्ञ का ही संयोग ग्रहण क्यों किया । सुरां सुनोति । यहां न हो ॥ १२४८

१२४९-अर्हः प्रशंसायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३३ ॥

प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान काल में अर्ह धातु से शतृ प्रत्यय हो । भवान् विद्यामर्हन् । प्रशंसाग्रहण से यहां न० तस्करो वधमर्हति ॥ १२४९ ॥

१२५०-आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ॥ अ० ३।२।१३४॥

यहां से लेकर क्विप् प्रत्यय पर्यन्त जो प्रत्यय कहें वे वर्त्तमान काल में तच्छील (जो स्वभाव से फल को न चाह कर कर्म में प्रवृत्त हो) तद्धर्मा (जो विना भी शील मेरा धर्म है ऐसा मान कर कर्म में प्रवृत्त हो) तत्साधुकारी (क्रिया को सुन्दरता से करे) इन कर्त्ताओं में हों ॥ १२५० ॥

१२५१-तृन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में धातुमात्र से तृन् प्रत्यय हो । तच्छील, कटं करोति तच्छीलः, कटं कर्त्ता । जनापवादान् वदिता । तद्धर्मा, उन्नयन्ति तद्धर्मिण उन्नेतारः तौल्वलायनाः पुत्रे जाते । तत्साधुकारी, साधु कटं करोति,कटं कर्त्ता ॥ १२५१॥

१२५२-वा०-तृन्विधावृत्विक्षु चानुपसर्गस्य ॥

तृन् प्रत्यय के विधान करने में ऋत्विज् आदि कर्त्ता हों तो उपसर्गरहित धातु से (तृन् प्रत्यय कहना चाहिये । जुहोतीति होता । पुनातीति । पोता । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रतिहर्त्ता । यहां तृच् होता है ॥ १२५२ ॥

१२५३-वा०-त्विषेर्देवतायामकारश्चोपधाया अनिट्त्वं च ॥

देवता अर्थ में त्विष धातु से तृन् प्रत्यय तथा उपधा को अकार और इट् का अभाव भी कहना चाहिये । त्विष, त्वेषितुं शीलमस्य, त्वष्टा ॥ १२५३ ॥

१२५४-वा०-क्षदेश्च नियुक्ते ॥

नियुक्त (जो कहीं अधिकार पाये हो उस) कर्त्ता में क्षद धातु से तृन् प्रत्यय कहना चाहिये । क्षदसौत्र धातु है इस को आच्छादन अर्थ में मानते हैं। क्षत्ता सारथि का नाम है ॥ १२५४ ॥

१२५५-वा०-छन्दसि तृच्च ॥

वेदविषय में क्षद धातु से तृच् और तृन् प्रत्यय हों। क्षतृभ्यः संगृहीतृभ्यः॥ १२५५॥

१२५६-अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रप वृतुवृधुसहचर इष्णुच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में अलंकृञ् निराकृञ्, प्रजन, उत्पच, उत्पत, उन्मद रुच, अपत्रप, वृतु, वृधु सह, चर इन धातुओं से इष्णुच् प्रत्यय हो । अलं-कृञ्. अलंकर्तुंशीलमस्य अलंकर्तुंधर्मोस्य, साध्वलं करोति वा अलंकरिष्णुः । निर्-आङ्कृञ् निराकरिष्णुः । प्र-जन, प्रजनिष्णुः । उद्-डुपचष्, उत्पचिष्णुः । उद्-पतॢ उत्पतिष्णुः । उद्-मदी, उन्मदिष्णुः रुच, रोचिष्णुः । अप-त्रपूष्, अपत्रपिष्णुः वृतु, वर्त्तिष्णुः । वृधु, वर्धिष्णुः । षह, सहिष्णुः । चर, चरिष्णुः ॥ १२५६ ।

१२५७–णेश्छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३७॥

वेदविषय में तच्छीलादि कर्त्ताओं में णिजन्त धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो । दृषदं धारायिष्णवः । वीरुधः पारयिष्णवः ॥ १२५७ ॥

१२५८–भुवश्च ॥ अ० ॥ ३ ।२ । १३८॥

वेदविषय में तच्छीलादि कर्त्ताओं में भू धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो । भविष्णुः । चकार अनुक्त के ग्रहण करने के लिये है । इस से टुभ्राजृ णिजन्त से । भ्राजयिष्णु भी समझ लेना चाहिये ॥ १२५८ ॥

१२५९–ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः ॥ अ० ॥ ३ । २ ॥ १३९ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में ग्ला, जि, स्था, और, भू इन धातुओं से क्स्नु, प्रत्यय हो । ग्लै, ग्लास्नुः । जि, जिष्णुः । ष्ठा, स्थास्नुः । भू, भूष्णुः । यहां चर्त्व होकर 'ग्' को 'क्' हो गया है (४५) सूत्र में 'ग्, के निर्देश से उक्त प्रयोगों में गुणादेश नहीं होता तथा (२५५) सूत्र में ग् के निर्देश से ' भूष्णु, यहां इडागम भी नहीं होता है ॥ १२५९ ॥

१२६०–वा०–स्थादंशिभ्यां स्नुश्छन्दसि ॥

वेद में स्था और दंश धातु से स्नुप्रत्यय० । स्थास्नु जङ्गमं दंदणवः पशवः॥१२६०॥

१२६१–त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ॥ अ०॥३ । २।१४० ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में त्रसी, गृधु, ञिधृषा, इन धातुओं से क्नु प्रत्यय हो । त्रसी, त्रस्नुः । गृधु, गृध्नुः, । ञिधृषा, धृष्णुः । क्षिप, क्षिप्नुः ॥ १२६१ ॥

१२६२–शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्॥ अ० ॥ ३ । २। १४१ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में शमु *आदि आठ धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो (घिनुण्) यहां घकार कुत्व के लिये उकार उगित् कार्य के लिये णकार वृद्धि के लिये है । शमितुं शीलं धर्मो वास्य साधुशाम्याति वा शमी । शमिनौ । शमिनः । यहां उगित् कार्य्य नुम् (नामि० ११३) नहीं होता । नुम् विधि में अष्टाध्यायी के क्रम से [नामि० ४५] सूत्र से झल् का अपकर्षण कर झलन्त उगित् को नुम् आगम हो ऐसा अर्थ वहां जानेंगे । यहां वृद्धि (१२६) प्राप्त है उसी की निवृत्ति [७२६] से हो

*(शमु)उपशमे (तमु) काङ्क्षायाम् (दमु) उपशमे(श्रमु) तपसि खेदे च (भ्रमु) अनवस्थाने(क्षमू) सहने(क्लमु) ग्लानौ(मदी) हर्षे ये आठ शमादि धातु हैं ॥

जाती है । तमी । दमी । श्रमी । भ्रमी । क्षमी । क्लमी । प्रमादी । आठ का ही ग्रहण क्यों किया । असु, असिता यहां न हो ॥ १२६२ ॥

१२६३-संपृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृ संसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च॥अ०॥३।२।१४२॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में सम्पृचादि धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो (सम्पृच) यहां रुधादि [पृची] संपर्के इस का ग्रहण है । सम्पृणक्ति तच्छीलः, संपर्की । अनुरुध, अनुरुध्यते तच्छीलः, अनुरोधी । आङ्यम, आयच्छति तच्छीलः आयामी । आयसु, आयस्यति आयसति वा तच्छीलः आयासी परिसृ, परिसरति । तच्छीलः परिसारी । संसृज, संसृज्यते । तच्छीलः, संसर्गी । परिदेवि, यहां [देवृ] देवने इस भ्वादिस्थ का ग्रहण है । परिदेवते तच्छीलः, परिदेवी । जो विलाप करता है उस के जैसा स्वभाव वाला पुरुष है । संज्वरति तच्छीलः संज्वारी । परिक्षिप, [क्षिप] प्रेरणे दिवादि वा तुदादि दोनों का ग्रहण है । परिक्षिप्यति, परिक्षिपति । परिक्षिपते वा तच्छीलः, परिक्षेपी । परिरट, परिरटति तच्छीलः, परिराटी । परिवदति तच्छीलः, परिवादी । परिदह्यति तच्छीलः, परिदाही । परिमुह, परिमुह्यति, तच्छीलः परिमोही । दुष, दुष्यति तच्छीलः दोषी । द्विष, द्वेष्टि तच्छीलः द्वेषी । द्रुह, द्रुह्यति तच्छीलः, द्रोही । दुह, दोग्धि तच्छीलः दोही । युज, यहां [युज] समाधौ दिवादि [युजिर्] योगे रुधादि इन दोनों का ग्रहण है युज्यते युनक्ति युङ्क्ते वा तच्छीलः, योगी । आक्रीडृ, आक्रीडते तच्छीलः, आक्रीडी । वि विचिर् , विविनक्ति विविनक्ते वा तच्छीलः, विवेकी । त्यज, त्यागी (९४३) रञ्ज, रागी । भज भागी । अतिचर, अतिचारी । अपचर, । अपचारी । आमुष, आमुष्णाति तच्छीलः आमोषी । अभिआङ्हन, अभ्याहन्ति, तच्छीलः अभ्याघाती (३०४, ५०२) इन सूत्रों से कुत्व और तकारा देश० ॥ १२६३ ॥

१२६४-वौ कषलसकत्थस्रम्भः अ० ॥ ३ । २ । १४३ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विपूर्वक कष, लस, कत्थ, स्रम्भु इन धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो । [कष] हिंसायाम् । विकाषी । लस । श्लेषणक्रीडनयोः । विलासी [कत्थ] श्लाघायाम् । विकत्थी [स्रम्भु] विश्वासे । विस्रम्भी ॥ १२६४ ॥

१२६५-अपे च लषः ॥ अ० ३ । २ । १४४ ॥

अप और वि पूर्व हों तो लष धातु से घिनुण् प्रत्यय हो तच्छी० । [लष] कान्तौ । अपलाषी विलाषी ॥ १२६५ ॥

१२६६-प्रे लपसृद्रुमथवदवसः ॥ अ० ॥ ३ । २ १४५॥

तच्छीलादिकों में प्र पूर्वक लप, सृ, द्रु, मथ, वद, वस इन धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो । प्रलप, प्रलापी । प्रसृ, प्रसारी । प्रद्रु, प्रद्रावी । प्रमथे, प्रमाथी । प्रवद, प्रवादी । प्रवस, वस निवासे प्रवासी ॥ १२६६ ॥

१२६७-निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयो वुञ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में निन्द आदि धातुओं से वुञ् प्रत्यय हो । णिदि, निन्दकः । हिसि, हिंसकः । क्लिश उपतापे वा क्लिशू विबाधने दोनों का ग्रहण है । क्लेशकः खादृ, खादकः विनाश, वि–णश–णिच, विनाशयति तच्छीलः, विनाशकः । परिक्षिप, परिक्षेपकः । परिरट, परिराटकः । परिवद, परिवादकः । वि–आ–भाष, व्याभाषकः । ण्वुल (९७४) प्रत्यय से भी उक्त प्रयोग सिद्ध हैं फिर वुञ् प्रत्यय का यह प्रयोजन है कि तच्छीलादिकों में वासरूपन्याय (९११) से तृच् आदि अन्य प्रत्यय नहीं होते हैं ॥ १२६७ ॥

१२६८-देविक्रुशोश्चोपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४७ ॥

उपसर्ग पूर्व हो तो देवि और क्रुश धातु से वुञ् प्रत्यय हो तच्छी० । आदेवयति तच्छीलः, आदेवकः । परिदेवकः । परिक्रोशकः । उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ देवयिता । क्रोष्टा । यहां तृन् हो जाता है ॥ १२६८ ॥

१२६९--चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ॥ अ ॥ ३ । २ । १४८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में चलन और शब्द अर्थ वाले अकर्मक धातुओं से युच् प्रत्यय हो [चल] कंपने चलनः । कपि संचलने कम्पनः । चुप मन्दायां गतौ चोपनः । शब्दार्थ, शब्दनः । रवणः । अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ विद्यां पठिता । शास्त्रं वदिता । यहां तृन् हो जाता है ॥ १२६९ ॥

१२७०—अनुदात्तेतश्च हलादेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४९ ॥

अनुदात्त जिस का इत् संज्ञक हो ऐसा जो हलादि अकर्मक धातु उस से भी युच् प्रत्यय हो तच्छी ० । वृतु, वर्त्तनः । वृधु,वर्द्धनः । अनुदात्तेत् के ग्रहण से यहां न० । भविता । हलादि ग्रहण से यहां न० । एधिता । अकर्मकग्रहण से यहां न हुआ । वस्त्रं वसिता यहां तृन् हो जाता है ॥ १२७० ॥

१२७१—जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः ॥ अ० ३ २ । १५० ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जु आदि धातुओं से युच् प्रत्यय हो । जु, यह सौत्र धातु है इस को गति वा वेग अर्थ में मानते हैं । जवनः । चङ्क्रम्य, क्रमु—यङ् चङ्क्रम्यते तच्छीलः, चङ्क्रमणः । दन्द्रम्य, द्रमु—यङ्, दन्द्रमणः । सृ, सरणः । गृधु, गर्द्धनः । ज्वल, ज्वलनः । शुच, शोचनः । लष, लषणः । पत्लृ, पतनः । पद, पदनः। यद्यपि (१२७०) सूत्र से पद धातु से युच् प्रत्यय हो जाता तथापि पद का ग्रहण इस लिये है कि इस से सामान्य युच् प्रत्यय को बाधके विशेष उकञ् (१२७५) प्रत्यय न हो जाय क्योंकि तच्छीलादिकों में (९११) सूत्र के अनुसार परस्पर प्रत्यय नहीं होते हैं इस अंश में यही पदग्रहण ज्ञापक है ॥ असरूपनिवृत्यर्थं तर्हिपदग्रहणं क्रियते एतज्ज्ञापयत्याचार्य्यः । ताच्छीलिकेषु ताच्छीलिका वासरूपन्यायेन न भवन्ति महाभाष्य ३ । २ । १५० ॥ १२७१ ॥

१२७२—क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५१ ॥

तच्छीलादिकों में कोप और भूषण अर्थ वाले धातुओं से युच् प्रत्यय हो [क्रुध] कोपे क्रोधनः । रोषणः [मडि] भूषायाम् । मण्डनः । भूषणः ॥ १२७२ ॥

१२७३—न यः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५२ ॥

यकारान्त धातु से युच् प्रत्यय न हो [क्नूयी) शब्दे उन्दे च क्नूयिता [क्ष्मायी] विधूनने । क्ष्मायिता । इन में (१२७०) सूत्र से युच् प्रत्यय प्राप्त है सो नहीं होता किन्तु तृन् (१२५१) प्रत्यय होजाता है ॥ १२७३ ॥

१२७४—सूददीपदीक्षश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५३॥

सूद, दीप, दीक्ष इन धातुओं से युच् प्रत्यय न हो [षूद] क्षरणे सूदयति । तच्छीलः सूदिता [१२५१] दीपी, दीपिता । दीक्ष,दीक्षिता । इन सभों में [१२६९]

सूत्र से युच् प्राप्त है । यहां दीप ग्रहण क्यों किया क्योंकि दीप् धातु से विशेष विहित र [१२८९] प्रत्यय सामान्य युच् [१२७०] प्रत्यय को बाध के हो जाता इस लिये दीपि ग्रहण ज्ञापक है वासरूपन्याय [९११] से र प्रत्यय के साथ युच् का समावेश होता है । इस ज्ञापन से यह प्रयोजन है कि । कम्रा कन्या। कमना कन्या इत्यादि । सिद्ध हों ॥ १२७४ ॥

१२७५–लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५४

तच्छीलादि कर्त्ताओं में लष, पत, पद, स्था, भू, वृष, हन, कम, गम, शॄ इन धातुओं से उकञ् प्रत्यय हो । लष, अपलाषुकः । पत्लृ, प्रपातुकः । पद, पादुकः । ष्ठा, उपस्थायुकः । भू, भावुकः । वृष, प्रवर्षुकः । पर्जन्यः । हन, घातुकः । कमु, कामुकः । गम्लृ, आगामुकः [शॄ] हिंसायाम् । शृणातितच्छीलः शारुकः । किंशारुकम् तीक्ष्णम् ॥ १२७५ ॥

१२७६–जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट, वृङ्, इन धातुओं से षाकन् प्रत्यय हो । जल्प, जल्पाकः । भिक्ष, भिक्षाकः । कुट्ट, कुट्टाकः [लुटि]* स्तेये लुण्टाकः । वृङ्, वराकः । स्त्री लिङ्ग में जल्पाकी (स्त्रै० ७०) ङीष् हो जाता है ॥ १२७६ ॥

१२७७–प्रजोरिनिः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में प्रपूर्वक जु धातु से इनि प्रत्यय हो । प्रजवी । प्रजविनौ । प्रजविनः ॥ १२ ७७ ॥

१२७८–जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५७ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जि, दृ, क्षि, विश्रि, इण, टुवमु, अव्यथ, अभ्यम, परिभू प्रसू इन धातुओं से इनि प्रत्यय हो । जि, जेतुं शीलमस्य जयी । दृङ्, दरी [क्षि] क्षये [क्षि] निवासगत्योः । क्षयी । विश्रिञ् विश्रयी । इण् अत्ययी । टुवमु,वमी नञ्–व्यथ, अव्यथी । अभि–अमो, अभ्यमी । परि–भू परिभवी । प्रसू, प्रसवी ॥ १२७८

* इस धातु को कोई आचार्य्य लुठि कोई लुडि भी पढ़ते हैं ॥

१२७९–स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्पृह आदि धातुओं से आलुच् प्रत्यय हो [स्पृह] ईप्सायाम् स्पृहयालुः [ग्रह] ग्रहणे ग्रहयालुः [पत] गतौ पतयालुः । ये चुरादि अदन्तों में हैं । दय, दयालुः । निद्रा, [द्रा] कुत्सायाम् निद्रालुः । तद्--द्रा,तन्द्रालुः । यहां तद् के द् को नकारादेश निपातन है । श्रत्--डुधाञ , श्रद्धालुः ॥ १२७९ ॥

१२८०–वा०–आलुचि शीङ्ग्रहणम् ॥

आलुच् प्रत्यय के विषय में शीङ का भी ग्रहण करना चाहिये । शयितुं शीलमस्य शयालुः ॥ १२८० ॥

१२८१–दाधेट्सिशदसदोरुः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५९ ॥

दा, धेट, सि, शद, सद, इन धातुओं से रुप्रत्यय हो तच्छी० । दातुं शीलमस्य-दारुः । धातुं शीलमस्य धारुः । सीव्यति तच्छीलः । सेरुः । शीयते तच्छीलःशद्रुः।सीदति तच्छीलः । सद्रुः ॥ १२८१ ॥

१२८२–सृघस्यदः क्मरच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६० ॥

सृ घस अद् इन धातुओं से क्मरच् प्रत्यय हो तच्छी० । सृ, सृमरः । घस्लृ,घस्मरः । अद, अद्मरः ॥ १२८२ ॥

१२८३–भञ्जभासमिदो घुरच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६१

भञ्ज, भास मिद इन धातुओं से घुरच् प्रत्यय हो तच्छी०।भञ्जो भङ्गुरः (८४१) भासृ, भासुरः । ञिमिदा, मेदुरः ॥ १२८३ ॥

१२८४–विदिभिदिछिदेः कुरच् ॥ अ० ॥ ३ । २ ।१६२ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विद्आदि धातुओं से कुरच् प्रत्यय हो । विद [विद ज्ञाने] वेत्ति तच्छीलः,विदुरः (भिदिर्) भिदुरः । (छिदिर्)छिदुरः ॥ १२८४ ॥

१२८५–इण्नशजिसर्त्तिभ्यः क्वरप् ॥ अ० ॥ ३। २ । १६३॥

तच्छीलादिकर्त्ताओं में इण्, नश, जि, सर्त्ति इन धातुओं से क्वरप् प्रत्यय हो ।

इण्, इत्वरः णश, नश्वरः । जि, जित्वरः । सृ, सृत्वरः (सं० २७३) से तुक् । स्त्रीलिङ्ग में इत्वरी (स्त्रैण० ३५) जित्वरी । इत्यादि ॥ १२८५ ॥

१२८६—गत्वरश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६४ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में गत्वर यह निपातन है । गन्तुं शीलमस्य, गत्वरः । स्त्री गत्वरी । यहां गम्लृ से क्वरप् और अनुनासिकलोप निपातन है ॥ १२८६ ॥

१२८७—जागरूकः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६५ ॥

तच्छीलादिकों में जागृ धातु से ऊक प्रत्यय हो[जागृ]निद्राक्षये जागरूकः ॥१२८७॥

१२८८—यजजपदशां यङः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६६ ॥

तच्छीलादिकर्त्ताओं में यज, जप, दंश इन के यङ् से परे ऊक प्रत्यय हो । यायज्य, यायजितुंशीलमस्य, यायजूकः।जञ्जप्य, जञ्जपूकः । दंदश्य.दंदशूकः १२८८॥

१२८९.-नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः ॥अ०॥३।२।१६७ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में नम् आदि धातुओं से परे र प्रत्यय हो । णम, नम्रम् काष्ठम् । कपि, कंप्रा शाखा । ष्मिङ् स्मेरम् मुखम् । अजस, [जसु] मोक्षणे नञ्पूर्वक है अजस्रम् । निरन्तरम् । कमु, कम्रा कन्या । हिसि, हिंस्रम् । रक्षः । दीपी, दीपितुं शीलमस्य दीप्रः । वन्हिः ॥ १२८९ ॥

१२९०—सनाशंसभिक्ष उः ॥ ३ । २ । १६८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में सनन्त, आशंस, भिक्ष इन धातुओं से उ प्रत्यय हो । सनन्त, पिपाठिषितुं शीलमस्य पिपाठिषुः । चिकीर्षुः आशंस, [आङः शसि] इच्छायाम् । भ्वादिः आशंसते तच्छीलः आशंसुः । भिक्षुः ॥ १२९० ॥

१२९१—विन्दुरिच्छुः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६९ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विन्दु और इच्छु ये निपातन हों । वेत्ति तच्छीलो, विन्दुः । यहां [विद] ज्ञाने धातु से उ प्रत्यय और नुमागम निपातन है । इच्छति तच्छीलः, इच्छुः । यहां [इषु] इच्छायाम् से उ प्रत्यय और छकारादेश० ॥१२९१॥

१२९२—आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च ॥ अ०॥३।२।१७०॥

वेदविषय में आकारान्त, ऋवर्णान्त, गम, हन, और जन इन धातुओं से कि और किन् प्रत्यय हों और वे लिट् प्रत्यय के तुल्य हों । आ, [पा] पाने पपी तच्छीलः पपिः सोमम् । डुदाञ् ददिर्गाः । इन में लिड्वद्भाव मान कर (९९) सूत्र-

से धातु द्विर्वचन हो जाता है । ऋ. भृ, बभ्रिर्वज्रम् । तॄ, मित्रावरुणौ ततुरिः । [गॄ,] शब्दे दूरेह्यध्वा जगुरिः । गम्लृ, जग्मिर्युवा । हन, जघ्निर्वृत्रम् । जन जज्ञिर्बीजम् । इन में उपधालोप (२१४) सूत्र से होता है यद्यपि (१३७) कित् संज्ञा सिद्ध भी है तथापि लिट् के कित्व विषय में भी जो गुणविधान (२५८) किया है उस के प्रतिषेध के लिये (कि, किन्) इन प्रत्ययों में ककार पढ़ा है (आदृ,०) यहां आ,ऋ का अलग २ मुख से उच्चारण होने के लिये दृ पढ़ा किन्तु तपरकरण नहीं है ॥ १२९२॥

१२९३—वा०—उत्सर्गश्छन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात् ॥

वेदविषय में सद आदि धातुओं से कि, किन्, प्रत्ययों का दर्शन है इस से ये उत्सर्गमात्र हैं ऐसा कहना चाहिये अर्थात् आकारान्तों से अन्यत्र भी होते हैं । सदिमनिरमिनामिविचीनाम् । महाभाष्य । षद्लृ, सेदिः । मन, मेनिः । रम, रेमिः । णम, नेमिश्चक्रमिवाभवन् । विचिर् विविचिं रत्नधातम् ॥ १२९३ ॥

१२९४—वा०—भाषायां धाञ्कृसृजनिनमिभ्यः ॥

भाषा में धाञ्, कृ, सृ, जन, नम इन धातुओं से कि, किन् प्रत्यय कहना चाहिये तच्छी० । डुधाञ्, दधिः । कृ चक्रिः । सृ, सस्रिः । जन, जज्ञिः । णम, नेमिः ॥१२९४ ॥

१२९५—वा०—सहिवहिचलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में यङन्त सहादि धातुओं से कि किन् प्रत्ययों को कहना चाहिये । सह-यङ् वृषा सहमानं सासहिः । वह-यङ् वावाहिः चल-यङ्, चाचलिः । पतॢ-यङ्, पापतिः यहां नीक् (५४२) का अभाव निपातन है ॥ १२९५ ॥

१२९६—स्वपितृषोर्नजिङ् ॥ अ० ॥ ३ ।२ १७२ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्वप् और तृष् धातु से नजिङ् प्रत्यय हो । ञिष्वप, स्वप्नक् । ञितृषा, तृष्णक् ॥ १२९६ ॥

१२९७—शॄवन्द्योरारुः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७३ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में शॄ और वदि धातु से आरु प्रत्यय हो [शॄ] हिंसायाम् शरारुः [वदि] अभिवादनस्तुत्योः वन्दारुः ॥ १२९७ ॥

१२९८—भियः क्रुक्लुकनौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७४ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में भी धातु से क्रु और क्लुकन् प्रत्यय हो [ञिभी] भये । बिभेति तच्छीलो । भीरुः । भीलुकः ॥ १२९८ ॥

१२९९—वा०—भियः क्रुकन्नपि वक्तव्यः ॥

भी धातु से क्रुकन् प्रत्यय भी कहना चाहिये । भीरुकः ॥ १२९९ ॥

१३००स्थेशभासपिसकसो वरच् अ० ॥ ३ । २ । १७५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्था आदि धातुओं से वरच् प्रत्यय हो [ष्ठा] गतिनिवृत्तौ । स्थातुं शीलमस्य स्थावरः (ईश] ऐश्वर्ये । ईशितुं शीलमस्य, ईश्वरः [भासृ] दीप्तौ भास्वरः [पिसृ,पेसृ] गतौ] । पेस्वरः [कस] गतौ । विकस्वरः ॥ १३०० ॥

१३०१—यश्च यङः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में यङन्त या धातु से वरच् प्रत्यय हो (याया-य-वर-सु) यहां पर यकार के अकार का लोप [१७२] किये पीछे उस को स्थानिवद्भाव [सन्धि० ९३] जो प्राप्त है उस का यलोपविधि के प्रति प्रतिषेध [सन्धि० ९४] हो कर यलोप हो जाता है । यायावरः ॥ १३०१ ॥

१३०२—भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७७ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में भ्राज आदि धातुओं से क्विप् प्रत्यय हो । टुभ्राजृ,विभ्राजते तच्छीलः विभ्रट् । विभ्राड् । विभ्राजौ । विभ्राजः । भासृ, भाः । भासौ । भासः धुर्वी, धूः । धुरौ । धुरः [५५९] द्युत,विद्युत् [ऊर्ज] बलप्राणनयोः । ऊर्क् । ऊर्गौ। पॄ, पूः । पुरौ यहां [३८०] जु,यह सौत्र धातु गति और वेग में वर्त्तमान है । जूः । जुवौ । यहां उत्तर सूत्र में [१३०४] जो वार्त्तिक पढ़ा है उस से दीर्घादेश जानना चाहिये । ग्रावस्तु, ग्राव-ष्टुञ्,* ग्रावस्तुत् । ग्रावस्तुतौ । ग्रावस्तुतः ॥ १३०२ ॥

१३०३—अन्येभ्योपि दृश्यते ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में और धातुओं से भी क्विप् प्रत्यय देखा जाता है । पचति

---

* यहां ग्राव शब्द का स्तु धातु के साथ समास निपातन से कर पीछे क्विप् प्रत्यय होता है ॥

तच्छीलः पक् । भिनत्ति, भित् । छिनत्ति, छित् । यहां दृश्यते यह दृशि ग्रहण विशेष विधान करने के लिये है अर्थात् उक्त क्विप् के परे कहीं दीर्घ कहीं द्विर्वचन कहीं संप्रसारण कहीं संप्रसारण का अभाव आदि कार्य्य होते हैं जैसे—॥ १३०३ ॥

१३०४—वा०वचिप्रच्छायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसंप्रसारणं च ॥

वच, प्रच्छ, आयतस्तु, कटप्रु, जु, श्रिञ् इन धातुओं से क्विप् प्रत्यय दीर्घ तथा संप्रसारण का अभाव कहना चाहिये । वक्तीति वाक् । पृच्छति, प्राट् । आयतं स्तौति, आयतस्तूः । कटं प्रवते कटप्रूः । जवते, जूः । यहां जु का ग्रहण केवल दीर्घ के लिये है । हरिं श्रयति, श्रीः । लक्ष्मीः ॥ १३०४ ॥

१३०५—वा०—द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च

द्युत, गम्लृ, हु इन से क्विप् और इनको द्वित्वादेश० । विद्युत् । यहां द्युत धातु को क्विप् के परे द्विर्वचन और उक्त दृशि ग्रहण से पूर्व की अभ्यास संज्ञा (३७) तथा उस अभ्यास को संप्रसारण (२१८) हो जाता है । गम्लृ, जगत् (११०५) अनुनासिक लोप० ॥ १३०५ ॥

१३०६--वा०--जुहोतेर्दीर्घश्च ॥

हु धातु को दीर्घ भी होना चाहिये । जुहूः । जुहोतेर्ह्वयतेर्वा [हु] दानादानयोः अथवा [ह्वेञ्] स्पर्द्धायां शब्दे च इन से (जुहू] सिद्ध होता है ॥ १३०६ ॥

१३०७--वा०--दृणातेर्ह्रस्वश्च द्वे च क्विप्चेति वक्तव्यम् ॥

दृणाति [दृ] विदारणे से क्विप् प्रत्यय धातु को द्विर्वचन और ह्रस्वादेश भी कहना चाहिये । ददृत् । दृणातेर्दीर्य्यते वा [दॄ] से कर्त्ता वा कर्म में ददृत् होता है । दृणाति वा दीर्य्यते या सा, ददृत् ॥ १३०७ ॥

१३०८-वा०-ध्यायतेः संप्रसारणं च ॥

[ध्यै] चिन्तायाम् धातु से क्विप् उस को संप्रसारण० । धीः । ध्यायतेर्दधातेर्वा (धीः) यह [ध्यै] से वा [डुधाञ्] से सिद्ध होता है ॥ १३०८ ॥

१३०९—भुवः संज्ञान्तरयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७९ ॥

संज्ञा वा अन्तर गम्यमान हो तो भू धातु से क्विप् प्रत्यय हो । संज्ञा, मित्रभूः ।

यह संज्ञा है । अन्तर, प्रतिभूः । धन के लेने देने वालों के बीच जो विश्वास कराने को स्थिर हो जाता है वह प्रतिभू कहाता है ॥ १३०९ ॥

१३१०--विप्रसंभ्योड्वसंज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८० ॥

संज्ञा न गम्यमान हो तो वि, प्र, सम् इन उपसर्गों से उत्तर जो भू धातु उस से डु प्रत्यय हो । विभुः । जो सर्वगत है । प्रभुः । स्वामी । संभुः । जिस का संभव है । असंज्ञा ग्रहण से जहां विभूः । किसी का नाम हो वहां न हो ॥ १३१० ॥

१३११--वा०--डुप्रकरणे मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानं धातुविधितुक्प्रतिषेधार्थम् ॥

डु प्रत्यय के प्रकरण में धातुविधि (धातु ग्रहण से जो विधान किया जाय,) और तुक् के प्रतिषेध के लिये मितद्रु आदि शब्दों का उपसंख्यान करना चाहिये । मितं द्रवति प्राप्नोति, मितद्रुः । मितद्रू । मितद्रवः । यहां धातु को विहित उवङ् [नामि० ९२] नहीं होता तथा [मितद्रु] यहां [सं०२७३] तुक् नहीं होता शं कल्याणं भावयति, शम्भुः । यहां अन्तर्भावित णयर्थ माना जाता है ॥ १३११ ॥

१३१२ – धः कर्मणिष्ट्रन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८१ ॥

कर्मकारक में धेट् और डुधाञ् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय हो । धयन्ति बालाः स्तन्यार्थिनो यां सा, धात्री [स्त्रैण० ७०] उपमाता० दधति वा भैषज्यार्थं यां सा, धात्री (आमलकी आंवले का नाम है ॥ १३१२ ॥

१३१३ – दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८२ ॥

करण कारक में दाप् आदि धातुओं से ष्ट्रन् प्रत्यय हो [दाप्] लवने दात्यनेन दात्रम् [णीञ्] प्रापणे नयत्यनेन, व्यवहारानिति, नेत्रम् [शसु] हिंसायाम् । शस्त्रम् [यु] मिश्रणेऽमिश्रणे च । योत्रम् [युजिर्] योगे । योक्त्रम् [ष्टुञ्] स्तुतौ स्तोत्रम् [तुद] व्यथने । तोत्रम् [षिञ्] बन्धने । सेत्रम् (षिचिर्] क्षरणे । सेक्त्रम् [मिह] सेचने । मेढ्रम् [पत्लृ] गतौ । पतति गच्छत्यनेनेति, पत्रं वाहनम् दंश दशने दंष्ट्रा [स्त्रै०२] अनुनासिक लोप के साथ जो दंश का निर्देश है सो यह ज्ञापक के लिये है अर्थात् नलोप जिन के परे [३०३] कहा है उन से अन्यत्र भी होता है इस से ' दशनम्, यहां ल्युट् के परे भी होता है [णह] बन्धने नद्ध्रम् ॥ १३१३ ॥

१३१४—हलसूकरयोः पुवः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८३ ॥

करण कारक में पूङ् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय हो । जो वह करण हल और सूकर का अवयव हो । पुवते पुनाति वाऽनेन तत् पोत्रम् । हलमुखं सूकरमुखं वा ॥ १३१४ ॥

१३१५—अर्त्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८४ ॥

करण कारक में ऋ आदि धातुओं से इत्र प्रत्यय हो [ऋ] गतौ । अरित्रम् [लूञ्] छेदने । लवित्रम् [धू] विधूनने । धवित्रम् [पू] प्रेरणे । सवित्रम् [खनु] अवदारणे खनित्रम् [षह] मर्षणे । सहित्रम् [चर] गतिभक्षणयोः । चरित्रम् ॥ १३१५ ॥

१३१६—पुवः संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८५ ॥

करण कारक में पूङ् वा पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय हो जो समुदाय से संज्ञा गम्यमान हो तो । पवित्रम् । कुश वा ग्रन्थियुक्त कुश [पैंती] आदि को कहते हैं ॥ १३१६ ॥

१३१७—कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८६ ॥

ऋषि और देवता वाच्य संज्ञा होतो करण वा कर्त्ता कारक में पूङ् वा पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय हो । यहां यथासंख्य ऋषि, देवता से संबन्ध है अर्थात ऋषि वाच्य हो तो करण में और देवता वाच्य हो तो कर्त्ता में [इत्र] होता है । पूयतेऽनेनेति, पवित्रोयमृषिर्वेदः । अग्निः पवित्रं स मा पुनातु ॥ १३१७ ॥

१३१८—उणादयो बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १ ॥

वर्त्तमानकाल और संज्ञाविषय में धातु से उण् आदि प्रत्यय बहुल करके हों । डुकृञ्, करोतीति कारुः । शिल्पी का नाम है । वा, वातीति वायुः । पवनः । इत्यादि । प्रकृति प्रत्यय के अनुसार उणादिगणस्थ उदाहरण जानने चाहिये । बहुलग्रहण से कहे हुए कारक आदि के नियम से अन्यत्र भी शिष्ट प्रयोग के अनुसार प्रकृति प्रत्यय की कल्पना से उणादिगण के प्रयोगों से और भी प्रयोग बनते हैं । इस विषय में महाभाष्यकार ने कहा है कि—

का०—बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् ।
कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तं नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥ १ ॥

नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् ।
यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥२॥
संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ ३ ॥

उक्त सूत्र में प्रकृतिओं की [तनुदृष्टि] तनुता देखने से बाहुल* का [बहुल शब्द से बहुत अर्थों का] ग्रहण तथा उन उण् आदि प्रत्ययों का भी प्राय † [बहुल करके] समुच्चय [समूह] किया है अर्थात् उणादिगण में वे प्रत्यय भी निःशेष नहीं पढ़े हैं और कार्य्यों की सशेषविधि* [उणादिगण के सूत्रों में असमस्तकार्य्य कहे किन्तु निःशेष नहीं कहे] देखने से वह बहुल शब्द पढ़ा है तथापि वैदिक और रूढिभव [संज्ञा वाचक] शब्द अच्छे प्रकार सिद्ध करने ही है इस से पाणिनि आचार्य्य ने प्रकृतियों की तनुता देख कर बहुल शब्द पढ़ा है इस विषय में और आचार्य्यों का ऐसा सिद्धान्त है कि वे प्रकृत्यादिविभाग से शब्दों का साधन मानते हैं किन्तु रूढिप्रकार से नहीं मानते जैसे— ॥ १ ॥

[नाम च] निरुक्तकार निरुक्तग्रन्थ में शब्दों को धातुज अर्थात् प्रकृतिप्रत्यय के विभाग से कहते और व्याकरणविषय में शकट ऋषि के तोक अपत्य [शाकटायन] वैयाकरणशब्दों को धातुज कहते हैं इस से जो विशेष † प्रकृतिप्रत्यय के विभाग से

---

*बहुलग्रहण से यह समझना चाहिये कि जो उणादिगण में अपठित प्रकृति हैं उन से भी उणादि प्रत्यय होते हैं जैसे हृष धातु से उलच् प्रत्यय कहा है वह (शकि) शंकायाम् से भी होता है "शङ्कुला„ ।

† बहुलवचन से यह समझना चाहिये कि जो उणादिगण में प्रत्यय नहीं कहे हैं वे भी होते हैं जैसे महाभाष्यकार ने [ऋलृक्] सूत्रकेभाष्य में ऋ धातु से फिड, फिडड प्रत्यय मान कर " ऋफिडः „ ऋफिडडः प्रयोग दिखलाये हैं ॥

*उणादिगण में जो अनुक्त कार्य्य हैं वे भी बहुलवचन से होते हैं जैसे "षण्ढः„ यहां षन धातु के मूर्द्धन्य ष को सत्वादेश का अभाव वा सत्वादेश करके मूर्द्धन्यादेश हो जाता है ॥

† विशिष्यते यः स विशेषः, पदमर्थः प्रयोजनं यस्य व्युत्पाद्यत्वेन स पदार्थः, विशेषश्चासौ पदार्थो विशेषपदार्थस्तस्माद् यन्न समुत्थं विशिष्टप्रकृतिप्रत्ययोत्पादनेन न व्युत्पादितमिति यावत ।

न जानाजाय वह प्रकृति और प्रत्यय से कल्पनीय है अर्थात् उस की सिद्धि के लिये प्रकृति को देखकर उस के कार्य्य के अनुसार प्रत्यय और प्रत्यय को देख कर प्रकृति की कल्पना करनीचाहिये। यह कल्पना सर्वत्र नहीं होती किन्तु ॥ २ ॥

(संज्ञासु०) संज्ञा आदि शब्दों में धातुरूप और उन धातुओं से परे प्रत्यय तथा वृद्धि, गुण, उदात्तस्वर आदि कार्य्य के अनुसार प्रत्ययों के अनुबन्ध जानना चाहिये। उणादिकों में यही शिक्षा करने योग्य है ॥ ३ ॥ १३१८ ॥

१३१९--भूतेपि दृश्यन्ते ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २ ॥

भूतकाल में भी उण् आदि प्रत्यय देखे जाते हैं। जैसे वृत्तमिदं वर्त्म। चरितमिति। चर्म। जो वर्त्त गया और जाना गया वा चरित्र होगया वह वृत्त और चर्म कहाता है। यह वृतु और चर भूतकाल में उणादिगणस्थ मनिन् प्रत्यय होता है ॥ १३१९ ॥

१३२०--भविष्यति गम्यादयः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३ ॥

भविष्यत्काल में (गमिन्) आदि उणादि प्रत्ययान्त शब्द देखे जाते हैं। ग्रामं गमी। यहां गम्लृ से उणादिस्थ इनि प्रत्यय भविष्यत्काल में होता है ॥ १३२० ॥

१३२१--भविष्यतीत्यनद्यतन उपसंख्यानम् ॥

भविष्यत्काल में गम्यादिकों के विधान में अनद्यतन का उपसंख्यान करना चाहिये। श्वो ग्रामं गमी। कल के दिन ग्राम को जाने वाला है ॥ १३२१ ॥

१३२२--दाशगोघ्नौ संप्रदाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७३ ॥

दाश और गोघ्न ये उणादिप्रत्ययान्त शब्द संप्रदान कारक में निपातन हैं। दाशन्ति-यच्छन्ति यस्मै स दाशः। गौर्हन्यते यस्मै स गोघ्नः ॥ १३२२ ॥

१३२३--भीमादयोऽपादाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भीम आदि उणादिप्रत्ययान्त शब्द अपादान कारक में जानने चाहिये। बिभेत्यस्मादिति भीमः। भीष्मः इत्यादि ॥ १३२३ ॥

१३२४--ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७५ ॥

संप्रदान अपादान से अन्यत्र अर्थात् और कारकों में उण् आदि प्रत्यय हों। जि, जयतीति, जायुः इत्यादि ॥ १३२४ ॥

१३२५--तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १० ॥

क्रियार्था क्रिया उपपद हो तो भविष्यत्काल में धातु से तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय हों (भुज+तुमुन्+सु+गच्छति=) यहां तुमुन् के (उ, न,) इन की इत् संज्ञा और लोप होकर ॥ १३२५ ॥

१३२६--कृन्मेजन्तः ॥ अ० ॥ १ । १ । ३९ ॥

मान्त और एजन्त जो कृत्प्रत्यय तदन्त जो शब्द सो अव्यय संज्ञक हों। इस से अव्यय संज्ञा हो जाती है। भोक्तुं गच्छति। पठितुं गच्छति । सभां द्रष्टुं गच्छति। यहां (१३२५) सूत्र में जो ण्वुल् प्रत्यय का ग्रहण किया है इस से जानना चाहिये कि तुमुन् के विषय में वासरूप विधि से तृजादिक नहीं होते हैं क्योंकि जो तृजादिक होते तो वासरूप विधि से ण्वुल् (८७४) हो ही जाता ॥ १३२६ ॥

१३२७--समानकर्तृकेषु तुमुन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५८ ॥

इच्छा अर्थवाले समानकर्तृक धातु समीपवर्ती हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो। इच्छति भोक्तुम्। कामयते भोक्तुम्। भोक्तुं वाञ्छति। समानकर्तृकग्रहण से यहां न हुआ। पठतं देवदत्तमिच्छति विष्णुमित्रः । अक्रियार्थोपपद के लिये यह सूत्र है । इच्छत्येवं भोक्तुम्। इस से यहां भी तुमुन् होता है ॥ १३२७ ॥

१३२८--शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६५ ॥

शक आदि धातु उपपद हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो । शक्लृ, शक्नोति भोक्तुम्। ञिधृषा, धृष्णोति भोक्तुम्। ज्ञा,जानाति भोक्तुम्। ग्लै, ग्लायति भोक्तुम्। घट, घटते भोक्तुम्। रभ, भोक्तुमारभते। लभ, लभते भोक्तुम्। क्रम, भोक्तुं क्रमते। सह, भोक्तुं सहते । अर्ह, भोक्तुमर्हति। अस्त्यर्थ—अस, भू, विद। भोक्तुमस्ति। भोक्तुम् भवति। विद्यते भोक्तुम्। यह भी अक्रियार्थोपपद के लिये सूत्र है। शक्यमेवं भोक्तुम्। यहां भी तुमुन् होता है ॥ १३२८ ॥

१३२९--पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६६ ॥

परिपूर्णता को कहने वारे अलमर्थ (सामर्थ्यवचन) उपपद हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो। पर्याप्तो भोक्तुम्। अलम्भोक्तुम्। भोक्तुम् पारयति। भोक्तुं कुशलः। पर्याप्तिवचनग्रहण से यहां न हुआ। अलं कृत्वा। अलमर्थग्रहण से यहां न हुआ पर्याप्तम्भुङ्क्ते । यहां भोजन करने वाले की प्रभुता गम्यमान है ॥ १३२९ ॥

१३३०--कालसमयवेलासु तुमुन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६७ ॥

काल, समय, और वेला ये शब्द उपपद हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो । कालो भोक्तुम् । भोक्तुं वेला । भोक्तुं समयः । यहां अष्टाध्यायी के क्रम से (७८६) सूत्र में से प्रैष, अतिसर्ग प्राप्तकाल इन अर्थों का भी संबंधानुवर्तन है अर्थात् प्रैषादि अर्थों के ही विषय में यह तुमुन् होता है । इस से यहां न हुआ । कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः ॥ १३३० ॥

१३३१--भाववचनाश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११ ॥

क्रियार्था क्रिया उपपद हो तो धातु से भविष्यत्काल में भाववचन (भावाधिकार १३३२ विहित) घञ् आदि प्रत्यय हों । यागाय याति । पाठाय गच्छति । पुष्टये प्रयतते । यज्ञ करने को वा पढ़ने को जाता और पुष्टि के लिये उत्तम यत्न करता है । यहां कर्म में चतुर्थी (कारकीय ६१) से होती है । वचनग्रहण इस लिये है कि जिस २ प्रकृति और नियम से जो २ प्रत्यय भावाधिकार में कहा है वह २ इस विषय में उन्हीं नियमों से हो । यद्यपि सामान्यविहित भाववचन क्रियार्थक्रिया के विषय में हो जाते परन्तु यहां वासरूपविधि के न होने से क्रियार्थोपपद विषयक तुमुन् के बाधने से नहीं होते हैं इसलिये यह (१३३१) सूत्र कहा ॥ ३३१ ॥

१३३२ – अण् कर्मणि च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२ ॥

क्रियार्थाक्रिया और कर्म उपपद हो तो धातु से भविष्यत् काल में अण् प्रत्यय हो । यहां चकार कर्मसन्नियोग के लिये है अर्थात् यहां कर्म और क्रियार्थाक्रिया साथ रहें वहां यह अण् हो । काण्डानि लवितुं गच्छति,काण्डलावो गच्छति । अश्वं दातुं व्रजति,अश्वदायो व्रजति । परत्व से यह कादिकों (१००१) को बाधता है ॥ १३३२ ॥

१३३३ – पदरुजविशस्पृशो घञ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६ ॥

पद आदि धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । यहां से तीनों काल में प्रत्यय होते हैं किन्तु भविष्यत्काल की निवृत्ति है । पद्यतेऽसौ पादः रुजत्यसौ रोगः । विशत्यसौ वेशः । इसी प्रकार पत्स्यते, अपादि वा पादः । इत्यादि जानना चाहिये ॥ १३३३ ॥

१३३४ – वा० – स्पृश उपतापे ॥

उक्त घञ् प्रत्यय स्पृश धातु से उपताप अर्थ में हो यह कहना चाहिये । स्पृशतीति, स्पर्श उपतापः । कष्ट कहाता है उपतापग्रहण से यहां न हुआ । कम्बलस्य स्पर्शः कम्बलस्पर्शः यहां पचाद्यच् (९७५) हो जाता है ॥ १३३४ ॥

१३३५ – सृ स्थिरे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७ ॥

सृ धातु से स्थिर कर्त्ता में घञ् प्रत्यय हो । स्थिर शब्द से चिरकालस्थायी का ग्रहण है । यश्चिरं तिष्ठन् कालान्तरं सरति प्राप्नोति, स सारः । जो चिरकाल ठहरा हुआ कालान्तर को प्राप्त होता है वह सार कहाता है । स्थिरग्रहण से यहां न हुआ । सृ-र्त्ता सारकः (९७४) ॥ १३३५ ॥

१३३६ – वा० – व्याधिमत्स्यबलेष्विति वक्तव्यम् ॥

व्याधि, मत्स्य और बल अर्थ में सृ धातु से घञ् प्रत्यय कहना चाहिये । अत्य-न्तं सरति, अतिसारो व्याधिः । विविधं सरति, इतस्ततो गच्छति, विसारो मत्स्यः । शाल इव सरति, शालसारः । खदिरसारः । बलम् ॥ १३३६ ॥

१३३७–भावे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १८ ॥

भाव वाच्य हो तो धातु से घञ प्रत्यय हो । यहां यह जानना चाहिये कि क्रियासा-मान्यवाची भू धातु है इस से अर्थ निर्देश किया हुआ सर्वधातुविषयक होता है । भाव अ-र्थात् धात्वर्थ सो भी धातु से ही कहा जायगा इसलिये धातु के सिद्ध प्रयोग से जो धात्वर्थ निष्पन्न होता है वह वाच्य होतो घञ् होता है जैसे । कारः । हारः । इत्यादि ॥१३३७॥

१३३८ – स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४७॥

घञ् प्रत्यय परे होतो स्फुर, स्फुल इन धातुओं के एच् के स्थान में आकारादेश हो। स्फारः । स्फालः ॥ १३३८ ॥

१३३९ – इकः काशे ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १२३ ॥

काश उत्तरपद परे हो तो इगन्त ही उपसर्ग को दीर्घादेश हो । नीकाशः । अनूकाशः यहां [काशृ] दीप्तौ धातु से घञ् हुआ है । इगन्त ग्रहण से यहां दीर्घ नहीं होता । प्र-काशः ॥ १३३९ ॥

१३४०–स्यदोजवे ॥ अ ॥ ६ । ४ । ४८ ॥

घञ् प्रत्यय परे हो और जव (वेग) अभिधेय हो तो स्यद, यह निपातन है । गो-स्यदः । यहां [स्यन्दू] प्रस्रवणे । धातु से घञ् प्रत्यय, नलोप और वृद्धि (१२६) का अभाव निपातन है । जव ग्रहण से । घृतस्यन्दः । यहां नलोप नहीं होता ॥ १३४० ॥

१३४१ – अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः ॥ अ० ॥६। ४।२४॥

नलोपाविषय में अवोद, एध, ओद्म, प्रश्रथ, हिमश्रथ, ये निपातन हैं । अवोदः ।

यहां अवपूर्वक[उन्दी, क्लेदने] धातु से घञ् प्रत्यय के परे नलोप निपातन है । एधः । यहां [ञिइन्धी, दीप्तौ] से घञ् प्रत्यय के परे न लोप और गुणादेश निपातन है । अन्यथा (५५३) सूत्र से गुणप्रतिषेध प्राप्त है । ओद्मः । यहां [उन्दी] धातु का नलोप और गुणादेश उणादिगणस्थ मन् प्रत्यय के परे निपातन है । प्रश्रथः । यहां श्रन्थ धातु के नकार का लोप और वृद्धि का न होना निपातन है । इसी प्रकार हिमपूर्वक श्रन्थ से । हिमश्रथः । सिद्ध होता है ॥ १३४१ ॥

१३४२ – अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् ॥अ० ॥३।३। १९॥

कर्त्ताभिन्न कारक में भी संज्ञाविषय में घञ् प्रत्यय हो । प्रसीव्यत इति प्रसेवः । आहरन्ति रसं यस्मात्स आहारः । अकर्तृ ग्रहण से यहां न हुआ [मिष, स्पर्द्धायाम्] मिषत्यसौ, मेषः । मेढ़ा का नाम है यहां अच् हो जाता है । संज्ञाग्रहण से यहां न हुआ॥ कर्त्तव्यः कटः । गन्तव्यो मार्गः । संज्ञा से अन्यत्र भी घञ् होने के लिये चकार है इस से यहां भी होता है । को लाभो भवता लब्धः ॥ १३४२ ॥

१३४३ – घञि च भावकरणयोः ॥अ०॥६।४।२७ ॥

भावकरणवाची घञ् प्रत्यय परे हो तो रञ्ज धातु के उपधानकार का लोप हो । भाव, में । रञ्जनं रागः । करण में रज्यतेऽनेनेति, रागः । भावकरणग्रहण से यहां नलोप न० । रञ्जत्यस्मिन्निति रङ्गः । यहां से आगे अष्टाध्यायीकेक्रम में (कृत्यल्युटोबहुलम्)सूत्र पर्य्यन्त (भावे,अकर्त्तरि,कारके) इन पदों का अधिकार है ॥ १३४३ ॥

१३४४ – परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः ॥ अ० ॥३। ३ ।२० ॥

परिमाण का कथन हो तो सब धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । ।चिञ्, एकस्तण्डुलनिचायः तण्डुलानां निचायस्तण्डुलनिचायः *। पूञ्, द्वौ शूर्पनिष्पावौ [कॄ] विक्षेपे । द्वौ कारौ । त्रयः काराः । परिमाणाख्या ग्रहण से यहां न हुआ । निश्चयः ॥ १३४४ ॥

१३४५--वा०--दारजारौ कर्त्तरि णिलुक् च ॥

दार,जार ये दोनों प्रयोग कर्त्ता में कहने चाहिये और इनके विषय में णिच् प्रत्यय

*यह चावलों की ढेरी अर्थात् मन आदि परिमाण से पूर्ण है । जो शूर्प से निरन्तर शुद्ध किया जाय वह शूर्पनिष्पाव कहाता । दो शूर्पनिष्पाव अर्थात् दो बार से शूर्प से जितना शुद्धहो सके उतना धान्य है । दो कार अर्थात् दो बार शूर्प आदि से किराजाय उतना धान्य है ।

का लुक् भी कहना चाहिये [दॄ] विदारणे । दारयन्तीति, दाराः [जॄष्] वयोहानौ जारयन्तीति जाराः ॥ १३४५ ॥

१३४६—वा०—करणे वा ॥

अथवा करण कारक में दार जार शब्द कहने चाहिये । इस पक्ष में णिलुक् नहीं है । दीर्य्यन्ते तै र्दाराः । जीर्य्यन्ति तै र्जाराः ॥ १३४६ ॥

१३४७—इङश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २१ ॥

इङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । यह वक्ष्यमाण अच् का अपवाद है । उपेत्यस्माद-धीत इत्युपाध्यायः । यहां [इङ्] धातु से अपादान में घञ् प्रत्यय है ॥ १३४७ ॥

१३४८—वा०—इङश्चेत्यपादानेस्त्रियामुपसंख्यानं तद-न्ताच्च वा ङीष् ॥

(इङश्च) इस विषय में स्त्रीलिङ्ग में घञ् प्रत्यय का उपसंख्यान करना और उस घञ् प्रत्यय से विकल्प करके ङीष् प्रत्यय कहना चाहिये।उपेत्याधीयतेऽस्या उपाध्यायी, उपाध्याया (स्त्रैण०८९)॥ १३४८ ॥

१३४९--वा०--शृ वायुवर्णनिवृतेषु ॥

(शृ) इस धातु से वायु, वर्ण निवृत (आवरण--आच्छादन) इन अर्थों में घञ् प्रत्यय कहना चाहिये (शॄ) हिंसायाम् । शृणात्यनेनेति शारो वायुः । करण में घञ् है । शीर्य्यते चित्रीक्रियते ऽनेनेति शारो वर्णः । गौरिवाकृतनीशारः प्रायेण शिशिरे कृशः । नशीर्य्यते निव्रियते आच्छाद्यतेऽनेनेति, नीशारः । निवृतम् ।(अकृतनीशारः)जिसने छप्पर आदि नहीं छवाया वह पुरुष प्रायः करके शिशिर ऋतु में गौ के तुल्य दुबला होजाता है ॥१३४९॥

१३५०—उपसर्गे रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २२ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो रु धातु से घञ् प्रत्यय हो । संरावः । उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । रवः । यहां (१३८९) अप् हो जाता है ॥ १३५० ॥

१३५१---समि युद्रुदुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २३ ॥

सम् उपपद हो तो यु, द्रु, दु, इन इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । सं यूयते मिश्रीक्रियते गुड़ादिभिरिति संयावः । मीठी पूड़ीआदि का नाम है । सन्द्रावः । सन्दावः ॥ १३५१ ॥

१३५२--श्रिणीभुवोनुपसर्गे ॥ अ० ३ । ३ । २४ ॥

उपसर्ग उपपद न हो तो श्रि, णी, भू इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । श्रायः। नायः । भावः । उपसर्गनिषेध से यहां न हुआ । प्रश्रयः । प्रणयः । प्रभवः (प्रभावः) यह तो प्रादिसमास से होता है तथा (नयः पृथिवीपतेः) यह कृत् संज्ञकों के बहुलभाव से होता है ॥ १३५२ ॥

१३५३--वौ क्षुश्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २५ ॥

वि उपपद हो तो क्षु, श्रु इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । विक्षावः विश्रावः वि ग्रहण से यहां न हुआ । क्षवः । श्रवः ॥ १३५३ ॥

१३५४--अवोदोर्नियः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २६ ॥

अव, उद ये उपसर्ग उपपद हों तो नी धातु से घञ् प्रत्यय हो । अवनायः । नीचे को पहुंचाना । उन्नायः । ऊपर को पहुंचाना ॥ १३५४ ॥

१३५५--प्रे द्रुस्तुस्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २७ ॥

प्र उपपद हो तो द्रु, स्तु, स्रु इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । प्रद्रावः । प्रस्तावः । प्रस्रावः। प्र ग्रहण से यहां न०। द्रवः । स्रवः । स्तवः । यहां वक्ष्यमाण अप् (१३८९) हो जाता है ॥ १३५५ ॥

१३५६--निरभ्योः पूल्वोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २८ ॥

निर् अभि ये यथासंख्य उपपद हों तो पू लू, इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । [पू] यह सामान्य [पूङ् पूञ्] दोनों का ग्रहण है निर्- पू, निष्पूयते शूर्पादिभिर्यः स, निष्पावः । यह किसी धान्यविशेष का नाम है । अभिलावः ॥ १३५६ ॥

१३५७--उन्न्योर्ग्रः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २९ ॥

उद् और नि उपपद हों तो गॄ धातु से घञ् प्रत्यय हो [गॄ]शब्दे [गॄ]निगरणे । उद्+गॄ, उद्गारः समुद्रस्य । नि+गॄ, निगारो मनुष्याणाम्। उद्,नि ग्रहण से यहां न हुआ । गरः । अप् (१३८९) हो जाता है ॥ १३५७ ॥

१३५८--कॄ धान्ये ॥ अ० ३ । ३ । ३० ॥

धान्य अर्थ में वर्त्तमान जो उद् नि पूर्वक कॄ धातु उस से घञ् प्रत्यय हो [कॄ] विक्षेपे । उत्कारो निकारो वा धान्यस्य । धान्य का ऊपर को किराना वा एक तार किराना धान्य से अन्यत्र भैक्षयोत्करः । पुष्पनिकरः । फूलों का समूह ॥ १३५८ ॥

१३५९—यज्ञे समि स्तुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३१ ॥

यज्ञ अर्थ में सम् पूर्वक स्तु धातु से घञ् प्रत्यय हो । समेत्य स्तुवन्ति छन्दोगा यस्मिन् देशे स देशः संस्तावः । यहां अधिकरण में घञ् प्रत्यय है । यज्ञ से अन्यत्र संस्तवः परिचय है ॥१३५९॥

१३६०—प्रेस्त्रोऽयज्ञे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३२ ॥

प्र उपपद हो तो यज्ञभिन्न अर्थ में स्तृञ् धातु से घञ्प्रत्यय हो [स्तृञ्] आच्छादने। छन्दसां प्रस्तारः । मणिप्रस्तारः । अयज्ञग्रहण से यहां न हुआ । बर्हिषः प्रस्तार । कुशों की मूठी ॥१३६० ॥

१३६१—प्रथने वावशब्दे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३३ ॥

अशब्दविषयक प्रथन (विस्तीर्णता) गम्यमान हो और वि उपपद हो तो स्तृञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । पटस्य विस्तारः । प्रथन ग्रहण से यहां न० । अयं तृणविस्तरः । यह तृण अर्थात् कुश आदि का बिछावना है। अशब्दग्रहण से यहां न हुआ । वचसां विस्तरः । ग्रन्थविस्तरः । इन में अगला अप् प्रत्यय (१३८९) हो जाता है ॥१३६१॥

१३६२—छन्दोनाम्नि च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३४ ॥

छन्दोनाम वाच्य हो तो विपूर्वकस्तृञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ।यहां छन्दस् शब्द से गायत्री आदि छन्दों का ग्रहण है विस्तीर्यन्तेऽस्मिन्नक्षराणि, विष्टारः विष्टारं च तत् पङ्क्तिश्छन्दः विष्टारपंक्तिश्छन्दः । विष्टारबृहती छन्दः । यहां (८४०) सूत्र षत्व० ॥१३६२॥

१३६३—उदि ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३५ ॥

उद् उपपद हो तो ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो । उद्ग्राहः ॥१३६३॥

१३६४—वा०—उद्ग्राभनिग्राभौ च छन्दसि स्रुगुद्यमन-निपातनयोः॥

स्रुच् (हवन करने के पात्र) का उठाना, धरना अर्थ हो तो उद्ग्राभ, निग्राभ ये निपातन हैं । यहां उद् नि पूर्वक ग्रह धातु से भाव में घञ् और उस के हकार को भकार आदेश हुआ है ॥१३६४॥

१३६५—समि मुष्टौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३६ ॥

सम् उपपद हो तो मुष्टिविषयक (पञ्जालड़ाने) अर्थ में ग्रहधातु से घञ् प्रत्यय

हो । अहो मल्लस्य संग्राहः । अहो मुष्टिकस्य संग्राहः । मुष्टिग्रहण से यहां न हुआ । द्रव्यस्य संग्रहः ॥१३६५॥

१३६६—परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ॥ अ० ॥३।३।३७ ॥

द्यूत अर्थ में परिपूर्वक णीञ् और अभ्रेष (उचित करने) अर्थ में निपूर्वक इण् धातु से घञ् प्रत्यय हो । द्यूत, परिणयनं, परिणायः । परिणायेन शारान् हंति सब ओर से एर फेर से पाशाओं को छीनना झपटता है । अभ्रेष, एषोत्र न्यायः। द्यूताभ्रेष से अन्यत्र । परिणयो विवाहः । न्ययो नाशः॥१३६६॥

१३६७—परावनुपात्यय इणः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३८ ॥

अनुपात्यय अर्थ में परिपूर्वक इण् धातु से घञ् प्रत्यय हो । तव पर्य्यायः । मम पर्य्यायः । अनुपात्ययग्रहण से यहां न हुआ । कालस्य पर्ययः । काल का व्यतीत होना ॥१३६७॥

१३६८—व्युपयोः शेतेः पर्याये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३९ ॥

पर्याय गम्यमान हो तो वि, उप पूर्वक शीङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । तव विशायः । तुम्हारा जागना । मम विशायः । मेरा जागना । तव राजोपशायः । तुम्हारा राजा के समीप सोना । मम राजोपशायः । मेरा राजा के समीप सोना । पर्यायग्रहणसे यहां न हुआ विशयः । उपशयः ॥ १३६८ ॥

१३६९—हस्तादाने चेरस्तेये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४० ॥

अस्तेय चोरी से अन्यत्र जो हाथ से ग्रहण करना उस अर्थ में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । पुष्पप्रचायः । फलप्रचायः । पुष्प, फलों का हाथ से इकट्ठा करना । हस्तादान से अन्यत्र । दण्डेन फलसंचयं करोति । यहां घञ् नहीं होता अस्तेयग्रहण से यहां नहीं होता । चौर्येण फलप्रचयः ॥१३६९॥

१३७०—निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४१ ॥

निवास (अच्छे प्रकार जिस में वसें) चिति (जो चिनीजाना) शरीर, उपसमाधान (ढेर लगाना) इन अर्थों में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय और धातु के आदि चकार को ककार आदेश हो । निवास, निवसत्यस्मिन्निति, निकायः । कश्मीरनिकायः। चिति, आचीयतेऽसावित्याकायः । जो अच्छे प्रकार चिना जाय वह आकाय कहिये ।

आकायमग्निं चिन्वीत । शरीर । चीयतेऽस्मिन् सक्थ्यादिकमिति कायः । उपसमाधान, धान्यनिकायः ॥१३७० ॥

१३७१–सङ्घे चानौत्तराधर्य्ये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४२ ॥

अनौत्तराधर्य (ऊपर नीचे न होना) विषयक जो संघ (प्राणियों का एकत्र होना) उस अर्थ में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय और उस के आदिभूत चकार को क आदेश हो । ब्राह्मणनिकायः । भिक्षुनिकायः । वैयाकरणनिकायः अनौत्तराधर्य ग्रहण से यहां न हुआ । सूकरनिकायः । प्रायः सूकर सोते हुए एक दूसरे के ऊपर भी हो-रहते हैं । प्राणिविषयकसंघ लेने से यहां न० । परिहारसमुच्चयः ॥ १३७१ ॥

१३७२–कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४३ ॥

कर्मव्यतिहार (क्रियाका परस्पर होना) गम्यमान हो तो स्त्रीलिङ्ग में धातु से णच् प्रत्यय हो । यह भाव में होता है (वि+अव+ क्रुश्+णच्) यहां (स्त्रै०-८९२) सूत्र से स्वार्थ में तद्धित् अञ् प्रत्यय होकर व्यवक्रुश+अ+अ=) इस अवस्था में (स्त्रै०९१६) सूत्र से ऐच् प्राप्त हुआ उस का (स्त्रै० ६९२) निषेध होकर (स्त्रै० १६७) सूत्र से वृद्धि तथा (स्त्रै०३५) सूत्र से ङीष् प्रत्यय हो जाता ह । व्यावक्रोशी । व्यावहासी । स्त्रीग्रहण से यहां न हुआ । व्यतिपाको वर्त्तते । कर्मव्यतिहार से अन्यत्र । क्रोशो वर्त्तते ॥ १३७२ ॥

१३७३–अभिविधौ भाव इनुण् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४४ ॥

अभिविधि (अभिव्याप्ति अर्थात् क्रिया और गुणों से परिपूर्ण सम्बन्ध) अर्थ हो तो धातु से भाव में इनुण् प्रत्यय हो । समन्ताद् रवणं, समन्ताद् रूयत इति वा सांराविणम् । यहां सम्पूर्वक [रु] धातु से इनुण् और उस के परे धातु को वृद्धि (६०) तदनन्तर(संराविन्)शब्द से स्वार्थमें अण् और अण् के परे आदि अच् को(स्त्रै०१६७) वृद्धि और अण् के पूर्व को प्रकृतिभाव (९०१) सूत्र से हो जाता है । सांराविणं वर्त्तत । अभिविधिग्रहण से यहां न हुआ । संरावः । संद्रावः । इत्यादिकों में घञ् हो जाता है । भाव वर्त्तमान था फिर भाव इस लिये है कि वासरूपविधि से अभिविधिविषयक भाव में घञ् न हो परन्तु वक्ष्यमाण ल्युट् प्रत्यय तो होता है ॥ १३७३ ॥

१३७४–आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४५ ॥

आक्रोश(अच्छे प्रकार कोशना) अर्थ गम्यमान हो तो अव,नि पूर्वक ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो । अवग्राहो वृषल ते भूयात्।निग्राहो हन्त ते वृषल भूयात् । आक्रोश-

ग्रहण से यहां न हो। अवग्रहः पदस्य पद। का विग्रह। निग्रहश्चोरस्य। चोर का बान्धना ॥ १३७४ ॥

१३७५—प्रे लिप्सायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४६ ॥

लाभ की इच्छा गम्यमान हो तो प्रपूर्वक ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो। पात्रप्रग्राहेणं चरति भिक्षुः। लिप्सा ग्रहण से यहां न हुआ। प्रग्रहः पात्राणाम् ॥ १३७५ ॥

१३७६—परौ यज्ञे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४७ ॥

परि उपसर्ग उपपद हो तो ग्रह धातु से यज्ञ अर्थ में घञ् प्रत्यय हो। उत्तर परिग्राहः। स्फेनवेदेर्भवति। यज्ञ से अन्यत्र। परिग्रहो देवदत्तस्य ॥ १३७६ ॥

१३७७—नौ वृ धान्ये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४८ ॥

धान्य अभिधेय हो और नि उपसर्ग उपपद हो तो वृञ् वा वृङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो। नीवाराः। व्रीहयः। यहां (उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्) इस सूत्र से नि को दीर्घ होगया धान्य से अन्यत्र (निवरा कन्या) यहां अगला अप् (१३८९) प्रत्यय हो जाता है ॥ १३७७ ॥

१३७८—उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४९ ॥

उद् उपपद होतो श्रिञ् यु पू द्रु इन धातुओं से घञ्प्रत्यय हो। श्रिञ्, उच्छ्रायः। यु, उद्यावः। पूञ्—पूङ् उत्पावः। द्रु, उद्द्रावः ॥ १३७८ ॥

१३७९—विभाषाऽऽङि रुप्लुवोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५० ॥

आङ् उपपद होतो रु और प्लु धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो। आरावः, आरवः आप्लावः, आप्लवः ॥ १३७९ ॥

१३८०—अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५१ ॥

वर्षा का प्रतिबन्ध अभिधेय हो और अवउपपद हो तो ग्रह धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो। अपने समय में हो रही जो वर्षा है उस का किसीकारण से जो अभाव होना उस को वर्षप्रतिबन्ध कहते हैं। अवग्राहो देवस्य। अवग्रहो देवस्य। वर्षप्रतिबन्ध ग्रहण से यहां न हुआ। अवग्रहः पदस्य ॥ १३८० ॥

१३८१—प्रे वणिजाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५२ ॥

वणिज् सम्बन्धी प्रत्ययार्थ होतो प्रपूर्वक ग्रह धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो। तुलाप्रग्राहेण चरति। तुलाप्रग्रहेण वा चरति। यहां वणिक्संबंधी तुलासूत्र का

ग्रहण है अर्थात् तुला (तखरी–तक आदि) जिस से ग्रहण करी जाय उस सूत्र के साथ चलता है। वणिग्ग्रहण से यहां न हुआ प्रग्रहो धमस्य ॥ १३८१ ॥

१३८२–रश्मौ च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५३ ॥

रश्मि अभिधेय हो और प्रशब्द उपपद होतो ग्रहधातु से विभाषा घञ् प्रत्यय हो। प्रग्रहः । प्रग्राहः । रथ में जुड़े हुये घोड़ों की वागों को कहते हैं ॥ १३८२ ॥

१३८३–वृणोतेराच्छादने ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५४ ॥

प्र उपपद हो तो वृञ् धातु से आच्छादन अर्थ में घञ् प्रत्यय हो । प्रवारः । प्रवरः । आच्छादन ग्रहण से यहां न हुआ । प्रवरा (१३८६) गौः ॥ १३८३ ॥

१३८४–परौ भुवोऽवज्ञाने ॥ अ० । ३ । ३ । ५५ ॥

परि उपपद हो तो अवज्ञान (तिरस्कार) अर्थ में भू धातु से घञ् प्रत्यय हो। परिभावः । परीभावः (उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्) इस से दीर्घ । परिभवः । अवज्ञान से अन्यत्र । परितः सर्वतो भवनं परिभवः । यहां अप् हो जाता है ॥ १३८४ ॥

१३८५–एरच् ॥ अ० । ३ । ३ । ५६ ॥

इवर्णान्त धातु से अच् प्रत्यय हो। चिञ्, चयः। जि, जयः। क्षि, क्षयः । भाव और कर्त्ताभिन्न कारक का अधिकार है इस लिये इस प्रकरण के उक्त अनुक्त सब प्रत्यय भाव वा कर्त्ताभिन्न कारकों में प्रायः होते हैं ॥ १३८५ ॥

१३८६–वा०–भयादीनामिति वक्तव्यम् ।

भयादिशब्दों की सिद्धि अच् प्रत्यय से कहनी चाहिये । ञिभी, भयम् । वृषु, वर्षम् । नपुंसकलिंग भाव में क्त प्रत्यय कहेंगे उसकी निवृत्ति के लिये यह वार्त्तिक है परन्तु (वृषभो वर्षणात्) इस भाष्यवचन से वर्षण शब्द तो भाव में होता ही है॥ १३८६ ॥

१३८७–वा०–कल्प्यादिभ्यः प्रतिषेधः ॥

कल्पि आदि धातुओं से अच् प्रत्यय का प्रतिषेध कहना चाहिये [कल्पि] यह णिजन्त [कृपू] सामर्थ्ये है (कृपू+णिच्+घञ्+सु=) कल्पः । अर्थः। मन्त्रः। ये भी णिजन्तों से हैं । णिजन्त सब इवर्णान्त हो जाते हैं इस लिये कल्पि आदि से अच् * प्राप्त था उस के प्रतिषेध में घञ् हो जाता है ॥ १३८७ ॥

---

* किन्हीं नवीनपन्था वालों का यह भी सिद्धान्त है कि (एरच्) यह अणयन्तों से होता है णयन्तों से नहीं होता। सो उन का भाष्यविरुद्ध कथन है ।

१३८८—वा०—जवसवौ छन्दसि वक्तव्यौ ॥

वेदविषय में जव, सव ये अच् प्रत्ययान्त कहने चाहिये [जु] सौत्र धातु है उस से (जु+अच्+सु=) जवः । होता है । ऊर्वोरस्तु मे जवः । [षु] वा [षू] धातुसे अच् हो कर । सवः । होता है । अयं मे पञ्चौदनः सवः । यह अच् विधान अन्तोदात्त (सौवर ३४) स्वर के लिये है क्योंकि (जवः, सवः) प्रयोग अप् से भी सिद्ध थे ॥ १३८८ ॥

१३८९—ऋदोरप् ॥ अ० ३ । ३ । ५७ ॥

ऋकारान्त और उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय हो । कॄ, करः । शॄ, शरः । यु, यवः । लू, लवः । पू, पवः (ऋदु०) यहां ऋ और उकार का अलग२ उच्चारण होने के लिये दकार के साथ निर्देश है किन्तु तपर करण नहीं है ॥ १३८९ ॥

१३९०—ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५८ ॥

ग्रह, वृ, दृ, निश्चि, इन से अप् प्रत्यय हो । यह घञ् और अच् का अपवाद है । ग्रह, ग्रहः । वृ, वरः । दृ, दरः । निस्+चि, निश्चयः । गम्लृ, गमः ॥ १३९० ॥

१३९१—वा०—वशिरण्योश्चोपसंख्यानम् ॥

अप् प्रत्यय के विधान् में वश और रण धातु की भी गणना करनी चाहिये वशनं वशः । सवशं सैन्धवम् । रणऽन्त्यस्मिन्निति, रणः । धनंजयं रणे रणे॥१३९१ ॥

१३९२-वा०—घञर्थे कविधानं स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थम् ॥

स्था, स्ना, पा, व्यध, हन, युध आदि धातुओं के लिये घञर्थ (भाव, कर्त्ताभिन्न कारक) में क प्रत्यय का विधान करना चाहिये । प्रतिष्ठन्तेऽस्मिन् धान्यानीति, प्रस्थः। प्रस्थे हि भवतः शृंगे । प्रस्नान्ति अस्मिन्निति प्रस्नः । प्रपिबन्त्यस्यामिति, प्रपा । आविध्यन्ति तेनाविधः । विघ्नन्ति तस्मिन्मनांसि, विघ्नः। आयुध्यन्ते तेनायुधम् ॥ १३९२ ॥

१३९३—वा०—द्विर्वचनप्रकरणे कृञादीनां क उपसंख्यानम् ॥

क प्रत्यय के परे द्विर्वचनप्रकरण में कृञ् आदि धातुओं की गणना करनी चाहिये। अर्थात् क प्रत्यय के कृञादिकों को द्वित्व हो । यह वार्त्तिक ॥ अ० ॥६। १ । १२ । सूत्र के व्याख्यान में पढ़ा है (कृञ+क+सु=) चक्रम् (क्लिदू+क+सु=) चिक्लिदम् [क्रसु] ह्वरणदीप्त्योः (क्रसु+क+सु=) चक्रसः ॥ १३९३ ॥

१३९४—उपसर्गेऽदः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५९ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो अद धातु से अप् प्रत्यय हो (प्र+अद+अप्+सु=) इस अवस्था में ॥ १३९४॥

१३९५—घञपोश्च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३८॥

घञ् और अप् प्रत्यय परे हो तो अद धातु को घस्लृ आदेश हो। घस्लृ आदेश होकर। प्रघसः। जहां उपसर्ग पूर्व नहीं है वहां भी (अद+घञ्+सु=) घासः। घञ् के परे घस्लृ आदेश हो जाता है ॥ १३९५ ॥

१३९६—नौ ण च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६० ॥

नि उपपद हो तो अद धातु से ण और अप् प्रत्यय हो (नि+अद+ण+सु=) न्यादः (नि+अद+अप्+सु =) निघसः ॥ १३९६ ॥

१३९७—व्यधजपोरनुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६१ ॥

उपसर्गभिन्न जो व्यध और जप धातु उन से अप् प्रत्यय हो। व्यधः। जपः। अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ। आव्याधः। आजापः। यहां घञ् प्रत्यय(१३३७) हो जाता है ॥ १३९७ ॥

१३९८—स्वनहसोर्वा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६२ ॥

उपसर्ग उपपद न हो तो स्वन और हस धातु से विकल्प कर के अप् प्रत्यय हो। स्वनः। स्वानः। हसः। हासः। विकल्पपक्ष में घञ् हो जाता है। अनुपसर्ग ग्रहण से यहां अप् नहीं होता। प्रस्वानः। प्रहासः ॥१३९८॥

१३९९—यमः समुपनिविषु च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६३ ॥

सम्, उप, नि, वि उपसर्ग उपपद हों वा नहों तो यम धातु से विकल्प कर के अप् प्रत्यय हो। संयमः। संयामः। उपयमः। उपयामः। नियमः। नियामः। वियमः। वियामः। यमः। यामः। विकल्प पक्ष में घञ् हो जाता है ॥१३९९॥

१४००नौ गदनदपठस्वनः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६४ ॥

नि उपसर्ग उपपद होतो गद, नद, पठ, स्वन इन धातुओं से विकल्प कर के अप् प्रत्यय हो। निगदः। निगादः। निनदः। निनादः। निपठः। निपाठः। निस्वनः। निस्वानः ॥१४००॥

१४०१—क्वणोवीणायां च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६५ ॥

नि उपसर्ग उपपद हो वा न होतो क्वण धातु से तथा वीणाअ॰

धातु उससे अप् प्रत्यय विकल्प कर के हो। और भी उपसर्गों के ग्रहण के लिये वीणा अर्थविषयक से विधान है। कण,निक्कणः। निकाणः।कणः। काणः। वीणा अर्थ में प्रक्कणः। प्रकाणः। इन सब से अन्यत्र। अतिकाणो वर्त्तते ॥१४०१॥

१४०२–नित्यं पणः परिमाणे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६६॥

परिमाण गम्यमान हो तो पण धातु से नित्य अप् प्रत्यय हो [पण] व्यवहारे स्तुतौ च। मूलकपणः। शाकपणः। बेचने आदि के लिये परिमाण से मूरी वा शाक आदि की जो गड्डिया बांधना उस को कहते हैं। परिमाण से अन्यत्र पाणः ॥ १४०२ ॥

१४०३–मदोऽनुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६७ ॥

उपसर्ग उपपद न हो तो मद धातु से अप् प्रत्यय हो। विद्यामदः। धनमदः। कुलमदः। अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ। उन्मादः। प्रमादः ॥ १४०३ ॥

१४०४–प्रमदसंमदौ हर्षे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६८ ।

प्रमद, संमद ये दोनों हर्ष अर्थ में निपातन हैं [मदी] हर्षे प्रमदः। संमदः। हर्षग्रहण से यहां न हुआ। प्रमादः। संमादः ॥ १४०४ ॥

१४०५–समुदोरजः पशुषु ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६९ ॥

सम् और उद् उपसर्ग उपपद हों तो पशुविषय में वर्त्तमान अज धातु से अप् प्रत्यय हो [अज) गतिक्षेपणयोः, सम् पूर्वक अज धातु समुदाय अर्थ को कहता है। पशूनां समजः। पशुओं का समुदाय। पशूनामुदजः। पशुओं को प्रेरणा देना अर्थात् हांकना आदि। पशुग्रहण से यहां नहीं होता। ब्राह्मणानां समाजः। आर्य्यसमाजः। क्षत्रियाणामुदाजः ॥ १४०५ ॥

१४०६–अक्षेषु ग्लहः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७० ॥

अक्षविषय में ग्रह धातु से अप् प्रत्ययान्त ग्लह यह निपातन है। अक्षस्य ग्लहः। पाशाओं का ग्रहण करना। ग्रह धातु से (१३९०) से अप् प्रत्यय सिद्ध है। तथापि उस के रेफ को लकारादेश करने के लिये यह निपातन किया है। अक्ष ग्रहण से यहां न हुआ। केशग्रहः ॥ १४०६ ॥

१४०७–प्रजने सर्त्तेः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७१

प्रजन (प्रथमगर्भधारण) विषय में सृ धातु से अप् प्रत्यय हो। गवामुपसरः, प्रथम

गर्भधारण कराने के लिये गौ के समीप बैल का जाना, अवसरः । प्रसरः । इत्यादि तो (१४७५) सूत्र से होंगे ॥ १४०७ ॥

१४०८—ह्वः संप्रसारणं च न्यभ्युपविषु ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७२ ॥

नि, अभि उप, वि ये उपपद हों तो ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और उस को संप्रसारण हो । नि+ह्वेञ्+अप्+सु=) निहवः । (अभि+ह्वेञ्+अप्+सु=) अभिहवः (उप+ह्वेञ्+अप्सु=) उपहवः (वि+ह्वेञ्+अप्+सु=) विहवः अन्यत्र (प्र+ह्वेञ्+घञ्+सु=) प्रह्वायः । घञ् होजाताहै ॥ १४०८ ॥

१४०९—आङि युद्धे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७३ ॥

युद्ध अभिधेय होतो आङ् पूर्वक ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और उस को संप्रसारण हो । आहूयन्ते स्पर्द्धया भटा अस्मिन्निति, आहवः । युद्ध से अन्यत्र आह्वायः ॥ १४०९ ॥

१४१०—निपानमाहावः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७४ ॥

जो निपान अभिधेय हो तो आहाव यह निपातन है । निपिबन्त्यस्मिन् जलमिति, निपानम् । जल धरने का स्थान । यहां आङ्पूर्वक ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय तथा उस को संप्रसारण और वृद्धि होना निपातन है ॥ १४१० ॥

१४११—भावेऽनुपसर्गस्य ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७५ ॥

भाव वाच्य होतो उपसर्गरहित ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और उस को संप्रसारण हो । ह्वानं हवः । हवे हवे शूरमिन्द्रम् । यहां भावग्रहण से प्रकृत कर्त्ता भिन्न कारक की अनुवृत्ति नहीं होती है ॥ १४११ ॥

१४१२—हनश्च वधः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७६ ॥

उपसर्गरहित हन् धातु से भी अप् प्रत्यय और उस प्रत्यय के साथ हन् को वध आदेश भाव में हो । यहां चकार का सम्बन्ध आदेश के साथ नहीं है किन्तु आदेश तो अप् से द्वितीय विधान है सो हो ही जायगा इस से चकारग्रहण सप्रकरण के अनुसार दूसरा घञ् प्रत्यय भी होता है (हन्+अप्+सु=) वधः । वध आदेश अन्तोदात्त है इस से अनुदात्त (सौव० २४) अप् प्रत्यय के साथ एकादेश (संधि १२९) भी उदात्त ही (सौव० ८५) होता है (हन् + घञ् + सु=) घातः । वधो दस्यूनाम् । घातः शत्रूणाम् ॥ १४१२ ॥

१४१३—मूर्त्तौ घनः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७७ ॥

मूर्त्ति (काठिनपन) वाच्य हो तो हन् धातु से अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश हो । अभ्रघनः । बद्दलों की सघनता । दधिघनः । दधि की काठिनाई अर्थात् उस का अत्यन्त जमना । घन शब्द जब मूर्त्ति (काठिनाई) मात्र में होता है तो । घनं सैन्धवम् । घनं दधि । इत्यादि प्रयोग कैसे होंगे क्योंकि घन यह सैन्धव वा दधि का गुण हुआ । इसलिये गुण से गुणी की विवक्षा (घन शब्द से तद्धर्मनिष्ठ दधि आदि का कथन) हो तो उक्त प्रयोग होंगे ॥ १४१३ ॥

१४१४—अन्तर्घनो देशे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७८ ॥

देशअभिधेय हो तो अन्तर् पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय और उस को घन आदेश हो । अन्तर्घनः । यह वाहीकनामक देशों में किसी देश का नाम है । इस शब्द को पाठान्तर से भी मानते हैं । अन्तर्घणः । देश से अन्यत्र । अन्तर्घातः ॥ १४१४ ॥

१४१५-अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७९ ॥

अगार (गृह) के एक देश में प्रघण,प्रघाण ये निपातन हैं । गृह के द्वार देश में दो कोठे होने चाहियेएक भीतर दूसरा बाहर उन में से जो बाहर का कोठा है उस अर्थ में ये निपातन हैं । प्रविशद्भिर्जनैः प्रकर्षेण हन्यत इति प्रघणः । प्रघाणः । यहां कर्म्म में अप् तथा घञ् प्रत्यय और हन् को घन आदेश निपातन है । अगारैकदेश से अन्यत्र । प्रघातः ॥ १४१५ ॥

१४१६-उद्घनोत्याधानम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८० ॥

अत्याधान (ऊपर स्थापन करना) गम्यमान हो तो उद्घन यह निपातन है । ऊर्ध्वं हन्यतेस्मिन् काष्ठानीति, उद्घनः । यह जिस काठ पर घर के दूसरे काठ को गढ़ते हैं उसका नाम है । यहां उद्पूर्वक हन् धातु से अप् और उसको घन आदेश निपातन है ॥ १४१६ ॥

१४१७—अपघनोऽङ्गम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८१ ॥

अङ्ग अभिधेय हो तो अपघन यह निपातन है अङ्ग शरीर के अवयव मात्र का नाम है परंतु यहां हाथ पैर का ग्रहण है । अपहन्त्यनेनेति, अपघनः । पाणिः पादो वा । यह अपपूर्वक हन् से करण में अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश निपातन है । अन्यत्र । अपघातः ॥ १४१७ ॥

१४१८—करणेऽयो विद्रुषु ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८२ ॥

अयस्, वि, द्रु, उपपद हों तो हन धातु से करण में अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश हो । अयः (लोहः) हन्यतेनेनेति अयोघनः । विघनः । द्रुघनः । इस शब्द को पाठान्तर से भी मानते हैं । द्रुघणः (८७०) से णत्व हो जाता है ॥१४१८॥

१४१९—स्तम्बे क च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८३ ॥

स्तम्ब शब्द उपपद हो तो हन् धातु से करण में क और अप् प्रत्यय और अप् के संनियोग में हन् को घन आदेश हो । क, स्तम्बो हन्यतेऽनेन, स्तम्बघ्नः । अप्, स्तम्बघनः करण से अन्यत्र । स्तम्बस्य हननं, स्तम्बघातः ॥ १४१९ ॥

१४२०—परौ घः॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८४ ॥

परि उपपद हो तो हन् धातु से करण में अप् प्रत्यय और हन् को घ आदेश हो । परितः सर्वतो हन्यतेऽनेनेति परिघः ॥ १४२० ॥

१४२१—परेश्च घाङ्कयोः ॥ अ० ॥ ८ । २ । २२ ॥

घ और अङ्क शब्द परे हो तो परि के रेफ को विकल्प करके लकारादेश हो । परिघः । पलिघः । पर्य्यङ्कः । पल्यङ्कः । यहां (पारिभाषि० १) परिभाषा के अनुसार (घ) इस स्वरूप का ग्रहण है घसंज्ञा का ग्रहण नहीं है ॥ १४२१ ॥

१४२२—उपघ्न आश्रये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८५ ॥

आश्रय अर्थ में उपघ्न यह निपातन है । आश्रय शब्द से यहां सामीप्य का ग्रहण है । पर्वतेनोपहन्यते तत्सामीप्येन गम्यत इति, पर्वतोपघ्नः । ग्रामोपघ्नः । पर्वत, के निकट २ जाना । यहां उपपूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय और हन् की उपधा का लोप निपातन और कुत्व (३०४) सूत्र से होता है ॥ १४२२ ॥

१४२३—संघोद्घौ गणप्रशंसयोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८६ ॥

गण (समूह) और प्रशंसा अर्थ में यथासंख्य कर के संघ, उद्घ ये निपातन हैं। संहननं संघः।गवां संघः।यहां सम्पूर्वक हन् से भाव में अप् प्रत्यय और टिलोप निपातन है । उत्कृष्टो हन्यते ज्ञायत इत्युद्घो मनुष्यः । यहां गतित्व से हन् धातु को ज्ञानार्थ मान कर उस से कर्म में अप् और पूर्ववत् टिलोप हो जाता है ॥ १४२३ ॥

१४२४—निघो निमितम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८७ ॥

निमित अभिधेय हो तो निघ यह निपातन हो । सब प्रकार से जो मित (परि-

पूर्णता को प्राप्त) हो वह निमित कहाता है । निर्विशेषेण हन्यन्ते ज्ञायन्त इति निघा वृक्षाः । निघाः शालयः । निघाः यवाः । निमित से अन्यत्र निघातः ॥ १४२४ ॥

१४२५—ड्वितः क्त्रिः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८८ ॥

डु,जिस का इत् गया हो उस धातु से भावादिकों में क्त्रि प्रत्यय हो।क्त्रेर्मम् नित्यम् । इस सूत्र में नित्यग्रहण से क्त्रि प्रत्यय विषयक विग्रह मप् से अलग नहीं होता जैसे। डुपचष् , पचेमन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् । पचने से सिद्ध हो गया । [डुकृञ्] करणे कृत्रिमम् [डुवप्] बीज संताने । उप्त्रिमम् ॥ १४२५ ॥

१४२६—ट्वितोऽथुच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८९ ॥

टु जिस का इत् गया हो उस धातु से भावादिकों में अथुच् प्रत्यय हो [टुवेपृ] कंपने। वेपनं वेपथुः । टुओश्वि श्वयथुः ॥ १४२६ ॥

१४२७-यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३।९०॥

भाव और अकर्त्ता कारक में यज आदि धातुओं से नङ् प्रत्यय हो यज, यजनं यज्ञः । टुयाचृ, याचनं याच्ञा [यती] प्रयत्ने । यत्नः [विच्छ] गतौ । विश्नः । यहां छ को श् आदेश होजाता और नङ् के ङित् करण से गुण नहीं होता।प्रच्छ, प्रश्नः । यहां संप्रसारण (२८६) प्राप्त है सो (७९८) सूत्र में प्रश्न शब्द के पढ़ने से नहीं होता ॥ १४२७ ॥

१४२८—स्वपो नन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९१ ॥

स्वप् धातु से नन् प्रत्यय हो [ञिष्वप्] स्वपनं स्वप्नः ॥ १४२८ ॥

१४२९—उपसर्गे घोः किः ॥ अ० ॥ ३ । ३ ।९२ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो घुसंज्ञकों से कि प्रत्यय हो प्रदानं, प्रदिः । प्रधानं प्रधिः । विधानं विधिः संधानं संधिः । अन्तर्धानं अन्तर्द्धिः । आधिः । व्याधिः ॥ १४२९ ॥

१४३०—कर्मण्यधिकरणे च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९३ ॥

कर्म उपपद हो तो घुसंज्ञक धातुओं से अधिकरण में कि प्रत्यय हो।जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति जलधिः।वारिधिः । तोयधिः। पयोधिः।यशांसि धीयन्तेस्मिन्निति यशोधिः— इषुधिः॥१४३० ॥

१४३१—स्त्रियां क्तिन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९४ ॥

स्त्रीलिङ्गविषयक भावादिकों में धातु से क्तिन् प्रत्यय हो । घञ्, अच् अप्, इन

सम का अपवाद है । डुकृञ्, करणं कृतिः । चिञ्, चितिः ॥ १४३१ ॥

१४३२—वा०—क्तिन्नाबादिभ्यः ॥

आप्लृ आदि धातुओं से भावादिकों में क्तिन् प्रत्यय हो । आप्तिः । राद्धिः । दीप्तिः यहां अङ्(१४४८)प्रत्यय प्राप्त था उस के बाधने के लिये क्तिन् का विधान है॥ १४३२॥

१४३३—वा०—श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे ॥

श्रु, यज, इष ष्टुञ् इन धातुओं से करण में क्तिन् प्रत्यय कहना चाहिये । श्रूयतेऽनयेति, श्रुतिः । इज्यतेऽनयेति, इष्टिः । इष्यतेऽनयेति, इष्टिः । स्तूयतेऽनयेति, स्तुतिः ॥ १४३३ ॥

१४३४—वा०—ग्लाम्लाज्याहाभ्यो निः ॥

ग्लै, म्लै, ज्या, ओहाक् ओहाङ् इन धातुओं से नि प्रत्यय कहना चाहिये। ग्लानिः । म्लानिः । ज्यानिः । हानिः ॥ १४३४ ॥

१४३५—वा०—ॠकारल्वादिभ्यः क्तिन् निष्ठावत् ॥

ॠकारान्त और [लूञ] छेदने आदि गणपठित धातुओं से क्तिन् प्रत्यय को निष्ठा के तुल्य कहना चाहिये । कॄ, कीर्णिः । गॄ, । गीर्णिः । लूञ्, लूनिः।धूनिः । यहां क्तिन् के निष्ठावद्भाव से (ल्वादि०) सूत्र से निष्ठा के तुल्य क्तिन् के तकार को नकारादेश हो जाता है ॥ १४३५ ॥

१४३६—स्थागापापचो भावे ॥ अ० ॥ ३ ॥ ३ । ९५ ॥

स्था आदि धातुओं से स्त्रीलिंग विषयक भाव में क्तिन् प्रत्यय हो । यह अङ् का अपवाद है । ष्ठा, प्रस्थितिः । उपस्थितिः । संस्थितिः । [गै] शब्दे । संगीतिः । उद्गीतिः । पा, प्रपीतिः । डुपचष्, पक्तिः ॥ १४३६ ॥

१४३७—मंत्रेवृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः ॥ अ०॥३।३।९६॥

मंत्रविषय में वृष आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग भाव में क्तिन् प्रत्यय हो और वह उदात्त भी हो । वृष, वृष्टिः । इषु, इष्टिः । डुपचष्, पक्तिः । मन, मतिः । विद, वित्तिः । भू, भूतिः । वी, वीतिः रा, रातिः । यद्यपि धातुमात्र से क्तिन विहित भी है तथापि उदात्त के लिये यह विधान है ॥ १४३७ ॥

१४३८—ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च ॥ अ० ॥ ३।३।९७॥

ऊति आदि शब्द क्तिन् प्रत्ययान्त अन्तोदात्त निपातन हैं । ऊतिः । यहां अव

धातु से क्तिन् और अव को ऊठ् (ज्वर०) आदेश० । यूतिः । जूतिः । यु और जु से क्तिन् और उन को दीर्घ०।सातिः । यहां [षो] अन्तकर्मणि को क्तिन् के परे द्यति०) प्राप्त जो इकारादेश उस का अभाव निपातन से हो जाता है । वा क्तिन् के परे [षन] धातु को आकारादेश (जनसन०) हो जाता है । हेतिः । यहां क्तिन् के परे हन् को हिं आदेश वा [हि] गतौ वृद्धौ च । धातु को गुणादेश निपातन है । कीर्त्तिः । यहां [कृत] संशब्दने से क्तिन् प्रत्यय होता है ॥ १४३८ ॥

१४३९–व्रजयजोर्भावे क्यप् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९८ ॥

व्रज और यज धातु से स्त्रीलिंग भाव में क्यप् प्रत्यय हो सो उदात्त हो । व्रज, व्रज्या । यज, इज्या । (२८३) संप्रसारण० ॥ १४३९ ॥

१४४०–संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९९ ॥

संज्ञाविषय में सम्पूर्वक अज आदि धातुओं से स्त्रीलिंग विषयक भाव और कर्त्तृवर्जित कारक में क्यप् प्रत्यय हो । समज, समजन्ति यस्यां सा (सम्+अज+क्यप्+सु=) इस अवस्था में (१९८) सूत्र से अज को वीभाव प्राप्त हुआ उस के निषेध के लिये अगला वार्त्तिक है ॥ १४४० ॥

१४४१–वा०–घञपोः प्रतिषेधे क्यप उपसंख्यानम् ॥

घञ् और अप् प्रत्यय के परे अज धातु को वी भाव के प्रतिषेध में क्यप् प्रत्यय का भी उपसंख्यान करना चाहिये । इस से वी भाव का प्रतिषेध हो गया समज्या सभा, निषद, निषीदन्त्यस्यां सा, निषद्या । दूकान । निपत, निपतन्त्यस्यां,निपत्या । खंदकी-लीभूमि । मन, मन्यन्तेऽनयेति, मन्या । गलपार्श्वशिरा । विद, विदन्त्यनयेति विद्या । षुञ्, सवनं, सुत्या । अभिषवः । शीङ् शेतेऽस्यामिति शय्या । भृञ् भरणं, भरन्त्यनया वा भृत्या । इण्, ईयते गम्यतेऽनया सा, इत्या । शिविका । पालकी ॥ १४४१ ॥

१४४२–कृञः श च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०० ॥

कृञ् धातु से स्त्रीलिङ्ग विषयक भावादिकों में श और क्यप् प्रत्यय हो । क्रिया (९३९) कृत्या ॥ १४४२ ॥

१४४३–वा०–कृञः श चेति वा वचनम् ॥

(कृञः श च) यहां विकल्प भी ग्रहण करना चाहिये । जिस से क्तिन् प्रत्यय भी हो । कृतिः ॥ १४४३ ॥

१४४४–इच्छा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०१ ॥

इष् धातु से भाव में श प्रत्यय और यक् (७१६) का अभाव निपातन है । (इष्+श+सु=) इच्छा (२७३) ॥ १४४४ ॥

१४४५–मत्यल्पमिदमुच्यते इच्छेति–वा०–इच्छापरिचर्या-परिसर्यामृगयाऽटाट्यानामुपसङ्ख्यानम् ॥

इच्छा इतना निपातन अत्यन्तन्यून है इस से इच्छा, परिचर्या, परिसर्या, मृगया, अटाट्या, इन शब्दों का उपसंख्यान करना चाहिये । परिचर्यादिकों में श प्रत्यय और उस के परे यक् (७१६) भी होता है । परिचर, परिचरणं, परिचर्य्या । सत्कार । परिसृ, परिसरणं परिसर्या । ।रेंगना।यहां गुण भी निपातन से है [मृग) अन्वेषणे । चुरादि अदन्त है (मृग+णिच्+यक्+श+सु=)मृगया । यहां यक् के परे (१७७)णिलोप हो जाता है [अट] गतौ (अट+यक्+श+सु–) अटाट्या । यहां (ट्य) भाग को द्वित्वादेश, तथा "हलादिःशेष" हो कर दीर्घ हो जाता है ॥१४४५ ॥

१४४६–वा०–जागर्त्तेरकारो वा ॥

जागृ धातु से अ प्रत्यय विकल्पकर के हो जागरा (३६२) जागर्या ॥१४४६॥

१४४७–अ प्रत्ययात् अ० ३ । ३ । १०२ ॥

प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीविषयक भावादिकों में अ प्रत्यय हो (कृञ्+सन+अ+सु=) चिकीर्षा । पिपासा । कण्डूया । इत्यादि ॥ १४४७ ॥

१४४८–गुरोश्च हलः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०३ ॥

गुरुमान् जो हलन्त धातु उस से स्त्रीलिङ्ग में अ प्रत्यय हो । ईहा । ऊहा। गुरु ग्रहण से यहां न हुआ । भज, भक्तिः । शक् शक्तिः । हल् ग्रहण से यहां न हुआ । क्षितिः । नीति । प्रीतिः ॥ १४४८ ॥

१४४९–षिद्भिदादिभ्योऽङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०४ ॥

ष् जिनका इत् संज्ञक हो उन से और भिद आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय हो । त्रपूष्, त्रपा । क्षमूष्, क्षमा [भिदिर्] विदारणे भेदनं भिदा । भिदा विदारण इति वक्तव्यम् । विदारण अर्थ में (भिदा) यह प्रयोग हो। अन्यत्र । भित्तिः। होता है । छिदिर्, छिदा । छिदा द्वैधीकरण इति वक्तव्यम् । दो भाग करने अर्थ

में (छिदा) यह हो । अन्यत्र छित्तिः । होता है । (आङ्+ऋ+अङ्+सु=) आरा । यहां (सन्धि०११९) सूत्र से वृद्धि० । आरा शस्त्र्यामिति वक्तव्यम् । शस्त्री (जो भाषा में आरा प्रसिद्ध है उस) अर्थ में (आरा) यह प्रयोग हो अन्यत्र । आर्त्तिः । होता है । धृञ्, ध्रियते धार्य्यते वा जलमनयेति, धारा । धारा प्रपात इति वक्तव्यम् । अत्यन्त गिरने (जो भाषा में धारा प्रसिद्ध है उस) में (धारा) यह प्रयोग हो । अन्यत्र । धृतिः । होता है । गुहू,गुहा । गुहा गिर्य्योषाध्योरीति वक्तव्यम् । गिरि अर्थात् (पर्वत) के एकादेश और ओषधि अर्थ में (गुहा) यह प्रयोग हो । अन्यत्र । क्तिन् प्रत्ययान्त । गूढि । होता है ॥१४४९॥

१४५०–चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ॥अ०॥३।३।१०५॥

चिन्ति आदि धातुओं से स्त्रीलिंग में अङ् प्रत्यय हो । यह युच् का अपवाद है [चिति] स्मृत्याम् । चिन्ता [पूज] पूजायाम् । पूजा [कथ] वाक्यप्रबन्धे । कथा [कुबि] आच्छादने । कुंबा [चर्च] अध्ययने । चर्चा ॥१४५०॥

१४५१–आतश्चोपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ३ ।१०६ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो आकारान्त धातु से स्त्रीलिंग में युच् प्रत्यय हो । उपधा । अवस्था । श्रत् और अन्तर् इन की उपसर्गवद्वृत्ति है । श्रद्धा । अन्तर्द्धा ॥१४५१॥

१४५२–ण्यासश्रन्थो युच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०७ ॥

णिजन्त, आस, श्रन्थ इन से स्त्रीलिंग में युच् प्रत्यय हो । (कृञ्+णिच्+युच्+सु=) कारणा । हारणा । आस, आसना । [श्रन्थ] विमोचनप्रतिहर्षयोः । क्रादिः । श्रन्थ, श्रन्थना ॥ १४५२ ॥

१४५३–वा०–युच्प्रकरणे घट्टिवन्दिविदिभ्यउपसंख्यानम् ।

युच्प्रकरण में घट्टि, वन्दि, विद इन धातुओं से भी युच् का उपसंख्यान करना चाहिये [घट्ट] चलने चुरादिः । घट्टना । वन्दि, वन्दना । विद, वेदना॥१४५३॥

१४५४–वा०–इषेरनिच्छार्थस्य ॥

युच् के प्रकरण में इच्छा अर्थ से रहित जो इष् धातु उस का भी उपसंख्यान करना चाहिये । आन्विष्यत इति अन्वेषणा ॥ १४५४ ॥

१४५५–वा०–परेर्वा ॥

युच्प्रकरण में परि से परे अनिच्छार्थक इष् धातु का विकल्प करके उपसंख्यान करना चाहिये । पर्य्येषणा । परीष्टिः । अन्यां परीष्टिं चर । अन्यां पर्य्येषणां चर॥१४५५॥

१४५६—रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ॥ अ०॥३।३।१०८॥

रोग की आख्या गम्यमान हो तो स्त्रीलिंग में धातु से बहुल करके ण्वुल् प्रत्यय हो । [उच्छृदिर्] दीप्तिदेवनयोः । प्रच्छर्दिका [वह] प्रापणे प्रवाहिका [चर्च] अध्ययने । विचर्चिका । बहुलग्रहण से कहीं नहीं भी होता । शिरोर्तिः॥१४५६॥

१४५७—वा०—धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् ॥

धात्वर्थनिर्देश अर्थात् क्रिया के निर्देश में धातु से ण्वुल् प्रत्यय कहना चाहिये [आस] उपवेशने । आसिका । का नामासिका अन्येष्वीहमानेषु । औरों के काम करते हुए क्या बैठक । यहां उपवेशन क्रिया का कथन करना है । का नाम शायिका अन्येष्वधीयानेषु । औरों के पढ़ते हुए क्या सोना । तथा यहां भी शयनक्रिया का कथन है ॥१४५७॥

१४५८—वा०—इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे ॥

धातु के कहनेमात्रमें इक् और श्तिप् प्रत्यय कहना चाहिये. पचिर्ब्रूहि । पचते ब्रूहि । (१४५६) इस के बहुल विषय से कहीं नहीं भी होता है जैसे।कृञः शच। यद्यपि यह श्तिप् कर्त्ता में नहीं भी होता तथापि शित् करण से श्तिप् के परे शप् आदि विकरण होते ही हैं जैसे । भवतेरः । इत्यादि ॥ १४५८ ॥

१४५९—वा०-वर्णात्कारः ॥

वर्ण के निर्देश में वर्ण से कार प्रत्यय कहना चाहिये । अकारः । ककारः । मकारः। बहुलविषय से कहीं नहीं भी होता जैसे । अस्य च्वौ । कहीं वर्णसमुदाय से भी होता है । एवकारः । कित्विषयक प्रयोजनों के अभाव से कार प्रत्यय के ककार की इत् संज्ञा नहीं होती और कृत् अधिकार में विधान से इस कार प्रत्यय की कृत् संज्ञा होती है इस से । अकारः । आदि में कृदन्त मान कर प्रातिपदिक संज्ञा आदि कार्य्य होते हैं ॥ १४५९ ॥

१४६०—वा०रादिफः ॥

र वर्ण के निर्देश में र से इफ प्रत्यय कहना चाहिये । रेफः ॥ १४६० ॥

१४६१—वा०—मत्वर्थाच्छः ॥

मत्वर्थ शब्द से छ प्रत्यय कहना चाहिये । मत्वर्थीय । यहां छ प्रत्यय के परे भ संज्ञा के विना भी भाष्यकार के (मत्वर्थीयः) इस शब्द के पढ़ने से वा बहुलभाव से छ के पूर्व अकार का लोप हो जाता है ॥ १४६१ ॥

१४६२—वा०—इणजादिभ्यः ॥

अज आदि धातुओं से इण् प्रत्यय कहना चाहिये [अज] गतिक्षेपणयोः आजिः [अत] सातत्यगमने आतिः । अद, आदिः ॥ १४६२ ॥

१४६३—वा०—इञ् वपादिभ्यः ॥

वप आदि धातुओं से इञ् प्रत्यय कहना चाहिये [डुवप] बीजसंताने । वापिः। वासिः । वादिः ॥ १४६३ ॥

१४६४—वा०—इक् कृष्यादिभ्यः ॥

कृष आदि धातुओं से इक् प्रत्यय कहना चाहिये [कृष] विलेखने । कृषिः । [कॄ] विक्षेपे किरिः [गॄ] निगरणे [गॄ] शब्दे वा गिरिः ॥ १४६४ ॥

१४६५—वा०—संपदादिभ्यः क्विप् ॥

संपद आदि धातुओं से क्विप् प्रत्यय कहना चाहिये (सम्+ पद्+क्विप्+सु=) संपत् । विपत् । आपत् । प्रतीपत् । परिसीदन्ति जना अस्यां सा परिषत् । बहुलभाव से क्तिन् (१४३१) भी होता है । संपत्तिः । विपत्तिः । इत्यादि ॥ १४६५ ॥

१४६६—संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०९ ॥

स्त्रीलिंगविषयक संज्ञा में धातु से ण्वुल् प्रत्यय हो (भञ्जो) आमर्दने उद्दालकपुष्पभञ्जिका [वह] प्रापणे । वारणपुष्पवाहिका ॥ १४६६ ॥

१४६७-विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोरिञ् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११० ॥

परिप्रश्न (पूंछना) आख्यान (कहना) अर्थात् उस का उत्तरदेना गम्यमान होतो स्त्रीलिंग में धातु से इञ् और ण्वुल् विकल्प कर के हो । दूसरे पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं । प्रथम प्रश्न तदनंतर उसका उत्तर होता है परन्तु अल्पाच्तर होने से सूत्र में आख्यान शब्द का पूर्वनिपात है। त्वं कां कारिमकार्षीः । त्वं कां कारिकामकार्षीः । कां क्रियामकार्षीः । कां कृतिमकार्षीः । तूने कौन क्रिया किई। अहं सर्वां कारिमकार्षम् सर्वां कारिकामकार्षम् । सर्वां क्रियामकार्षम् । सर्वां कृत्यामकार्षम्। सर्वां कृतिमकार्षम्। मैंने सब क्रिया करलिई । इत्यादि ॥ १४६७ ॥

१४६८—पर्य्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच् ॥ अ० ॥३।३।१११॥

पर्य्याय (परिपाटीक्रम) अर्ह (योग्यता) ऋण (दूसरे का द्रव्य धारण करना)

उत्पत्ति (जन्म) ये अर्थ गम्यमान हों तो स्त्रीलिङ्ग में धातु से ण्वुच् प्रत्यय विकल्प कर के हो । पर्याय, तव शायिका । तुम्हारा सोना । मम शायिका । मेरा सोना । अर्ह, त्वमर्हसि दुग्धपायिकाम् । तू योग्य है दूध पीने को । ऋण, मम शाकभक्षिकां धारय । मेरी शाकभाजी तू लिये रह । उत्पत्ति, मह्यं शाकभक्षिकामुदपादि । मेरे लिये शाकभाजी बना । इसी प्रकार । ओदनभोजिका । अग्रगामिका । अग्रग्रासिका । इक्षुभक्षिका । आदि बहुत प्रयोग बन सकते हैं । द्वितीय पक्ष में । तव चिकीर्षा । मम चिकीर्षा । तव क्रिया । मम क्रिया । इत्यादि ॥ १४६८ ॥

१४६९—आक्रोशे नञ्यनिः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११२ ॥

आक्रोश (कोशना) गम्यमान हो और नञ् उपपद होतो धातु से स्त्रीलिंग में अनि प्रत्यय हो । यह क्तिन् आदि का अपवाद है । अजीवानिस्ते शठ भूयात् । आक्रोश से अन्यत्र । अजीवनमस्य रोगिणः । यहां ल्युट् हो जाता है । नञ्ग्रहण से यहां न हुआ । मृतिस्ते वृषल भूयात् । इसी सूत्र तक (भाव. अकर्त्तरि, कारके) इन की अनुवृत्ति हैं ॥ १४६९ ॥

१४७० — नपुंसके भावे क्तः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११४ ॥

नपुंसकलिङ्गविषयक भाव में धातु से क्त प्रत्यय हो [हसे] हसने । हसितम् । [षह] मर्षणे । सहितम् ॥ १४७० ॥

१४७१ — ल्युट् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११५ ॥

नपुंसकालिंग भाव में धातु से ल्युट् प्रत्यय हो । कृञ्, करणम् । पठ, पठनम् । शीङ् शयनम् ॥ १४७१ ॥

१४७२ —कर्मणि च येन संस्पर्शात्कर्त्तुः शरीरसुखम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११६ ॥

स्पर्श करने से जिस से कर्त्ता को शरीर का सुख हो ऐसा कर्म उपपद हो तो धातु से ल्युट्प्रत्यय हो यह । पूर्वसूत्र (१४७१) से सिद्ध था परन्तु उपपदसमास होने के लिये विधान है । पयःपानं सुखम् । कर्मग्रहण से यहां न हुआ । तूलिकाया उत्थानं सुखम् । यहां तूलिका शब्द अपादान है । संस्पर्शग्रहण से यहां न हुआ । अग्निकुण्डस्योपासनं सुखम् । कर्तृग्रहण से यहां न हुआ । गुरोः स्नापनं सुखम् । यहां गुरु शब्द कर्म है । शरीरग्रहण से यहां न० पुत्रस्य परिष्वञ्जनं सुखम् । यहां सुख मानसी प्रीति

हैं। सुख ग्रहण से यहां न हुआ। कण्टकानां मर्द्दनं दुःखम् ॥ १४७२ ॥

१४७३-वा यौ ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५७ ॥

यु अर्थात् ल्युट् प्रत्यय हो तो अज धातु को वी आदेश विकल्प करके हो (प्र+अज+ल्युट्+सु=) प्रवयणम् । प्राजनम् ॥ १४७३ ॥

१४७४-करणाधिकरणयोश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११७॥

करण और अधिकरण में धातु से ल्युट् प्रत्यय हो । ओव्रश्चू, प्रवृश्चतीध्मानि येन स इध्मप्रव्रश्चनः कुठारः । दुह,गां दोग्धि यस्यां सा गोदोहनी । स्थाली॥१४७४॥

१४७५-पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ॥ अ० ॥३ । ३ ।११८॥

संज्ञा अभिधेय हो तो पुंलिङ्ग विषयक करण और अधिकरण में धातु से प्राय करके घप्रत्यय हो [भ्रमो] रोगे । भ्रमन्ति रु जन्त्यनेन, भ्रमः । रोगः।आकुर्वन्त्यस्मिन्निति, आकरः । आलीयन्त स्थाप्यन्ते पदार्था अस्मिन्निति, आलयः । पुंसिग्रहण से यहां नहीं होता । प्रसाधनम् । संज्ञाग्रहण से यहां नहीं होता । प्रहरणो दण्डः ॥ १४७५ ॥

१४७६-छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९६ ॥

दो उपसर्गों से रहित जो छादि अङ्ग उस की उपधा को ह्रस्व आदेश हो । दन्ता च्छाद्यन्तेऽनेनेति दन्तच्छदः । उरश्छदः । घटः । अद्व्युपसर्गग्रहण से यहां उपधा को ह्रस्व नहीं होता । समुपच्छादः । अद्विप्रभृत्युपसर्गस्येति वक्तव्यम् । महाभाष्य।दो आदि उपसर्गयुक्त को निषेध करना चाहिये समुपातिच्छाद ॥ १४७६ ॥

१४७७-गोचरसंचरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च॥अ०॥३।३।११९

संज्ञा अभिधेय हो तो पुंलिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घ प्रत्ययान्त गोचर, संचर, वह, व्रज, व्यज आपण निगम ये निपातन हैं । चर गावश्चरन्त्यस्मिन्निति, गोचरो देशः संचरन्त्यस्मिन्निति, संचारो मार्गः। वह वहन्ति तेन, वहः । स्कन्धः । व्रज, व्रजो । मार्गः। गावो व्रजन्त्यस्मिन्निति, व्रजो गोष्ठः । गोंड़ा।व्यजन्ति तेन व्यजः । तालवृन्त । ताड़ की डार वा ताड़ का व्यजना । यहां निपातन से वीभाव (१५५) नहीं होता । आपणन्ते व्यवहरन्तेऽस्मिन्निति, आपणः । पण्यस्थानम् । दूकान । निगम्यन्तेनेन पदार्था इति,निगमो वेदः । यहां चकार अनुक्त के समुच्चय के लिये है । कषन्ति तेन, कषः । निकषः ॥ १४७७ ॥

१४७८-अवे तृस्त्रोर्घञ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२० ॥

पुंल्लिङ्गविषयक संज्ञा वाच्य हो और अव उपपद हो तो करण और अधिकरण

में धातु से घञ् प्रत्यय हो। पिछले व (१५७१) प्रत्यय का अपवाद है। अवतारः। अवस्तारः। जवनिका (ओट कनात) यहां (प्राय) शब्द की अनुवृत्ति कर के (१४७५) कहीं असंज्ञा में भी होता है। अवतारः सागरस्य। सागर का उतरना ॥ १४७८ ॥

१४७९–हलश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२१ ॥

संज्ञा वाच्य हो तो हलन्त धातु से पुंल्लिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घञ् प्रत्यय हो। आरमन्त्यस्मिन्निति, आरामः। बाग। अपमृज्यन्ते रोगा अनेनेति, अपामार्गः। चिरचिरा। विदन्ति तत्वज्ञानाद्यनेनेति, वेदः ॥१४७९॥

१४८०–वा० घञ्विधौ अवहाराधारावायानामुपसंख्यानम् ॥

घञ् के विधान में अवहार आधार आवाय इन शब्दों का भी उपसंख्यान करना चाहिये। अवह्रियन्तेऽस्मिन्निति, अवहारः। आध्रियन्तेऽस्मिन्निति, आधारः। आ+वेञ्, एत्य तस्मिन् वयन्ति आवायः ॥१४८०॥

१४८१–अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च ॥ अ०॥३।३।१२२॥

संज्ञा वाच्य हो तो पुंल्लिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घञ्प्रत्ययान्त अध्याय आदि शब्द निपातन हैं। अधीङ्, अधीयतेऽस्मिन्निति, अध्यायः। नि+इण् नियन्तेऽनेन व्यवहारा इति न्यायः। उद्+यु, उद्युवन्ति अस्मिन्निति उद्यावः। सम्+हृञ्, संह्रियन्तेऽनेन भटादय इति संहारः ॥१४८१॥

१४८२ उदङ्कोऽनुदके ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२३ ॥

उदकभिन्न संज्ञाविषय में उदंक यह निपातन है घृतमुदच्यतेऽस्मिन्निति, घृतोदंकः। घृतजिस में निकालें वह घृतोदंक कहावे। यहां उद् पूर्व अञ्चु धातु से घञ् प्रत्यय निपातन से और (६४३) इस सूत्र से कुत्व तथा परसवर्ण (२६४) हो जाता है। अनुदकग्रहण से यहां न हुआ। उदकोदञ्चनः जल धरने का पात्र ॥१४८२ ॥

१४८३–जालमानायः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२४ ॥

जाल वाच्य हो तो आनाय यह निपातन है। आनीयन्ते मत्स्यादयोऽनेनेति, आनायः। धीवर आदि जनों का जाल। जाल से अन्यत्र। आनयनः ॥१४८३॥

१४८४ खनो घ च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२५ ॥

खन् धातुसे करण और अधिकरण में घ और घञ् प्रत्यय हो। आ+खनु, आखनः। आखानः। इस खन से जो घ प्रत्ययविधान किया है इस में घ पढ़ना अनर्थक है क्योंकि

घित् कार्य खन् को नहीं प्राप्त हैं इस से घित्करण सामर्थ्य से घ प्रत्यय और धातुओं से भी होता है जैसे भज, भगः । पद, पदम् । इत्यादि ॥ १४८४ ॥

१४८५-वा०-खनो डडरेकेकवकाः ॥

खन् धातु से ड,डर, इक, इकवक ये प्रत्यय कहने चाहिये । ड, आखः । डर, आखरः । इक, आखनिकः । इकवक, आखनिकवकः ॥ १४८५ ॥

१४८६ ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ॥

कृच्छ्र (दुःख) और अकृच्छ्र (सुख) अर्थ में वर्त्तमान जो ईषत् , दुर् , सु सो उपपद हों तो धातु से खल् प्रत्यय हो । यह प्रत्यय (६१४) सूत्र के अनुसार भाव और कर्म में होता है (ईषत्, दुर् , सु) इन में दुर् के साथ कृच्छ्र और ईषत् तथा सु के साथ अकृच्छ्र अर्थ की योग्यता है । ईषत्करः । दुष्करः । सुकरः कटो भवता । ईषद्गमः । दुर्गमः । सुगमः । इत्यादि । ईषद् आदि के ग्रहण से यहां न हुआ । कृच्छ्रेण कटः कार्य्यः । कृच्छ्राकृच्छ्रार्थग्रहण से यहां न हुआ । ईषत्कार्य्यः ॥ १४८६ ॥

१४८७ वा०-निमिमीलियां खलचोः प्रतिषेधः ॥

खल् और अच् प्रत्यय के परे निमि, मी, ली इन धातुओं के एच् को आकारादेश न हो । यहां अच् यह (१३८५, ६७५) सूत्र विहित अचों का ग्रहण है । खल् । नि+डु मिञ् , ईषन्निमयः । दुर्निमयः । सुनिमयः । अच् निमयो वर्त्तते । निमयः पुरुषः । इसी प्रकार ईषत्प्रमयः । सुप्रमयः । ली , ईषद्विलयः । इत्यादि समझना चाहिये ॥ १४८७ ॥

१४८८-उपसर्गात् खल्घञोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६७ ॥

खल् और घञ् प्रत्यय परे होंतो उपसर्ग से ही परे लभ धातु को नुम् आगम हो । खल् ईषत्प्रलम्भः । दुष्प्रलम्भः । सुप्रलम्भः । घञ् उपालम्भः । उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ , ईषल्लम्भः । लाभः ॥ १४८८ ॥

१४८९-न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६८ ॥

खल् , घञ् परे हों तो केवल सु, और दुर् से परे लभ धातु को नुम् न हो । सुलभः । दुर्लभः । केवलग्रहण से यहां होता है सुप्रलम्भः । अतिदुर्लम्भः (अतिसुलभम् , अतिदुर्लभम्) ये तो सु अति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा में होंगे । जैसे सुलभमतिक्रान्तम् । अतिसुलभम् । इत्यादि ॥ १४८९ ॥

१४९०—कर्त्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२७ ॥

कर्त्ता और कर्म ये यथाक्रम से उपपद हों तथा ईषत् आदि भी उपपद हों तो भू और कृञ् धातु से खल् प्रत्यय हो । खल् कर्त्तृकर्मणोश्च्व्यर्थयोः । महा० यह खल् प्रत्यय च्व्यर्थ अर्थात् अभूततद्भाव अर्थ में कर्त्ता और कर्म होंतो कहना चाहिये । यहां ईषदादिकों से परे कर्त्ता कर्म और उन से परे धातु का प्रयोग होता है । जैसे अनाढ्येन भवता ईषदाढ्येन शक्यं भवितुम्, ईषदाढ्यम्भवं भवता (१०३५) से मुम् । अनाढ्येन भवता दुःखेनाढ्येन भवितुं शक्यं दुराढ्यम्भवं भवता । अनाढ्येन भवता सुखेनाढ्येन भवितुं शक्यम्, स्वाढ्यम्भवं भवता । अनाढ्यमीषदाढ्यं कर्त्तुं शक्यम्, ईषदाढ्यंकरः । अनाढ्यं दुःखेनाढ्यं कर्त्तुंशक्यः, दुराढ्यंकरः । अनाढ्यं सुखेनाढ्यं कर्त्तुं शक्यः, स्वाढ्यंकरः । च्व्यर्थ कहने से आढ्येन सुभूयते*इत्यादि में नहीं होता ॥ १४९० ॥

१४९१—आतो युच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२८ ॥

कृच्छ्र, अकृच्छ्रार्थ, ईषत् आदि उपपद हों तो आकारान्त धातु से युच् प्रत्यय हो । ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ॥ १४९१ ॥

१४९२—छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२९ ॥

वेदविषय में कृच्छ्र, अकृच्छ्रार्थ, ईषत् आदि उपपद हों तो गति अर्थ वाले धातुओं से युच् प्रत्यय हो । (सु+उप+षद्=) सूपसदनोऽग्निः । सूपसदनमन्तरिक्षम् । इत्यादि ॥ १४९२ ॥

१४९३—अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥अ० ॥ ३ । ३ । १३० ॥

वेदविषय में कृच्छ्राकृच्छ्रार्थ ईषदादि उपपद हों तो गत्यर्थकों से अन्य जो धातु हैं उन से भी युच् प्रत्यय देखा गया है । सुदोहनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम् । सुवेदनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम् ॥ १४९३ ॥

१४९४—भाषायां शासियुधिदृशिधृषिभ्यो युच् ॥

भाषा (लोक) में कृच्छ्राकृच्छ्रार्थ ईषदादि उपपद हों तो शासि, युधि, दृशि, धृषि इन धातुओं से युच् प्रत्यय कहना चाहिये । दुःशासनः । दुर्योधनः । दुर्दर्शनः । दुर्धर्षणः । इत्यादि ॥ १४९४ ॥

* (स्वाढ्येन भूयते) यह जयादित्य ने प्रत्युदाहरण दिया है सो उन का मत्त प्रलाप है क्यों कि जहां खल् प्रत्यय नहीं होता वहां धातु से अलग उपसर्ग का प्रयोग नहीं होता किन्तु (ते प्राग्धातोः) सूत्र के अनुसार पूर्व ही प्रयोग होता है ।

१४९५-॥वा०-मृषश्चेति वक्तव्यम् ॥

उक्तविषय में मृष धातु से भी युच् प्रत्यय कहना चाहिये। दुर्मर्षणः ॥१४९५॥

१४९६-आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः ॥अ०॥३।३।१७०॥

आवश्यक और आधमर्ण्य (ऋण लेना) अर्थ युक्त कर्त्ता वाच्य हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। अवश्यंकारी। शतंदायी। यहां (सामा०-मयूर०) से समास होता है ॥ १४९६ ॥

१४९७-कृत्याश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७१ ॥

आवश्यक और आधमर्ण्य अर्थ में धातु से कृत्य संज्ञक प्रत्यय हों। भवतावश्यं गुरुः सेव्यः। भवतावश्यं सहस्रं देयम् ॥ १४९७ ॥

१४९८-क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ॥अ०॥ ३ । ३ ।१७४॥

संज्ञा गम्यमान हो तो आशीर्वाद अर्थ में धातु से क्तिच् और क्त प्रत्यय हों भूतिर्भवतात्।भूतिनामवालाहो। यहां (तीतुत्रत०) इस सूत्र से इट् न हुआ क्त प्रत्यय संज्ञा में। जैसे ब्रह्म एनं देयात, ब्रह्मदत्तः। ईश्वरदत्तः ॥ १४९८ ॥

१४९९-न क्तिचि दीर्घश्च ॥अ०॥ ६ । ४ । ३९ ॥

क्तिच् प्रत्यय परे हो तो अनुदात्तोपदेश (अनिट्) तथा वनति और तनोति आदि अंगों के अनुनासिक लोप तथा उनकी उपधा को दीर्घ न हो। अनुदात्तोपदेश, यच्छतीति यन्तिः। जो कार्य्यों से निवृत्ति को प्राप्त होता है वह यन्ति कहता है। यन्तिर्यच्छतात्।यन्ति नामवाला निवृत्त हो। वनु, वनुते, वन्तिः। वन्तिर्वनुतात्। तनु,तन्ति स्तनुतात् इत्यादि ॥१४९९॥

१५००--सनः क्तिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम्॥अ०॥६।४।४५।

क्तिच् प्रत्यय के परे सन् धातु को आकारादेश और उस का लोप विकल्प करके हो। सन, सातिः। सतिः। सन्तिः। सनुतात् ॥ १५०० ॥

१५०१--तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैतवैतवेङ्तवेनः अ० ॥ ३ । ४ । ९ ॥

वेदविषय में तुमुन्प्रत्यय के अर्थ में धातु से से, सेन्,असे, असेन् क्से, कसेन् अध्यै,

अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ्, तवेन् ये प्रत्यय हों। तुमर्थ से भाव*लिया जाता है। से। वच्।वक्षे। वक्तुं प्राप्त था। यहां वच् धातु से सेप्रत्यय (सन्धि०२०२) कुत्व और ष (५६) आदेश होजाता है। वक्षे रायः। सेन्। एषे। इण् धातु को सेन् प्रत्यय के परे गुण (२१) और षत्व हो जाता है। तावामेषे रथानाम्। असे, असेन्,। जीव, क्रत्वे दक्षाय जीवसे। शारदो जीवसे धाः। कृसे, प्र+इण, प्रेषे भगाय। कसेन्, श्रिञ्, गवामिव श्रियसे। अध्यै, अध्यैन्। उप+आङ्+चर, कर्मण्युपाचरध्यै। कध्यै, आङ्+हु, इन्द्राग्नी आहुवध्यै। कध्यैन्। श्रिञ् श्रियध्यै। शध्यै, मदी+णिच्, राधसः सह मादयध्यै। यहां शध्यै के परे शप् होकर णिच् को गुण हो जाता है। शध्यैन्, पा, वायवे पिबध्यै। तवै [पा] पाने सोममिन्द्राय पातवै। तवेङ् षूङ्, दशमे मासि सूतवे। तवेन् गम्लृ, स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १५०१ ॥

१५०२--प्रयैरोहिष्यैअव्यथिष्यै ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १० ॥

वेदविषय में प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै ये शब्द तुमर्थ में निपातन किये हैं। प्रयै। यहां प्रपूर्वक या धातु से कै प्रत्यय और आलोप (२४४) होजाता है। प्रयै देवेभ्यः। प्रयातुम् प्राप्त था। रोहिष्यै। यहां रुह धातु से इष्यै प्रत्यय होता है अपामोषधीनां रोहिष्यै। रोहितुं प्राप्त था। अव्यथिष्यै। यहां नञ्पूर्वक व्यथ धातु से इष्यै प्रत्यय होता है। अव्यथितुं प्राप्त था ॥ १५०२ ॥

१५०३--दृशे विख्ये च ॥

वेदविषय में तुमर्थ में दृशे विख्ये ये निपातन हैं। दृश धातु से के प्रत्यय हो जाता है ॥ दृशे विश्वाय सूर्यम्। वि+ख्या, से के प्रत्यय हुआ। विख्ये त्वा हरामि ॥ १५०३ ॥

१५०४--शकि णमुल्कमुलौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १२ ॥

वेदविषय में शक्लृ धातु उपपद हो तो तुमर्थ में धातु से णमुल् और कमुल् प्रत्यय हों। णमुल्, वि+भज, अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्। विभक्तुं प्राप्त था। णित् से वृद्धि हो जाती है। कमुल्, अप+लुप्लृ, अपलुपं नाशक्नुवन्। अपलोप्तुं प्राप्त था ॥ १५०४ ॥

---

* तुमुन् प्रत्यय किसी विशेष अर्थ में नहीं कहा और "अनिर्दिष्टार्थाश्च प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति" जिन प्रत्ययों का विशेष अर्थ नहीं कहा है वे स्वार्थ में होते हैं स्वार्थ धातुओं का भावमात्र है इस से तुमर्थ करके भाव का ग्रहण है ॥

१५०५--ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १३ ॥

वेदविषय में ईश्वर शब्द उपपद हो तो धातु से तोसुन् और कसुन् प्रत्यय हो। ईश्वरो विचारितोः । विचरितुं प्राप्त था । ईश्वरोऽभिचारितोः । अभिचरितुम् । प्राप्त था । ईश्वरो विलिखः । विलिखितुम प्राप्त था ॥ १५०५ ॥

१५०६--कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १४ ॥

वेदविषय में कृत्यार्थ (भाव, कर्म्म) में धातु से तवै, केन्, केन्य, त्वन् ये प्रत्यय हों । तवै । म्लेच्छ, म्लेच्छितवै । म्लेच्छितव्यम् । अनु+इण, अन्वेतवै । अन्वेतव्यम् । केन् । अव+गाहू, नावगाहे । नावगाहितव्यम् । केन्य । श्रु+सन्, शुश्रुषेण्यः शुश्रूषितव्यम् । त्वन् । डुकृञ्, कर्त्वं हविः । कर्त्तव्यम् प्राप्त था ॥ १५०६ ॥

१५०७--अवचक्षे च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १५ ॥

वेदविषय में कृत्यार्थ में अवपूर्वक चक्षिङ् धातु से एश् प्रत्यय निपातन है । रिपुणा नावचक्षे । अवख्यातव्यम् । प्राप्त था ॥ १५०७ ॥

१५०८--भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १६ ॥

वेदविषय में भावलक्षण (क्रिया जिस से लक्षित हो उस अर्थ) में वर्तमान स्था, इण, कृञ्, वदि, चरि, हु, तमि, जनि इन धातुओं से तुमर्थ में तोसुन् प्रत्यय हो । सम्+स्था, संस्थातोर्वेद्यां सीदन्ति । समाप्तिपर्य्यन्त वेदीमें ठहरते हैं यहां संस्थिति अर्थात् समाप्ति से ठहरना क्रिया लिखीगई इस लिये सम्पूर्वक स्था धातु से तोसुन् प्रत्यय हुआ । इसी प्रकार अगले प्रयोग भी समझना चाहिये । उद्+इण, पुरासूर्यमुदेतोराधेयः । अप+आङ्+कृञ्, पुरा वत्सानामपाकर्त्तोः । प्र + वद, पुरा प्रवदितोरग्नौ प्रहोतव्यम् । प्र+चरि, पुरा प्रचरितोराग्नीध्रे होतव्यम् । हु, आहोतोरप्रमत्तस्तिष्ठति । तमु, आतमितोरासीत । जनी, काममाविजनितोः संभवाम ॥ १५०८ ॥

१५०९--सृपितृदोः कसुन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १७ ॥

वेद विषय में भावलक्षण में वर्त्तमान सृपि और तृद धातु से तुमर्थ में कसुन् प्रत्यय हो । सृप, पुराक्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । तृद, पुरा जर्त्तृभ्य आतृदः १५०९ ॥

१५१०-अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १८ ॥

प्रतिषेध अर्थ वाले अलं और खलु उपपद हों तो प्राचीनों के मत में धातु से क्त्वा प्रत्यय हो कृत्प्रत्ययान्त अव्यय भाव में होते हैं इस से क्त्वा को भाव में जानना चाहिये । डुदाञ्, अलं दत्वा । मतदेओ । पठ, खलु पठित्वा । मतपढ़ो । अलं खलुग्रहण से यहां न हुआ । माकार्षीत् । वह मत करे । प्रतिषेधग्रहण से यहां न हुआ । अलंकारः । आभूषण । यहां प्राचां ग्रहण सत्कार के लिये है । क्योंकि वासरूपविधि से यथाप्राप्त अन्य प्रत्यय हो ही जायगा । जैसे अलं रोदनेन ॥ १५१० ॥

१५११--उदीचां माङो व्यतीहारे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १९ ॥

उदीचों के मत में व्यतीहार (उलट पलट होना) अर्थ में वर्त्तमान मेङ् धातु से क्त्वा प्रत्यय हो(अप+मेङ्+क्त्वा+सु=)यहां(कुगति०)सूत्र से समास होकर ॥१५११॥

१५१२-समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३७ ॥

नञ् पूर्वक समास न हो तो क्त्वा के स्थान में ल्यप् आदेश हो । इस से(क्त्वा) को ल्यप् आदेश हो कर (अप+मेङ्+ल्यप्+सु=) इस अवस्था में ॥ १५१२ ॥

१५१३मयतेरिदन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७० ॥

ल्यप् परे हो तो आकारान्त मेङ् धातु को इकारादेश विकल्प करके हो (सन्धि० ५८) इस सूत्र के अनुसार मेङ् के अन्त्य को इकार हो कर (सन्धि०२७३) तुक् हो जाता है । जैसे । अपमित्य याचते । वस्त्र आदि को उलटते पलटते मांगता है । जहां इकार न हुआ वहां आत्त्व (२४२) हो जाता है । जैसे अपमाय याचते । यहां पूर्वकाल की प्रतीति नहीं है इस से यह क्त्वा विधान किया क्योंकि पूर्वकाल में क्त्वा (१५१६) विधान करेंगे । उदीचों के ग्रहण से औरों के मत में पूर्वकालिक क्त्वा भी मेङ् धातु से होता है जैसे । याचित्वा अपमयते ॥ १५१३ ॥

१५१४–क्त्वापि छन्दसि अ० ॥ ७ । १ । ३८ ॥

वेदविषय में अनञ्पूर्वसमास में क्त्वा को क्त्वा और ल्यप् आदेश हों । क्त्वा कृत्वा, कृष्णं वासो यजमानं परिधापयित्वा । प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा । ल्यप्,उद्धृत्य जुहोति । वा ग्रहण से भी दोनों आदेश हो जाते तथापि यहां क्त्वा ग्रहण सर्वोपाधि की निवृत्ति के लिये है। इस से असमास में भी ल्यप् होता है। अर्च्य तान् देवान् गतः॥१५१४॥

१५१५--परावरयोगे च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २० ॥

पर से पूर्व का और अवर अर्थात् पूर्व से पर का योग गम्यमान हो तो धातु से क्त्वा प्रत्यय हो । परयोग, अप्राप्य ग्रामं पर्वतः स्थितः । ग्राम को न पाकर पर्वत:रहा

अर्थात् ग्राम से परे पर्वत है । यहां प्रपूर्वक आप्लृ धातु से क्त्वा प्रत्यय फिर प्रादिसमास (सामा० कुगति०) होने से ल्यप् आदेश हो कर नञ्समास होता है । अवरयोग, अतिक्रम्य पर्वतं ग्रामः स्थितः । पर्वत को अतिक्रमण करके ग्राम रहा । अर्थात् पर्वत ग्राम से पहिले है ॥ १५१५ ॥

१५१६--समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ॥ अ० ॥ ३ ।४। २१॥

जिन का समान कर्त्ता है ऐसे जो धातु उन में जो पूर्व काल विषयक अर्थ में वर्त्तमान धातु उस से क्त्वा प्रत्यय हो । भुक्त्वा व्रजति । भोजन करके जाता है। यहां भोजन क्रिया प्रथम करना है इस से भुज धातु से क्त्वा प्रत्यय हो गया ।इसी प्रकार। स्नात्वा पठति इत्यादि समझना चाहिये (समानकर्तृकयोः) यह द्विवचन अतन्त्र है इस से ।स्नात्वा। पीत्वा भुक्त्वा पठित्वा गच्छति । इत्यादिकों में भी क्त्वा प्रत्यय होता है । समानकर्तृकग्रहण से यहां न हुआ । वर्षति मेघे देवदत्तो गतः । पूर्वकालग्रहण से यहां न हुआ। गच्छन् पठति । जाता हुआ पढ़ता है। यहां पूर्वकालता नहीं तथा।मुखंव्यादाय स्वपिति । यहां भी पूर्वकालता नहीं क्योंकि सोने वाले कामुख सोनेके पीछे फैलता है तथापिमुखफैले पीछे जो निद्रा है उस से मुख का फैलना पूर्वकाल में है इस से पूर्वकालता सिद्ध है क्योंकि सोनेवाला मुख फैले पीछे दो घड़ी अवश्य सोवेगा ॥ १५१६ ॥

१५१७--क्त्वि स्कन्दस्यन्दोः अ० ॥६ ।४ ॥ ३१ ॥

क्त्वा प्रत्यय परे होतो स्कन्द और स्यन्दू धातु के उपधानकार का लोप न हो [स्कन्दिर्] गतिशोषणयोः ।स्कन्त्वा [स्यन्दू] प्रश्रवणे यह ऊदित है इस से परे क्त्वा को विकल्पकरके इट् होगा जिस पक्ष में इट् नहीं होता उस पक्ष में (१३९) प्राप्त जो नलोप उस का निषेध हो गया । स्यन्त्वा । और जहां इट् होता है वहां ॥ १५१७ ॥

१५१८--न क्त्वा सेट् ॥अ० ॥ १ । २ । १८ ॥

सेट् (इट्सहित) क्त्वा प्रत्यय कित् संज्ञक न हो । इस से कित् संज्ञा का निषेध हो कर नलोप भी नहीं होता । जैसे स्यन्दित्वा । शयित्वा । सेट् ग्रहण इस लिये है कि । कृत्वा । हृत्वा इत्यादि में कित् निषेध नहीं ॥ १५१८ ॥

१५१९--मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसःक्त्वा ॥अ०॥ १ । २ । ७॥

मृड, मृद, गुध, कुष, क्लिश, वद, और वस धातु से परे सेट् क्त्वा कित् संज्ञक हो । पिछले सूत्र से कित संज्ञा का निषेध था इस लिये विधान किया । मृडित्वा

[क्लिशू] विबाधने क्लिशित्वा (स्वरि०) क्लिष्टा । वद, उदित्वा (२८१) वस, उषित्वा ॥ १५१९ ॥

१५२०--नोपधात्थफान्ताद्वा ॥ अ० ॥ १ । २ । २३ ॥

नकार जिस के उपधा में तथा थ और फ अन्त में हों उस धातु से परे सेट् क्त्वा कित् संज्ञक विकल्प कर के हो। थान्त, श्रथित्वा। श्रन्थित्वा फान्त, गुफित्वा । गुम्फित्वा । नोपधग्रहण में । कोथित्वा । यहां कित् संज्ञा का विकल्प नहीं होता किन्तु (१५१८) इस से नित्य कित् संज्ञा का निषेध हो कर गुण हो जाता है ॥ १५२० ॥

१५२१वञ्चिलुञ्च्यृतश्च ॥ अ०॥ १ । २ ।२४ ॥

वञ्चि, लुञ्चि ऋत् इन धातुओं से परे सेट्क्त्वा विकल्प करके कित् संज्ञक हो। [वञ्चु] गतौ वञ्चित्वा वचित्वा [लुञ्च] अपनयने लुचित्वा । लुञ्चित्वा । ऋत, यह सौत्रधातु है । ऋतित्वा । अर्तित्वा ॥ १५२१ ॥

१५२२–तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य ॥ अ०॥ १। २ ।२५ ॥

काश्यप आचार्य के मत में तृषि, मृषि और कृशि धातु से परे सेट् क्त्वा विकल्प कर के कित् संज्ञक हो । ञितृष, तृषित्वा । तर्षित्वा । मृषु, मृषित्वा । मर्षित्वा कृश कृशित्वा । कर्शित्वा । द्युतित्वा । द्योतित्वा । लिखित्वा । लेखित्वा (५१३) उषित्वा । वसित्वा (११७४) अञ्चित्वा (११७३) लुभित्वा । लोभित्वा(११७५)॥१५२२

१५२३--जॄव्रश्चोः क्त्वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५५ ॥

जॄ और व्रश्चू धातु से परे क्त्वा को इट् आगम हो । जॄष जरीत्वा (९६७) जरीत्वा ओव्रश्चू, व्रश्चित्वा ॥ १५२३ ॥

१५२४--उदितो वा ॥ अ० ॥ ७ ।२ । ५६ ॥

जिस का उकार इत् संज्ञक हो उस धातु से परे क्त्वा को इट् विकल्प करके हो- शमु, शमित्वा शान्त्वा (५८७) ॥ १५२४ ॥

१५२५--क्रमश्च क्त्वि ॥ अ० ॥ ६ । ४।१८ ॥

झलादि क्त्वा प्रत्यय परे होतो क्रम् धातु के उपधा को विकल्प करके दीर्घ हो क्रमु, क्रन्त्वा । क्रान्त्वा (सन्धि २५८, २६४) झलादि ग्रहण से यहां उपधालोप न हुआ । क्रमित्वा (१५२४) ॥ १५२५ ॥

१५२६--जान्तनशां विभाषा ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३२ ॥

जकार जिन के अन्त में हो उन अङ्गों और नश अंग की उपधा का लोप विकल्प करके हो [भञ्जो] आमर्दने । भक्त्वा । भङ्क्त्वा । रञ्ज, रक्त्वा । रङ्क्त्वा नश नष्ट्वा । यहां (४०९) नुम् होता है उस का एकपक्ष में लोप हो गया । और दूसरे पक्ष में न हुआ । जैसे । नष्ट्वा (४०७) सूत्र से पक्ष में । नशित्वा । खात्वा (३९४) दो, दित्वा । षो, सित्वा । मा, मित्वा । स्था, स्थित्वा । इन सभों में (१२०७) सूत्र से इकार० । डुधाञ् हित्वा (१२०९) ॥ १५२६ ॥

१५२७--जहातेश्च ॥ अ० ॥७ । ४ । ४३ ॥

वेदविषय में जहाति (ओहाक्) अंग को विकल्प करके हि आदेश हो [ओहाक्] त्यागे । हित्वा । और [ओहाङ्] गतौ । इस का । हात्वा होगा । अद, जग्ध्वा । (१२१६) सूत्र से जग्धि आदेश हो जाता है ॥ १५२७ ॥

१५२८---वा ल्यपि ॥अ०॥६ । ४ । ३८ ॥

ल्यप् प्रत्यय परे हो तो अनुदात्तोपदेश वनति और तनोत्यादि अंगों के अनुनासिक का लोप विकल्प करके हो । यह व्यवस्थित विभाषा है इस से मकारान्त अङ्गों के अनुनासिक का लोप विकल्प करके तथा औरों के का नित्य होता है । जैसे । मान्त अङ्ग गम्, आगत्य। आगम्य नम्, प्रणत्य । प्रणम्य । मान्तों से अन्यत्र । हन् प्रहत्य । मन्, प्रमत्य । वन्, प्रवत्य (पारिभा० ४६) परिभाषा के अनुसार ल्यप् के विषय में (हि, दथ्, आ, इत्, दीर्घ, इट्) ये विधि क्त्वा प्रत्यय के आश्रय से होने वाले अन्तरङ्ग भी हैं पर नहीं होते किन्तु क्त्वा को बहिरङ्ग ल्यप् आदेश हो जाता है । जैसे हि, निधाय (१२०९) दथ् प्रदाय (१२११) आ, प्रखन्य(३९४) इत्, प्रस्थाय । दीर्घ प्रक्रम्य (५८७) प्रदीव्य (४६) ॥ १५२८ ॥

१५२९--न ल्यपि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६९ ॥

ल्यप् परे हो तो घुसंज्ञक, मा, स्था, गा, पा, जहाति (ओहाक्) और सा-इन अंगों को ईकारादेश न हो । धेट्, प्रधाय । माङ्, प्रमाय । स्था, प्रस्थाय । गै, प्रगाय [पा] पाने प्रपाय । प्रहाय । षो, प्रसाय [मीङ्] हिंसायाम् प्रमाय [डुमिञ्] प्रक्षेपणे । निमाय [दीङ्] क्षये । अवदाय । इन में आत्व० (३९९) [लीङ्]

श्लेषणे विलाय (४००) आत्व हो जाता । दूसरे पक्ष में । विलीय । विचर+णिच्, विचार्य यहां णिलोप (१७७) ॥ १५२६ ॥

१५३०–ल्यपिलघुपूर्वात् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५६

ल्यप् परे हो तो पूर्व जो लघु हो उस के परे णि के स्थान में अय् आदेश हो। वि+गण+णिच्, विगणय्य। प्रणमय्य। यहां णकार का अकार पूर्व है उस से उत्तर णि को अय् आदेश हो जाता है किन्तु लोप नहीं (१७७) नहीं होता लघुपूर्व ग्रहण से यहां न हुआ । संप्रधृञ्+णिच्, संप्रधार्य्य गतः ॥ १५३० ॥

१५३१– विभाषापः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५७ ॥

आप्लृ धातु से परे णि को अय् आदेश विकल्प करके हो । प्र+आप्लृ+णिच् प्रापय्य प्राप्य वा पठति । यहां णिलोप (१७७) हो जाता है ॥ १५३१ ॥

१५३२– जनिता मंत्रे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५३ ॥

मंत्रविषय में णिलोप से जनिता यह निपातन है । यो नः पिता जनिता । यहां जन धातु से इडादि तृच् प्रत्यय के परे णि लोप निपातन से होता है । मंत्र से अन्यत्र । जनयिता होगा ॥ १५३२ ॥

१५३३–शमिता यज्ञे ॥ अ० ६ । ४ । ५४

यज्ञ कर्म में णिलोप से शमिता यह निपातन है । शृतं हविः शमितः। यह संबुद्धि विषय में प्रयोग है यहां शमु धातु से तृच् प्रत्यय के परे णिच् का लोप हो जाता है यज्ञ से अन्यत्र । शमयितः । यह प्रयोग होगा ॥ १५३३ ॥

१५३४–युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि ॥ अ० ॥६ । ४ । ५८॥

ल्यप् परे हो तो वेदविषय में यु और प्लु धातु को दीर्घादेश हो । यु, दान्त्यनुपूर्वे वियूय । यहां विपूर्वक यु धातु को ल्यप् के परे दीर्घ० । प्लुङ् यत्रायो दक्षिणा परिप्लूय यहां परिपूर्वक प्लु को दीर्घ० । वेद से अन्यत्र । संयुत्य । संप्लुत्य ॥ १५३४ ॥

१५३५-- क्षियः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५९ ॥

ल्यप् परे होतो क्षि धातु को दीर्घादेश हो । प्रक्षीय । संक्षीय ॥ १५३५ ॥

१५३६--ल्यपि च ॥ अ०॥ ६ । १ । ४१ ॥

ल्यप् परे होतो वेञ् धातु को संप्रसारण न हो । प्र+वेञ्,प्रवाय तिष्ठति॥ १५३६॥

१५३७--ज्यश्च ॥अ० ॥६ ।१।४२॥

ल्यप् परे हो तो ज्या धातु को भी संप्रसारण न हो [ज्या] वयो हानौ प्रज्याघोपरमते । बुड्ढा हो कर सब कामों से निवृत्त होता है ॥ १५३७ ॥

१५३८--व्यश्च ॥अ० ॥६ । १ । ४३ ॥

ल्यप् के परे व्या धातु क भी संप्रसारण न हो [व्येञ्] संवरणे।उपव्याय ॥१५३८।

१५३९--विभाषा परेः ॥अ० ॥६ । १ । ४४ ॥

ल्यप् परे हो तो परिउपसर्गसेपरे व्येञ् धातु को विकल्प करके संप्रसारणहो।परिवीय यहां संप्रसारण किये पीछे तुक् (संधि० २७३) सूत्र से प्राप्त उस को बाध कर (हलः) सूत्र से दीर्घादेश हो जाता है ॥ १५३९ ॥

१५४०—आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ॥अ०॥ ३ । ४ । २२ ॥

आभीक्ष्णय (बार २ होना) अर्थ गम्यमान हो तो समानकर्त्तृक धातुओं में जो पूर्वकाल में वर्तमान धातु है उस से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय भी हो ॥ १५४० ॥

१५४१- वा०- आभीक्ष्ण्ये हे भवत इति वक्तव्यम् ॥

आभीक्ष्णय * अर्थ में वर्त्तमान जो शब्द है उस को द्विर्वचन हो । जैसे भुज् भोजं भोजं व्रजति । भुज, भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति । स्मृ, स्मारं स्मारं पठति। स्मृत्वा२ पठति यहां पूर्व सूत्र से णमुल् प्रत्यय होकर क्त्वा और णमुल् प्रत्ययान्त को द्विर्वचन हो जाता है ॥ १५४१ ॥

१५४२—न यद्यनाकाङ्क्षे अ० ॥ ३ । ४ । २३ ॥

यद् शब्द उपपद हो और अनाकाङ्क्ष वाक्य हो तो धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय न हो । जिस वाक्य में अगली पिछली दो क्रिया रहें और वह कुछ पर की

*(नित्यवीप्सयोः) इस सूत्र से जो द्विर्वचन होता है वह नित्य अर्थात् क्रिया के अविच्छिन्न होने में होता किन्तु बार २ होने में नहीं होता है जैसे किसीने कहा । स जीवति जीवति । यहां यह अर्थ प्रतीत होगा कि वह जीवता ही है । किन्तु जी के मरता फिर मर के जीवता यह नहीं प्रतीत होगा । भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति भोजं भोजं व्रजति । यहां भोजन करता फिर जाता है फिर भोजन करता फिर जाता है यह भोजन क्रिया का बार २ होना प्रतीत होता है ।इस लिये क्रिया के बार २ होने में(नित्यवीप्सयोः)से द्विर्वचन नहीं प्राप्त था इस से आभीक्ष्णय अर्थ में द्विर्वचन का विधान किया

आकाङ्क्षा न करे उस का यहां ग्रहण है । जैसे । यदयं पठति ततः पचति । जब यह पढ़ लेता है तदनन्तर पाक करता है । यहां यदयं पठति इस अंश में जो पठन क्रिया है उस को कुछ पचन की आकाङ्क्षा नहीं है । अनाकाङ्क्षग्रहण से यहां निषेध नहीं होता । यदयं पठित्वा गच्छति ततःपरमेव प्रसीदति । जब यह पढ़ के जाता है तदनन्तर ही प्रसन्न होता है । यदयं बालः श्रावं श्रावं विस्मरति ततः परमेव पापृच्छ्यते । इत्यादि ॥ १५४२ ॥

१५४३–विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु ॥ अ० ॥ ४ । ४ । २४ ॥

अग्रे प्रथम पूर्व ये उपपद हों तो समानकर्तृकों में जो पूर्व काल में वर्तमान धातु है उससे क्त्वा और णमुल प्रत्यय विकल्प करके हो । यह अप्राप्त विभाषा है अग्रे पठित्वा गच्छति । अग्रे। पाठं गच्छति।प्रथमं पठित्वा गच्छति। प्रथमंपाठं गच्छति । पूर्वं पठित्वा गच्छति पूर्वं पाठं गच्छति । विभाषा ग्रहण इसलिये है कि जब क्त्वा, णमुल् नहीं होते तब लट् आदि प्रत्यय होते हैं जैसे । अग्रे पठति ततो व्रजति । आभीक्ष्ण्य अर्थ में तो पूर्व विप्रतिषेध से नित्य क्त्वा और णमुल् होते हैं जैसे । अग्रे पठित्वा पठित्वा गच्छति । अग्रे पाठं पाठं गच्छति । इत्यादि ॥ १५४३ ॥

१५४४–कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २४ ॥

आक्रोश गम्यमान हो और कर्म उपपद हो तो समानकर्तृकों में जो पूर्व काल में वर्त्तमान धातु उस से खमुञ् प्रत्यय हो । चोरंकारमाक्रोशति । चोर कहि कर कोशता है । यहां कृञ् धातु उच्चारण अर्थ में है ॥ १५४४ ॥

१५४५–स्वादुमि णमुल् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २६ ॥

स्वादु शब्द के अर्थ वाले शब्द उपपद हों तो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु है उससे णमुल् प्रत्यय हो । स्वादुंकारं भुङ्क्ते । संपन्नं कारं भुङ्क्ते । लवणंकारं भुङ्क्ते । यहां संपन्नं और लवणं शब्द स्वादु शब्द के पर्य्याय वाचक हैं । स्वादुमि मान्तनिपातनं क्रियते ईकाराभावार्थम् । च्व्यन्तस्य च मकारार्थम् । महाभाष्य० । ३ । ४ । २६ । स्वादु शब्द से ईकार का अभाव और च्व्यन्त स्वादु शब्द को मकारान्त रहने के लिये (स्वादुमि) यहां स्वादु शब्द को मकारान्त निपातन किया है (ईकार) स्त्रीलिंग की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय से प्राप्त है । जैसे । स्वाद्वीं कृत्वा यवागूं भुङ्क्ते । यहां (स्त्रैण०७६) इस सूत्र से उकारान्त गुणवाची स्वादु शब्द से

ङीष् प्राप्त था सो न हुआ (च्व्यन्त) अस्वादुस्वादु कृत्वा भुङ्क्ते। स्वादुंकारं भुङ्क्ते। अब णमुल् का अधिकार है सो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु है उस से प्रायः होता है ॥ १५४५ ॥

१५४६–अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ॥अ०॥३।४।२७॥

जो सिद्ध कृञ् धातु का अप्रयोग हो और अन्यथा, एवं, कथं, इत्थं ये उपपद हों तो कृञ् धातु से णमुल प्रत्यय हो। जो कृञ् धातु के प्रयोग के विना भी अभीष्ट अर्थ वाक्य से कहा जाय तो कृञ् के प्रयोग को भी अप्रयोग के तुल्य समझना चाहिये जैसे। अन्यथाकारं पठति शिक्षाविरहो बालः। शिक्षा से रहित बालक अन्यथा अर्थात् उच्चारणादि नियम से रहित पढ़ता है यह अर्थ तो अन्यथा पठति शिक्षाविरहो बालः। इस वाक्य से भी होता है। इस लिये पूर्व वाक्य में सिद्ध कृञ् धातु का अप्रयोग समझना चाहिये। सिद्धाप्रयोगग्रहण से यहां णमुल नहीं होता। शिरोन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते। शिर को और ढंग से करके भोजन करता है। यह अर्थ शिरोन्यथा भुङ्क्ते। इस वाक्य से न होगा ॥ १५४६ ॥

१५४७–यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २८ ॥

सिद्ध कृञ् धातु का अप्रयोग हो असूयाप्रतिवचनगम्यमान हो। और यथा, तथा शब्द उपपद होंतो कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो। असूया अर्थात् जो न सहन कर के दूसरे की निन्दा करना उस का प्रतिवचन उत्तर। जैसे, कथं तत्र पठिष्यसि। यथाकारं पठिष्यामि तथाकारं पठिष्यामि किं तवानेन। कैसे वहां पढ़ेगा। जैसे पढ़ूंगा वैसे पढ़ूंगा तुझ को इस से क्या। असूयाप्रतिवचन के ग्रहण से यहां न हुआ। यथा कृत्वाहं पठिष्यामि तथात्वं द्रक्ष्यसि। सिद्धाप्रयोग के ग्रहण से यहां न हुआ। शिरो यथा कृत्वाहं भोक्ष्ये किं तवानेन ॥ १५४७ ॥

१५४८–कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २९ ॥

कर्म उपपद हो तो साकल्य अर्थ में दृश और विद धातु से णमुल् प्रत्यय हो। पुस्तकदर्शं पठति। अर्थात् जो जो पुस्तक देखता है उस२ को पढ़ लेता है। भिक्षुवेदं ददाति। जिस२ भिखारी को जानता पाता विचारता उस२ को देता है। ब्राह्मणवेदं भोजयति (विद) से ज्ञान लाभ और विचार इन अर्थों वाले विद धातु का ग्रहण है। साकल्य ग्रहण से यहां न हुआ पुस्तकं दृष्ट्वा पठति ॥ १५४८ ॥

१५४९–यावति विन्दजीवोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३० ॥

यावत् उपपद हो तो विद्लृ और जीव धातु से णमुल् प्रत्यय हो । यावद्वेदं भुङ्क्ते । अर्थात् जितना पाता है उतना भोजन करता है । यावज्जीवमधीते । जितना जीवता है उतना अध्ययन करता है ॥१५४९॥

१५५०–चर्मोदरयो पूरेः ॥ अ० । ३ । ४ । ३१ ॥

चर्म और उदर उपपद हों तो णिजन्त पूरि धातु से णमुल् प्रत्यय हो । पूरी +णिच्, चर्मपूरमाच्छादयति । चाम पूरा ढांपता है । अर्थात् जितना शरीर का चाम है सब ढांपता है । उदरपूरं भुङ्क्ते । उदर पूरा भोजन करता है ॥१५५०॥

१५५१–वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम्॥अ०॥३।४।३२॥

प्रकृति प्रत्यय के समुदाय से जो वर्षा का प्रमाण गम्यमान हो तो कर्मोपपद णिजन्त पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय हो और इस पूरी धातु के ऊकार का लोप भी विकल्प करके हो । गोःपदं गोष्पदं, गोष्पद पूरयित्वा वृष्टो मेघः, गोष्पदपूरंवृष्टो मेघः, ऊलोपपक्ष में । गोष्पदप्रंवृष्टो मेघः । गौ के खुर पूरा कर मेघ वरसा । अस्य ग्रहण इसलिये है कि धातु ही के ऊकार का लोप हो उपपद के ऊकार का न हो । जैसे मूषिकाविलपूरं वृष्टो मेघः । मूषिकाविलप्रं वृष्टो मेघः ॥१५५१॥

१५५२–चेले क्नोपेः ॥ अ०॥ ३ । ४ । ३३ ॥

वर्षा का प्रमाण गम्यमान हो और चेल शब्दार्थक कर्म उपपद हो तो णिजन्त क्नूयी धातु से णमुल् प्रत्यय हो । चेलक्नोपं वृष्टो मेघः । वसनक्नोपं वृष्टोमेघः । चीरक्नोपं वृष्टो मेघः । कपड़ा भिगोने भर मेघ वरसा ॥१५५२॥

१५५३–निमूलसमूलयोः कषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३४ ॥

निमूल और समूल कर्म उपपद हों तो कष धातु से णमुल् प्रत्यय हो । निमूल कषति, निमूलकाषं कषति । जड़ को छोड़ के जैसे काटता हो वैसे काटता है । समूलं कषति समूलकाषं कषति । जड़ समेत जैसे काटता हो वैसे काटता है । यहां से कषादिकों का प्रकरण है इन में यथाविधि अनुप्रयोग अर्थात् जिस धातु से णमुल् विधान करें उसी धातु का पीछे प्रयोग होता है । और इस प्रकरण में पूर्वकाल की अनुवृत्ति नहीं है ॥ १५५३॥

१५५४-शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३५ ॥

शुष्क, चूर्ण, रूक्ष ये कर्म उपपद हों तो पिष धातु से णमुल प्रत्यय हो । शुष्कपेषं पिनष्टि । सूखा पीसता हो वैसे पीसता है । चूर्णपेषं पिनष्टि । रूक्षपेषं पिनष्टि ॥ १५५४ ॥

१५५५-समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ॥ अ० । ३।४।३६ ॥

समूल अकृत जीव ये कर्म उपपद हों तो यथासंख्य करके हन् कृञ् और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो । समूलघातं हन्ति । मूल समेत जैसे मारता हो वैसे मारता है । अकृतकारं करोति । न किये को जैसे करता हो वैसे करता है । जीवग्राहं गृह्णाति । जीव का ग्रहण करता हो वैसे ग्रहण करता है ॥१५५५॥

१५५६-करणे हनः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३७ ॥

करण उपपद हो तो हन् धातु से णमुल् प्रत्यय हो । पादेन हन्ति, पादघातं हन्ति। यष्टिकाघातं हन्ति । लात वा लठ से मारता हो वैसे मारता है ॥१५५६॥

१५५७-स्नेहने पिषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३८ ॥

स्नेहन अर्थात् जिससे सचिक्कण करे ऐसा करण उपपद हो तो पिष धातु से णमुल् प्रत्यय हो । उदपेषं पिनष्टि । तैलपेषं पिनष्टि । कषायपेषं पिनष्टि । उदक, तैल पीसता है ॥ १५५७॥

१५५८-हस्ते वर्त्तिग्रहोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३९ ॥

हस्तवाची करण उपपद हो तो णिजन्त वृतु और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो । हस्तेन वर्त्तयति हस्तवर्तं वर्तयति । करवर्तं वर्तयति । हस्तेन गृह्णाति, हस्तग्राहं गृह्णाति करग्राहं गृह्णाति ॥ १५५८ ॥

१५५९-स्वे पुषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४० ॥

स्वशब्दार्थक करण उपपद हो तो पुष धातु से णमुल् प्रत्यय हो । स्वशब्द आत्मा आत्मीय ज्ञाति और धन का वाची है । स्वेन पुष्णाति स्वपोषं पुष्णाति । आत्मपोषं पुष्णाति । पितृपोषम् । मातृपोषम् । धनपोषम् । रैपोषम् पुष्णाति॥१५५९॥

१५६०-अधिकरणे बन्धः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४१ ॥

अधिकरणवाची उपपद हो तो बन्ध धातु से णमुल प्रत्यय हो । चक्रे बध्नाति चक्रबन्धं

बध्नाति । शकटबन्धंबन्धाति । मुष्टिबंधं बध्नाति । पहिये गाड़ी वा मुट्ठी में बांधता हो वैसे बांधता है ॥१५६०॥

१५६१–संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४२ ॥

संज्ञाविषय में बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय हो । क्रौंच इव बध्नाति क्रौंचबन्धं बध्नाति । क्रौंचबन्धं बद्धः । मयूरिकाबन्धं बध्नाति । अट्टालिकाबन्ध बध्नाति । ये बंधनई के नाम हैं। कौंच पक्षी मोरनी और अटारी के समान बांधना हो वैसे बांधता है॥ १५६१ ॥

१५६२–कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः ॥ अ० ॥ ३।४।४३॥

कर्तृवाचक जीव और पुरुष शब्द उपपद हों तो यथासंख्य करके नश और वह धातु से णमुल् प्रत्यय हो । जीवनाशं नश्यति । जीव सो नष्ट होता है । पुरुष वाहं वहति । पुरुष की वहाई वहता है अर्थात् पुरुष जैसे जहां तहां वस्तु लेजाने लेआनेमें वहता रहता है वैसे वहता है । कर्त्तृवाचक के ग्रहण से यहां न हुआ । जीवेन नष्टः । पुरुषेणोढः । यहां जीव और पुरुष ये करण हैं इससे णमुल् न हुआ ! किन्तु क्त प्रत्यय हो जाता है ॥ १५६२ ॥

१५६३–ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ॥ अ० । ३ । ४ । ४४ ॥

ऊर्ध्वशब्द कर्त्तृवाचक उपपद हो तो शुष और पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय हो । ऊर्ध्वशोषं शुष्यति। ऊपर को शूखता हो वैसे शूखता है। वृक्ष आदि ऊपर ही को खड़े २ शूखते हैं । ऊर्ध्वपूरं पूर्यते घटः । ऊपर को पूरा होता हो वैसे घट पूरा होता है अर्थात् घट आदि का ऊपर को मुख होता वर्षा आदि के जल से परिपूर्ण भर जाता है ॥ १५६३ ॥

१५६४–उपमाने कर्मणि च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४५ ॥

उपमानवाची कर्त्ता व कर्म उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । कर्म,घृतमिव निदधाति घृतनिधायं निदधाति जलम् । घी के समान धरता हो वैसे जल को धरता है। कर्त्ता, अज इव नश्यति अजनाशं नश्यति । छेरी के समान नष्ट होता हो वैसे नष्ट होता है ॥ १५६४ ॥

१५६५–कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४६ ॥

उक्तकषादिकों में यथाविधि अनुप्रयोग हो । अर्थात् जिस २ धातु से णमुल् कहा है उसी का पीछे से प्रयोग हो । इसी क्रम से कषादिकों में उदाहरण दिये हैं जैसे । निमूलकाषं कषति इत्यादि ॥ १५६५ ॥

१५६६—उपदंशस्तृतीयायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४७ ॥

तृतीयान्त उपपद हो तो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल विषयक अर्थ में उपपूर्वक दंश धातु उस से णमुल् प्रत्यय हो। यहां से णमुल् के प्रकरण की समाप्ति तक पूर्वकाल का संबन्ध है। मूलकेनोपदंश्य भुङ्क्ते मूलकोपदंशं मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते । मूरी को काट के उस से भोजन करता है। यहां मूलकमुपदशति। इस अवस्था में मूलकशब्दउपदंश धातु का कर्म भी है तथापि भुजि क्रिया का करण होने से तृतीयान्त हो जाता है। यद्यपि मूलक शब्द का उपदंश के साथ शाब्दसम्बन्ध नहीं है तथापि कर्म होने से उस का अर्थकृतसंबंध है। इतने ही सामर्थ्य से (मूलकटा+उपदंश) इस से णमुल् प्रत्यय होता है और (सामा० तृतीया०) इस सूत्र सामर्थ्य से उपपद समास होता तथा आगे भी उसी सूत्र से विकल्प करके उपपद समास होता है ॥ १५६६ ॥

१५६७—हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४८ ॥

तृतीयान्त उपपद हो तो अनुप्रयोग जो धातु उस से जिनका समान कर्म है उन हिंसार्थकों से णमुल् प्रत्यय हो। दण्डोपघातं गाःकलयति। दण्डेनोपघातं गाः कलयति । दण्ड से पीट कर गौओं को गिनता है। दण्डताडं वृषंबध्नाति । दण्डेनोपताडं वृषं बध्नाति । समानकर्मकग्रहण से यहां नहीं होता। अश्वं दंडेनोपहत्य गाः कलयति। यहां उपपूर्व हन् और कल धातु का एक कर्म्म नहीं है ॥ १५६७ ॥

१५६८—सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ॥ अ० ॥ ३ । ४ ।४९॥

सप्तम्यन्त और तृतीयान्त उपपद हो तो उपपूर्वक पीड रुध और कर्ष धातु से णमुल् प्रत्यय हो। पार्श्वोपपीडं शेते। पार्श्वयोरुपपीडं शेते। पांजर की ओर में दाब कर सोता है। पार्श्वाभ्यामुपपीडं शेते। पांजर से दाब कर सोता है।व्रजोपरोधंगाः कलयति। व्रज उपरोधं गाः कलयति। गोड़ा में रोक कर गौओं को गिनता है। व्रजेनोपरोधं गाः कलयति। गोंडा से रोक कर गौओं को गिनता है। पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति। पाणावुपकर्षं धानाः संगृह्णाति। हाथ में मींज कर धानों का संग्रह करता है। पाणिनोत्कर्षं धानाः संगृह्णाति। हाथ से मींज कर धानों का संग्रह करता है ॥ १५६८ ॥

१५६९—समासत्तौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५० ॥

समासत्ति (संनिकट) अर्थ गम्यमान हो और तृतीयान्त वा सप्तम्यन्त उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो। केशग्राहं युध्यन्ते । केशेषु ग्राहम्। केशैर्ग्राहं युध्यन्ते ।

हस्तग्राहम् । हस्तेषु ग्राहम् । हस्तैर्ग्राहं युध्यन्ते । अर्थात् युद्ध की प्रबलता से अत्यन्त निकट होकर लड़ते हैं ॥ १५६९ ॥

१५७०-प्रमाणे च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५१॥

प्रमाण गम्यमान हो और तृतीयान्त वा सप्तम्यन्त उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । द्व्यङ्गुलोत्कर्षम् । द्व्यङ्गुल उत्कर्षम् । द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षम् वा काष्ठंछिनत्ति । दोअंगुलके प्रमाण में वा दो अंगुल के प्रमाण से काष्ठ को काटता है इत्यादि॥ १५७०॥

१५७१-अपादाने परीप्सायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५२ ॥

अपादान उपपद हो तो परीप्सा (सबओर से चाहना) अर्थ में धातु से णमुल् प्रत्यय हो । शय्याया उत्थाय, शय्योत्थायं धावति । खाट से उठा और भजा अर्थात् और कुछ काम नहीं देखता है । जहां परीप्सा नहीं है वहां नहीं होता । जैसे आसनादुत्थाय गच्छति ॥ १५७१ ॥

१५७२-द्वितीयायां च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५३ ॥

द्वितियान्त भी उपपद हो तो परीप्सा अर्थ में धातु से णमुल् प्रत्यय हो । यष्टिग्राहं युध्यन्ते । लोष्टग्राहं युध्यन्ते । युद्ध की शीघ्रता में और शस्त्रों को छोड़ लाठी वा डेल लेकर युद्ध करते हैं ॥ १५७२ ॥

१५७३-अपगुरोर्णमुलि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५३ ॥

णमुल् परे हो तो अपपूर्वक गुरी धातु के एच् को विकल्प करके आकारादेश हो [गुरी] उद्यमने । असिमपगूर्य युध्यन्ते, अस्यपगोरम् । अस्यपगारं युध्यन्ते॥ १५७३॥

१५७४-स्वाङ्गेऽध्रुवे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५४ ॥

अध्रुव (अस्थिर) स्वाङ्गवाची द्वितियान्त उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । अक्षिनिकाणं जल्पति । आंख निकाल कर कहता है । भ्रूविक्षेपं कथयति । भौंहों को फरका कर कहता है । अध्रुव ग्रहण से यहां न हुआ । उत्क्षिप्य शिरः कथयति । शिर पटक के कहता है ॥ १५७४ ॥

१५७५-परिक्लिश्यमाने च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५५ ॥

परिक्लिश्यमान अर्थात् सब प्रकार से विशेष पीडा को प्राप्त जो स्वाङ्ग तद्वाचक जो द्वियीयान्त सो उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । उरःपेषं युध्यन्ते। छाती

पीसते लड़ते हैं । उरः प्रतिपेषं युध्यन्ते । शिरःपेषं युध्यन्ते । शिरः प्रतिपेषं युध्यन्ते। समस्त शिर पीसे लड़ते हैं । यह ध्रुवार्थ आरम्भ है॥ १५७५ ॥

१५७६—विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५६ ॥

व्याप्यमान (व्याप्ति को प्राप्त) और आसेव्यमान (सेवा को प्राप्त) अर्थ गम्यमान हो द्वितीयान्त उपपद होतो विश आदि धातुओं से णमुल् प्रत्यय हो । विश आदि क्रियाओं से जो गेहादि द्रव्यों का निश्शेष संबन्ध है सो यहां व्याप्ति और क्रिया का जो वार वार होना वह आसेवा समझनी चाहिये । द्रव्य में व्याप्ति और क्रिया में आसेवा रहती है । विश, गेहानुप्रवेशमास्ते । घर २ में प्रवेश करके बैठता है । वा घर में पैठ २ बैठता है । यहां समास से ही व्याप्ति और आसेवा उक्त हैं। इस से(नित्य०) सूत्र से णमुल् प्रत्ययान्त का द्विर्वचन नहीं होता और उपपदसमास का जहां विकल्प पक्ष है वहां व्याप्ति अर्थ में द्रव्य को द्विर्वचन और आसेवा में क्रिया को द्विर्वचन होता है । जैसे व्याप्ति, गेहं गेहमनुप्रवेशमास्ते । आसेवा, गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशमास्ते । पति, गेहानुप्रपातमास्ते । गेहं गेहमनुप्रपातमास्ते । गेहमनुप्रपातमनुप्रपातमास्ते । गेहानुप्रपादमास्ते । गेहं गेहमनुप्रपादमास्ते । गेहमनुप्रपादमनुप्रपादम् । स्कन्दिर, गेहावस्कन्दमास्ते गेहंगेहमवस्कन्दम् । गेहमवस्कन्दमवस्कन्दम् । व्याप्यमान आसेव्यमान अर्थों के ग्रहण से यहां न हुआ । गेहमनुप्रविश्य भुङ्क्ते । आसेवा आभीक्ष्ण्य है और आभीक्ष्ण्य अर्थ में णमुल् कहा है इस लिये यह सूत्र द्वितीयोपपद होने से उपपद समास के लिये है ॥ १५७६॥

१५७७—अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु॥अ०॥३।४।५७॥

कालवाची द्वितीयान्त उपपद होतो क्रिया का व्यवधान करानेवाला जो अर्थ उस में वर्त्तमान जो अस्यति, तृष्, धातु उन से णमुल् प्रत्यय हो [असु] क्षेपणे द्व्यहात्यासं गाः पाययति । द्व्यहमत्यासं गाः पाययति । दो दिन छोड़ के गौओं को पियाता है। यहां द्व्यह शब्द कालवाची द्वितीयान्त है । अतिपूर्वक अस धातु पान क्रिया के व्यवधान में वर्तमान है इसी प्रकार द्व्यह तर्षं गाः पाययति । द्व्यहं तर्षं गाः पाययति । यहां भी जानना चाहिये । अस्यति तृष् ग्रहण से यहां न हुआ । द्व्यहमुपोष्य भुङ्क्ते । क्रियान्तर ग्रहण से यहां न हुआ । अहरत्यस्य मगधान् गतः । कालग्रहण से यहां न हुआ । योजनमत्यस्य जलं पिवति । यहां अध्वविषयक योजन शब्द उपपद है॥ १५७७।

१५७८—नाम्न्यादिशिग्रहोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५८ ॥

द्वितीयान्त नाम शब्द उपपद हो तो आङ्पूर्वक दिश् और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो । नामादिश्याचष्टे, नामादेशमाचष्टे । नामगृहीत्वाचष्टे, नामग्रहमाचष्टे । नाम-उच्चारण कर वा नाम लेकर कहता है ॥ १५७८ ॥

१५७९-अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ॥३।४।५९॥

अयथाभिप्रेताख्यान (अभिप्रायविरुद्ध) अर्थात् अप्रिय वाक्य को ऊंचे स्वर से कहना और प्रिय वाक्य को नीचे स्वर से कहना अर्थ गम्यमान हो और अव्यय उप-पद हो तो कृञ् धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो । उच्चैः कृत्य । उच्चैः कृत्वा । उच्चैः कारमप्रियमाचष्टे । नीचैः कृत्य । नीचैः कृत्वा । नीचैः कारम् । प्रियं ब्रवीति अप्रिय को ऊंचे स्वर से और प्रिय को नीचे स्वर से अर्थात् धीरे से कहता है । यहां क्त्वा ग्रहण (त्वा च) इस सामासिक सूत्र से समास होने के लिये है ॥ १५७९॥

१५८०-तिर्य्यच्यपवर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६० ॥

अपवर्ग (समाप्ति) अर्थ गम्यमान हो और तिर्य्यच् शब्द उपपद हो तो कृञ् धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो । तिर्य्यक्कृत्य तिर्य्यक्कृत्वा तिर्यक्कारं कार्य्यं गतः । कार्य्य को समाप्त करके गया । जहां अपवर्ग न हो वहां नहीं होते । तिर्य्यक्कृ-त्वा (१५१६) काष्ठंगतः । काठ को तिरछा करके गया । यहां समाप्ति कथन नहीं है ॥ १५८० ॥

१५८१-स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः ॥अ०॥ ३ । ४ । ६१ ॥

तस् प्रत्यान्त स्वाङ्गवाची उपपद हो तो कृ, भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्र-त्यय हो । मुखतःकृत्य गतः । मुखतः कृत्वा गतः । मुखतः कारं गतः । मुख से कर गया पृष्ठतो भूय । पृष्ठतो भूत्वा । पृष्ठतो भावं गतः । पीठ से हो के गया । स्वांग ग्रहण से यहां न हुये । सर्वतः कृत्वा गतः । तस् ग्रहण से यहां न० । मुखीकृत्य गतः । यहां (स्त्रैण०८५६) च्वि प्रत्यय होता है ॥ १५८१ ॥

१५८२-नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६२ ॥

च्व्यर्थ नाधार्थप्रत्ययान्त शब्द उपपद हों तो कृ और भू धातु से क्त्वा और ण-मुल् प्रत्यय हो । अनाना नानाकृत्वा गतः, नाना कृत्वा गतः । नानाकृत्य गतः । नानाकारं गतः । थोड़े को बहुत करके गया । विनाकृत्वा गतः । विनाकृत्य गतः ।

विनाकारं गतः । नानाभूय गतः । नानाभूत्वा गतः । नानाभावं गतः । विनाभूय गतः । विनाभूत्वा गतः । विनाभावं गतः । द्विधाकृत्य । द्विधाकृत्वा । द्विधाकारं गतः । द्विधाभूय । द्विधाभूत्वा द्विधाभावं गतः । द्वैधंकृत्य । द्वैधंकृत्वा । द्वैधंकारं गतः । द्वैधंभूय । द्वैधंभूत्वा । द्वैधंभावं गतः । प्रत्यय ग्रहण से यहां नहीं होते । हिरुक् कृत्वा । विना कर के । पृथक् कृत्वा गतः । अलग करके गया । च्व्यर्थग्रहण से यहां न० । नानाकृत्वा काष्ठानि गतः । काष्ठों को फैला के गया ॥ १५८२॥

१५८३-तूष्णीमि भुवः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६३ ॥

तूष्णीम् शब्द उपपद हो तो भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हों । तूष्णीं भूत्वा । तूष्णींभावं स्थितः । चुप होकर ठहर रहा ॥ १५८३ ॥

१५८४-अन्वच्यानुलोम्ये ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६४ ॥

अन्वच् शब्द उपपद हो तो भू धातु से आनुलोम्य (अनुकूलपन अर्थात् दूसरे के चित्त की प्रसन्नता रखने) अर्थ में क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हों। अन्वग्भूय आस्ते । अन्वग्भूत्वास्ते। अन्वग्भावमास्ते। दूसरे के अनुकूल होकर बैठता है । आनुलोम्य ग्रहण से यहां नहीं होते । अन्वग् भूत्वा(१५१६)पठति। पीछे होकर पढ़ता है ॥१५८४॥

इत्याख्यातः प्रचरितगिराख्यात आख्यातिकेन

प्रोक्तः पातञ्जलमथ मतं प्रेक्ष्य दाक्षीसुतस्य ।

वेदाधीनान्नियतविषयस्थानमारोप्य योगान्

विज्ञायन्तां निगमवचनान्याशु जिज्ञासुभिर्यत् ॥ १ ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृत आख्यातिको

ग्रन्थः पूर्त्तिमगात् ॥

भूमिका

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	२	उस	उन
१	१३	भुंक्ते	भुङ्क्ते
२	२	घनांत	घनान्त
२	१७	कता	कर्ता
३	२	संभवित	संभावित (नोट)
५	३	युरुणुत्नुदणूर्णु	युरुणुत्नुस्नुदणूर्णु
५	५	राञ्जि	रञ्जि
५	१५	इनक्त	इनसात
५	२१	ने	नें
६	४	तों	तों में
६	८	कारन्त	कारान्त
७	२	रंज	रञ्ज
८	६	ष्टविहा	ष्टाविह

आख्यातिक

पृष्ठम्	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	१६	जो प्रत्यय	जोतिङ्भिन्नप्रत्यय
२	४	अन्त्यवर्ण	अन्त्यहल्वर्ण
३	१०	रहतसन्ते	रहते
३	२३	अंग	अङ्ग
,,	,,	और से लेके जावे तक	
३	२५	अंग	अङ्ग
४	३	हों	हो
४	७	प्रत्ययके	तद्धित से भिन्न प्रत्यय के
४	१०	ऽर्द्ध	ऽऽर्द्ध
५	८	अन्त	अन्त यह
५	१३	हों	हो
५	२३	धातुओं से	धातु से
७	५	भूव	भूव्
८	८	कार्य भी	कार्य ही
८	८	इस	यह अधिकार सूत्र है इस-
८	११	कर्त्तव्ये	कर्त्तव्ययोः
९	६	लट्	लृट्
९	११	लुट्	लृ, लुट्
९	२४	उस	उस अङ्ग
१०	१२	केवाचक	में
१०	१६	आदेश	आदेशरूप
१०	२०	छन्द	छन्द और अन्य तरस्याम्
१०	२१	लकारहो	विकल्पसेलकारहो
१२	१	मा।विषाम्	भाविषाम्
१२	१०	अर्थ में भी	अर्थ में वर्त्तमान धातु से
१२	१२	केइकारको	के आदेशों के इकार केस्थान में
१३	१	१०५	१०१
१४	२	९९	९९
१४	४	मंत्राण	मन्त्रणा
१४	६	आमंत्रण	आमन्त्रण

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१४	२१	अनन्त्य	लिङ्के अनन्त्य	४२	९	संयोग—	धातु का अवय-
१४	२२	अत्मनेपद	आत्मनेपद				वसंयोग
१६	१३	अंग	अङ्ग	४२	११	धातुस	धातु से
१६	१६	अङ्गों	अङ्ग	४३	१७	धातु	इवर्ण और उव-
१६	१७	७७	७५				र्णान्त धातु
१६	२२	लकारों को	लकारोंकेपरेरहते	४३	१६	१५८	१४८
१७	६	७७	७५	४६	६	श्वेदि	श्व्येदि
१७	२६	प्रत्ययोंकी	प्रत्ययकी	४९	२	कडि	कड
१८	२	प्रत्ययों का	प्रत्ययका	४९	१६	इग्वान्हलन्तधातु	इक्समीप हल्
१८	२५	६२	७२	५०	१२	होवे	होवे कित्ङ्त्लि-
१९	२१	बलादि	वलादि				ट् और सेट्झल्
१९	२३	में से	में जो से, उस				परे रहते
१९	२५	सीध्वं	षीध्वं	५०	१८	आतां	आताम्
१९	२६	सीध्वं	षीध्वं	५२	१७	मंत्र	मन्त्र
२०	६	होवे	होवे लिट् परे होतो	५३	५	जुगुबूव	जुगुप्व
२१	२	सीध्वं	षीध्वं	५३	९	जुगुम्म	जुगुप्म
२४	२०	अंग	अङ्ग	५६	१०	कर्ता में	कर्ता में वर्त्तमान
२६	८	उपधाभृत	उपधाभूत,	५८	१६	६ । १	३ । १
२६	२२	स्वदि,स्विदि	स्विदि, स्वदि,	५९	२१	हो जाता ह	हो जाता है
२६	२३	स्वञ्ज स्वपय,	स्वञ्जिनस्वपितयश्च	६०	१०	हों	हो
२७	१९	उदात्तेत	अनुदात्तेत	६०	२४	होंते	होतो
२९	१०	धातुओं से	धातु से	६०	२५	प्राप्तप्राप्त	प्राप्ताप्राप्त
३८	२५	द्विपंचाशत्,	द्विपञ्चाशत्	६०	२५	क्याकि	क्योंकि
३९	१७	संमीप	समीपं	६१	४	संज्ञक	संज्ञक प्रत्यय
४०	७	अलुञ्चुत्	अलुञ्चत्				जिससे परे होऐसे
४१	३	अचिर्षाति	आर्चिषाति	६१	१९	सीध्वं	षीध्वं

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
६६	७	दीर्घ	११० दीर्घ
६६	७	धातुको	धातु को १४७
६६	७	। १४७	....
६६	८	। ११०	....
६९	६	हों	हो
७२	२७	अवयव जो झषन्त एकाच् वश्	अवयव जो एकाच् झषन्त उसके अवयव वश्
७४	२६	पंचाशत्	पञ्चाशत्
७५	२१	की आदि	के आदि में
७५	२३	आनष्ट	आनष्ठ
७६	१५	भ	भु
७६	१५	हों	हो
७८	१४	। १ । ३७ ।	१ । ३८
७८	६	अर्द्धधातुक	आर्द्धधातुक
७८	२७	अपोषीत्	अपोषीत्
८३	२०	परे स्य और सन् प्रत्यय के विषय में	स्य और सन् प्रत्यय परे हों तो
८५	५	। २ । ७२ ।	२ । ६०
८८	६	रंज	रञ्ज
९०	७	बन्धुषु (भाई-बन्धुओं का समूह)	बन्धुषुचसमूह और बन्धुचेष्टा
९०	२७	कित् लिट्	कित्ङित्लिट्
९०	२७	धातुओं	धातु
९०	२१	(टुवम्)	(टुवमु)
९१	१	इन के	इन के अकार के स्थान में

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
९५	१७	संबरण	संवरण
९५	२१	बरणे	वरणे
९५	२७	जुगुहिथ	जुगूहिथ
९७	९	बभ्रुः	बभ्रुः
९८	९	जह्नव जह्नम	जह्निव । जह्निम
९८	१०	जह्नेष जह्नद्वे जह्नवहे	जह्निषे । जह्निद्वे जह्निवहे
९९	१४	होजावे	द्विर्वचन ही कर्तव्य होवे तो,
१०२	४	अपास्यात्	अपास्यत्
१०२	२९	होकर,	हो कर
१०३	१४	लिट्में	लुट् में
१०५	१६	। २५९ ।	१५६
१०६	२८	अजेषात्	अजैषीत्
१०६	२२	जाना । द्राता । द्राता । स	जानो । द्रोता । द्रोतासि
१०७	१	त्वारसंत्	चत्वारिंशत्
११०	१३	(२०५)	(५६)
१११	२६	पंचदश	पञ्चदश
११२	१३	१५१	२५१
११३	२२	राशीतः	राशीर्ताः
११६	२७	अनुनासिकका	उपधाभूतनकारका
११७	१३	लिटच्यभ्यास्यो	लिटच्यभ्यासस्यो
११७	२४	इयष्ट	इयष्ठ
११८	१	[टुवप्]	[डुवप्]

पृ० पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ० पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
११८	ऊवाह	उवाह	१३४ २०	वच+णल्	वच्+णल्
११८ १३	[illegible]वात्तत्	अवात्सीत्	१३५ ६	३।११७	४। ११७.
११८ १४	अव[illegible]ताम्	अवत्ताताम्	१३५ २७	पर्यंत	पर्यन्त
११९	[illegible]	वश, व्यच,	१३६ १५	कित्लिङ्	यकारादि कित् लिङ्
१२३ १	[illegible]८४	२१४			
१२४ २६	बध	वध	१३७ १८	अध्यगीष्यत्	अध्यगीष्यत
१२५ १	सब प्रयोगों में बध अशुद्ध है	वध	१३७ १९	अध्यागीष्यन्त	अध्यगीष्यन्त
			१४० ७	यांत	यान्त (नोट)
१२६ १८	लीढासि लीढा से	लेढासि लेढासे	१४१ ११	उदित्है	ऊदित् है
			१४१ १४	माष्टी	मार्ष्टि
१२७ ६	(१३)चख्यो	(१०३) चख्यौ	१४२ १६	(३५६)	(३५७)
१२७ १४	चकशतु	चक्शतुः	१४३ १८	जागर्ति	जागर्षि
१२७ १६	।ख्याष्पति	ख्यास्यति	१४५ ४	दरिद्रयात्	दरिद्र्यात्
१२८ ९	संचद्धितासे	संचद्धितासे	१४५ १२	(३६५)	(३६६)
१२८ १५	ईड्	ईड	१४६ १३	वैदिक	वेद
१२८ १६	ईश, ईड, और जन धातुओं से	ईड और जन धातु से	१५० २	ओहाक्	ओहाङ्
			१५१ ६	यकारादि	यकारादि कित् क्ङित
१२८ १६	उन को	उस को			
१३० ४	सविसीध्व	साविषीध्वम्	१५१ २१	अदत्त्	अदत्त
१३० ८	होंता	होता	१५२ १८	संज्ञकधातुओं को	संज्ञकलघूपध धातु को
१३१ ७	। धातुओं से	धातु से			
१३१ २४	ऊर्णावाते	ऊर्णुवाते	१५३ ११	गणन्तात्	गणान्तात्
१३३ ७	अद्यावीत्	अद्यौषीत्	१५६ १	वत	वृत
१३३ २४	अस्तुवीयात	स्तुवीयात्	१५८ ७	आलास्यत	अलास्यत
१३४ १९	व्यजन की	व्यञ्जन की	१५८ १५	डीङ्की	डीङ्को

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१५८	२२	(२४८)	(२४९)
१५९	३	पंचदश	पञ्चदश
१५९	६	होंतो	हो तो
१५९	१५	अजिनिष्ट	अजनिष्ट
"	१६	अजिनिषाताम्	अजनिषाताम्
१६२	८	अवित्	अविध्यत्
१६३	२	सिधु	षिधु-
१६३	२	सिसेध	सिषेध
१६४	१२	स्नुह स्निहाम्	ष्णुह ष्णिहाम्
१६४	१३	स्नुह और स्निह	ष्णुह और ष्णिह
१६७	६	होंतो	होतो
१६७	१९	यंत्र	यन्त्र
१६७	२१	[सिञ्] बंधने	[षिञ्] बन्धने
१६८	१४	धातुओं से	धातु से
१७०	१४	कित् लिट्	कित् ङित् लिट्
१७१	२	नतौच	गतौच
१७१	१४	वैदिकविषय	वेद विषय
१७३	१२	उद्वविजिष्ट	उदविजिष्ट
१७३	२३	अवृश्चीत्	अव्रश्चीत्
१७४	१३	विवादि	दिवादि
१७७	६	बश्चादय	व्रश्चादय
१७७	६	ब्रश्चआदि	व्रश्चआदि
१७७	१७	दीर्घंत	दीर्घान्त
१८१	५	पिशी	पिश
१८१	५	पिंशते	०००
१८१	१४	होंतो	होतो
१८६	११	विषय में	विषय में विकल्प से
१८७	४	हों तो	हो तो
१८७	१६	प्रत्ययहों	प्रत्यय हो
१८७	१७	हों तो	हो तो
१८८	३	युज्	युञ्
१८८	९	होंतो	होतो
१९०	२४	अशु	अश
१९१	६	हेट्णाति	हेठ्णाति
१९१	१०	पंचवि	पञ्चवि—
१९३	२२	तुंजत्	तुञ्जत्
१९५	११	टंकयति	टङ्कयति
१९५	१७	पंचयति	पञ्चयति
१९६	१४	तंत्रयते	तन्त्रयते
१९७	२३	आचक्रन्दत	आचक्रन्दत्
१९८	२	लिंगयाति	लिङ्गयाति
१९८	२२	ताटयति	नाटयति
१९९	१९	अङःषद	आङःषद
२०१	१७	चामंत्रणे	चामन्त्रणे
२०१	१९	पर्यंत	पर्यन्त
२०२	१०	माचेष्ट	माचष्टे
२०२	७	उल्लंघन	उल्लङ्घन
२०२	२३	अंक	अङ्क
२०३	२३	मंगलार्थ	मङ्गलार्थ
२०४	३	स्वतंत्र	स्वतन्त्र

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२०५	२८	४६२	४६३
२०६	७	विव	पिव
२०६	१०	४६२	४६३
२०६	२४	अर्थ में	अर्थ में वर्त्तमान
२०८	६	४६२	४६३
२०८	१४	(४६३) इस सूत्र से आकारा	(४६२) इस- सूत्र से आकारा
२०९	१	वा	वा०
२०९	३	रंजयति	रञ्जयति
२०९	६	अर्थ में	अर्थ में वर्त्तमान
२०९	९	हनस्तो	हनस्तोऽ
२१०	६	२८९	२८६
२११	२	५०८	५१०
२११	२०	४।५८।	४।५७
२१२	१२	सन्परे	झलादि सन् परे
२१४	२	रेकचो	रेकाचो
२१६	२२	नीग	नीग्
२१९	८	अलर्तिः	अलर्ति
२१९	११	अतंत्रः	अतन्त्र
२२१	१२	तांग	ताङ्ग
२२१	२०	वर्वृत्तामास	वर्वृतामास (नो- धातु में सर्वत्र एक तकार है)
२२१	२८	जसृत्व	जशृत्व
२२२	१	संधि	सन्धि (नोट)
२२२	२४	झलादि	झलादि कित्- ङित्
२२३	५	झलादि	झलादि कित्ङित्
२२३	५	शकार और छकार का	छकार और व कारका
२२४	७	(२९) ऋ- कोरिङ्	(२३९) ऋ को रिङ्
२२८	१२	किब्झलोः	किम्झलोः
२२८	१९	द्योरिव	द्यौरिव
२३०	१	कत्तकष्ट	कष्टकत्त
२३०	७	धातु के	धातु के अर्थ में
२३०	२७	नहिरायते	नीहारायते
२३१	१	सोटा	सोटा कष्टा
२३१	२५	रत्वानि	रदन्तत्वानि
२३२	१	जोटीभूताः	जटीभूताः
२३२	२३	(४६२)	(४६३)
२३४	११	प्रसंग	प्रसङ्ग
२३५	९	बल्गु	वल्गु
२३६	२५	अत्मनो	आत्मनो
२३७	१६	आधीन	अधीन
२३८	१९	व्यातिहार	व्यतिहार अर्थ
२३९	६	अन्यत्र	अन्यत्र अर्थ में
२४०	४	करने	करने अर्थ
२४०	२३	करणादि	कर्णादि
२४१	१८	आत्मनेपदहै	आत्मनेपद हो
२४१	४	मंत्र	मन्त्र
२४२	१४	बध	वध
२४२	१८	आहत	आहत

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२४३	५	परस्मैपदको	परस्मैपदकी
२४३	६	स्थान में	स्थान में (१२३) से
२४३	१०	ङित्	ङित् प्रत्यय
२४४	१	१३	१ । ३
२४४	३	विह्वते	विह्वयते
२४४	६	मल्लोमाह्वयते	मल्लो मल्लमा-ह्वयते
२४४	६	छात्रमायते	छात्रमाह्वयते
२४४	२४	शामनं	शोमनं
२४५	२१	उपसर्गों से	उपसर्ग पूर्वक
२४६	११	जानैते	जानीते
२४६	१७	अन्तत्र	अन्यत्र
२४६	२४	स जानाति	संजानाति
२४६	२५	मंत्रण	मन्त्रणे
२४७	२१	ब्राह्मणः	ब्राह्मणाः
२४८	५	उलंघन	उलङ्घन
२४९	१३	उन उपसर्गोसे	उस उपसर्ग से
२४९	१५	युज	युज्
२४९	१६	संयुनुक्ति	संयुनक्ति
२४९	१९	कर्मककी	कर्मकही
२५०	८	उपसिचान्ति	उपसिञ्चन्ति
२५०	१६	बनगुल्मः	वनगुल्मः
२५०	२१	३ । ७९	३ । ६९
२५०	२४	करताहै	कराता है
२५१	२३	ब्रीहीन्	ब्रीहीन्
२५२	५	आत्मनेपद	परस्मैपद
२५२	१७	क्रिया;	क्रिया
२५३	१५	ब्रीहयः ब्रीहीना	ब्रीहयः ब्रीहीना
२५४	२९	चि् के	च्लिके
२५५	७	भाव्यत	भाव्येत
२५५	१३	नमीहै	मीहै
२५५	१६	वाकृ	वा कृ
२५६		आत्मनेपद	भाव कर्म
२५६	११	बध	वध सर्वत्र है
२५६	१८	गोर्जते	गीर्यते
२५७	४	परे होतो	जिस से परे हों ऐसा णिच् परे होतो
२५८		परस्मैपद	कर्मकर्तृ
२५८	१४	प्रोजन	प्रयोजन
२५९	११	माव	भाव
२६०		भावकर्म	कर्मकर्तृ
२६०	१	भूषाथ	भूषार्थ (नोट)
२६०	२३	भूषयन्याः	भूषयिष्याः
२६१	२	अवगीर्ष्ट	अवागीर्ष्ट
२६१	१६	आवृषीयत्व	आवृषीयत्व-
२६१	२१	७ । १ । १	३ । १ । १
२६२		आत्मनेपद	लकारार्थ
२६२	२	वस्त्र	वस्त्रं
२६३	४	ररंजेवस्त्र	ररञ्जे वस्त्रं

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२६२	९	अभिज्ञा	अभिज्ञा	२७४	१४	तेभ्योक	तेभ्योऽक
२६२	१५	कश्मीरे	कश्मीरे	२७४	१५	मवृणीय	मवृणीतायं
२६३	८	इतिह	इतिहा	२७४	२४	साढः	साढः
२६३	१६	युधिष्ठिरः	युधिष्ठिरः	२७४	२५	साढ्	साढ्
२६३	१८	धातुमे	धातु से	२७५	३	वकृषु	वाकृषु
२६५	२४	क्षिप्रवाची	क्षिप्रवाचीपद	२७६	१०	स्यति	स्यति, स्तौति,
२६६	७	ध्यापिपत्	ऽध्यापिपत्	२७८	८	सकारको	सकारकोविकल्पसे
२६६	१६	तत्र	तत्र द्विरोदनं	२७८	१७	अनुष्यन्दते	अनुष्यन्देते
२६६	१७	तत्र	तत्र द्विरोदनं	२८१	१०	आग	आगे
२६६	४४	यढवरं	यदवरं	२८१	१५	विस्तारः	विस्तरः
२६६	२६	रोद्धमास	रोऽर्द्धमास	२८१	२०	युधिम्या	युधिम्यां
२६७	१४	निमित्तम	निमित्तमें	२८१	२५	इनसे	इन से परे
२६७	१८	वहां	वहां भूतकालमें	२८२	३	बाहि	बाहि
२६८	८	लुङ्	लुट्	२८३	८	।३।१०१	३। १०१
२६८	११	याजयिष्यत्	अयाजयिष्यत्	२८३	१०	आग्निष्टुं	अग्निष्टूवं
२६८	२०	किकिल	किक्किल	२८३	१३	१३मोत्मनो	मात्मनो
२६९	४	भवद्दिधः	भवद्विधः	२८३	१८	स्तुस्तोम	स्तुतस्तोम
२७०	२८	यानाहेतु	यानहेतु	२८५	७	महामास्य	महाभाष्य
२७१	१५		फूल से ले के २	२८५	९	उसका	उस का निषेध
			पङ्क्तिनोटकी	२८५	१३	नहो	नहोस्य और सम
२७१	१८	निमंत्रण	निमन्त्रण				परेहोतो
२७२	३	३६४	११४	२८५	११	परिषजाते	परिषस्वजाते
२७३	३	हार्पीत्	हार्षीत्	२८६	४	रमाभ्यां	रमाभ्यां
२७३	६	तब	तव	२८६	१८	बृंहयणीम्	बृंहयणीयम्
२७४	१०	पर्वते	पर्वते	२८६	२१	अज्ञा	संज्ञा
२७४	१३	धातुसबन्ध	धातुसंबन्धहोनेपर	२८७	१	पुष्य	पुष्य [नोट]

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२८७	२	पगः	पगाः
२८७	३	अपुण्याः	अपुण्पाः [नोट]
२८७	४	स्मृतः	स्मृताः
२८७	१८	कायनम्	कावनम्
२८९	८	घान्हीं	घाह्नी
२९०	६	मिमित्त	निमित्त
२९०	२७	अन्त(समीपर्वी)जोसर्गस्थ	स्यति अन्त (समीपवर्ती) जोउपसर्गस्थ
२९१	१६	देशो	देशे
२९१	२५	ग्रहीन	गृहीत
२९२	७	प्रनेमुञ्चतम्	प्र नोमुञ्चतम्
२९२	१४	निष्टा	निष्ठा
२९२	१७	निर्विर्ण	निर्विण्ण
२९२	१८	निर्विणो	निर्विण्णो
२९४	१०	अवहितलक्षणं	अविहितलक्षण
२९६	१५	अदुपद	अदुपध
२९७	२४	जृष्	जॄष्
२९८	६	क्यपूयत्	क्यप्
२९९	१६	(सन्धि१०९)	(सन्धि २०८)
३००	१४	।२।९३	३।५२
३०१	१६	जित्य	जित्या
कृत्यप्रक्रिया			२०२
३०२	३	वाउरी	बाउड़ी
३०२	८	कृज	कृञ्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
३०२	१२	युञ्	युज्
३०३	२०	प्रत्पय	प्रत्यय
३०३	२५	॥७।	॥अ०७।
३०४	५	प्रत्य	प्रत्यय
३०६	१५	नयिपिस्था- नयि,	नीयो पस्थानीय
३०७	२७	क धातु	कृ धातु
३१०	८	वद्यमान	विद्यमान
३१२	१२	अकारान्त	आकारान्त
३१६	२१	होंतो	होते
३१७	१६	प्रत्ययहों	प्रत्ययहैं।भूति-अर्थगम्यमान-होते
३१७	२०	मत्र	मन्त्र
३१७	२७	व्रीहिः	व्रीहिः
३२५	५	होता	होते
३२५	१६	ढचीकरणम्	च्वीकरणम्
३२५	२१	च्व्यर्व	च्व्यर्थ
३२६	२	सुभंग	सुभगं
३२८	७	क्रमो	क्रमगमो
३२९	२०	भ्रस्यति	भ्रश्यति
३२९	२४	जनीः	जनौः
३३०	१३	सत्रों	सूत्रों
३३४	१६	मनु	ममनु
३४०	४	मर्प्ये	मर्ग्ये
३४५	५	इडागम्	इडागम

आख्यातिकशुद्धाऽशुद्धपत्रम् ॥

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
३४७	११	ह्लादो	ह्लादो
३१४	१०	शतॄ	शतृ
३५४	२१	२१३७	१२१७।
३५९	८	अनुराधी	अनुरोधी
३६०	१४	सबुल	सबुल्
३६१	७	३२	३।२
३६२	१७	महा	महा
३६२	११	रुशाकः	शारुकः
३६९	१८	विभ्रट्	विभ्राट्
३६९	१	प्रत्तय	प्रत्यय (नोट)
३७०	२	सत्मुथं	समुत्थं
३७२	१४	पठंतं	पठन्तं
३७३	७	वचनाना	वचना
३८१	१४	पूद्रुवः	पूद्रुवः
३८७	२०	कोग	को गा
३८९	४	मयू	मपू
३९०	२१	मंत्र	मन्त्र
३९३	६	षाध्यो	षध्यो
३९४	१५	मषतेरः	भवतेरः
३९५	२४	कारीका	कारिका
३९५	२८	पीरपाटी	परिपाटी
३९६	!०	वादहै	वाद है
३९७	७	प्रवृश्चन	प्रवश्चन
३९७	१३	छादेर्घेंद्युप	छादेर्घेद्व्युप
३९७	२०	गवश्चर	गावश्चर
३९८	२८	क्याकै	क्योंकि
४००	२२	१४९४	१४२४—वा०
४०१	१६	अंगों	अङ्गों
४०१	२४	कष्येन्	कष्येन् शष्ये
			शष्यैस्
४०२	२३	शकवन्	शक्नुवन्
४०५	१८	प्रश्नवणे	प्रस्रवणे
४०६	१०	ऋत	ऋत
४०६	१५	द्युतित्वा	द्योतित्वा
		द्युतित्वा	द्योतित्वा
४०६	१७	जवरचोः क्त्वा	जवरश्चयोः क्विव
४०७	२	अंग	अङ्ग
४०९	५	कभी	को भी
४१०	२७	वाक्गू	वागू
४११	१	स्वान्द्रुं	स्वाद्रुं
४१२	१२	गोष्यद	गोष्पदं
४१२	१९	वृष्ठो	वृष्ठो
४१४	१	मुष्टिबंधं	मुष्टि बन्धं
४१४	९	जीवसो	जीव
४१६	९	मना	मगा
४१८	१९	प्रत्यान्त	प्रत्ययान्त
४१९	१८	जिज्ञसु	जिज्ञासु